GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

CLASS
CALL No. 181.5 Tiw

D.G.A. 79.

सूफीमत
साधना और साहित्य

सूफीमत

साधना और साहित्य

Sufimat
Sadhana and Sahitya
29054



रामपूजन तिवारी, एम. ए.
अध्यापक, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

181.5
Tiw

बनारस
ज्ञानमण्डल लिमिटेड

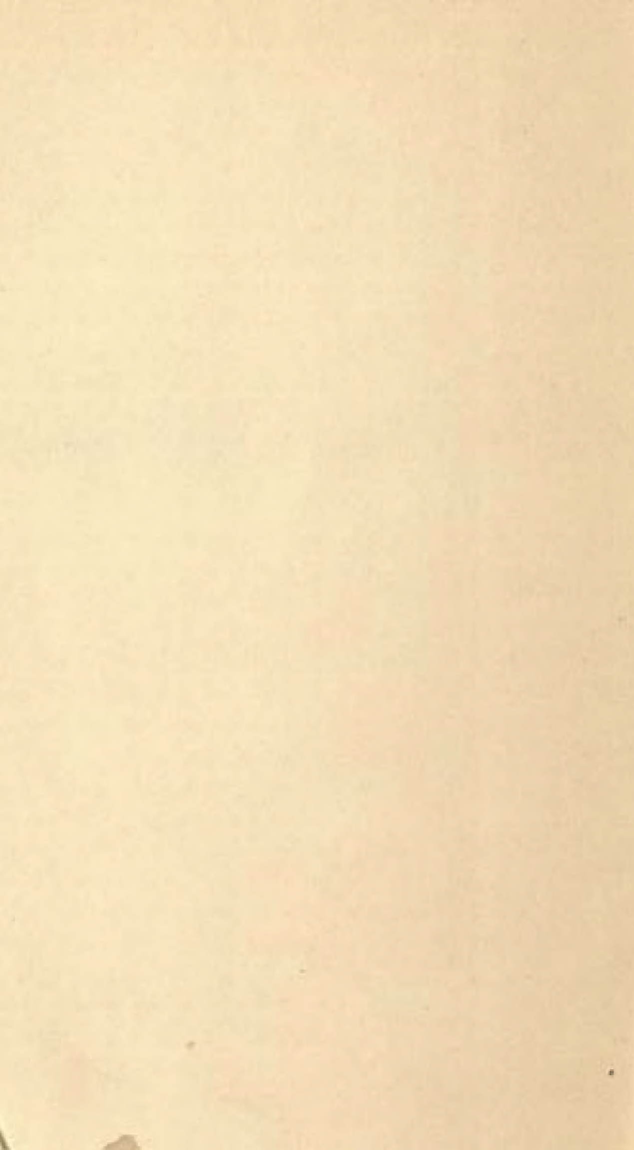
मूल्य २०)

प्रथम संस्करण—श्रीरामनवमी, संवत् २०१३

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI.
Acc. No. 29054.
Date 8/12/60.
Call No. 181.5/Tiw.

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, बनारस ४८८०-१२

[illegible] एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
काश्मीरी गेट दिल्ली-6







अग्रज तुल्य

आचार्य डॉ० हजारीप्रसाद जी द्विवेदीको

विषय-सूची

Presented from Mansa Ram & Sons, Delhi on 23/11/60 @ Rs. 11-00

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तकके वक्तव्य-विषयके बारेमें मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है। उसके सम्बन्धमें इतना ही कह सकता हूँ कि सूफीमतको समझनेका प्रयास किया है और उसे ही पाठकोंके सम्मुख रख रहा हूँ। सहानुभूति और श्रद्धा लेकर मैंने सूफियोंके दृष्टिकोणको समझनेकी चेष्टा की है। मेरी दृष्टिमें बिना इसके किसी भी विषयके प्रति पूर्ण न्याय नहीं हो सकता। फिर भी निरपेक्ष रहकर ही वक्तव्य विषयको प्रस्तुत करनेकी चेष्टा मैंने की है। एक दूसरी बातकी ओर भी ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक जान पड़ता है। सूफीमत तथा साधना अथवा अन्य किसी भी मध्ययुगीन साधना और मतको समझनेके लिए तत्कालीन वातावरण और मान्यताओंको आँखोंसे ओझल होने देना अनुचित होगा।

जायसी-साहित्यको समझनेके लिए सन् १९४९ ई० के प्रारम्भमें मैंने सूफीमतका अध्ययन शुरू किया। जायसी-साहित्यका अध्ययन तो जहाँका तहाँ रह गया सूफीमतकी जानकारी ही मेरे लिए प्रधान हो उठी। उस समय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-भवनके अध्यक्ष थे। उन्होंने इसी ओर अग्रसर होनेकी मुझे प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहनसे मैं इसके अध्ययनमें लगा रहा और गत पाँच-छः वर्षोंतक इस पुस्तककी सामग्री जुटाता रहा। पुस्तक जैसी भी बन पड़ी है, आपके सामने है। इससे अधिक मुझे नहीं कहना है।

अन्तमें अपने उन मित्रों और शुभेच्छुओंको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे मुझे प्रोत्साहित किया है। आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदीने पुस्तककी भूमिका लिखकर मेरे प्रति अपने सहज स्नेहका परिचय दिया है। उनके आशीर्वादसे ही यह पुस्तक लिखी जा सकी। मेरे सहयोगी भाई हरिशंकरजी शर्माने नाना भावसे

सहायता पहुँचाकर पुस्तकको अधिक दोषपूर्ण होनेसे बचा लिया है। शब्दानुक्रमणी बनानेमें एम० ए० क्लासकी मेरी छात्राएँ गीता राय और विन्ध्यवासिनी सिन्हाने अत्यधिक सहायता पहुँचायी है।

अन्तमें ज्ञानमण्डलके अधिकारियोंका कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस पुस्तकको प्रकाशित कर मेरे उत्साहनको बढ़ाया। ज्ञानमण्डल प्रेसने पुस्तकको सब प्रकारसे निर्दोष बनानेकी चेष्टा की है फिर भी अगर पुस्तकमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों तो वे मेरी असावधानी या अज्ञानके कारण ही रह गयी हैं।

हिन्दी भवन,
शान्तिनिकेतन
५–३–५६

रामपूजन तिवारी

भूमिका

मेरे मित्र प्रो० रामपूजन तिवारीने 'सूफी साधना और साहित्य' के विषयमें यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उन्होंने सूफीमतकी साधना और साहित्यके मूल रूपको समझनेके लिए इस्लाम धर्मके साथ उसके सम्बन्धको स्पष्ट किया है, इस्लामके आविर्भावके समय अरब देशोंकी, जो सामाजिक और राजनीतिक अवस्था थी, उसे समझानेका प्रयास किया है, ईरानकी तत्कालीन परिस्थितिपर उसकी जो प्रतिक्रिया हुई उसका विश्लेषण किया है और इस पृष्ठभूमिमें इस्लामके अन्तर्गत उत्पन्न होनेवाले विभिन्न सम्प्रदायोंका विवरण भी प्रस्तुत किया है। यद्यपि भारतवर्षमें इस्लामके अनुयायियोंकी संख्या बहुत अधिक है और उनके साथ हमारा रात-दिनका सम्बन्ध है, तथापि यह दुःखकी ही बात है कि इस शक्तिशाली धर्म-मतके आविर्भाव और प्रसारकी कहानी हिन्दी पाठकोंको उचित रूपमें मालूम नहीं। तिवारीजीने अनेक प्रामाणिक इतिहासकारोंकी रचनाओंके आधारपर इस्लामके उद्भव और प्रसारका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। यह विवरण सूफीमतकी जानकारीके लिए तो आवश्यक है ही, और वस्तुतः इसी उद्देश्यसे यह लिखा भी गया है, परन्तु साधारण हिन्दी पाठकोंके लिए स्वतन्त्र रूपमें भी इसका महत्त्व है क्योंकि इस पुस्तकके इस अंशसे हम भारतवर्षमें प्रचलित एक अत्यन्त शक्तिशाली धर्म-मतके स्वरूपको समझनेमें सहायता पाते हैं। विद्वान् लेखकने इस्लामके प्रादुर्भाव और उसके प्रभावमें प्रथम आनेवाले देशोंकी राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्थाकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करके मूल सूफी भावनाके आविर्भाव और प्रसारकी कहानीको सहज और मनोरंजक बना दिया है और फिर एक-एक करके सूफी साधकों, उनके सिद्धान्तों और उनके सम्प्रदायोंका विस्तारपूर्वक परिचय दिया है। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार सूफी

साधकोंने प्रेम और ज्ञानकी साधनाको मानव-ग्राह्य बनाया है। भारतवर्षमें भी यह सम्प्रदाय व्यापक रूपसे प्रतिष्ठित हुआ है। तिवारीजीने उसका भी विस्तारपूर्वक परिचय दिया है। साधकोंने भारतीय-काव्यको नवीन समृद्धि दान की है। भारतीय काव्यकी इस नवीन और प्रभावशाली शाखाका परिचय दिये बिना यह अध्ययन-अपूर्ण रह जाता। तिवारीजीने उसका भी संक्षिप्त परिचय दे दिया है। इस प्रकार यह पुस्तक इस्लाम-धर्मके आविर्भावसे लेकर सूफी सम्प्रदायोंके प्रादुर्भाव, प्रसार और प्रतिष्ठा-तककी कहानी बड़े सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत करती है। हम भाव-जगत्के अलबेले मस्त साधकोंकी दुनियामें विश्वास-पूर्वक विचरण करने लगते हैं; जहाँ प्रेम दिव्य और अलौकिक रूपमें प्रकट होता है और स्वार्थों और संघर्षोंसे भरी हुई दुनियादारी तुच्छ और नगण्य प्रतीत होती है। यह मस्तीकी दुनिया धन्य है जहाँ आसक्ति और लगन-अपनी चरम ऊँचाईपर जाकर मनुष्य-जीवनको चरितार्थ करती रहती है। तिवारीजीने इस पुस्तक-की रचना करके निस्संदेह सहृदयोंका उपकार किया है।

न जाने कबसे मनुष्यके मनमें यह प्रश्न उठता रहा है कि मनुष्य-जीवनकी चरितार्थता किस बात में है? अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ है, यह बात निर्विवाद रूपमें मान ली गयी है। कम-से-कम मनुष्यने अपनेको अन्यान्य प्राणियोंसे विशिष्ट समझनेमें कभी दुविधा या संकोच नहीं किया। जहाँतक मनुष्यके सोचने समझनेका प्रश्न है, यह बात सन्देह-से परे है भी। अन्यान्य प्राणी बहुत दूरतक नहीं देख पाते, उनमें सोचने और समझनेकी शक्ति मनुष्यकी अपेक्षा कम है; उनका मानसिक या बौद्धिक विकास मनुष्यके समान नहीं हुआ है। वे आहार-निद्रा आदि सहजात चेष्टाओं और काम-क्रोध आदि आदिम मनोवृत्तियोंके वशवर्ती हैं और इन्द्रिय-निग्रह और आत्म-संयम करनेमें असमर्थ हैं। संक्षेपमें वे भोग-योनिके प्राणी हैं; वे केवल पूर्व-योनियोंके संस्कारोंसे चालित होते हैं। मनुष्य इससे कुछ अधिक है। वह अपनी सहजात प्रचेष्टाओं और आदिम मनोवृत्तियोंको समझ सकता है और केवल शब्द, स्पर्श, रूप,

रस, गन्ध आदि इन्द्रियार्थोंके स्तरपर ही नहीं सोचता। वह इन्द्रियोंका निग्रह कर सकता है, और इन्द्रिय-निग्रह कितनी दूरतक उचित और कहाँसे अनुचित हो जाता है, इस बातको भी समझ सकता है। यह ठीक है कि प्रत्येक 'व्यक्ति'—मानव इन बातोंमें समान रूपसे सफल नहीं होता ; परन्तु 'समष्टि'—मानवकी दृष्टिसे विचार किया जाय, तो स्पष्ट हो जायगा कि यह शक्ति उसमें है अवश्य। परन्तु केवल इन्द्रियार्थोंकी सतहसे और गहराईमें सोचने-समझनेके भी कई स्तर हैं। मनुष्य ज्यों ज्यों विकसित होता गया है और होता जा रहा है त्यों-त्यों अधिक गहराईमें सोचता गया है। उपरले स्तरपर यथार्थताका जो स्वरूप है, मानसिक स्तरपर वह बहुत बार बदल जाता है, और मानसिक स्तरपर यथार्थता जिस रूपमें दिखाई देती है वह बौद्धिक स्तरपर बिलकुल बदल जाती है। इस तरह मनुष्यने अनुभव किया है कि मनकी अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है। परन्तु क्या बुद्धि ही अन्तिम तत्त्व है ? मनुष्यका अनुभव बतलाता है कि केवल बौद्धिक विवेचनमें ही मनुष्य जीवनकी चरितार्थता नहीं है। और भी गहराईमें कदाचित् कुछ और है, जो उपरले स्तरके आवरणोंसे भिन्न है। वह न तो इन्द्रियार्थोंकी प्राप्तिसे संतुष्ट होता है, न मानसिक स्तरकी तृप्तिसे आश्वस्त होता है और न बौद्धिक विश्लेषणसे परितृप्त होता है। उसकी प्यास कुछ और ही तरहकी है। साधारण मनुष्य जब इन्द्रिय-लौल्यसे थक जाता है, तो उसे जीवन सारहीन लगने लगता है ; परन्तु जब उसे सबसे अधिक गहराईमें बैठे हुए "गुहाहितं गह्वरेष्ठम्" का संधान मिलता है, तो वह शान्ति पा जाता है। जबतक उपरले स्तरके इन्द्रियार्थोंकी कामना है, मनमें उठनेवाली अभिलाषाओंकी व्याकुलता है, स्पृहा है, ममता है, अपनेको जगत्-प्रवाहसे अलग समझनेकी बुद्धि है, तबतक मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती। जिस दिन वह निष्काम हो जाता है, निःस्पृह हो जाता है, ममता और अहंकारसे छुटकारा पा जाता है, उसी दिन उसे शान्ति मिल जाती है। जिन लोगोंने मनुष्य जीवनको गहराईमें देखा है वे इसी नतीजे-पर पहुँचे हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है :

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

योग-शास्त्रमें जिन साधनाओंका उपयोग बताया गया है, जिनके निरन्तर अभ्याससे मनुष्यमें विवेक और वैराग्य उदित होते हैं। विवेकके द्वारा वह अच्छेसे बुरेको अलग करके देख सकता है और वैराग्यके द्वारा बुरेको छोड़नेमें समर्थ होता है। जब वह समझ जाता है कि अनेक प्रकार की कामनाओं और अभिलाषाओंकी तरंगें अनित्य और क्षण-भंगुर हैं, ममता और अहंकार बन्धनमात्र हैं, तब वह अपने उस शुद्ध रूपको जान लेता है जो इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे भिन्न प्रकृतिका है, नित्य चेतन है और निर्विकार है। इसी निर्विकार केवल रूपको पहचाननेवाला 'कैवल्य' पदको प्राप्त होता है। यह ज्ञान-मार्गकी साधना है। निरन्तर मनन और निदिध्यासनके द्वारा मनुष्य इस मार्गमें अग्रसर होता रहता है। निरन्तर बौद्धिक आलोचना, मनोनिग्रह और इन्द्रियनिग्रहके द्वारा इस मार्गमें अग्रसर हुआ जाता है। इसमें पद-पदपर भय और आशंका होती है; कब मनुष्य मनके साथ अपने-आपको एक समझ ले, कुछ कहा नहीं जा सकता। विवेक सोलह आने विवेक है कि नहीं यह कोई पारखी गुरु ही बता सकता है। और वैराग्य सचमुच वैराग्य है कि नहीं यह तो कदाचित् गुरु भी नहीं बता पाता। जरा भी कचाई रह जाय, तो मनुष्यका 'अस्मिता'-दोष उसे धर दबोचता है। बड़े-बड़े मुनि अपनी समस्त तपस्याओंका गर्व लेकर इस मार्गमें अग्रसर हुए हैं और प्रलोभनके एक ही धक्केमें धराशायी हो गये हैं। विवेककी तीसरी आँख भी अकाल-वसन्तोद्गमको समझनेमें गलती कर जाती है। गोसाईंजीने बहुत सोच समझकर कहा था कि—"ज्ञान मार्ग कृपाण कै धारा, परत खगेश लाग नहिं बारा"—यह ज्ञान-मार्ग कृपाणकी धारा है। अपने 'केवल' रूपको समझनेमें निरन्तर गलती होनेकी सम्भावना है। इस मार्गसे सैकड़ों साधकोंने आत्मस्वरूपको पहचाननेका प्रयास किया है। बहुतेरे सफल भी हुए हैं, असफल भी कम नहीं हुए। वस्तुतः कृच्छ्र-तप और समाधिके

द्वारा अपने आपको पहचान लेनेमें सब समय सहज भावनाका रहना सम्भव नहीं।

आरम्भके सूफी साधकोंने वैराग्य भावना और तपोमय जीवनकी ओर अधिक ध्यान दिया। वे ध्यान, सुमिरन और नाम-जापके द्वारा अपने 'अहं' को भुलानेका प्रयत्न करते थे, परन्तु धीरे-धीरे उनमें प्रेमा-भक्तिकी ओर झुकाव अधिक होता गया। विवेक और वैराग्यकी दृढ़ता केवल प्रेमसे ही सम्भव है। प्रेम-तत्त्वके अभावमें वैराग्य और विवेक देरतक टिक नहीं पाते। इतिहास साक्षी है कि साधना-पद्धतिपर दृढ़ विश्वास भी किसी समय अहंकार और दम्भका रूप धारण कर ले सकता है। अन्तर-तरमें बैठा हुआ जीवन-देवता इस मार्गकी साधनासे असंपृक्त ही रह जाता है। वह देख लिया जा सकता है, पर प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह जो मनुष्यके चित्तमें निरन्तर उठनेवाली वासनाओंकी तरंगें हैं, वे क्या अन्तरतरमें वर्तमान महान् जीवन-देवतासे बिलकुल ही असंपृक्त हैं? क्या ये मनुष्य-जीवनको चरितार्थ बनानेमें केवल बाधक ही बाधक हैं? उपरले स्तरपर दिखनेवाली लहरें क्या अतल गांभीर्यमें स्थित जीवन-देवताको बिलकुल नहीं छू पातीं? क्या मनुष्य जीवनके साथ ही साथ सचमुच ही परमात्माने काम, क्रोध इत्यादि दुश्मनोंकी बहुत बड़ी पल्टन खड़ी कर दी है? ये शत्रु किससे दुश्मनी करते हैं? क्या जीवन-देवतासे? या मनुष्यके अपेक्षाकृत उपरले स्तरपर विद्यमान बुद्धि, मन और शरीरसे? व्याकुल भावसे मनुष्य जातिके उन साधकों और संतोंने जिनमें भावावेगकी अतुल सम्पत्ति है, कल्प-लोक निर्माण करनेकी अद्भुत शक्ति है और विभिन्न स्तरोंपर खड़े 'व्यक्ति'—मानवोंके अन्तरतरमें समान भावसे स्फुरित होनेवाले अद्वैत तत्त्वको देखनेकी शक्ति है, पूछते रहे हैं कि यह जो मनुष्यका राग है, जो पिपासा है, जो अपनेको दलित द्राक्षाकी तरह निचोड़कर किसीके चरणोंमें टरक जानेकी अबाध आकांक्षा है, वह क्या मनुष्य जीवनकी चरितार्थताको रोक रखनेके लिए ही बनायी गयी है?

यह सारा अनुभूति-चक्र क्या केवल विकार मात्र है? सारे संवेदन

और उद्वेल होती रहनेवाली भाव-राशि क्या अंततक मनुष्यको उच्छिन्न कर देनेके लिए ही बनी हैं ? क्यों मनुष्य अनजानी आकांक्षाओंसे व्याकुल हो उठता है ; अहैतुक अभिलाषाओंसे चंचल हो उठता है और अ-दमनीय भावावेगोंका शिकार बन जाता है ? क्या यह खंड सत्य है ? और क्या खण्ड सत्य अखण्ड सत्यका विरोधी होता है ? ज्ञानी भृकुटि तरेरकर कहता है वासनाओंके शिकार मत बनो ! फेन बुद्बुद्की भाँति निरन्तर उद्भूत और बिलीन होनेवाली विभूतियाँ नश्वर हैं ; परन्तु सब ओरसे हारा और थका मनुष्य कहता है कि 'हे भगवान्, मैं विवश हूँ, अंधकारके मार्गमें भटक रहा हूँ, मुझे ज्योतिके मार्गकी ओर अग्रसर करो' और ज्ञानी और अज्ञानीका यह अंतर बना ही रह जाता है। जिन साधकोंने इस समस्याको इस प्रकार सुलझाया है कि लोकग्राह्य हो सके और जिसे साधारण मनुष्य विश्वासपूर्वक पकड़ सके, उन्होंने इस मानवीय दुर्बलता-को ही अपना परम अस्त्र बनाया है। यह जो मनुष्यके भीतर विरहकी व्याकुलता और मिलनकी आतुरता है, वही उसका वास्तविक सत्य है। कौन है जो मनुष्यकी क्षुद्रता और खण्ड-बुद्धिको जाग्रत करनेवाले अहं-कारसे रक्षा करेगा ? कौन है जो आसक्तिकी कारामें रुद्ध मानवात्माको विराट् 'एक' की ज्योतिके सम्मुख खड़ा करेगा ? सूफी साधक द्विधाहीन भाषामें कहते हैं—वह प्रेम है ! बाहरसे भीतरको जानेवाला और भीतरसे बाहरको आनेवाला एक रस अखण्ड प्रेम। जामीने कहा था—"इस संसारमें तुम सैकड़ों उपाय कर सकते हो पर एक मात्र प्रेम ही ऐसा है जो 'अहं' से तुम्हारी रक्षा कर सकेगा !" ऊपरली सतहपर जो व्याकुलता और आतुरताके लक्षण दिखाई देते हैं, वे क्षण-भंगुर हैं। परमात्मा वस्तुतः हृदयके भीतर ही वर्तमान है, केवल ऊपरके जड़ आवरणको अपना वास्तविक स्वरूप माननेके कारण वह अलग दिखाई देता है। जिस दिन यह जड़त्वका अभिमान टूट जाता है उस दिन हृदयमेंसे भेदकी गाँठ भी टूट जाती है ; उस समय साधक अनुभव करता है कि परमात्मा उसके भीतर ही है और वह परमात्माके भीतर। जड़ आवरणके साथ अपने

आपको एक समझनेके कारण मनुष्यकी आसक्ति भी जड़रूपा होती है। मनुष्य शरीरके भीतर जो 'गुहाहितं गह्वरेष्ठम्' चित् तत्त्व है उसका संयोग क्षणिक और अस्थायी होता है इसीलिए वह आसक्ति, आतुरता और व्याकुलता क्षणिक और अस्थायी होती है। वे नाशवान हैं इसलिए शाश्वत सुखको देनेमें असमर्थ हैं; परन्तु जब यह आसक्ति जड़ आवरणके अन्तरालमें स्थित 'चित्' तत्त्वको गहराईसे प्रभावित करती है तो वह सुख स्थायी और शाश्वत होता है। साधक अनुभव करता है कि परम प्रेयान् भगवान् संसारका सबसे बड़ा प्रेमी है। मनुष्यमें जो त्रुटियाँ और कमियाँ हैं उनको भरनेमें वही एकमात्र समर्थ है। साधकको जो चाहिये वही दे सकता है। वैष्णव भक्तोंके पारिभाषिक शब्दोंमें कहें तो 'भगवान् भावका भूखा होता है' आप उसे जिस भावसे चाहेंगे, उसी भावसे प्राप्त होगा। वस्तुतः वह हमारे समस्त अभावोंको पूर्ण करता रहता है। यदि यह चित् विषयक प्रीति मनमें उत्पन्न हो गयी तो परमात्मा उसी रूपमें हमारे चित्तमें आविर्भूत होगा; जिस वस्तुको हम सर्वात्मना चाहते हैं। यदि हम उसे प्रेमिकाके रूपमें पाना चाहें, तो वह प्रेमिकाके रूपमें प्राप्त होगा। प्रेमी रूपमें पाना चाहें तो वह उसी रूपमें मिल जायगा। जामी नामक सूफी कविने कहा था, "मैं वही हूँ जिसे मैं प्यार करता हूँ और जिसे मैं प्यार करता हूँ वह मैं ही है। एक ही शरीरमें वास करनेवाले हम दो प्राण हैं। अगर तुम मुझे देखते हो, तो तुम उसे देखते हो और अगर तुम उसे देखते हो, तो तुम हम दोनों को देख रहे हो!" ऐसा है उसके साथ अभेद संबन्ध। प्रिय, प्रेम और प्रेमिकमें जो अन्तर है वह केवल बातकी बात है!

सूफियोंका विश्वास है कि परमात्मा प्रेम स्वरूप है और वह उन मनुष्योंको इसका रहस्य नहीं बतलाता जो इस प्रेमके पानेके अधिकारी नहीं। जिसने अपने समस्त कलुषको धो नहीं डाला है और जिसने सांसारिक वस्तुओंके प्रलोभनका त्याग नहीं किया है उसे इस प्रेमके पाने-का अधिकार नहीं। जो भगवान्‌से प्रेम करते हैं उनसे भगवान् भी प्रेम

करता है। विशुद्ध आत्मा परमात्माकी ही प्रतिच्छवि है अतएव उसे प्रेम करनेका अधिकार देकर परमात्मा मानों अपने आपको ही अधिकार देता है। परमात्माके प्रति उसीके हृदयमें प्रेम होता है जिससे परमात्मा स्वयं प्रेम करता है। अपने प्रेमियोंके हृदयमें वह प्रेमको धरोहरकी तरह अपने ही आनन्दके लिए उत्पन्न करता है। अतएव सूफी साधनाके प्रारंभमें भी प्रेम रहता है और उसकी परिणति भी प्रेममें हीह ोती है। बायजीद बिस्तामीका कहना है कि—"मैं समझता था कि मैं परमात्मासे प्रेम करता हूँ लेकिन गौर करनेपर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करनेके पहलेसे ही वह मुझसे प्रेम करता है।" इस प्रेमको पाकर प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों संतुष्ट होते हैं। प्रेमके द्वारा जब प्रेमीके सारे अन्तर्द्वन्द्वों और सभी वासनाओंका अन्त हो जाता है तब वह आगे बढ़ता है और उसे परमात्माके दर्शन होते हैं।

मनुष्यके जितने अन्तर्वैयक्तिक संबन्ध हो सकते हैं—माता-पिता, मित्र, भाई, पुत्र, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, दास-दासी इत्यादि—उन सभी संबन्धोंके रूपोंमें उसकी कामना की जा सकती है, परन्तु सबसे शक्तिशाली और आकर्षक सम्बन्ध प्रिया-प्रिय सम्बन्ध है। व्यक्त जगत्में प्रकृति और पुरुषका या शिव और शक्तिका या प्रज्ञा और उपायका मिश्रण ही दृष्टि-गोचर हो रहा है। इसलिए व्यक्त जगत्में विशुद्ध स्त्री या विशुद्ध पुरुष हैं ही नहीं। प्रत्येक व्यक्तिमें यह तत्त्व एकमेक होकर गुँथे हुए हैं। मात्राकी कमी और बेशीके कारण व्यक्त जगत्में स्त्री या पुरुष रूपमें अभिव्यक्ति होती है। जिसमें शक्ति-तत्त्व अधिक होता है वह व्यक्त जगत्में स्त्री रूपमें प्रकट होता है और जिसमें शिव-तत्त्व अधिक होता है वह पुरुष रूपमें प्रकट होता है। जो बात व्यष्टि रूपमें सत्य है वही समष्टि रूपमें भी। समष्टि रूपमें व्यक्त जगत् शिव और शक्तिका सम्मिलन रूप है, वही अर्द्धनारीश्वरका रूप है और उसे ही बौद्ध साधकोंने युगनद्धके रूपमें देखा है। यही कारण है कि 'व्यक्ति' मानवकी गहराईमें जो चित् स्वरूप है वह प्रेम परिपूर्णताकी अवस्थामें परमात्माके इन दो रूपों—शिव और

शक्ति—की निरन्तर चलनेवाली लीलाका आश्रय-स्थल है। मनुष्यमें जब-तक जड़ आवरणके साथ रंचमात्र भी आत्माभिमानका भाव रहता है जब-तक यह द्वैत बुद्धि भी बनी रहती है और जबतक मनुष्य जीवित है तबतक इस स्पर्शसे पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाता है। इसीलिए यह नित्यलीला भी चलती रहती है। जो प्रेम सांसारिक है, शरीरके जड़ आवरणके आकर्षणसे उत्पन्न होता है वह ऊपरसे चलकर चैतन्यको स्पर्श करनेका प्रयास करता है, परन्तु जो प्रेम गहराईमें स्थित है वह नीचेसे चलकर उपरले आवरणको भी प्रभावित करता है। इस प्रेममें जो व्याकुलता और आतुरताके लक्षण प्रकट हैं वह उसी प्रकार सबको शान्ति और मिठास देते हैं; जिस प्रकार परिपाकावस्थामें बाहरकी ओर रंगीन हो जानेवाले फल अपनी मिठाससे संसारको तृप्ति देते हैं। इस प्रेममें विरोध, ईर्ष्या और असूयाका स्थान नहीं है। मानसिक स्तरपर इस प्रेम-लीलामें जो ईर्ष्या या असूया है, वे भी केवल शाश्वत सुखको गाढ़ ही बनाते हैं। वस्तुतः उपरले स्तरकी जितनी भी वृत्तियाँ हैं वे गहराईमें जाकर शान्ति और आनन्दका ही हेतु बनती हैं।

हमारे देशके भक्तों और सन्तोंकी भाँति सूफी साधकोंने भी इसी अन्तरतरके प्रेमपर आश्रित भाव-जगत्की साधनाको अपनाया है। यह साधना जितनी ही मनोरम है उतनी ही गंभीर भी। हमारे देशके अनेक सूफी कवियोंने इस प्रेम-साधनाको अपने काव्योंका प्रधान स्वर बनाया है। मलिक मुहम्मद जायसीका 'पद्मावत' इस प्रेम-साधनाका एक अनुपम काव्य है। साधकके हृदयमें जब इस प्रेमका उदय होता है तब सांसारिक वस्तुएँ उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं, लेकिन संसारके जीवोंके लिए उसका हृदय दया और प्रेमसे परिपूर्ण रहता है। दूसरोंके कष्टका निवारण करनेके लिये वह सब प्रकारसे प्रयत्नशील रहता है और उसके लिए सभी प्रकारके कष्टोंका वह स्वागत करता है। छोटे-से छोटेसे लेकर बड़े-से-बड़े प्राणी-तक उसकी दृष्टिमें अपना महत्त्व रखते हैं। चूँकि सर्वत्र सभी प्राणियोंमें वे परमात्माके दर्शन करते हैं अतः उन्हें सुख पहुँचाकर वे परम सुखी

होते हैं। उनके लिए सब प्रकारका त्याग करनेके लिए वे प्रस्तुत रहते हैं। बायजीदने कहा है कि "परमात्मा जिससे प्रेम करता है उसे तीन गुणोंसे विभूषित करता है—उसमें समुद्र जैसी उदारता, सूर्यकी तरह परदुःखकातरता और पृथ्वीकी तरह विनम्रता पायी जाती है।"

सूफी-साधना नाना रूपोंमें भारतीय साधनासे संबद्ध है। उसने भारतीय-साधनासे लिया भी है और उसे दिया भी है। इस्लामके साथ उसका बहुत गम्भीर और घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः सूफी-साधनाका इतिहास इस्लाम धर्मके इतिहाससे अविच्छेद्य भावसे जुड़ा हुआ है। प्रो० रामपूजन तिवारीकी यह पुस्तक विस्तारके साथ उस सम्बन्धका विश्लेषण करती है। जहाँतक मेरा जाना हुआ है, हिन्दी-साहित्यमें इस विषयपर इतना सांगोपांग विवेचन अबतक नहीं हुआ है। मुझे विश्वास है साधना-साहित्यके प्रति प्रेमियोंके लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। तिवारीजीने इस पुस्तककी रचना करके बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। भगवान्से मेरी प्रार्थना है कि उन्हें और भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके लिखनेका अवसर और प्रेरणा दें। तथास्तु।

फाल्गुन कृष्ण ५ }
सं० २०१२ }

हजारीप्रसाद द्विवेदी

१. विषय-प्रवेश

'सूफी' शब्दका व्यवहार इस्लामधर्मके रहस्यवादियोंके लिए किया जाता है। उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति, उनके विश्वास, उनकी मान्यताएँ, उनकी साधना, उनकी जीवनचर्या आदिको दृष्टिमें रखकर 'सूफीमत'को समझनेकी चेष्टा की गयी है। सूफीमत या 'तसव्वुफ'की कई प्रकारकी परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। उनमें मारुफ अल-करखीकी परिभाषा सबसे प्राचीन मानी जाती है। उसने बतलाया[1] है कि परम-सत्यका ज्ञान प्राप्त करना ही 'तसव्वुफ' है और इसीलिए मुस्लिम रहस्यवादी अपनेको 'अह्ल अल-हक़्क़' कहते नहीं थकते।

यद्यपि 'सूफी' शब्दका व्यवहार इस्लाम धर्मके रहस्यवादियोंके लिए किया जाता है फिर भी यह समझना गलत होगा कि अलग ही उनका एक कोई विशेष संगठित सम्प्रदाय था और उनका एक अलग ही विशेष सैद्धान्तिक मतवाद था। वे मुस्लिम समाजके अन्तर्गत थे और इस्लामके मूलभूत सिद्धान्तोंसे अलग जानेकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। वैसे उनके विश्वास, उनकी धारणाएँ तथा क्रियाकलाप सनातन-पन्थी इस्लामसे सब समय मेल नहीं खाते। सनातन-पन्थी इस्लामकी कट्टरता तथा कठोर नियम-कानूनोंकी पाबन्दीके साथ सूफीमतका सामञ्जस्य स्थापित करना सब समय सहज नहीं हो पाता। इस्लाम धर्म बाह्याचारोंपर अत्यधिक जोर देता है जब कि सूफीमत अधिक उदार है।

सनातन-पन्थी इस्लामकी नाईं सूफी भी अपने सिद्धान्तों और क्रियाओंकी परीक्षा कुरान और हदीसको ही दृष्टिमें रखकर करते हैं। लेकिन सूफीमत इस्लामके सिद्धान्तों और कुरानके वचनोंका अर्थ वैसा नहीं करते जैसा कि सनातन-पन्थी इस्लामको मान्य है। इस्लामके

---

१. मि. इ., भूमिका, पृ० १।

आविर्भाव तथा विकासके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे यह बात आश्चर्यजनक नहीं मालूम होगी। हजरत मुहम्मदके जीवनकालमें ही ऐसे व्यक्ति थे जो यद्यपि अपनेको मुसलमान कहते थे फिर भी वे कुरानके वचनोंका अर्थ अपने ढंगसे करते थे जो उस अर्थसे सब समय नहीं मिलता जो साधारणतया लोगोंमें प्रचलित[1] था। सूफी अक्षरार्थपर उतना नहीं जाते जितना उसकी आध्यात्मिक और रहस्यवादी व्याख्यापर। सूफियोंका कहना है कि वे परमात्माके विशेष कृपापात्र हैं तथा उन्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त है जिससे परम सत्यका ज्ञान उन्हें प्राप्त होता है और इसीलिए वे हजरत मुहम्मदके वचनों तथा कुरान शरीफका गूढ़ार्थ समझ पाते हैं। उसका समझ लेना सबके लिए सहज नहीं है। उसके एकमात्र अधिकारी वे ही हैं।

अगर अपनी किसी बातका समर्थन सूफी कुरानमें नहीं पा सके हैं तो उसके लिए वे हदीसोंका हवाला देते हैं। हदीस, मुहम्मद साहबके इस प्रकारके वचन हैं जिनके सम्बन्धमें मुसलमानोंका विश्वास है कि कुरानके अलावे और भी बहुत कुछ उन्हें दिव्य दृष्टिसे ज्ञात हो जाता था और उनके सहारे बहुतसे धार्मिक, नैतिक अथवा सैद्धान्तिक मामलोंमें वे अधिकारपूर्वक आदेश देते थे। कहा जाता है कि समय-समयपर वे उन हदीसोंको अपने साथ रहनेवालोंपर प्रकट किया करते थे और बहुत कालतक वे मौखिक रूपमें ही वर्त्तमान थीं। उनके संग्रहका प्रयत्न बहुत ही पीछे हुआ। इस प्रकारकी हदीसोंकी संख्या बहुत अधिक है और भिन्न-भिन्न लोगोंके मुखसे वे प्राप्त हुई हैं। परस्पर-विरोधी हदीसोंकी संख्या भी कम नहीं है। अतएव सब समय उनकी प्रामाणिकतापर विश्वास नहीं किया जा सकता। अपने विशेष दृष्टिकोणके औचित्यको सिद्ध करनेके लिए बहुत समय ऐसा भी हुआ है कि अपने मनसे हदीसें बना भी ली गयीं हैं। सूफी भी इस मामलेमें किसीसे पीछे नहीं थे।

सूफियोंके सिद्धान्त बहुत-कुछ व्यक्तिगत आध्यात्मिक और रहस्यवादी अनुभूतिपर आधारित हैं इसलिए उनके बीच कई प्रकारके मत-मतान्तर

१. डि. इ., पृ० ६०२।

हो गये हैं। चूँकि यह जरूरी नहीं कि सभी साधकोंके अनुभव एक ही प्रकारके होंगे इसलिए सूफियोंके भिन्न-भिन्न प्रकार और भिन्न-भिन्न कोटियाँ होना स्वाभाविक है। 'सूफी' शब्दका व्यवहार व्यापक ढंगसे होता रहा है। इसका व्यवहार बिना सोचे-समझे धड़ल्लेके साथ किया गया है। इसीलिए जहाँ सादी, रूमी जैसे बड़े-बड़े कवियों तथा गजाली आदि जैसे तत्त्वचिन्तकोंके लिए इस शब्दका व्यवहार किया गया है वहाँ भीख माँगने-वाले फकीरों, दरवेशों और विक्षिप्तोंके लिए भी इसका व्यवहार हुआ है।

सनातन-पन्थी इस्लामकी कट्टरतासे वे कितनी दूर थे इसका अनुमान ईरानके एक बड़े सूफी अबू सईद इब्न अबी अलखैरके इस कथनसे लगाया जा सकता है जिसमें उसने कहा है—

'सूर्यके नीचे जितनी मस्जिदें हैं जबतक वे ढह नहीं जातीं तबतक हमारा धार्मिक अनुष्ठान पूरा नहीं हो सकता और जबतक ईमान और कुफ्र एक नहीं समझे जाते तबतक कहीं भी सच्चा मुसलमान नहीं दीख सकता।'

इस प्रकारकी बातोंका सहन करना कट्टर इस्लामके अनुयायियोंके लिये कठिन था। यही कारण है कि अपने सिद्धान्तों और आचरणोंके लिये सूफी साधकोंको मुस्लिम देशोंमें बहुत-से कष्ट सहने पड़े, बहुत-सी लांछनाएँ उठानी पड़ीं और कितनी बार तो उन्हें प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ा। लेकिन अबू सईदकी तरह इस्लामके विरुद्ध खुल्लमखुल्ला कहनेका साहस बहुत कम लोगोंने किया है। इस्लामके विरुद्ध दीख पड़नेवाली इस तरहकी बातें कम ही देखनेको मिलती हैं। अधिकांश सूफी पैगम्बर तथा इस्लामधर्मके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं तथा इस्लामके नियम-क़ानूनोंकी पाबन्दी स्वीकार करते हैं। वैसे वे उन नियम-कानूनोंका एक विशेष अर्थ निकालते हैं; जैसे हज करनेको वे बेकार मानते हैं अगर प्रत्येक पदपर उनका हृदय इस धार्मिक कृत्यमें उनका साथ न देता जा रहा हो। वे मानते हैं कि हज करनेके साथ ही साथ हृदयकी पवित्रता भी आती जानी चाहिये।

सूफी बाह्याचारसे अधिक अन्तरकी शुद्धिपर जोर देते हैं। उनका

कहना है कि धार्मिक सिद्धान्तोंका 'सत्य'के साथ सामञ्जस्य होना चाहिये और 'सत्य'से उनका मतलब 'परम सत्य'के ज्ञानसे है जिसे रहस्यवादी अपनी साधना द्वारा प्राप्त करता है। बादमें चलकर अल-हुजवीरी, गज्जाली आदि सुप्रसिद्ध साधकों और विचारकोंने सूफीमत तथा इस्लामके कट्टर सिद्धान्तोंमें सामञ्जस्य स्थापित करनेकी चेष्टा की है। इन सभी विरोधों और विपरीतताओंके रहते हुए भी सूफीमत इस्लाम धर्ममें ही अन्तर्भुक्त है और इसका अध्ययन इस्लाम धर्मको छोड़कर नहीं किया जा सकता। आगे चलकर हम देखेंगे कि इन्हीं सब कारणोंसे सूफीमतके आविर्भाव आदिको लेकर विभिन्न मत उपस्थित किये गये हैं। सनातन-पन्थी इस्लामके साथ सूफीमतकी एकरूपता नहीं होनेके कारण आज यह समझा जाता है और एक प्रकारसे अधिकांश लोग मानते हैं कि सूफीमत इस्लामके बाहरकी चीज है। और इस्लाम धर्ममें उसका प्रवेश बाहरसे हुआ है। स्वयं सूफी इस बातको स्वीकार करते हैं कि उनके सिद्धान्त मुहम्मद साहबके पहलेसे ही चले आ रहे हैं[1]।

हम यह देख चुके हैं कि इस्लामके रहस्यवादी ही सूफी कहलाये लेकिन आश्चर्य यह है कि इस्लामकी शुष्क आचारनिष्ठाके बावजूद भी मुसलमानोंमें रहस्यवादी प्रवृत्ति कैसे प्रवेश कर गयी और बड़ी तेजीसे उनमें इसका प्रसार हुआ। रहस्यवादी प्रवृत्तिके विरोधी तत्त्व इस्लाममें सम्भवतः संसारके अन्य धर्मोंकी अपेक्षा सबसे अधिक हैं[2]। आगे चलकर हम इसपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे। सूफियोंकी रहस्यवादी प्रवृत्ति भी अन्य धर्मोंके रहस्यवादियों जैसी ही है। यहाँपर रहस्यवादी प्रवृत्ति और रहस्यवादियोंकी साधारण मान्यताओंपर थोड़ा विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा। इससे हमें पता चल जायगा कि विभिन्न धर्मोंके रहस्यवादियोंके साथ इस्लामके रहस्यवादकी कितनी समानता है। सूफीमतके विभिन्न पहलुओंपर विचार करते समय हमें इससे सहायता मिलेगी।

---

१. डि. इ., पृ० ६०९।
२. आ. वि. मि., खण्ड २; पृ० ३-४।

रहस्यवाद शब्दका अर्थ समयके परिवर्तनके साथ कम या बेशी परिवर्तित हुआ है। धार्मिक साधनामें लगे हुए साधकोंके लिए इस शब्दका अपना एक विशेष अर्थ था। आज उसका हू-ब-हू वही अर्थ नहीं समझा जाता। आजका व्याख्याकार रहस्यवादको आन्तरिक सामञ्जस्य स्थापित करनेकी एक कला मानता है[1] जिसके द्वारा मनुष्य विश्व ब्रह्मांडको सम्पूर्ण और अखण्डित समझता है। उसका यह भी कहना है कि यह समझना भ्रामक है कि उसपर कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंका ही एकान्त अधिकार है और वह केवल उन्हींकी चीज है। लेकिन पहले रहस्यवादसे कुछ अन्य ही समझा जाता था। उस कालमें रहस्यवादीसे मतलब उस व्यक्तिसे था जिसको परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान और रहस्योंका पता हो और इस बातपर जोर दिया जाता था कि वह उस ज्ञानको जिसे उसने अपने गुरुसे पाया है, अपने ही तक सीमित रखे और उस सम्बन्धमें मौनका अवलम्बन किये रहे। केवल उन्हीं व्यक्तियोंपर वह रहस्य प्रकट किया जा सकता था जो उसके सच्चे अधिकारी साबित हों। यह विश्वास किया जाता था कि यह ज्ञान आयास द्वारा प्राप्त नहीं होता बल्कि साधनाके द्वारा इसकी अनुभूति रहस्यवादीको होती है तथा उसका अन्तर उसके आलोकसे आलोकित होता है। वे एक विशेष कोटिके व्यक्ति समझे जाते थे और इसीलिए उनके लिए वह सम्भवपर माना जाता था। आम तौरपर सबके लिए उस ज्ञानको प्राप्त करना तथा उस रहस्यका पता पाना सम्भव नहीं। सूफी इस प्रकारके साधकोंको 'अरिफ' कहते हैं जिसका मतलब है कि वे परमात्माके विशेष कृपापात्र हैं और भगवान् उनपर अनुग्रह करके उन्हें इस रहस्यसे साक्षात्कार कराता है[2]। लेकिन ऐसे लोगोंकी संख्या निस्सन्देह सीमित है जो इस रहस्यके जाननेके अधिकारी हैं और जिन्हें इस गुह्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अतएव यह बिल्कुल स्पष्ट है कि साधनाके क्षेत्रमें रहस्यवादसे जो कुछ समझा जाता था ठीक वही आज

१. थ्यो. आ. मि. भूमिका, पृ. ९।
२. स्ट. अ. मि. नि. फा. इ., पृ. १

नहीं समझा जाता है, वैसे प्राचीन कालका साधना-क्षेत्रवाला रहस्यवाद तथा आधुनिक कालका रहस्यवाद दोनों एक ही भावना—परमात्मा और आत्माके अन्तरङ्ग और गहरे सम्बन्ध पर आधारित हैं।

रहस्यवादीको परम सत्ताकी अनुभूति प्रकृतिके कण-कणमें होती है तथा आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध ही उसके लिए वास्तविक और सत्य होता है। जगत्के अन्य सम्बन्ध उसे छलनामय और तुच्छ प्रतीत होते हैं। रहस्यवादी साधकोंमें परमात्मासे साक्षात्कार करने, परमात्माको पानेकी तीव्र आकांक्षा होती है। अव्यक्त परोक्ष सत्ताकी उपलब्धिके लिए संसारके अधिकांश धर्मोंके अनुयायियोंमें इस प्रकारकी बेचैनीके हमें दर्शन होते हैं। अव्यक्तके प्रति मनुष्यका आत्म-निवेदन, उसे पानेके लिए व्यग्रता, मनुष्यकी उस भावनापर आधारित है जिससे वह अनुभव करता है कि प्रत्यक्ष दीखनेवाले जगत्-व्यापारसे परे एक ऐसी शक्ति है जिससे दृश्यमान् जगत्की सारी क्रियाएँ परिचालित होती हैं। इतना ही नहीं बल्कि वह यह भी अनुभव करता है कि सारी चीजोंका उद्गम स्थान भी वही है और फिर सबका पर्यवसान उसीमें होता है। ई० केर्डने रहस्यवादकी परिभाषा करते हुए लिखा है कि मर्मीके लिए परमात्मा लगता है जैसे कुछ भी नहीं है और सब कुछ है। 'कुछ भी नहीं' इसलिए कि वास्तविक जगत्की प्रत्येक वस्तुसे वह परे है और 'सब कुछ' इसलिए कि किसी भी वस्तुका अस्तित्व उसे छोड़कर सम्भव नहीं है[1]। मर्मी समझता है कि यद्यपि परमात्मामें ही यह सारी सृष्टि विद्यमान है फिर भी वह इससे परे है।

रहस्यवादी साधकका विश्वास है कि परमात्माको जाना जा सकता है। वह मानता है कि आत्माके लिए उसका दर्शन पाना सम्भव है और दिव्य दृष्टि द्वारा उसको देखा जा सकता है तथा उसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अगर कोई उसे बुद्धिसे जाननेकी चेष्टा करे तो वह व्यर्थ साबित होगी क्योंकि वह बुद्धिसे परे है। अतएव उस सर्वोच्च ज्ञानकी उपलब्धिके लिए मनुष्यको बुद्धि और तर्कको छोड़ना पड़ेगा। बुद्धि और

१. इ. आ. ग्रो. इ. ग्री. फि.; भाग २; पृ० २८६

तर्कके झंझटोंसे मनुष्य तभी मुक्ति पा सकता है जब वह अपने अन्तःकरण को साधनाके द्वारा शुद्ध करता है। अन्तःकरणकी इस विशुद्धताके बिना, जब मनुष्य सभी स्वार्थों तथा वासनाओंका त्याग कर देता है, उस परम सत्यको नहीं जाना जा सकता। उसे जाननेका एकमात्र यही रास्ता है। इस अवस्थामें प्रेम उसका सहायक होता है। प्रेमके द्वारा अपने अहंपर विजय प्राप्तकर साधक परमात्माको पाता है और उसके साथ उसका मिलन होता है। रहस्यवादी परमात्माको प्रियतम कहते हैं। प्रेमी-प्रियतम-का यह सम्बन्ध रहस्यवादियोंमें बराबरसे चला आ रहा है और सर्वत्र रहस्यवादियोंमें यह बात पायी जाती है। रहस्यवादीके लिए परमात्मा केवल भाव-जगत्की वस्तु नहीं रह जाता बल्कि वह उसके साथ एक सामीप्यका अनुभव करता है और परमात्माके साथ जैसे उसका एक व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उससे वह प्रेम करता है। उसे अधिक-से-अधिक जाननेकी आकांक्षा तथा अधिक-से-अधिक उसके निकट आनेकी आकुलता साधकको होती है; और यह इसलिए कि वह परमात्मा-से और भी अधिक प्रेम कर सके।

रहस्यवादीके लिए परमात्मा दूरकी वस्तु नहीं है। उसके साथ रहस्य-वादी एक ऐसे व्यक्तिगत और घनिष्ठ सम्बन्धका अनुभव करता है और उसे पानेके लिए एक ऐसी आकुलता और बेचैनी लिये हुए रहता है कि उसके लिए परमात्माको छोड़कर संसारका कोई भी सम्बन्ध वास्तविक और सत्य नहीं रह जाता। प्रकृतिके कण-कणमें वह उसके दर्शन पाता है, प्रत्येक वस्तुमें उसे परमात्माका साक्षात्कार होता है। सभी स्थलोंमें परमा-त्माकी विद्यमानता उसकी आँखोंसे ओझल नहीं होती। वह मानता है कि सभी वस्तुओंका उद्गम-स्थल वही है और फिर सभी कुछका पर्यवसान उसीमें होता है। सर्वदा उसे प्रत्यक्ष करता हुआ अन्तमें उसके साथ एकमेक हो जानेकी वासना वह बराबर लिए हुये रहता है। इस प्रकारका घनिष्ठ सम्बन्ध रहस्यवादीको इसलिए सम्भव प्रतीत होता है कि यद्यपि वह परमात्माको आत्मासे भिन्न मानता है फिर भी वह मानता

है कि आत्मा, परमात्मासे अलग नहीं है। वह मानता है कि आत्मा उसी का एक अंश है। उसका कहना है कि उस परम-सत्यका अंश आत्मामें नहीं रहता तो उसके लिए परम-सत्यका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव था। उसे जाननेमें वह इसीलिए समर्थ हो पाता है कि आत्मामें वह सत्य विराजमान है तथा उसमें परम-सत्यका एक अंश वर्तमान है। उस परम-ज्योतिकी एक किरण आत्माके भीतर वर्तमान है जो उस परम-ज्योतिसे मिल जाना चाहती है। आगकी वह चिनगारी फिरसे उस आगकी लौमें मिल जानेके लिए व्याकुल रहती है। यद्यपि आत्मा उसीकी प्रतिमूर्ति जैसा है फिर भी नाना कर्मोंके बीच रहते हुए, सीमामें बँधे रहनेके कारण वह विकृतियोंसे घिर जाता है लेकिन उसका असली रूप ज्योंका त्यों बना रहता है। उसके ऊपरका आवरण उसके सच्चे रूपको छिपाये हुए रहता है। इस प्रकारसे रहस्यवादी मानता है कि आत्मा और परमात्माके बीच परस्पर-का एक सम्बन्ध है। रहस्यवादी समझता है कि आत्माकी सत्ता परमात्मा-पर निर्भर करती है, वही उसका आधार है। उसके बिना आत्माके अस्तित्वकी कल्पना नहीं की जा सकती। आत्मामें अन्तर्निहित सत्यका ज्ञान वास्तवमें परमात्माके गुणोंका ज्ञान प्राप्त करना है।

लेकिन इतने निकट सम्बन्धकी अनुभूतिके बावजूद रहस्यवादी साधक इस बातपर जोर देते रहे हैं कि परमात्मा अज्ञेय है, सर्वातीत है। भिन्न-भिन्न धर्मोंमें इस दीख पड़नेवाले विरोधमें अपने-अपने ढंगसे सामञ्जस्य स्थापित कर लेनेकी चेष्टा की गयी है। ईसाईके लिए वह ईसामसीहके द्वारा अपनी शक्तिको प्रकट करता है, मुसलमानके लिए पैगम्बरके द्वारा और हिन्दूके लिए अवतार धारण कर वह अपनी शक्ति और विभूतिका परिचय देता है। अतएव ईसाईके लिए 'एकमें अनेक'का अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध है जो उसी एकमें अन्तर्निहित है। ईसा ईश्वरके पुत्रके रूपमें याद किये जाते हैं इसलिए वह ईश्वर सभी प्राणियोंका एकमात्र पिता है और इस प्रकारसे सभी प्राणियोंका पार-स्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उसी प्रकार मुसलमान और हिन्दू

रहस्यवादी साधकोंके लिए 'एकमें अनेक'का अर्थ उनके धार्मिक विचारों और परम्पराओंसे प्रभावान्वित होता है। दोनों इससे प्रायः यह समझते हैं कि वह परम सत्ता सृष्टिके विभिन्न रूपोंमें अपनेको प्रकट करती है। सर्वत्र उसीकी शक्ति, उसीकी विभूति, उसीके ऐश्वर्यका वे दर्शन करते हैं। महायानियोंके त्रिकायकी कल्पनामें लगभग यही बात है।

परमात्माके साथ अभिन्नत्व प्राप्त करना रहस्यवादीका चरम लक्ष्य है। उसकी सबसे बड़ी साधना यह होती है कि वह विश्वके समस्त व्यापारोंको भूल जाय, यहाँतक कि अपने अस्तित्वको भी भुलाकर अपनेको वह परमात्मामें खो देना चाहता है। सूफी साधक अल-शिबलीका कहना है कि "—प्रेम प्रज्वलित अग्निके समान है जो परम प्रियतमकी इच्छाके सिवा हृदयकी समस्त वस्तुओंको जलाकर खाक कर डालता है[1]।" अतएव रहस्यवादी साधक सीमाके समस्त बन्धनोंको छिन्नभिन्नकर असीमको पानेके लिए व्याकुल रहता है, प्रतीयमान सत्यके मायाजालको काटकर शाश्वत सत्यके दर्शन करना चाहता है और अन्तमें उस परम सत्तामें अपने अस्तित्वको खोकर एक हो जाना चाहता है। उसका यह विश्वास है कि आत्माके लिए, जो कि सीमाकी परिधिमें घिरा हुआ है, उस असीम परिव्याप्त परमात्माको पाना कुछ मुश्किल नहीं है। आत्मा और परमात्माके इस मिलनमें "मैं" और "तू" का भाव मिट जाता है और वे एकाकार हो जाते हैं। उस मिलनकी अवस्थामें साधना, साध्य और साधक भिन्न न रहकर एक हो जाते हैं[2]।

इस चरम लक्ष्यको नाना भाँतिसे समझनेकी चेष्टा की गयी है। लेकिन हमेशासे यह प्रश्न उठता रहा है कि जब परमात्मा गुणातीत, अव्यक्त और अलौकिक है तो फिर उसके साथ मिलन कैसे हो सकता है? रहस्यवादियोंका कहना है कि वह परम सत्ता परम सत्य है और उस सत्यतक तर्कके द्वारा पहुँचना सम्भव नहीं। वह हृदयके प्रेम, अनन्य भक्ति द्वारा ही

१. अल—कुशैरी, रिसाल, पृ० १८९–२०।

२. गु० रा० (प्रथम भाग), पृ० ४४८।

समझा जा सकता है। साधकका हृदय उसे प्रेमके द्वारा जान सकता है और जब उस परम प्रियतमके विरह-मिलनकी लीलामें भक्त अपनेको खो देता है तब उसके लिए वह एक अलग सत्ता नहीं रह जाता। ईसाई धर्ममें रहस्यवादी साधकका चरम साध्य परमात्माकी तरह हो जाना एवं उसके साथ सहयोग प्राप्त करना है जब कि सूफी साधक अपने 'अहम्' को खोकर परमात्माके साथ एकमेक हो जाना ही अपना लक्ष्य मानता है। वह उस अनन्त ज्योति और अनन्त प्रेममें मिल जाता है, परन्तु उसके बाद उसकी दूसरी अवस्था आती है जिसमें वह परमात्माके साथ एकत्व प्राप्त करते हुए भी आनन्दका अनुभव करता है जैसे वह परमात्मामें वास कर रहा हो। वह उसमें उसीके जैसा होकर रहता है फिर भी उसकी सत्ता बनी रहती है। यह भगवत्कृपासे ही सम्भव हो सकता है। परमात्माकी इच्छासे ही मनुष्य और परमात्माके बीचका व्यवधान दूर हो पाता है। जुन्नैदने कहा है—"एकाकार होना वह वस्तु है जिसमें एक शख्स परमात्माके हाथोंमें रहता है। परमात्माकी इच्छासे ही वह परिचालित होता है। उसकी सत्ताका परमात्मामें लोप हो जाता है। उसके पास मनुष्यकी आवाज नहीं पहुँचती है और न मनुष्यकी बातोंका जवाब ही वह दे पाता है। वह परमात्मामें रमा हुआ रहता है। उसके साथ एकमेक होकर आनन्द रसमें डूबा रहता है; क्योंकि उसपर परमात्माकी ऐसी ही कृपा होती है और क्योंकि वह (परमात्मा) चाहता है कि साधक अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त हो जाय।" इस्लाम धर्म यह मानता है कि परमात्माने अपने ही सदृश अपनी ज्योतिसे विशुद्ध आत्माका निर्माण किया था अतएव पूर्वावस्थाको प्राप्त होनेका मतलब उसी अवस्थाको प्राप्त होना है जिसमें कि पैदा होनेके पहले वह था।

लेकिन यह समझना गलत होगा कि रहस्यवाद मात्र सांसारिक तथा आध्यात्मिक चिन्तन अथवा इस जगत् और परमात्माको समझनेका प्रयास है। यह एक जीवन-दर्शन है जिससे रहस्यवादी आत्मा, परमात्मा, संसार आदिको समझनेकी चेष्टा करनेके साथ-ही-साथ उसीके अनुरूप अपने

जीवनको ढालनेके लिए भी प्रयत्नशील रहता है। उसके लिए यह अध्ययन और ज्ञान प्राप्त करनेका केवल साधन नहीं है बल्कि इस प्रकारकी ज्ञान-प्राप्तिके साथ-साथ उसे शान्ति, परम आनन्दकी प्राप्ति होती है! उसके लिए रहस्यवाद केवल बौद्धिक विलासकी वस्तु न रहकर बाह्य जगत्‌में उसकी सांसारिक जीवनयात्राका मार्गदर्शक बन जाता है। संसारके सभी प्राणियोंके साथ वह अपनापनका अनुभव करता है। रहस्यवादीको संसारके सभी प्राणियोंमें परमात्मा प्रतिभासित होने लगता है और सभी प्राणी उसके लिए परमात्मा तुल्य बन जाते हैं[1]।

इसके लिए साधकको अपनी साधनाके मार्गपर अग्रसर होते हुए बहुत कुछ करना पड़ता है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए वह अनेक उपायोंका सहारा लेता है। साधक इसके लिए आराम और सुखकी जिन्दगीको छोड़कर कष्टमय जीवनको अपनाता है। अपनी बुराइयोंको दूर करनेके लिए उपवास, परमात्माके सतत ध्यान आदिका सहारा लेता है। वह अपनी बुराइयोंको दूर करने तथा उनपर विजय पानेमें ही सन्तोष नहीं कर लेता बल्कि संसारके प्राणियोंके दुःख दूर करनेकी भी यथासाध्य चेष्टा करता है। ऐसे बहुतसे उदाहरण पाये गये हैं जिनमें दूसरोंके सुखके लिए अन्य धर्मोंके साधकों जैसे सूफी साधकोंने भी अनेक कष्ट सहे हैं। इस प्रकारसे रहस्यवादी एक तरफ़ तो अन्तरकी शुद्धिके लिए सचेष्ट रहते हैं और दूसरी ओर निस्स्वार्थ सेवाका व्रत लेते हैं और पद-पदपर अनुभव करते रहते हैं कि वैसा करनेसे परमात्मा उनपर खुश होगा। दूसरोंको सुख पहुँचानेके लिए वे सब प्रकारका कष्ट सहन करनेके लिए तैयार रहते थे। जाफर खुल्दीने अबुल हसन नूरीके सम्बन्धमें बतलाया है[2] कि एक दिन नूरी भगवान्‌से प्रार्थना कर रहे थे कि नरकमें रहनेवालोंके दण्डको उनके बदले वे स्वयं सहनेको तैयार हैं अतएव उन्हें (नरकमें रहनेवालों-को) भगवान् स्वर्गमें भेज दें और उनके स्थानपर नूरीको भेज दें।

---

१. व्यो. आ. मि., भूमिका पृ० ७

२. कश्फ, पृ० १९३–९४

खुल्दीका कहना है कि सपनेमें उसने देखा जैसे परमात्मा उससे कह रहे हों कि नूरीसे वह जाकर कह दे कि उसे क्षमा कर दिया गया है क्योंकि परमात्माके बनाये हुए जीवोंके प्रति उसमें दया है और परमात्माके लिए श्रद्धा है। इससे पता चलता है कि दूसरोंको सुख पहुँचानेके लिए वे किस प्रकार तत्पर रहते थे। दूसरोंको सुखी करनेके लिए अपने समस्त सुखोंको वे तिलांजलि दे सकते थे।

जब मनुष्यकी चिन्ताधारा इस दिशामें जाती है तब वह अपने अन्तर-के द्वन्द्वों और संघर्षोंपर विजय पानेकी चेष्टा करता है। अपनी साधनाके द्वारा एक समय वह ऐसी अवस्थाको पहुँच जाता है जब कि उसके लिए भीतर और बाहरके सभी द्वन्द्व, सभी बन्धन दूर हो जाते हैं। संसारके विभिन्न सम्बन्धों और समस्याओंका समाधान उसके लिए सहज हो जाता है। वह सभी भेद-भावों और अन्तरायोंको भूल जाता है। सभी प्राणी उसके लिए समान प्रतीत होते हैं। सभी द्वन्द्वोंसे ऊपर उठकर वह समस्त प्राणियोंको एक समझने लगता है। वह जगत्के टुकड़े-टुकड़ेकर नहीं देखता, बल्कि उसी परमसत्तासे व्याप्त वह सारी सृष्टिको एक सूत्रमें बँधा हुआ देखता है। इस प्रकारसे खण्ड सत्यको छोड़कर उसका अन्तर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी एकताका दर्शन करता है। और चूँकि उसके मनसे सभी विभेद और सभी द्विधाएँ दूर हो जाती हैं इसलिये उसके जीवनमें समरसता आती है। देश और जातिकी सीमा उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखते। अपने उदार और मुक्त दृष्टिकोणके कारण उसका जीवन विभिन्न संघर्षोंसे परे होकर मनुष्य-मनुष्यके बीच सहज-स्वभाविक सम्बन्ध स्थापित करनेकी प्रेरणा देता है। इस प्रकारसे रहस्यवादी साधक केवल अपने लिए अपनी साधनामें रत नहीं रहता बल्कि अपने दैनिक जीवन तथा अपने व्यवहारों द्वारा समाजके बीच शान्ति और सामञ्जस्य स्थापित करनेमें सहायक सिद्ध होता है।

प्रायः सर्वत्र सभी मुख्य धर्मोंमें रहस्यवादी प्रवृत्ति पायी जाती है। मनुष्यके हृदयकी यह सहज वृत्ति है। अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्तिके प्रति

यह आकर्षण सभी देशोंके रहस्यवादियोंमें सामान्य रूपसे पाया जाता है। हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म आदि सभी धर्मोंके अनुयायियोंमें उस परम-सत्यको पाने, उसके साथ एकमेक होने की उत्कट आकांक्षा पायी जाती है। परमात्माके साथ मानवी आत्माका एक व्यक्तिगत, घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा रहस्यवादी साधकोंमें समान रूपसे पायी जाती है चाहे वह पश्चिमका हो या पूरबका, चीनका हो या अरबका। इस सम्बन्धमें एक बात ध्यान देनेकी है कि यद्यपि इस आन्तरिक प्रेरणाका स्रोत सब जगह समान भावसे प्रवाहित हो रहा है फिर भी उसका बाहरी आकार-प्रकार सर्वत्र समान देखने को नहीं मिलता ; और यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि इसका रूप, देश, काल और पात्रकी भिन्नताके कारण भिन्न दीख पड़े। भिन्न-भिन्न धर्मोंके संस्कारों और आस्थाओंके अनुरूप बाह्य आकार-प्रकार, नियम-कानून और साधनाके प्रकार रूप ग्रहण करते हैं। इनमें बाहर दीख पड़नेवाली भिन्नता इसी कारण होती है। लेकिन इस दीख पड़नेवाले बाहरी अन्तरके रहते हुए भी मनुष्यका हृदय उस परम सत्ताके प्रति जिस प्रेमका अनुभव करता है वह समान है। मिलनकी उत्कण्ठा, प्रेमकी तड़पन, वियोगकी तीव्र अनुभूति सभी रहस्यवादियोंमें समान रूपसे पायी जाती है। परमात्मा एक ही है। उसके प्रेमी अनेकों हो सकते हैं; उनके रास्ते अलग हो सकते हैं। कहींपर यह प्रवृत्ति अधिक मात्रामें पाई जाती है और कहीं कुछ कम दीख पड़ती है। इसका कारण स्थान-विशेषके वातावरण और प्रकृतिकी विशेषता है। किसी स्थानका वातावरण इसके बहुत ही अनुकूल पड़ता है और किसीका उतना अनुकूल नहीं। रहस्यवादी साधक अपनी साधनाकी प्राथमिक अवस्थामें जिन प्रतीकों और धारणाओंका अवलम्बन किये हुए रहता है वे उसके धर्म, समाज और वातावरणसे ली हुई होती हैं। वह उनसे बँधा हुआ रहता है और उन्हें ही सत्य मानकर पकड़े हुए रहता है। अपने ग्रहण किये हुए सत्योंके सहारे वह परम-सत्यको पानेकी चेष्टा करता है तथा अपनी साधनाके पथपर अग्रसर होने लगता है।

जैसे-जैसे वह अपने आध्यात्मिक मार्गपर अग्रसर होता है उसे सत्यका आभास मिलने लगता है और जिन वस्तुओंको वह अभीतक सत्य मानकर पकड़े हुए रहता है उनकी वास्तविकताका परिचय उसे मिलने लगता है और वह अनुभव करने लगता है कि अभीतक वह एक संकीर्ण परिधिके भीतर ही था। इस अनुभूतिके बाद वह उन संकीर्णताओंसे मुक्त होने लगता है और उनसे ऊपर उठकर एक सामान्य धरातलपर आ पहुँचता है जहाँ मनुष्य, धर्म और संस्कारोंके समस्त भेद अब उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखते और सबके लिए उसके हृदयमें दया, प्रेम और मैत्रीके भाव भर जाते हैं। ऐसा नहीं है कि किसी विशेष धर्मके रहस्यवादीपर ही यह बात लागू होती है बल्कि साधारणतः यही बात सर्वत्र पायी जाती है। अतएव धर्मकी विभिन्नता होनेपर भी विभिन्न धर्मोंके रहस्यवादियोंका मूलतः एक ही दृष्टिकोण होता है।

जहाँतक सूफी साधकों—इस्लामके रहस्यवादियों—का सम्बन्ध है, वे प्रारम्भमें इस्लामके कट्टर सिद्धान्तोंको मानकर चलते थे। वे समझते थे कि उन सिद्धान्तोंके अनुरूप जीवन बितानेसे उनके उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती है। इसके साथ-साथ संसारके प्रति अनासक्तिको भी वे पूरा महत्त्व देते थे। इस्लामके कट्टर सिद्धान्तोंका पालनकर परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना तथा उसके साथ सान्निध्य प्राप्त करना वे सम्भव मानते थे। कष्टसाधन, फ़क़ीरी जीवन तथा एकान्तवास आदि उनके लिए साधन मात्र थे। वे समझते थे कि तपस्या द्वारा परमात्माकी दया प्राप्त करनेमें वे समर्थ हो सकेंगे और परमात्मा ही उन्हें मार्गमें अग्रसर करायेगा। सूफी अपने किसी आचरणकी संगति बैठानेके लिए कुरान और हदीसका सहारा लेते हैं। सूफ़ीमतका आविर्भाव और विकास इस्लाम धर्मकी परम्परामें हुआ है। लेकिन हम पहले देख चुके हैं कि इस्लामके कट्टर सिद्धान्त रहस्यवादी प्रवृत्तिको प्रश्रय नहीं देते और न इस्लामका एकेश्वरवाद किसी प्रकारका समझौता करना जानता है अतएव सूफ़ीमतके अध्ययनके लिए इनका अध्ययन भी आवश्यक है। बिना इनका परिचय

प्राप्त किये सूफीमतका अध्ययन उचित ढङ्गसे नहीं हो सकता। सूफी मत-का अध्ययन करते समय इन बातोंपर बराबर ध्यान रखना होगा।

सूफी साधकोंने प्रारम्भमें परमात्मा, आत्मा, सृष्टि तथा इनके सम्बन्ध आदिको कुरानकी भाषामें और इस्लामके कट्टर सिद्धान्तोंके अनुरूप समझनेकी चेष्टा की है। इस्लामके कट्टर सिद्धान्तोंके अनुसार परमात्मा अज्ञेय, अलौकिक तथा सृष्टिसे अतीत और परे है। इस्लामका एकेश्वरवाद परमात्माके सिवा और दूसरी किसी दैवी शक्तिकी सत्ताको नहीं स्वीकार करता। बहुदेववादको इस्लाम धर्ममें बहुत बड़ा पाप माना गया है। इस सिद्धान्तके मुताबिक परमात्मा एक है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। वह सर्वशक्तिमान् है। उसकी तुलना नहीं की जा सकती है। अपने जैसा वह आप है। उसकी सर्वशक्तिमत्ता क्षुण्ण नहीं की जा सकती और न उसकी बराबरीका और कोई है। उसके नियम-कानूनोंमें कोई दखल नहीं दे सकता। उसके नियम-कानूनोंमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। आत्मा तथा दृश्यमान् जगत्‌की उससे अलग सत्ता है। वह सर्वातीत है। परमात्मा और अन्य प्राणियोंके बीच दूसरा कोई नहीं है। उसका न्याय उसीका न्याय है उसमें कोई व्यवधान नहीं डाल सकता। वह अवतार नहीं लेता। वही इस जगत्‌का कारण है और वही इसका निर्माता है। उसीकी इच्छापर यह सृष्टि निर्भर करती है। सारी वस्तुएँ उसीकी बनाई हुई हैं। वह सब कुछ देखता है और सर्वशक्तिमान् है। प्रत्येक प्राणीके अच्छे या बुरेका वह निर्णायक है और उसका न्याय गलत नहीं हो सकता। वह क्षमाशील है। एकमात्र वही ऐसा है जो हमारे भीतर आशा या भयका संचार करता है। वैसे वह अनादि और असीम है, काल और स्थानसे परे है तथा निर्गुण है। वह एकरस है। जगत्‌के सभी व्यापार उसकी शक्ति द्वारा चालित होते हैं। जो कुछ हम देखते हैं अथवा जिन वस्तुओंका अनुभव हम इन्द्रियों द्वारा करते हैं वह उसकी सत्ता, उसकी शक्तिका परिचय देते हैं, फिर भी अज्ञानके कारण हम उसे देख नहीं पाते। जिस तरहसे चमगादड़ सूर्यके प्रकाशको बर्दाश्त नहीं कर

पाता उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी कमजोरियोंकी वजहसे परमात्माके पूर्ण ऐश्वर्यको देखनेमें असमर्थ सिद्ध होता है। उसके सौन्दर्य, उसके ऐश्वर्य और उसकी पूर्णताका ज्ञान उपासकोंको अनन्य भक्तिके द्वारा होता है। कभी किसी उपासकको सौन्दर्य द्वारा ही उसका भान होता है और किसीको कभी उसकी अनन्य विभूतिके द्वारा। परमात्मा और मनुष्य-के बीचके अन्तरपर कुरान अत्यधिक जोर देता है, फिर भी यह मानता है कि मनुष्य अन्य प्राणियोंसे विशिष्ट है, और ईश्वरीय विधानको समझने-में समर्थ हो सकता है। जिन लोगोंने अपने आपको खोकर परमात्माकी विभूतिका अनुभव किया है उनका जीवन परमात्मामय हो जाता है और उसे ही लेकर वे मस्तमौला बने रहते हैं। उनपर परमात्माकी कृपा होती है और वे परमात्माको पाकर आनन्दस्वरूप हो जाते हैं।

सूफी साधक प्रारम्भमें इसी सिद्धान्तको मानते रहे, लेकिन धीरे-धीरे वे इस सिद्धान्तपर पहुँचे कि वास्तविक सत्ता और परम सत्य वही है। उनका कहना था कि परमात्माकी सत्ताके अलावे और अन्य सत्ताकी कल्पना बहुदेववादको जन्म देती है। उनके मतसे वह 'एक' है और उसके समान वही है दूसरा नहीं। वह सिर्फ 'एक' ही नहीं है बल्कि वही सब कुछ है, वही परम सत्य है। उसका 'एकत्व' सर्वव्यापी है। उसकी विभूतियोंका जो हम सर्वत्र दर्शन करते हैं वह उसकी वास्तविक सर्वव्यापी सत्ता है। वह सब कुछ जानता है, सब कुछ देखता है ओर अपनी इच्छा-के मुताबिक सबका संचालन करता है और सभी काम उसीकी इच्छाके परिणाम हैं। सबका आदि वही है, सबका अन्त वही है। इस सिद्धान्तके माननेके फलस्वरूप सूफी साधक इस सिद्धान्तपर पहुँचे कि परमात्माका निवास सबमें है और सब प्राणियोंका निवास परमात्मामें। परमात्माके सर्वातीत रूपसे इस मतका मेल नहीं खाता।

रहस्यवादियोंका कहना है कि परमात्मा सर्वातीत है और सर्वगत भी। इस प्रकारसे परमात्मा सम्बन्धी परस्पर विरोधी बातोंको लेकर रहस्यवादी सिद्धान्तोंमें तर्क-वितर्कका पूरा स्थान रह जाता है। जो सर्वातीत है,

निरुपाधि है, निर्गुण है, असीम है वह सोपाधि, सगुण और सर्वगत कैसे हो सकता है। उस असीमको सीमामें कैसे बाँधा जा सकता है ? तार्किकोंके मनमें ये प्रश्न बराबर उठते हैं और इस प्रकारकी परस्पर विरोधी बातोंके लिए उनके पास कोई जवाब नहीं रह जाता, लेकिन रहस्यवादीको इसमें कोई कठिनाई नहीं मालूम होती। सहज भावसे वे इन प्रश्नोंका उत्तर दे लेते हैं। उनका कहना है कि परमात्मा परम सत्य है और तार्किकके लिए उस परम सत्यको बुद्धि द्वारा समझ लेना कठिन-सी बात है। लेकिन रहस्यवादी साधक सहज ही उसे आन्तरिक प्रेम द्वारा जान जाता है ! उसे जाननेके लिए भक्ति चाहिये, निष्काम प्रेम चाहिये, क्योंकि वह प्रेम-स्वरूप है, वह आनन्द-स्वरूप है, वह अनन्त सौन्दर्य है।

अन्य धर्मोंके रहस्यवादियोंकी नाईं सूफी भी यह मानते हैं कि परमात्माके साथ मिलन सम्भव है। सूफी साधकको यह कभी सन्देह नहीं होता कि परमात्माके साथ साक्षात्कार नहीं हो सकता, उसके साथ मिलन नहीं हो सकता। हजरत मुहम्मदका क्या उनके साथ साक्षात्कार नहीं हुआ था ? मुहम्मद साहबने जिस प्रकारसे परमात्माके वचनोंको सुना और संसारके प्राणियोंके लिए प्रकट किया क्या वह इस बातको प्रमाणित करनेके लिए पर्याप्त नहीं है कि परमात्माके साथ मनुष्यका सीधा सम्बन्ध हो सकता है ? दूसरोंको इसमें सन्देह हो या न हो, लेकिन सूफीको इसमें कतई सन्देह नहीं। अतएव अपनी साधनाके लिए पैगम्बरके जीवन तथा विचारों और उनके क्रिया-कलापोंको जानना और समझना सूफी साधक अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। इस दृष्टिसे उनके लिए पैगम्बरका एक बहुत बड़ा महत्त्व है। लेकिन पैगम्बरको भी वे अन्य मनुष्योंकी तरह एक मनुष्य मानते हैं। वैसे वे मानते हैं कि पैगम्बरका अपना एक स्थान है, उसपर भगवान्‌की कृपा रहती है और उसने अपने वचनोंको मनुष्यों तक पहुँचानेके लिए उसे चुना है इसलिए इन्हें मनुष्योंमें एक विशेष कोटिका मानना पड़ेगा। पैगम्बरके प्रति श्रद्धाका भाव रखा जा सकता है लेकिन वह परमात्माका स्थान नहीं ले सकता। परमात्माके समान

उसकी पूजा नहीं की जा सकती। वैसा समझना और उस प्रकारसे पूजा करना धर्मके विरुद्ध है। वैसा करना 'एकेश्वरवाद'के सिद्धान्तके विरुद्ध है। पैग़म्बरके जीवन तथा आचरणोंका अनुसरण किया जा सकता है चूँकि उससे परमात्माके साथ साक्षात्कार किया जा सकता है। परमात्मा और अन्य प्राणियोंके बीच और कोई नहीं है। पैग़म्बरका काम मनुष्यको परमात्माकी ओर रुजू करना है और उसके आदेशोंको मनुष्यों-तक पहुँचाना है। सूफी साधक बराबरसे पैग़म्बरके प्रति श्रद्धाका भाव रखते आये हैं और उनके जीवन तथा वचनोंसे प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं।

सूफीमतके प्रारम्भिक कालसे ही कुछ साधकोंमें रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होने लगती हैं। उस कालके सूफी साधक अधिकांशमें ऐकान्तिक और फ़क़ीरी जीवन बितानेवाले थे। सांसारिक विषयोंसे अपनेको अलग हटाकर कष्टसाध्य और त्यागमय जीवन बिताना ही उनका आदर्श था। उनका विश्वास था कि ऐकान्तिक और फ़क़ीरी जीवन रहस्यवादी प्रवृतिकी उद्भावनामें सहायक सिद्ध होता है। साधकोंके लिए जागतिक स्थूल व्यापारोंसे अपनेको हटाकर एकान्त जीवन बिताना रहस्य-वादी प्रवृत्तियोंके प्रत्यक्षीकरणके लिए अपेक्षित माना गया है। थोड़े ही कालके लिए क्यों न हो, इस प्रकारका एकान्त जीवन बिताना साधकके लिए आवश्यक समझा जाता है। प्रायः सर्वत्र ही यह देखा गया है कि रहस्यवादी साधक पहले-पहल फ़क़ीरी जीवनकी ओर झुके। परमात्माका अनुग्रह प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उन्होंने ऐकान्तिक जीवन, कष्टसाधन आदिको ही श्रेष्ठ माना। ऐसा विश्वास किया जाता था कि कष्ट सहनेसे तथा सांसारिक प्रलोभनोंसे अपनेको अछूता रखनेसे भगवत्प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त होता है। इस्लाम धर्मके अनुयायियोंमें भी इस संन्यासका रूप देखनेको मिलता है अतएव सूफियोंके संन्यासको समझनेके लिए यह आवश्यक है कि इस्लाम धर्ममें संन्यासके स्वरूप और उसके महत्त्वका अध्ययन करें।

२. इस्लाम धर्म और संन्यास

हजरत मुहम्मदने संन्यासपर वैसा जोर नहीं दिया है जैसा अन्य धर्मोंमें है। संन्यासको जैसा महत्त्व हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म आदिमें दिया गया है वैसा इस्लाममें नहीं। यहाँतक कि संन्यासको इस्लामकी प्रकृतिके अनुकूल माननेमें भी बहुतोंको संकोच है[1]। एक हदीसमें कहा गया है "ला रुहबानियत फिल इस्लाम" अर्थात् इस्लाममें संन्यासका स्थान नहीं। परलोककी चिन्तासे अरब जाति उद्विग्न नहीं होती थी। आनन्द और इस संसारकी वस्तुओंके भोगमें वह लिप्त थी और दूसरे जन्मकी बातोंकी चिन्ताको इसमें दखल नहीं देने देती थी। स्वयं हजरत मुहम्मदने संसारकी वस्तुओंके उपभोगसे अपनेको वंचित नहीं रखा था और इस सम्बन्धमें उन्होंने अपने अनुयायियोंके लिए कहा भी है कि परमात्माकी दी हुई अच्छी वस्तुओंसे वे मुँह न मोड़ें। जैसा कि कुरान (सूरा ५ : ८७) में कहा गया है कि उन अच्छी वस्तुओंसे परहेज न करो जिन्हें अल्लाहने तुम्हारे लिये वैध बनाया है।

लेकिन ऐसा कहना अनुचित होगा कि कुरानमें संन्यास तथा आनेवाले जीवनके सम्बन्धमें नहीं कहा गया है। ध्यान देनेकी बात यह है कि प्रारम्भिक कालीन सूराओंमें संन्यासपर जोर दिया गया है लेकिन बादमें चलकर उसकी तीव्रता कम हो गयी है। यहाँतक कहा गया है कि वैराग्यकी साधना मनुष्यका अपना आविष्कार है परमात्माने उसके लिए आदेश नहीं दिया है। लेकिन साथ ही यह भी कहा गया है कि संसारके प्रलोभनोंसे जो अपनेको दूर रखता है उसपर परमात्माकी दया-दृष्टि रहती

१. द्र० ७, पृ० ३५४।
२. कुरान (२ : १७७)।

है[१]। इसपर बहुतोंका अनुमान है कि मुहम्मद साहबने संन्यासके प्रति इसलिए उदासीनता दिखलायी कि वह ईसाई धर्मकी चीज है[२]। चाहे जो हो लेकिन इस बातमें सन्देह नहीं कि संन्यास इस्लाम धर्मकी अपनी चीज नहीं। फिर भी इस्लामके प्रारम्भिक कालमें ही इस्लाम धर्मके बहुतसे अनुयायी संन्यास व्रतका पालन करते थे। मुहम्मद साहबके जीवन-कालमें इस तरहके बहुतसे फ़क़ीर थे। इन अरबी फ़क़ीरोंका, जो हनीफ़ कहे जाते थे, मुहम्मद साहबपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था। कहा जाता है कि पहले-पहल स्वयं मुहम्मद साहबने भी फ़क़ीरी जीवन बिताया था। उपवास तथा प्रार्थनामें उनके निरत रहनेकी बात कही जाती है। हीरा पहाड़की गुफामें एकान्तमें रात-रातभर जागकर उन्होंने समय बिताया था। उस कालमें फ़क़ीरी जीवन बितानेके पीछे अपने पापोंसे त्राण पानेकी भावना काम कर रही थी। कष्ट-साधनपर उस समय पूरा जोर दिया जाता था। यह समझा जाता था कि कष्ट-साधन और सांसारिक वस्तुओंके त्यागसे पुण्यलाभ होगा और मुक्ति मिलेगी। उस कालके एक साधक दाउद अल-ताइके सम्बन्धमें कहा जाता है कि बिस्तरके लिए एक चटाई, तकियाके लिए एक ईंट और पानी पीने आदिके लिए एक चमड़ेके थैलेके सिवा उनके पास और कुछ नहीं था। कहा जाता है कि किसीने स्वप्न देखा कि मालिक इब्नदीनार और मोहम्मद इब्नवासी स्वर्गमें ले जाये जा रहे थे। पहिले मालिकको भीतर ले जाया गया और तब वासीको। वह आदमी आश्चर्यसे चिल्ला उठा, कि ऐसा क्यों ? उसके आश्चर्य-का कारण था कि दोनोंमें वासीको श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था अतएव पहले उसे ही स्वर्गमें स्थान दिया जाना चाहिये था। उससे कहा गया कि वासीके पास दो कमीजें थीं और मालिकके पास एक ही, इसलिए मालिकको प्रथम जाने दिया गया[३]। इससे पता चल जाता है कि उस

---

१. कुरान (सूरा ५७ : २७)।

२. इ. रे. ए. खंड २, पृ० ९९।

३. मि. इ., पृ० ३६—३७।

समय सांसारिक वस्तुओंके त्यागको कितना बड़ा महत्त्व दिया जाता था।

पैगम्बरके समकालीनोंमें अबू ज़ार और हुदैफाके नाम आते हैं जो फ़क़ीरी जीवन बितानेवाले थे। अबू ज़ारके बारेमें कहा जाता है कि उनके किसी मित्रने उन्हें एक सौ मुद्राएँ भेंट कीं, लेकिन अबू ज़ारने उन्हें लौटाते हुए कहा कि "हमारे पास एक बकरी है, जिससे हमें दूध प्राप्त हो जाता है और सवारीके लिए एक जानवर है जिसकी पीठपर चढ़कर कहीं भी तेजीसे जाया जा सकता है। इनके अलावा हमें और किसी चीज़की ज़रूरत नहीं[1]।" इस्लामके उदयकी प्रथम शताब्दीमें यह प्रवृत्ति अत्यधिक पायी जाती है। क़यामतके दिनके लिए अपने किये हुए कर्मोंकी जवाबदेही-का भय उन्हें बराबर बना रहता था। दुनियाके प्रलोभनोंसे बचना और परमात्मापर पूर्णतया निर्भर करना ही इनकी साधना थी। उस कालमें मुस्लिम देशोंमें राजनीतिक और धार्मिक मतभेद और झगड़े अत्यन्त ही उग्र थे। उस अशान्त वातावरणमें लोगोंका इस फ़क़ीरी जीवनकी ओर झुकना स्वाभाविक था। ग़रीबी और सन्तोषका जीवन आदर्श माना जाता था। हज़रत मुहम्मदके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ऊनका फटा कपड़ा पहने वे गधेपर निकले और आयशासे कहा कि इस पोशाकको नष्ट न होने देना बल्कि इसके फटे हुए स्थानोंपर पैबन्द लगा देना[2]। इसी प्रकारसे अबूबक्र जब खलीफ़ा हुए तो उनके हाथमें एक बड़ी शक्ति आयी फिर भी वे बड़े ही विनम्र थे। इतना बड़ा अधिकार पाकर भी उन्हें किसी प्रकारका अहंकार नहीं हुआ। दो आलपीनोंको पिरोकर वे सिर्फ एक ही कपड़ेसे अपना काम चलाते थे। इसीलिए उन्हें 'दो आलपीनोंवाला' कहा जाता है। एक बड़े इस्लामी साम्राज्यका शासक होनेपर भी उमर बिन अल-खत्तब रोटी और ज़ैतूनका तेल खाकर ही जीवन-निर्वाह कर लेते थे। उनके कपड़ेमें एक दर्जन पैबन्द लगे हुए थे। उस्मानका पहनावा और रहन-सहन केवल सादगी और

---

१. अल-सर्राज ; किताब अल-लुमा, पृ० १३५, अ. मि. नि. का. इ. पृ० १५३ पर उद्धृत।

२. कश्फ०, पृ० ४५।

निराडम्बरका ही नहीं था बल्कि अपने ही एक गुलाम जैसा वे रहते थे। हजरत अली जब खलीफा हुए उनका चोगा उनके हाथकी लम्बाईसे अधिक हो गया। उतना बढ़ा हुआ हिस्सा उन्होंने चाकूसे काट डाला। इस सम्बन्धमें इस प्रकारके सैकड़ों उदाहरण पाये जाते हैं जिनसे उस कालके इस्लामके अनुयायियोंकी मनःस्थितिका पता चल जाता है।

इस्लामके अनुयायियोंमें संन्यासियों, रहस्यवादी साधकों और संसार-त्यागियोंके प्रति श्रद्धाकी भावना थी। इस्लाम धर्मका प्रसार बड़ी तेजीसे हुआ और विभिन्न मत-मतान्तरों एवं विचारधाराओंके साथ-साथ उन देशोंके साधकोंके साथ भी उसका सम्पर्क हुआ। इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि उन देशोंके रहस्यवादी साधकों और तापस-जीवन बिताने-वालोंके प्रति मुस्लिम विजेताओंमें सम्मानका भाव था। जब अबू बक्र सीरियापर आक्रमणकी तैयारी कर रहे थे, उस समय उन्होंने अपनी फौजको चेतावनी दे दी थी कि "वहाँपर तुम ऐसे लोगोंको भी पाओगे जो तंग कोठरियोंमें एकान्त जीवन बिताते हैं। उनके साथ छेड़-छाड़ मत करना, क्योंकि उन्होंने अपनेको परमात्माके लिए ही संसारसे अलग कर रखा है।"[1] यूरोपीय विद्वानोंका मत है कि इस्लाम धर्ममें संन्यासकी प्रेरणा देनेवाला ईसाई धर्म है।[2] अरब देशोंके आस-पास ईसाई धर्मका प्रभाव था और सीरियामें बहुतसे नये बननेवाले मुसलमान अपने पूर्व संस्कारोंको छोड़ नहीं सके थे। ईसाई सन्तोंके जीवनसे वे परिचित थे। उन सन्तोंकी जीवनियाँ उनके रक्त, मज्जामें अंगीभूत हो चुकी थीं। अतएव अन्य संस्कारोंके साथ-साथ उनमें सन्तोंके जीवनके भी संस्कार थे। इन संस्कारोंसे उनका प्रभावित होना बिलकुल स्वाभाविक था। लेकिन इस्लामके अनुयायियोंपर केवल ईसाई सन्तों और साधकोंका ही प्रभाव पड़ा ऐसा समझना गलत होगा। उस क्षेत्रको प्रभावित करने-वाली विचारधाराओं या आचार-विचारोंमें केवल ईसाई धर्म ही नहीं

१. इ. क. मि., पृ० १६१।
२. इ. रे. ए., खण्ड २, पृ० ९९।

था, अन्य धर्म और विचारधाराएँ भी थीं। ईसाई धर्मके साथ-साथ हिन्दू और बौद्ध धर्ममें जो संन्यासका रूप पहलेसे चला आ रहा था उसने भी अरबके मुसलमानोंपर प्रभाव डाला। बौद्ध तीर्थ-यात्रियों तथा अन्य भारतीय संन्यासियोंकी दूर-दूरकी यात्राओंके विवरण मिलते हैं। ये तीर्थ-यात्री भारत, चीनकी सीमाओं, बलख आदि स्थानोंमें प्रायः आया-जाया करते थे। इस प्रकारके सम्बन्धोंके कारण मुस्लिम देश बौद्धोंके आचार-विचार, पूजा-पद्धति, मन्दिर-मूर्तियों आदिसे अनभिज्ञ नहीं थे। आगे चलकर इन सम्बन्धोंपर कुछ विस्तारके साथ प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे। यहाँपर केवल इतना ही समझ लेना काफी होगा कि मुस्लिम जनताने निकटवर्ती क्षेत्रोंमें बौद्धश्रमणोंकी जीवनचर्या, संन्यासी-जीवन आदिको देखा था और बहुत अंशमें वह उनसे प्रभावित भी हुई थी। घूमते-फिरते इन बौद्ध अथवा ईसाई संन्यासियोंकी तपश्चर्यासे मुस्लिम जनता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। फिर भी इन धर्मोंके अनुयायियोंमें जिस प्रकारकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति और वैराग्यकी भावना थी वैसी तत्कालीन अरब देशोंमें नहीं थी।

इस्लाम धर्ममें संन्यासका जो रूप देखनेको मिलता है उसका आधार कुरानके वचन हैं। कुरानमें अल्लाहके सम्बन्धमें जो कहा गया है उसको ध्यानमें रखते हुए लोगोंका संन्यासकी ओर झुकना बिल्कुल स्वाभाविक था। प्रारम्भमें ही संसार, मनुष्य, परमात्मा आदिके सम्बन्धमें जो धारणाएँ प्रचलित थीं उनकी वजहसे लोग अधिकसे अधिक संख्यामें संन्यास-जीवन बितानेकी ओर झुके। लोगोंको विश्वास था कि पाप कर्म करनेवालोंसे परमात्मा अप्रसन्न होता है और उसके लिए उन्हें दण्ड देता है। परमात्माका कोप ही नरकका कारण[1] है और उसकी प्रसन्नता स्वर्गका। अतएव जो मनुष्य संसारसे विरक्त होकर परमात्मामें ध्यान नहीं लगाता उसके लिए आनेवाला जीवन भयंकर होगा। बुरे कर्मोंमें लिप्त रहनेवालोंको नरकाग्निमें दग्ध होते रहना पड़ेगा। कयामतके दिन अच्छा कर्म करने

---

1. कहफ, पृ० १९९।

वालोंको परमात्मा स्वर्गमें स्थान[1] देगा उससे प्रसन्न होगा तथा उसे अपनायेगा और पापियोंको ऐसा दण्ड देगा जैसा कि कोई नहीं दे सकता।[2] परमात्माकी दृष्टिसे कोई अपनेको नहीं बचा सकता। वह सबके कर्मोंका लेखा-जोखा रखता है[3] और उनके किये हुए कर्मोंको देखकर उन्हें दण्ड देता है या पुरस्कृत करता है। उस समय लोगोंमें यह विश्वास कि संसारका अन्त शीघ्र ही होनेवाला है, इतना घर कर गया था कि लोग अपनेको पाप कर्मोंसे बचानेके लिए सतत प्रयत्नशील थे। वे बराबर इस बातपर ध्यान रखते थे कि वे ऐसे कर्ममें प्रवृत्त हों जिसमें कि उन्हें ईश्वरीय कोपका भाजन न बनना पड़े। वे धर्मके रास्तेसे जरा भी इधर-उधर जानेकी कल्पना नहीं कर सकते थे। थोड़ी-सी भी गलतीके लिए वे बहुत बड़ा प्रायश्चित किया करते थे। कुरान[4]में कहा गया है, "पश्चात्ताप करनेवालों, ईमान लानेवालों तथा पुण्य कर्म करने-वालोंके बुरे कर्मोंको भी परमात्मा अच्छेमें बदल देगा, चूँकि परमात्मा दयालु है। जो परमात्माकी ओर उन्मुख होगा और शुभ कर्मोंमें रत रहेगा उसे परमात्मा शुद्ध और निर्मल कर देगा।" उस समय परमात्मा उनके भयका ही कारण अधिक था। उसके रहमके लिए लोग सब कुछ करनेको तैयार थे। इसका आभास कुरानमें आये हुए शब्दोंसे लगता है। जुह्द शब्द यद्यपि कुरानमें केवल एक बार आया है लेकिन इससे भी पुराना शब्द तवक्कुल (संसार-त्याग) कुरानमें आया है। रैहुन (=रमते) शब्दका प्रयोग कुरानमें बड़े सम्मानके साथ किया गया है।

गोल्डजिहरने इस प्रकारके बहुतसे उदाहरण इकट्ठे किये हैं जिनसे ऐसे लोगोंका पता मिलता है जिन्होंने अपने पापोंके प्रायश्चितस्वरूप अनेक

१. कुरान (सूरा ८९ : २३–३०)।

२. कुरान (सूरा ८९ : २५)।

३. कुरान (सूरा ८९ : १४)। (सूरा ५७ : ६,१०)।

४. सूरा २५ : ७०,७१।

शारीरिक कष्टोंका सहना उचित समझा था। बहलुल बिन धुऐब एक बार कम्बल पहने मदीनेके निकटवर्ती पहाड़में चला गया तथा अपने हाथोंको अपनी पीठके पीछे लोहेकी जंजीरसे बाँधकर यही कहता रहा—"ऐ मेरे खुदा, मेरे मालिक, हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़ा हुआ बहलुल अपने पापोंको स्वीकार करता है।" अबू लुबाबने किसीसे विश्वासघात किया था। इसके प्रायश्चितके लिए वह मदीनेकी मस्जिदके एक खम्भेसे तबतक अपनेको बाँधे हुए रहा जबतक उसे यह विश्वास नहीं दिला दिया गया कि परमात्माने उसके गुनाहोंको माफ़ कर दिया। बसराका हसन चालीस वर्षोंतक रोता रहा क्योंकि उसने एक पड़ोसीकी दीवारसे मिट्टी ले ली थी।

सुफियान अल्-तावरीने कहा है—"आत्यन्तिक भय ही किसीको साधनामें लगाये रहता है।" हिजरी सन्‌की दूसरी शताब्दीमें इस भयने अरबोंके मनको इतना आतंकित कर दिया था कि परमात्माके कोपसे रक्षा पानेके लिए हजारोंकी संख्यामें लोगोंने सांसारिकतासे मुँह मोड़ लिया और धार्मिक कृत्योंमें लग गये। संसार-त्यागका उग्र रूप उस समय देखनेको मिलता है। परमात्मा और नरकका भय किस प्रकारसे उस समय लोगोंके हृदयमें बना हुआ था इसका अनुमान बसराके हसनके उदाहरणसे मिलता है। हसनका काल ईसाकी आठवीं शताब्दीका पूर्वार्ध है। उसे परमात्माका भय इतना बना हुआ था जैसे नरकाग्नि सिर्फ उसीके लिए निर्मित हुई हो। एक दिन उसे रोते हुए देखकर एक मित्रने उसके रोनेका कारण पूछा। उसने बतलाया कि वह इसलिए रो रहा है कि उसे भय है कि अनजाने उसने ऐसी गलती न कर दी हो अथवा ऐसी बात उसके मुँहसे न निकल गई हो जिससे परमात्मा अप्रसन्न हो जायँ और सन्मुख उपस्थित होनेपर ऐसा न कह दें कि 'जाओ, तुम मेरी दयासे वंचित रहोगे'। यह भय हसनके मनमें इतना घर कर गया था कि किसीने भी उसे हँसते हुए नहीं देखा। वह मानसिक यन्त्रणासे सर्वदा बेचैन रहता।

---

१. त. औ., भाग १, पृ० ३७।

उसे पापोंका भय बना रहता। मृत्युके समय वह एक बार हँसा था और 'कौन पाप ?' 'कौन पाप ?' कहते हुए मरा था। बादमें एक वृद्ध पुरुषको उसके दर्शन स्वप्नमें हुए, जिसने उससे पूछा कि जीवन-कालमें तो वह कभी भी नहीं हँसा, मृत्यु-कालमें उसके हँसनेका कारण क्या था ? उसने बतलाया कि उस समय उसे जैसे देववाणी यह कहती हुई सुनाई पड़ी कि इसे बाँधो चूँकि इसके जीवन-कालका एक पाप अभी भी अवशिष्ट है। केवल मात्र एक ही पाप है इसे सुनकर वह आह्लादसे भर गया था और यही उसके हँसनेका कारण था[1]।

कुरानमें इस संसारकी क्षणभंगुरता और निस्सारतापर जोर दिया गया है। उसमें हिदायत दी गयी है कि मनुष्य संसारके क्षणिक और मिथ्या सुखोंके लिए वास्तविक और सच्चे सुखका परित्याग न करे। इस जीवनमें अगर वह सांसारिकतामें लिप्त रहा तो आनेवाले जीवनमें वह नरकाग्निमें दग्ध होता रहेगा। अतएव मनुष्यको इन सभी प्रलोभनोंसे अपनेको बचाना चाहिये और सब कुछका त्यागकर परमात्माका सतत ध्यान और स्मरण करना चाहिये। जो सांसारिकताके प्रति उदासीन रहते हुए, शुभ कर्मोंको करते हुए परमात्माको ही सब कुछ जानता रहेगा उसपर परमात्मा दया करेगा और उसके अपराधोंको क्षमा कर देगा। और नहीं तो परमात्माके कोपका भाजन बनेगा। कुरान[2]में कहा गया है कि जान लो कि यह सांसारिक जीवन एक खेल-तमाशा है। यह बाह्य आडम्बर है और तुम्हारे भीतर मिथ्या अहंकारको पैदा करनेवाला है। अधिक-से-अधिक धन और सन्तान पैदा करनेका मोह उन पौधोंकी तरह है जो वर्षामें उग आते हैं—उनका बढ़ना किसानको आनन्द देता है; तब वे मुर्झा जाते हैं और उन्हें तुम पीला देखते हो और इसके बाद तुम कटे हुए डंठलोंको देखते हो। और इस (जीवन)के बाद या तो कठोर दण्ड-व्यवस्था रहेगी या फिर परमात्माकी दया और उसकी सन्तुष्टि और

१. तापसमाला (बंगला), भाग २ पृ० १०।

२. सूरा ५७ : २०।

इस संसारका जीवन एक क्षणिक सुख है।—उस प्रारंभिक कालमें इस बातपर बराबर जोर दिया जाता रहा है कि यह संसार अवास्तव है, छलना है और क्षणिक है तथा आनेवाला संसार ही सत्य है और स्थायी है। इस संसारको त्याग कर ही मनुष्य परमात्माकी भक्ति कर सकता है। अबू बक्रके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वे बराबर इस संसारके क्षणस्थायित्वपर जोर दिया करते थे और अपने अनुयायियोंको इसके त्यागका महत्त्व बतलाया करते थे। उनका कहना था कि मनुष्यके उपभोगके लिए परमात्माने इस संसारको मनुष्यको दिया है लेकिन यह असली वस्तु नहीं है। इस प्रकारके अनेकों संसार अगर उसके लिए बख्शे जाँय तो परमात्मासे वह यही प्रार्थना करेगा कि, हे प्रभो, प्रचुर संसार बख्शनेके बाद मुझे इस प्रकारकी शक्ति देना कि मैं उन्हें तुच्छ समझूँ और मेरे मनमें उन्हें त्यागनेकी इच्छा-शक्ति रहे[1]। इस संसारको त्यागनेकी शक्तिको ही उन्होंने अपने लिए माँगा है। परमात्माके बताये हुए मार्गका अनुसरण करनेवाला ही उसका सच्चा प्रेमी और भक्त है। उसके आदेशोंके पालन करनेवालेको ही सचमुचमें उसके दण्डका भय है, वे बराबर इस बातके लिए सचेष्ट रहते हैं जिसमें जाने या अनजाने कुछ ऐसा न कर बैठें जो परमात्माकी दृष्टिमें गर्हित हो। अतएव जो धार्मिक हैं, जो बराबर सत्पथपर चलनेकी कोशिश करते हैं उन्हें ही सर्वदा परमात्माके कठोर दण्डका भय बना रहता है। इसके विपरीत जो सर्वदा मृगतृष्णाके पीछे भटक रहे हैं और इस दुनियाके रागरंगमें लिप्त हैं उन्हें न परमात्माकी ही याद रहती है और न उसके दण्डका ही। अतएव जो धार्मिक हैं और परमात्माके बताये मार्गपर चलनेवाले हैं वे अपने धनको अपना धन नहीं मानते, ग़रीबों और जरूरतमन्दोंकी सहायता करते हैं। ज़कात उनके लिए एक स्वाभाविक चीज है। उन्हें दुःख-सुखकी परवा नहीं होती। वे न दुःखसे उद्विग्न होते हैं और न सुखसे प्रमत्त। उन्हें सांसारिक विषयोंकी ओर रुचि नहीं होती

1. क. कश्फ० : पृ० ७०–७१।

और न वे उनकी कामना करते हैं। उनके लिए एक मात्र काम्य वस्तु परमात्मा है। जैसा कि कुरान[1] में कहा गया है, परमात्मा और क़यामत-पर ईमान लानेवाला ही वास्तवमें पुण्यात्मा है। वह परमात्माकी खातिर अपने सगे-सम्बन्धियों, अनाथों, ज़रूरतमन्दों और अतिथियोंकी ज़रूरतों-को पूरा करनेके लिए अपना धन बाँटता है इसके साथ ही वह याचकोंको देने और गुलामोंको स्वतन्त्र करानेमें अपने धनका सदुपयोग करता है। वह नमाज़ और ज़क़ातसे कभी नहीं चूकता और अपने किये हुए वादेको पूरा करता है। आपत्तियोंके समय तथा किसी प्रकारकी भयावह स्थितिमें वह दृढ़ रहता है और धैर्य धारण किये रहता है। ऐसे ही लोग वास्तवमें सत्य-मार्गका अनुसरण करनेवाले और परमात्मासे डरनेवाले हैं।

अतएव यह सहज ही देखा जा सकता है कि इस्लामके प्रारम्भिक कालमें इस्लाम धर्मके बहुसंख्यक अनुयायियोंमें संन्यास-जीवन बितानेकी जो प्रवृत्ति देखी जाती है उसमें परमात्माका भय तथा कुरानके वचनोंका बहुत बड़ा हाथ है। इस संन्यासका यही मतलब था कि इसके द्वारा पापोंसे बचा जा सकता है। हज़रत मुहम्मदके जीवनमें तथा उनके उप-देशोंमें यह बात बराबर कही गयी है कि परमात्माके दण्ड और कोपसे बचनेके लिए मनुष्यको संन्यास-जीवन बिताना चाहिये वैसे सम्पूर्ण रूपसे वे वैराग्यके पक्षपाती नहीं थे। परमात्माका प्रिय भाजन होनेके लिए मनुष्यको पवित्र जीवन बिताना चाहिये और बुरे कर्मोंसे बचना चाहिये। संन्यास-जीवनका सबसे पहला कर्त्तव्य यह समझा जाता था कि मनुष्य अपने हृदयकी शुद्धिके लिए विभिन्न साधनोंका सहारा ले। हृदयकी शुद्धि, अपने आपको पापोंसे बचाने तथा पहले के किये हुए पापकर्मोंके प्रायश्चितके लिए इस्लाम धर्ममें कई प्रकारके विधानोंकी चर्चा है जैसे रोज़ा, नमाज़, ज़क़ात और हज आदि। मद्यपानको भी हराम समझा गया है। मुहम्मद साहबने ब्रह्मचर्य-पालनको महत्त्व नहीं दिया है। वास्तवमें इस्लाम धर्ममें ब्रह्मचर्यको कोई स्थान नहीं दिया गया है।

---

१. कुरान, सूरा २ : १७७ सूरा ७६ : ८।

जहाँतक सूफियोंका सम्बन्ध है ये सभी विधान प्रारम्भिक कालमें अपने आपमें पुण्य-कर्म समझे जाते थे। इन विधानोंको मानकर चलनेमें ही पुण्य समझा जाता था। लेकिन जैसे-जैसे सूफीमतका विकास होता गया और उसमें रहस्यवादी प्रवृत्तियोंका प्रवेश हुआ, इन विधि-विधानोंके उद्देश्यमें परिवर्तन होता गया। जहाँ पहले ये साध्य माने जाते थे वहाँ धीरे-धीरे बादमें चलकर ये साधन माने जाने लगे। साधारणतः इस्लाम धर्मके अनुयायी इन सभी बातोंको मानकर चलते हैं। सूफी साधकोंने भी इन बातोंको ग्रहण किया है लेकिन अपनी दृष्टिसे उन्हें जहाँ कमी मालूम हुई उसकी पूर्ति उन लोगोंने हदीसोंसे की है। इन विधानोंके प्रति उनका विशेष दृष्टिकोण था और उस दृष्टिकोणके समर्थनके लिए उन्होंने अपने ढंगसे व्याख्या भी की।

पापोंसे निवृत्ति पानेके लिए तौबा (प्रायश्चित) को सूफी साधक एक महत्त्वका स्थान देते हैं। तौबा करनेको वे आध्यात्मिक मार्ग-पर अग्रसर होनेका प्रथम सोपान मानते हैं[1]। इसके अनुमोदनके लिए प्रारम्भिक कालके फ़क़ीर और सूफी साधक बहुत-सी हदीसोंका हवाला देते हैं। तौबाके महत्त्वको इसीसे समझा जा सकता है कि सूफियों-का विश्वास है कि किसी किये हुए पापके लिए अगर तौबा कर लिया जाय तो परमात्मा उस पापके दण्डसे बरी कर देता है। अगर उसके बाद भी वह अन्य पाप-कर्मोंमें लगा हुआ है तो उन पापोंके लिए परमात्मा उसे दण्ड देता है लेकिन उस पापका दण्ड उसे नहीं देता जिसके लिए वह तौबा कर चुका है[2]। एक हदीसमें कहा गया है कि हजरत मुहम्मद-ने आयशासे कहा था कि जब मनुष्य अपने गुनाहोंको स्वीकार करता है और उनके लिए प्रायश्चित करता है तथा परमात्माकी ओर उन्मुख होता है तो परमात्मा उसके किये हुए प्रायश्चितको क़बूल कर लेता है[3]।

---

१. कश्फ० : पृ० २९४।

२. वही, पृ० २९५।

३. मिश्कात अल-मसाहीब : स्ट. अ. मि. नि. फा. इ. पृ० १३०-१३१ पर उद्धृत।

भोजन तथा उपवासके सम्बन्धमें भी उन तापस-जीवन बितानेवालों और सूफी साधकोंका एक विशेष दृष्टिकोण था। आत्म-नियन्त्रणके लिए उपवासकी व्यवस्था कुरानमें दी हुई है। उस कालके साधकोंने भोजनकी पवित्रता और आहारके संयमपर पूरा जोर दिया है। साधकके लिए कैसा भोजन चाहिये? किस प्रकारका भोजन उनके लिए उपयुक्त है? कब खाना चाहिये? क्या खाना चाहिये, क्या नहीं खाना चाहिये? किसका दिया हुआ अन्न साधक ग्रहण कर सकता है? किसका दिया हुआ अन्न उसे नहीं ग्रहण करना चाहिये? आदि बातोंकी पूरी नियमावली उन लोगोंने बना रखी है। कोई जरूरी नहीं कि इन सारी बातोंका समाधान उन्होंने कुरानसे किया हो। इसके लिए अनेकों हदीसोंकी शरण वे लेते हैं। उनका कहना है कि साधनाके लिए आहारपर ध्यान रखना अत्यावश्यक है। आहार अगर साधनामें बाधक हो तो अनाहार उससे कहीं अच्छा है। अनाहार रहकर अगर भगवान्‌का स्मरण किया जा सके अथवा साधनामें निर्विघ्न रहा जा सके तो वही श्रेयस्कर है। अल-गजालीका कहना है कि आहारकी उपयोगिता साधकके लिए उसकी साधनाको दृष्टिमें रखकर ही समझी जा सकती है। इस दृष्टिसे विचार करते हुए उसने अनाहारसे होनेवाले लाभोंकी चर्चा की है। अनाहारके कई फ़ायदे उसने बतलाये हैं, जैसे उससे विनम्रता आती है, एकाग्रचिन्तनमें सहायता मिलती है, शरीर स्वस्थ होता है, आध्यात्मिक आनन्दके उपभोगकी शक्ति प्राप्त होती है, आत्मा और मन आलोकित हो उठते हैं आदि। कहा जाता है कि तस्तरी[१], पन्द्रह दिनोंमें एक बार अन्न ग्रहण करता था और अबू उस्मान अल मगरीबी अस्सी दिनोंके उपरान्त एक बार!

अनाहारके सम्बन्धमें स्थूल दृष्टिसे विचार करनेवालोंने इस बातपर जोर दिया है कि साधकको सबका दिया हुआ अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारीका दिया हुआ अन्न साधकके

१. कश्फ०, पृ० ३२२।

लिए निषिद्ध माना गया है। इसी प्रकारसे यह भी कहा गया है कि विवाहादिके अवसरपर दिये जानेवाले अन्नसे साधकको परहेज रखना चाहिये। कितने ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने मांस[1] खाना निषिद्ध माना है। लेकिन बहुतसे साधक खाने-पीनेसे परहेज रखनेको ही अनाहार मानना नहीं चाहते। उनका कहना है कि परहेज रखनेका मतलब है कि पेट खाली रहे, वासनापूर्ण दृष्टिसे आँखें न देखें, किसीकी अनुपस्थितिमें कान किसीकी निन्दा न सुनें, जीभसे गर्वोक्ति या गन्दी बात न निकले, शरीर सांसारिक विषयोंसे अलग रहे और परमात्मासे विमुख न हो[2]। "केवल खाने और पीनेसे परहेज रखना तो बच्चोंके खिलवाड़ जैसा है[3]।" साधकके लिए वास्तविक अनाहार तो अपनी इच्छाओं और वासनाओंसे अपनेको दूर रखना है। शरीरके अनाहारसे भी अधिक महत्त्वका हृदयका अनाहार है। हृदयको खाली रखनेवाला साधक आध्यात्मिक आनन्दको प्रत्यक्ष कर सकता है। प्रत्येक दूषित भावनाओंसे अपनेको वही अलग रख सकता है जो अपनी साधनाके मार्गपर काफी अग्रसर हो चुका है। इसीलिए जुन्नैदने कहा है कि "अनाहार मंजिलका आधा है। बसराकी राबिया अल-अदावियाके सम्बन्धमें एक कहानी प्रसिद्ध है। एक बार वह बीमार पड़ी। उसके साधक-शिष्य सुफियान अल-तावरीने उससे पूछा—"ओ राबिया, तुम्हारे मनमें कौन-सी इच्छा है?" उसने जवाब दिया—"ऐ सुफियान, तुम इस तरहका प्रश्न करते ही कैसे हो? परमात्मा जानता है कि गत बारह वर्षोंसे मैं ताजे खजूर खाना चाहती हूँ और तुम्हें मालूम है कि बसरामें उनका अभाव नहीं है फिर भी मैंने उन्हें नहीं खाया है। मैं तो परमात्माकी गुलाम हूँ और गुलामको किसी प्रकारकी इच्छासे क्या मतलब है?"[4] राबिया प्रारम्भिककालकी एक

---

१. दबिस्ताँ, खण्ड ३, पृ० ३२।

२. कश्फ, पृ० ३२१।

३. वही पृ० ३२२।

४. त. औ., (१), पृ० ७०, ७१।

प्रमुख साधिका थी और बड़े आदरकी दृष्टिसे देखी जाती थी। उसके सम्बन्धकी इस कहानीसे उसकालके साधकोंके विचारोंका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

प्रारम्भिक कालमें संन्यास जीवन बितानेवाले विशेष-विशेष प्रकारके पोशाकका व्यवहार करते थे। फिर भी ऐसी कोई बात नहीं थी कि उनके बीच किसी एक विशेष पोशाकका प्रचलन हो और उसीके द्वारा वे पहचाने जाते हों। लेकिन प्रारम्भमें विशेष ढंगके पोशाकके व्यवहारपर इसीलिए जोर दिया जाता था कि वे साधक एक विशेष कोटिके समझे जाते थे और उन पोशाकोंसे वे एक दूसरेको पहचान सकते थे अथवा उनके द्वारा समाजमें भी उन्हें पहचाननेमें किसीको कठिनाई नहीं होती थी। इन पोशाकोंका दुरुपयोग करनेवाले भी थे। अतएव अनाहारके समान पोशाकके सम्बन्धमें भी भिन्न-भिन्न प्रकारके मत रखनेवाले थे। प्रारम्भमें इन साधकोंमें ऊनका व्यवहार अधिक पाया जाता है। पैगम्बरके प्रियपात्र उवैसका जुब्बा[१] जो घुटनेतक पहुँच जाता था, ऊनका बना हुआ था। वास्तवमें यह पैगम्बरका था जिसे उन्होंने उवैसको दे दिया था। कहा जाता है कि पैगम्बरने कहा था—"ऊनी वस्त्रका व्यवहार करो जिसमें ईमान (धर्म) की शीरीनीका तुम्हें अनुभव हो सके।"[२] बादरकी लड़ाईमें भाग लेनेवालों तथा अबू बक्रके ऊनी वस्त्रके व्यवहारकी बात कही जाती है। प्रारम्भिक कालके अनेकों सुप्रसिद्ध साधकोंके ऊनी वस्त्रोंके व्यवहार करनेकी बात कही जाती है। हसन अल-बसरा, मालिक दीनार, सुफियान तावरी, कुफाके इमाम अबू हनीफा, इब्राहिम बिन अजम आदि अनेकों साधक जिनका नाम बड़े आदरसे स्मरण किया जाता है ऊनी वस्त्रके व्यवहार करनेवालोंमें थे।

बहुतोंका कहना है कि ईसाई संन्यासियोंमें बहुत पहलेसे ऊनी चोगेका व्यवहार प्रचलित था और सम्भवतः उन्हींको देखकर इस्लामके

१. दरवीशेज : पृ० ९८।
२. कश्फ : पृ० ४५।

अनुयायियोंने इसे अपनाया[1]। इस तरहके अनुमानका कारण यह भी है कि ऊनी वस्त्रके व्यवहारको लेकर इस्लामके अनुयायियोंमें मतभेद है। बहुतसे मुस्लिम साधकोंने उसे बुरा बताया है क्योंकि वह अन्य धर्मावलम्बियोंसे ली हुई है और इस्लामकी अपनी चीज नहीं है। हसन अल-बसरीके एक शिष्य फरकद सबखीको इसके लिए बुरा-भला कहा गया है। सन् ७१९ ई० में उजले ऊनके चोगेकी बड़ी निन्दा की गयी है और विदेशी माना गया है। अबू सुलेमान अद-दारानीने इसके व्यवहारको केवल सुभीतेकी दृष्टिसे उचित माना है लेकिन धार्मिक कृत्यके लिए इसके व्यवहारको ठीक नहीं माना है[2]। इतना सही है कि प्रारम्भमें ऊनी वस्त्रोंका व्यवहार मुस्लिम साधकोंमें खूब प्रचलित था और बादमें वह धीरे-धीरे कम होता गया। इसके कम व्यवहारमें लाये जानेके कारणोंकी चर्चा करते हुए हुजवीरीने[3] बतलाया है कि दो कारणोंसे इसकी कमी हो गयी है। पहला तो यह कि बहुत-सी भेड़ें मार डाली गयी हैं या शत्रुओं द्वारा लूट ली गयी हैं और दूसरा यह कि जिन्दीकों (अधार्मिकों) द्वारा इसका व्यवहार किया जाने लगा है अतएव धर्म-सम्मत होनेपर भी इसका व्यवहार करना लोगोंने छोड़ दिया है। बादमें चलकर सूफी साधकोंमें खिरका (गुदड़ी) का व्यवहार प्रचलित हो गया[4] और प्रारम्भिक कालके साधकोंमें प्रचलित उजले ऊनका चोगा कम हो गया या नहींके बराबर रह गया। पैबन्द लगी हुई गुदड़ी (मुरक्का) साधकोंकी एक विशेष पहचान बन गई।

खिरकाका व्यवहार कौन कर सकता है ? कौन नहीं कर सकता है ? इसका उद्देश्य क्या है ? किसी साधकको खिरका प्रदान करनेका अधिकारी कौन है ? आदि बातोंके सम्बन्धमें भी सूफी साधकोंमें भिन्न-भिन्न

---

१. इ. इ.।

२. इ. रे. ए., पृ० १०१।

३. कश्फ० : पृ० ५१।

४. स्ट. अ. मि. नि. फा. इ., पृ० १६१।

मत दीख पड़ते हैं। मुरक्का (पैबन्द लगी हुई गुदड़ी) धारण करनेका उद्देश्य यही था कि जिसमें लोग जान सकें कि उसे धारण करनेवाला व्यक्ति साधक है। उसकी गुदड़ीको देखकर लोग अलगसे ही पहचान सकें कि वह परमात्माकी राहपर अपनेको लगाये हुए है तथा सांसारिक विषयोंसे अपनेको अलग किये हुए है। अतएव अगर वह किसी बुरी राहकी ओर प्रवृत्त हो जाय तथा ऐसे किसी कर्मकी ओर आकृष्ट हो जाय जो उसके लिए अनुचित है तो देखनेवाले उसकी भर्त्सना कर सकें और इस भयसे वह सत्पथसे विचलित न हो। मुरक्का धारण करनेका अधिकारी वही है जिसने संसारके विषयोंसे अपनेको अलग कर लिया है तथा जिसके लिए एकमात्र परमात्मा ही सब कुछ है। अबू सुलेमान अद-दारानीका कहना था कि अबा (ऊनी चोगा) का व्यवहार वही कर सकता है जिसका हृदय पवित्र हो गया है। इसे वह संन्यासका लक्षण मानता है। लेकिन उसने इस बातकी ओर भी ध्यान दिलाया है कि साधकको चाहिये कि लोगोंकी दृष्टि उसकी ओर आकृष्ट न हो क्योंकि उससे उसकी साधनामें बाधा पहुँच सकती है। बहुतोंका ऐसा कहना है कि जो सच्चा साधक है उसके लिए बाहरी दिखावेकी क्या जरूरत है। वह अपने अन्तरको ही ठीक रखनेकी चेष्टा करता है और बाह्य उपकरणोंकी उपेक्षा करता है। उसके लिए इन वस्तुओंका कोई मूल्य नहीं रहता। "सच्चे साधकके लिए दरवेशों द्वारा पहने जानेवाले अबा और साधारण लोगों द्वारा व्यवहार किये जानेवाले कबामें कोई अन्तर नहीं रहता।" हुजवीरीके इस कथनको माननेवाले अधिकांश सूफी साधक थे।

अपने अन्तरको शुद्ध रखकर ही कोई व्यक्ति इस विशेष पोशाकका अधिकारी हो सकता है तथा परमात्मा उसके क्रियाकलापोंको देखता रहता है। एक बार मुर्तेश नामक एक साधक बगदादमें घूम रहा था। उसे प्यास लगी और उसने एक घरमें जाकर पानी माँगा। घरकी एक लड़की उसे पानी दे गयी। उसका सौन्दर्य देखकर वह मुग्ध हो गया और उसी घरके सामने अड़ा रहा। घरके मालिकने आकर उससे इसका

कारण पूछा। उसने बतलाया कि वह उस लड़कीके सौन्दर्यपर मुग्ध हो गया है। घरके मालिकने उससे कहा कि वह उसकी लड़की है और उसके साथ वह उसकी शादी कर देगा। शादी हो गयी। घरके नौकरोंने मुर्तैश-को स्नान कराया और उसके मुरक्केको उतारकर दूसरा वस्त्र पहना दिया। रातको मुर्तैश जब प्रार्थना करनेके लिए बैठा तो हठात् उसने अपना मुरक्का माँगा। कारण पूछनेपर उसने बतलाया कि उसने हृदयकी एक आवाज सुनी है कि एक गल्तीके लिये उसकी गुदड़ी उतार ली गयी और अब फिर गल्ती करनेपर प्रेम-बन्धन भी काट दिया जायगा। अतएव सूफी साधक कहते हैं कि साधकोंके बाहरी पहिरावेको धारण करनेसे क्या लाभ अगर साधनासे ही साधक विमुख हो गया। बहुतसे साधक ऐसे भी हैं जो किसी भी प्रकारके पहिरावेके, जो उन्हें विशिष्टता प्रदान करे विरुद्ध हैं। उनका कहना है कि लोगोंको दिखलानेके उद्देश्यसे कि वह साधक है, अगर कोई मुरक्का धारण करता है तो वह केवल ढोंग है और अगर परमात्माको दिखलानेके लिए करता है तो वह निरर्थक है चूँकि परमात्मा सब कुछ जानता है जो हम लोग करते हैं। अतएव वे इस बात-पर जोर देते हैं कि बाह्याडम्बरको छोड़कर अन्तरकी शुद्धिपर ही ध्यान देना चाहिये। "पवित्रता (सफा) परमात्माकी देन है और ऊन (सूफ) पशुओंका आवरण है[1]।" पहिरावेके अलावे अन्य बहुतसी बातोंको लेकर भिन्न-भिन्न मत उपस्थित किये गये हैं। पैबन्द कैसे लगाना चाहिये, पैबन्दकी सिलाई कैसी होनी चाहिये, गुदड़ीका रंग कैसा होना चाहिये आदि छोटी-बड़ी बहुत-सी बातोंपर विचार किया गया है। इन वस्त्रोंका अप-व्यवहार करनेवाले भी कम नहीं थे। बहुतसे ऐसे धूर्त और पाखण्डी भी थे जो मुरक्का आदिका व्यवहार अपने स्वार्थके लिए करते थे। इनसे बचनेके लिए साधकोंने बार-बार चेतावनी दी है। ऐसे ही लोगोंके लिए कुरानमें कहा गया है कि वे किताबोंका गट्ठर पीठपर लादकर चलनेवाले

१. कश्फ० : पृ० ४८।

२. सूरा ७२ : ५।

गदहोंके समान हैं।

पाँच बारकी नमाजका विधान सनातन-पन्थी इस्लाममें सभी मुसलमानोंके लिए है लेकिन उन साधकोंको इतनेसे ही सन्तोष नहीं हुआ अतएव कुरान और हदीसोंका सहारा लेकर उन लोगोंने इसका और भी विस्तार किया। पाँच बारकी नमाज तक ही उन्होंने अपनेको सीमित नहीं रखा। पीर अपने मुरीदको, जो अभी अपनी साधनाका प्रारम्भ कर रहा है, दिन-रातमें चार सौ बार प्रार्थनामें झुकनेका आदेश देते हैं। इससे शरीर साधनाके लिए अभ्यस्त होता है। इसीलिए पाँच बारकी नमाजके अलावे उन साधकोंने अल्लाहका सतत स्मरण, कुरानका पाठ, मालाके सहारे अल्लाहका नाम-जप आदिको भी अपनाया। परमात्माका सतत स्मरण करनेका आदेश कुरानमें बार-बार दिया गया है, चूँकि परमात्माके स्मरणसे मनुष्य बुरे कर्मोंसे बचता है। परमात्माका जिक्र (स्मरण) सबसे बढ़कर माना गया है। अतएव कहा गया है कि उसका स्मरण करो क्योंकि वह सब कुछ जानता है जो तुम करते हो। परमात्माके जिक्रको आगे चलकर सूफी साधकोंने एक विशेष अर्थमें प्रयोग करना शुरू किया। रात्रिमें नमाज पढ़नेपर कुरानमें जोर दिया गया है। दयालु परमात्माने दिन और रातका क्रम उन लोगोंके लिए बनाया है जो परमात्माका ध्यान करते हैं और उसकी दयाके लिए वे उसका शुक्र मनाते हैं। उस दयालु परमात्माके सच्चे सेवक वही हैं जो उसकी आराधनामें सम्पूर्ण रात्रि बिताते हैं।[1] मिश्कात अल-मसाबीहमें ऐसी कितनी हदीसोंका जिक्र है जिनमें रात्रिमें प्रार्थना करनेको बहुत महत्त्व दिया गया है। उसमें एक जगह कहा गया है "रात्रिकी प्रार्थनाके लिए उठो, चूँकि तुमसे पहले हो चुकनेवाले पुण्यात्माओंने ऐसा ही किया है; इसके द्वारा तुम परमात्माके निकट आते हो और इससे तुम्हारे दोष दूर होते हैं और तुम पापकर्मोंसे बचते हो।" यह समझा जाता है कि नमाजके द्वारा समस्त पाप धुल जाते हैं। एक हदीसमें कहा गया है—"प्रार्थना (सलात) मीठे पानीके सोते

१. स्ट. अ. मि. नि. मि. इ., पृ० १३२–३३।

जैसा है जो तुममेंसे प्रत्येकके दरवाजेसे होकर बहता है ; उसमें एक दिनमें पाँच बार डुबकी लगानेपर तुम क्या समझते हो किसी प्रकारकी गन्दगीका लेशमात्र भी रह जाता है ?"

लेकिन साधक उस प्रार्थनाको सच्ची प्रार्थना माननेको तैयार नहीं होते अगर वह आत्मशुद्धिके सिद्धान्तको जाने बिना की जाती है। एक साधकका कहना है कि सलात (प्रार्थना) में चार चीजों का होना अत्यावश्यक है ; नफ्स (निम्नाभिमुखी आत्मा जो नीच कर्मोंकी ओर प्रवृत्त करती है) का विनाश, प्रकृति दत्त शक्तियोंका लोप, अन्तरतम हृदयकी पवित्रता और पूर्ण ध्यान और ये चारों चीजें क्रमशः एकाग्र-चित्तता, परमात्माकी शक्तिमत्तामें आस्था, आध्यात्मिक प्रेम एवं तज्जनित हृदयकी पवित्रताके द्वारा ही आयत्त होती हैं[1]। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि इन साधनोंकी दृष्टिमें प्रार्थना धार्मिक नित्यक्रिया समझ-कर पाँच बार पढ़ी जानेवाली नमाजसे कुछ भिन्न है। वह अपने आपमें एक साधना है और साधनाके द्वारा ही उसके लिए कोई व्यक्ति योग्य बन सकता है। पैगम्बरके इस कथनका कि "सलात (प्रार्थना) में ही मेरा आनन्द निहित है" वे अपने ढंगसे अर्थ समझते हैं।

[प्रार्थनाकी कई प्रकारसे साधकोंने विवेचनाकी है। किसीका कहना है कि प्रार्थनाके द्वारा परमात्माको प्रत्यक्ष किया जाता है, दूसरोंका कहना है कि इसके द्वारा इन्द्रिय-जनित सभी व्यापारोंको भुलाया जा सकता है। अब्दुल्ला बिन मुबारकका कहना है कि बचपनमें उसने प्रार्थनामें रत एक साधिकाको देखा था जिसे चालीस जगहोंपर बिच्छूने डंक मार दिया था लेकिन उसे उसका अनुभव नहीं हुआ और न उसके चेहरेसे किसी प्रकार-के क्लेशके चिह्न दृष्टिगोचर हुए। पूछनेपर उसने बतलाया—"अज्ञान बालक, क्या तुम यह ठीक समझते हो कि जब मैं परमात्मा-विषयक कार्यमें लगी हुई हूँ उस समय (उसे छोड़कर) मैं अपने काममें लग

1. स्ट. अ. मि. नि. मि. इ., पृ० १३२।

जाऊँ ?" इसी प्रकारसे अबुल खैर अकताके बारेमें कहा जाता है कि जब वह प्रार्थनामें लगा हुआ था उस समय चिकित्सकने उसके पैरको काटा और उसे उसका पता नहीं चला।

वास्तवमें साधककी प्रार्थना धार्मिक कृत्य समझकर की जानेवाली नित्य-प्रतिकी प्रार्थनासे भिन्न होती है। धार्मिक कृत्यके रूपमें की जानेवाली प्रार्थना (सलात) से साधककी प्रार्थना केवल इसी बातमें भिन्न नहीं है कि प्रथममें समय और प्रार्थनाकी विधि आवश्यक समझी जाती है बल्कि इस बातमें भी है कि साधक बँधी-बँधायी भाषामें प्रार्थना नहीं करता; वह प्रार्थनाके समय परमात्माके साथ साक्षात्कार करता रहता है और उसके प्रेम, आलोक और ऐश्वर्यमें वह अपने आपको खो देता है। उस समय जैसे वह परमात्माके साथ प्रत्यक्ष सम्भाषणमें लगा हुआ रहता है। उसका प्रेम-निवेदन (मुनाजात) अपनी भाषा आप खोज लेता है। मंसूर बिन अल-हल्लाजकी निम्नलिखित प्रार्थनासे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

"हे खुदा, तुम्हारे प्रेमकी उन्मत्त करनेवाली श्वास और तुम्हारी मौजूदगीकी सुगंध मेरे भीतर क्या कुछ कर जाती है कि मैं ठोस (जड़) पर्वतोंसे घृणा करने लगता हूँ और (भिन्न) लोगों तथा आसमानोंको हेय समझने लगता हूँ। मेरी भावाविष्टावस्थाके एक क्षण अथवा मेरे 'अहवाल' (साधककी आध्यात्मिक 'अवस्था') के नगण्य क्षणोंके क्षणभर रहनेवाले प्रकाशके बदले अगर तुम अपना स्वर्ग मेरे हाथों बेच डालना चाहो, तो मैं उसे नहीं खरीदूँगा! और सभी प्रकारकी यन्त्रणाओंके साथ अगर तुम नरकाग्निको मेरे सम्मुख रख दो तो मैं उस कष्टको नहींके बराबर समझूँगा। अगर उसकी तुलना उस कष्टसे की जाय जिसका अनुभव मुझे होता है जब तुम अपनेको मुझसे ओझल कर लेते हो। दूसरोंको माफ कर दो, मुझको नहीं; दूसरोंपर दया करो, मेरे ऊपर दया न करो! मैं अपने लिए तुम्हारे सामने वकालत नहीं करता और न अपना हक समझ-कर मैं तुमसे याचना करता हूँ। (मैं तो तुम्हारे हाथोंमें हूँ) जैसी तुम्हारी

मर्जी वैसा ही मेरे साथ करो[1] ।''

साधकोंने सांसारिक वस्तुओंके त्याग और गरीबी तथा फकीरी जीवनको श्रेष्ठ माना है। साधकोंका कहना है कि साधक सब कुछका त्याग कर ही चरम लक्ष्यतक पहुँच सकता है। आध्यात्मिक मार्गपर अग्रसर वह तभी हो सकता है जब वह त्यागको अपनाता है। अपने 'अहम्' का त्याग करना सबसे बड़ा त्याग है। इस त्याग और गरीबीको लेकर कई प्रकारके मत प्रकट किये गये हैं। गरीबी और अमीरीकी भिन्न-भिन्न तरहसे व्याख्याएँ की गयी हैं और उन व्याख्याओंके आधारपर किसीने अमीरीको बड़ा बताया है और किसीने गरीबीको। जो सम्पत्तिको बड़ा मानते हैं उनका कहना है कि सम्पत्ति परमात्माकी देन है। वह जिसपर दयालु होता है उसे ही सम्पत्तिवान् बनाता है अतएव सम्पत्ति बड़ी चीज है। इसके अलावे जिसके पास सम्पत्ति है वह दान-पुण्य कर सकता है और इस प्रकारसे उसकी आनेवाली दुनिया भी सुरक्षित होती है। जिनके पास सम्पत्ति है, वही उसका त्याग कर सकते हैं। जो इस प्रकारका त्यागकर गरीबीको वरण करते हैं वास्तवमें उन्हींका त्याग असली त्याग है। जो निःस्व हैं उनके त्याग करनेका क्या अर्थ हो सकता है। उनके पास त्याग करनेके लिए कुछ हो तभी तो त्याग कर सकते हैं ? इस प्रकारके मत रखनेवालोंका यह भी कहना है कि परमात्मा ऐश्वर्यशाली है, सभी विभूतियोंसे वह युक्त है ; उसके साथ हम गरीबी और अभावको नहीं जोड़ सकते हैं अतएव सम्पत्ति तो परमात्माके यहाँसे ही बड़ी मानी गयी है। इब्न अताका कहना है कि एक दिन परमात्मा सम्पत्तिवालोंसे हिसाब लेगा। इस प्रकारसे सम्पत्तिशालीको हिसाबके चलते उस परम प्रियकी झिड़कियाँ खानी पड़ेंगी। इस प्रकारका सौभाग्य सम्पत्तिशालीको ही हो सकता है। सम्पत्तिको बड़ा स्थान देनेवालोंमें यहिया बिन मुआध अल-राजी, अहमद बिन अबी अल-हवारी,

---

१. लुई मासिजो : काब्र तेक्सत्स् पृ० ६३ (आ. प. सू. पृ० ३६ पर उद्धृत)।

हारीस अल-मुहासिबी, अबुल अब्बास बिन अता तथा शेख अबू सईद फजलल्लाह बिन मुहम्मद अल-मयहानी[1] आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेख योग्य हैं। लेकिन इस मतको माननेवाले अत्यन्त ही कम थे और जो इस मतको माननेवाले भी थे उन्होंने सम्पत्तिका अर्थ अपने ढंगसे किया था। वे ऐसा नहीं समझते थे कि ऐश्वर्य प्राप्तकर सांसारिकतामें फँसनेवाला मनुष्य श्रेष्ठ है। चाहे जो हो, इस मतको माननेवाले बहुत ही कम थे और साधारणतः बड़े-बड़े सूफी साधकोंने गरीबी, फक्रको ही बड़ा माना है।

सांसारिक वस्तुओंके त्याग और दीनताको इस्लाम धर्ममें अच्छा माना गया है। जो वस्तुएँ इस्लामकी दृष्टिसे हराम मानी गयी हैं उनका त्याग तो सभी मुसल्मानोंके लिए आवश्यक माना जाता है लेकिन संन्यास-व्रतके पालन करनेवाले साधकोंके लिए केवल उतना ही यथेष्ट नहीं समझा जाता बल्कि जो वस्तु हलाल है उसके त्यागको विशेष पुण्य-कार्य समझा जाता है। दीनताको श्रेष्ठ माननेवाले बहुत-सी हदीसोंका हवाला देते हैं। कहा जाता है कि पैगम्बरने कहा है कि कयामतके दिन परमात्मा देवदूतोंसे अपने प्यारोंको सामने लानेके लिए कहेगा और देव-दूतोंके पूछनेपर वह बतलायगा कि गरीब और अपाहिज ही उसके प्यारे हैं। पैगम्बरने गरीबीको ही अपने लिए चुना है। इस प्रकारकी कितनी हदीसें साधकोंके मुँहसे बराबर निकलती हैं जैसे 'दीनता ही मेरे गर्वकी वस्तु है' अथवा 'जो हमारे सेवकोंमें गरीब हैं वे अमीरोंसे पाँच सौ वर्ष पहले स्वर्गमें स्थान पायेंगे', आदि। ये लोग ऐश्वर्यको सभी खुराफातोंकी जड़ मानते हैं। उनका कहना है कि सम्पत्तिशालीके लिए इस संसारमें पद-पदपर खतरा है। सम्पत्ति एक बन्धन है, माया-मोहमें फँसानेवाली वस्तु है। उसके जालमें फँसकर मनुष्य धर्मके मार्गसे विचलित हो जाता है तथा परमात्मा और मनुष्यके बीचका वह एक बहुत बड़ा पर्दा है।

प्रारम्भमें सांसारिक वस्तुओंका त्याग तथा गरीबीको बड़े स्थूल रूपमें

---

1. कश्फ : पृ० २१।

लिया जाता था। सूफी साधकोंके पास अपना कहनेको कुछ नहीं था, और इसी आदर्शको सामने रखकर अपने लिए वे कुछ भी रखना ठीक नहीं समझते थे। उनका कहना था कि सांसारिक वस्तुओंका पासमें रहना साधकको परमात्मासे दूर भटकाता है। साधक उनके संग्रह और उनकी रक्षामें ही लग जाता है और उसका असली मार्ग छूट जाता है। सांसारिक वस्तुओंके त्यागपर वे इसलिए भी जोर देते थे कि मनुष्य स्वभावतः आरामकी जिन्दगी चाहता है और उसके मनमें सम्पत्तिके प्रति एक सहज आकर्षण रहता है अतएव अपने ऊपर नियन्त्रण रखनेके लिए यह आवश्यक है कि उनका त्याग किया जाय। वे समझते थे कि जो कुछ मिले उसीसे साधकको सन्तुष्ट रहना चाहिये। उसे अपने लिए कुछ नहीं करना चाहिये। उसकी आवश्यकताओंको पूरा करनेवाला परमात्मा है। उसे न कलकी चिन्ता होनी चाहिये और न आजके लिए झंखना चाहिये। यह बात इस हदतक पहुँची कि पैरसे काँटा निकालना अथवा कुएँमें गिर पड़नेपर बाहर निकालनेके लिए सहायता माँगना उस सन्तुष्टिके आदर्शके विरुद्ध माना जाने लगा। बीमार पड़नेपर औषध लेनेके विरुद्ध भी वे लोग थे। इस आदर्शका फल सब समय अच्छा ही निकला ऐसी बात नहीं थी। ऐसे कम ही साधक थे जिन्होंने इस आदर्शको मानकर अपने आपको मिटा दिया। अधिकांश ऐसे ही थे जिन्होंने इसे बहाना बनाकर अकर्मण्यताकी जिन्दगी बितायी। शरीरसे कुछ भी परिश्रम न कर उन्होंने दूसरोंकी भिक्षापर ही जीवन-निर्वाह करना आरम्भ कर दिया।

लेकिन त्याग और गरीबीका यह आदर्श स्थूल नहीं रह पाया। साधकोंने सांसारिक वस्तुओंके त्याग और सांसारिक सुखोंसे मुख मोड़ लेनेको ही दीनता नहीं माना है। उनका कहना है कि सांसारिक वस्तुओं-के अभावको सच्ची गरीबी मानना ठीक नहीं है और इस त्यागका कुछ मतलब नहीं है अगर साधकके जीवनमें सब्र न हो और पूरी तरहसे उसने अपनेको परमात्माके हाथों न छोड़ दिया हो। उसकी दृष्टिमें अमीरी और गरीबी समान हैं। सांसारिक सम्पत्तिका त्याग करके ही कोई 'गरीब' नहीं

कहा जा सकता। वास्तविक त्याग तो इस बातमें है कि जो वस्तु कष्टसाधन तथा बड़ी तपस्याके बाद प्राप्त होती है उसका त्याग किया जाय। एक साधक दूसरोंको स्वर्गमें भेजना चाहता है और उनके बदले स्वयं नरक भोगनेके लिए तैयार है। राबिया अल-अदाविया स्वर्ग प्राप्त करनेके लिए परमात्मासे प्रेम नहीं करती थी। कलाबाधीका कहना है कि संसारसे विमुख होनेका मतलब यह है कि बाहरसे सांसारिक वस्तुओंका त्याग कर दिया जाय और अन्तरसे मिथ्या वस्तुको दूर किया जाय। इस त्यागका उद्देश्य यह नहीं है कि इसके द्वारा सांसारिक सुखको प्राप्त किया जाय अथवा जिन वस्तुओंको क्षणभङ्गुर समझकर त्याग दिया गया है उन्हें सहज प्राप्त किया जाय। यहाँतक कि इसका उद्देश्य अमरत्व प्राप्त करना भी नहीं है। इसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि परमसत्य परमात्माको प्राप्त किया जाय, उसे छोड़ और किसी वस्तुको नहीं। टाइग्रिस नदीमें एक दरवेश गिर पड़ा। किनारेसे एक आदमीने उसे देखा कि वह तैर नहीं सकता। उसने उससे पूछा कि क्या वह किसी आदमीको बुलावे जो उसे बचाकर किनारे ले आ दे। उसने कहा—"नहीं"। फिर उस आदमीने पूछा—"तब वह क्या डूब जाना चाहता है"? उसने कहा—"नहीं"। इसपर उस आदमीने पूछा कि आखिर वह चाहता क्या है? दरवेशने जवाब दिया, जो परमात्मा चाहता है, उसे स्वयं चाहनेसे मतलब क्या है? इस प्रकारसे समस्त इच्छा, समस्त वासनाका त्याग ही सूफी साधकोंकी दृष्टिमें वास्तविक 'गरीबी' है और उस 'गरीबी' में 'अहम्' नहीं रह जाता।

प्रारम्भिक कालके साधकोंमें संन्यासका आदर्श उनके जीवनको गति और दिशा दे रहा था और जैसा कि हम देख चुके हैं कि उन्होंने संसारके प्रलोभनोंका त्याग, सन्तुष्टि, कष्ट-साधन आदिको अपनाया था। इन्हीं साधकोंके जीवन और आदर्शको सामने रखकर प्रारम्भमें तसव्वुफकी परिभाषा करनेकी चेष्टा की गयी है। प्रारम्भिक कालके सूफियोंमें इन्हीं संन्यास-जीवन बितानेवाले साधकोंके जीवनादर्श पाये जाते हैं और क्रमशः इन्हींके आधारपर सूफीमतका विकास होता रहा।

३. अरब देशोंकी तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक अवस्था

ईसाकी सातवीं शताब्दीके पहले तथा बादकी एक-दो सदियोंमें अरब देशों तथा ईरानकी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्थाको जाने बिना सूफीमतके आविर्भाव और विकासको भलीभाँति नहीं समझा जा सकता। अरब देशों तथा ईरानके लोगोंमें इस्लामकी प्रथम दो शताब्दियोंके बीतते-न-बीतते रहस्यवादी प्रवृत्तिका इतना अधिक प्रसार हुआ कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। उन शक्तियोंको जो अरब जातिको प्रेरणा एवं नयी दिशा दे रही थीं, समझनेके लिए यह आवश्यक है कि तत्कालीन इतिहासकी छानबीन की जाय। किसी जातिके मस्तिष्कको समझनेके लिए उस जातिकी आम्नायसे प्राप्त धारणाओंका अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। बहुत-सी ऐसी चीजें अरबी और ईरानी समाजमें इस्लामके प्रसारके बाद दीख पड़ती हैं जिनकी जड़को उन देशोंके इस्लाम-पूर्व इतिहासमें ढूँढ़ा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप ईरानमें शिया सम्प्रदायका ही प्राबल्य क्यों रहा इसे समझनेके लिए इस्लामसे पूर्वके ईरानके इतिहासको देखना होगा। अरबों और ईरानियोंके संस्कार तथा उनकी बद्धमूल धारणाएँ एकदम विभिन्न हैं। भौगोलिक स्थितिके कारण अरबोंमें प्रजातान्त्रिक भावनाका प्राबल्य है जब कि ईरानियोंके मनमें यह बात कठिनतासे आती है। ईरान-वासियोंका विश्वास है कि राजा परमात्माका प्रतिनिधि है अतएव वे किसी भी तरहसे अपने मनको यह समझा नहीं पाते कि खलीफा चुनावके द्वारा नियुक्त किया जाय। मुहम्मद साहबकी मृत्युके बाद जब दूसरे खलीफाका चुनाव होने लगा तो ईरानवालोंके लिए उसका कोई भी औचित्य नहीं जान पड़ा। उमरके प्रति ईरानियोंका आक्रोश केवल धार्मिक ही नहीं था बल्कि उसका कारण राजनीतिक भी

था। उमरको वे ईरानी साम्राज्यका विध्वंसक मानते थे। शिया लोग एक साथ ही इमाममें पैगम्बरकी दिव्यता और सम्राटोंकी तेजस्विताका प्रत्यक्ष करते हैं। उनकी दृष्टिमें इमाम दोनोंके गुणोंका प्रतिनिधित्व करता है। उनका कहना है कि उनमें (इमाममें) आध्यात्मिक और सांसारिक विभूतिका सुन्दर सामञ्जस्य है। शिया लोगोंके इस दृष्टिकोणके पीछे ऐतिहासिक तथ्य और कल्पनाका मिश्रण है। उनका विश्वास है कि हुसैन जो हजरत मुहम्मदकी पुत्री फातिमा और चचेरे भाई अलीके औरससे पैदा हुए थे, उनकी शादी शहरबानूसे हुई थी जो ईरानके अन्तिम सासानी वंशके बादशाह यज्दीगर्द तृतीयकी पुत्री थी। इस विवाह-सम्बन्धके बारेमें ऐतिहासिकोंको पूरा सन्देह है लेकिन शिया लोगोंके लिए इसमें सन्देहकी गुंजाइश नहीं। वे शहरबानूको चौथे इमामसे लेकर बारहवें इमामतक नौ इमामोंकी माँ मानते हैं और इस प्रकारसे इमामोंमें पैगम्बर तथा राजवंशके रक्तका मिश्रण हो जाता है। इसे जाने बिना शिया लोगोंके दृष्टिकोणको नहीं समझा जा सकता। अरबों और ईरानियोंके बीच इस प्रकारकी बहुत-सी बातोंको समझनेके लिए अरबों और ईरानियोंके भिन्न दृष्टिकोणोंको समझना होगा।

अरब देशों और ईरान (पर्सिया) के साथ बहुत पहलेसे ही सम्बन्ध रहा है। उनका इतिहास भिन्न रहा है फिर भी इस्लामके आविर्भाव और प्रसारके बाद अरब देशों और ईरानका इतिहास कई शताब्दियोंतक प्रायः एक ही रहा है। हजरत मुहम्मदकी मृत्युके बाद खलीफोंका युग आया और जैसे-जैसे इस्लामका प्रसार होता गया उन खलीफोंके हाथमें अधिक-से-अधिक प्रदेश आते गये। खलीफोंके हाथमें राजनीतिक और धार्मिक शक्तियाँ केन्द्रित थीं। बहुत दिनोंके बाद ही उसमें परिवर्त्तन आया और खलीफोंकी शक्ति क्षीण होती गयी। अन्तमें इस्लाम धर्मके अनुयायी होते हुए भी बहुतसे छोटे-छोटे देश अपने आपमें स्वतन्त्र हो गये। खलीफोंके युगमें अरबी भाषा इस्लामी साम्राज्यके धर्म, संस्कृति, राजनीति, दर्शन आदिकी भाषा रही। कुरानकी वजहसे इस्लामी दुनियामें अरबी पवित्र

भाषा मानी गयी। अरबी भाषा और साहित्य कुरानसे बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं, लेकिन सीरिया और ईरान (फारस) पर इस्लाम-की विजयने अरबीके क्लासिकल रूपको वैसा नहीं रहने दिया। उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। गृह-कलह, विलासिता आदि कारणोंसे राजनीतिक शक्ति अधिक-से-अधिक बिखरी। ईसाकी तेरहवीं शताब्दीमें जब मंगोलोंने अब्बासियोंको हरा दिया तो जो रही-सही राजनीतिक शक्ति थी वह और भी खतम हो गयी। राजनीतिक शक्तिके बिखरनेके साथ-साथ अरबी भाषा भी अन्य इस्लामी देशोंमें अपना महत्त्व खोती गयी। अब वह केवल धर्मकी भाषा रह गयी। वाणिज्य, कूटनीति आदिमें अरबी-के स्थानपर विभिन्न देशोंने अपने यहाँकी भाषाओंको अधिक-से-अधिक व्यवहारमें लाना शुरू कर दिया।

हजरत मुहम्मदकी मृत्युके कुछ ही वर्षोंके बाद अरबमें गृह-कलह प्रारम्भ हो गया और विभिन्न सम्प्रदायोंका आविर्भाव होने लगा। इस गृह-कलह और सम्प्रदायोंके बननेके पीछे अरबके इस्लाम-पूर्वके विभिन्न कबीलों, वंशों, उनके आपसी मतभेदों और संस्कारोंका बहुत बड़ा हाथ रहा है। वैसे व्यापक दृष्टिसे देखा जाय तो अरब शामी (सेमिटिक) जातिके हैं। सेमिटिक जातियोंमें अबीसिनिया, बैबिलोन, अरेबिया आदिके निवासी तथा हिब्रू हैं। यह कहना कठिन है कि वे एशियाके आदिम निवासी हैं अथवा एशिया महादेशमें वे अफ्रिका महादेशसे आ बसे थे। उनका विश्वास है कि वे नोआ (नूह) के पुत्र शेमके वंशज हैं और शेमके वंशज होनेके कारण वे सेमिटिक (शामी) जातिके कहलाते हैं। इन सेमिटिक जातियोंमें आद और तामूदके निवासी तथा साबी आदि बहुत-सी जातियाँ तो सदाके लिये विनष्ट हो गयी हैं और उनके बारेमें कुछ भी जानना एक प्रकारसे असम्भव-सा हो गया है। सेमिटिक जातियोंमें अरब ही ऐसे हैं जिनमें सेमिटिक जातिकी विशिष्टताएँ सबसे अधिक वर्तमान हैं। इसका मुख्य कारण उनकी भौगोलिक स्थिति है। मरुभूमिमें एक ही प्रकारका उनका जीवन बहुत कालसे चलता आ रहा है। एक

लम्बे कालतक वे बाहरी प्रभावोंसे अपनेको बचाये रख सके थे। इस प्रकारसे मरुभूमिमें वास करने तथा बाहरी संस्पर्शमें नहीं आनेके कारण अरबोंने अपने वैशिष्ट्यको कायम रखा है।

जहाँ तक अरेबियाका प्रश्न है उसमें दो भिन्न प्रकृति और संस्कारके लोग पाये जाते हैं। इस भिन्नताके मूलमें उनकी भौगोलिक स्थिति है। सम्पूर्ण अरेबियाके निवासी यद्यपि एक ही जातिके हैं फिर भी उत्तरी अरेबियावालोंका जीवन, उनकी दृष्टिभंगी दक्षिण अरेबियावालोंसे बिल्कुल भिन्न है। इन दोनोंका पारस्परिक विरोध न जाने किस कालसे चला आ रहा है और आज भी वह दूर नहीं हो पाया है। इन दोनोंके बीच विशाल मरुभूमि है अतएव इन दो भागोंके बीच विचारों, रहन-सहन आदिका पारस्परिक आदान-प्रदान नहीं हो पाता। जहाँ उत्तरी अरबवाले घुमक्कड़ थे, एक जगह नहीं रहते थे, अपने ऊँटोंके चरनेके लिए नयी चारागाहकी खोजमें रहते थे, खुले आकाशके नीचे स्वच्छन्द जीवन बिताते थे, आपसमें लड़ाई-झगड़े किया करते थे, वहाँ अल-यमन (दक्षिणी अरब) के निवासी सभ्य तथा समृद्धिशाली थे। वे कुशल व्यापारी और धर्म-में आस्था रखनेवाले थे। दक्षिणवालोंकी सभ्यता अत्यन्त प्राचीन थी और वे सोना, मसाले, सुगन्धित द्रव्य, बहुमूल्य पत्थरोंका व्यापार भारत तथा मिश्र, सीरिया और अन्य पश्चिमके देशोंके साथ बहुत प्राचीन काल-से करते चले आ रहे थे। ईसा-पूर्व दसवीं शताब्दीतक इस व्यापारका पता चलता है[1]। भाग्यक्रमसे ईसाकी आरम्भिक कुछ शताब्दियोंमें उनका ह्रास होना आरम्भ हुआ और ईसाकी सातवीं शताब्दीके पहले ही उन्होंने अपना ऐतिहासिक महत्त्व खो दिया। इस्लामके आविर्भावके बहुत पूर्वसे ही दक्षिणी अरब या तो अबीसिनियाके अधीन रहा या फारस (ईरान) के बादशाहोंके अधीन। सन् ५७० ई० के लगभग फारसके सासानी वंशके बादशाह नौशेरवाँने अल-यमन (दक्षिणी अरब) पर कब्जा करनेके लिए

1. ऑगस्ट मूलर : डर इस्लाम इम मोर्गेन अन्ड अबेन्डलैण्ड (निकोल्सन द्वारा लिटररी हिस्ट्री आफ द अरब्स पृ० ४ पर उद्धृत)।

अपने आदमियोंको भेजा था। दक्षिण अरब अपना महत्त्व खो रहा था और उसके विपरीत उत्तरके घुमक्कड़ अरबोंका सितारा ईसाकी सातवीं शताब्दीके बाद चमक उठा और उनके प्रभावका विस्तार इस्लामके आविर्भावके साथ हुआ। इन घुमक्कड़ अरबोंने बाहरी प्रभावसे अपनेको अछूता रख अरबी जीवनकी तरहसे अरबी भाषाके प्राचीन रूपको भी बचाये रखा। कुरानकी भाषा उत्तरी अरबोंकी भाषा है। दक्षिणवालोंकी भाषाको मुसलमान "हिमियाराइट" कहते हैं। वर्तमान कालमें अरबी भाषाका नित्यके व्यवहारमें लानेवालोंकी संख्या लगभग चार करोड़ पचास लाख है। ईसाकी नवीं शताब्दीसे लेकर बारहवीं शताब्दीतक अरबी भाषामें दर्शन, चिकित्सा, भूगोल, ज्योतिष, ऐतिहासिक वृत्त और धार्मिक ग्रन्थोंकी बहुत ही अधिक रचना हुई।

उत्तरी अरबकी घुमक्कड़ जाति तथा वहाँकी भौगोलिक स्थितिके सम्बन्धमें कुछ और अधिक जानकारी कर लेना हमारे अध्ययनमें सहायक होगा। अल-हिजाज प्रान्त (उत्तरी अरब) में इस्लामकी उत्पत्ति हुई। वहाँकी भौगोलिक स्थितिने वहाँके निवासियोंके आचार-विचार, प्रकृति, संस्कार आदिपर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। अल-हिजाजमें कभी-कभी तीन-तीन, चार-चार वर्षोंतक वर्षाकी एक बूँद भी नहीं पड़ती और अल्पकालके लिए वर्षावाली आँधी आती है। मक्का और मदीनामें इस आँधीकी गति बड़ी तीव्र होती है और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि काबाके लिए भी खतरा उपस्थित हो जाता है। मरुभूमिवाला यह प्रान्त यहाँके निवासियोंको घुमक्कड़-जीवन बितानेको बाध्य करता है। जीवन-निर्वाहके लिए दूर-दूरके ओएसिसके सिवा उन्हें और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं मिलता इसलिए उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह जाना पड़ता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि अल-हिजाज प्रान्तके निवासियोंमें लगभग छः हिस्सोंमें पाँच हिस्सा घुमक्कड़ है। इसके सिवा उनके लिए दूसरा चारा नहीं। इन घुमक्कड़ोंका प्रधान भोजन खजूर और ऊँटका मांस है। उनका बराबरका साथी ऊँट है। उनके जीवनमें ऊँटका बहुत बड़ा स्थान है। ऊँट उनकी सवारीके काम-

में आता है। वे उसका दूध पीते हैं, मांस खाते हैं, चीजोंकी खरीद-बिक्रीमें विनिमयके रूपमें उसका व्यवहार करते हैं, वे दहेजमें दिये जाते हैं और उनकी संख्यासे किसीकी समृद्धिका अनुमान लगाते हैं। कुरानमें कहा गया है कि "ऊँट भगवान्‌की अनमोल देन है।" अरबोंके जीवनमें ऊँटका क्या स्थान रहा है इसका अन्दाज इसीसे लगाया जा सकता है कि अरबी भाषामें ऊँट सम्बन्धी लगभग एक हजार शब्दोंका प्रयोग मिलता है। इस दृष्टिसे ऊँटकी बराबरी केवल तलवार ही कर सकती है जिसके लिए भी अरबी भाषामें उसी प्रकारसे प्रचुर शब्दोंका व्यवहार है।

इस घुमक्कड़ जातिके जीवन, रहन-सहन आदिमें परिवर्तन नहीं हुआ है। कल्पनाकी उड़ान भरनेमें उसे रस नहीं मिलता। अध्यात्मवाद और रहस्यवाद उसे अनुप्राणित नहीं करते। इन घुमक्कड़ोंके जीवनमें इनका स्थान नहीं रहा है। अपने पूर्वजोंकी तरह वे आज भी मैदानोंकी जिन्दगी पसन्द करते हैं। आज भी ऊँटों और बकरियोंको चरानेमें उन्हें स्वाभाविक आनन्द मिलता है। भेड़, बकरी ऊँटका पालन उनकी दृष्टिमें मनुष्यके योग्य रोजगार हैं। वैसे शिकार खेलना, आरामसे जिन्दगी बितानेवाले पैसेवालोंका धन अपहरण कर लेना उन्हें कम पसन्द नहीं। अपने शिकारकी घातमें लगे रहना और मौका पाते ही उसे लूट लेना, मरुभूमिमें इन घुमक्कड़ोंके लिए सबसे अधिक मनके अनुकूल था। कृषि, उद्योग-धन्धा, व्यापार ये सब तो इज्जतमें बट्टा लगानेवाले हैं। अरबोंकी इस मनःस्थितिने इस्लामके प्रसारमें बहुत मदद की। अपने यहाँके अन्य कबीलों और जातियोंको लूटनेमें तो उन्हें आनन्द आता ही था लेकिन जब उसका क्षेत्र बढ़ा और उन्हें मालूम हुआ कि फारस तथा अन्य पूर्वी देशोंकी सम्पत्तिको भी हस्तगत करनेका सुयोग मिलेगा तब तो फिर क्या कहना! इस्लाम-धर्मके कुबूल करनेमें उनकी रही-सही हिचक भी दूर हो गयी[1]। अरबी कविताओंमें इस प्रकारसे लूट-खसोटमें रहनेवालोंकी बहा-

---

१. प्रिङ्गल केनेडी : अरेबियन सोसाइटी एट दी टाइम आफ मुहम्मद (प्र० १९२६ ई०), भूमिका पृ० १५।

दुरीकी बड़ी प्रशंसा की गई है। उमैय्या खलीफोंके शासनकालके प्रारम्भमें अल-कुतामी नामक कविने लिखा है—"हम लोगोंका काम दुश्मनोंपर, पड़ोसियोंपर और अगर भाईके सिवा दूसरा कोई न मिले तो अपने भाई-पर आक्रमण करना है[1]।" अरब व्यक्तिवादी होता है और अपने कबीलेके लोगोंतक वह अपनापनका अनुभव करता है उसके बाहर उसके लिए यह सम्भव नहीं हो पाता। एक घुमक्कड़ प्रार्थना करते हुए कहता है—"हे खुदावन्द, मेरे ऊपर और मुहम्मदके ऊपर रहम कर लेकिन हम लोगोंके अलावा और किसीपर नहीं[2]।" इससे अनुमान लगाना कठिन नहीं होगा कि कबीलेके प्रति उसकी कैसी भक्ति होती है। कबीलेके किसी आदमीका खून अगर दूसरे कबीलेवालेने कर दिया तो वह उसका बदला खूनसे लेता था और इस प्रकारसे दोनों कबीलोंकी शत्रुताका सूत्रपात हो जाता था। इसी प्रकारसे कबीलों तथा परिवारोंके झगड़े चलते रहते थे। एक अरबके लिए कबीलेसे बाहर कर दिया जाना सबसे बड़ा दण्ड समझा जाता था क्योंकि मरुभूमिमें अकेले घुमक्कड़-जीवन बिताना असम्भव है। उसके जैसा निस्सहाय और दुःखी शायद ही कोई व्यक्ति हो चूँकि उसका कोई भी सहायक नहीं रह जाता। लेकिन अरब अतिथि-वत्सल होता है। स्वयं कष्ट सहकर भी वह अतिथिकी सेवा करता है। असमय अतिथिको शरण न देना अथवा घरमें आये हुए अतिथिका किसी प्रकारसे अनिष्ट करना अरबकी दृष्टिमें अल्लाहके प्रति गुनाह करना है। धर्मके प्रति इन घुमक्कड़ों-की आस्था नहींके बराबर थी। इस्लामसे पूर्व अरबोंके जीवनमें धर्मका स्थान नाममात्रको था। जीवन-मृत्युके रहस्य, परमात्मा सम्बन्धी तर्क-

---

१. अबू तमाम : अशआर अल-हमासह (प्र० सन् १८२८ ई०) पृ० १७१ फिलिप के. हिट्टी द्वारा अपनी पुस्तक हिस्ट्री आफ द अरब्स (सन् १९४९ ई०) पृ० २५ पर उद्धृत।

२. अबू दाऊद : सुनन (कैरो, सन् १२८० ई०) खण्ड १, पृ० ८९ ; फिलिप के. हिट्टी द्वारा अपनी पुस्तक हिस्ट्री आफ दि अरब्स, पृ० २५ पर उद्धृत।

वितर्क, सृष्टिके रहस्य, धर्मके तत्त्वोंका सूक्ष्म विवेचन आदिमें उनका मन नहीं रमता था। इस प्रकारकी गुत्थियोंके सुलझानेमें वे अपनी शक्तिका अपव्यय नहीं करना चाहते थे। उनके सोचनेका ढंग सीधा-सादा था। अल्लाहमें किसी प्रकारसे विश्वास कर लिया करते थे। वह उनके लिए दूरकी वस्तु था। उसके प्रति उनकी भक्ति धुँधली-सी, अस्पष्ट थी। उनके लिए वही देवता ठीक था जो उन्हें तत्काल फल देनेवाला हो और जिससे वे दुःखमें सहायताकी प्रार्थना कर सकें। अल्लाहसे कहीं अधिक उन अरबोंका विश्वास अल्लाहकी तीन पुत्रियों—अल-लात, मुनाह और अल-उज्जा—में था जिन्हें वे आपत्ति-विपत्तिमें स्मरण करते और अपनी मनोकामना पूरी करनेके लिए उनसे प्रार्थना करते। इनके अलावे उनके और भी बहुत-से देवता थे और उनकी सहायता पानेकी आशासे वे उनकी पूजा करते थे। वैसे उपासना और पूजा उनके लिए बेकार वस्तुएँ थीं। इस्लामसे पूर्व अरबोंकी यही मनोवृत्ति थी।

इस्लाम धर्मकी बातोंका अक्षरशः वे पालना नहीं करना चाहते थे। इसका कारण केवल इतना ही नहीं था कि वे अपने पुराने देवताओं और रीति-रवाजोंको छोड़ना नहीं चाहते थे बल्कि वे इस्लाम-धर्मके नियम-कानूनोंको पाबन्दी, धार्मिकता, स्वर्ग-नरकके भय तथा आनन्द आदि बातोंको मानने या उनमें विश्वास करनेका कष्ट उठाना नहीं चाहते थे। मृत्युके बाद आनन्द-प्राप्तिकी बात उन्हें कपोल-कल्पित लगती। ये अरब उस परमात्मामें विश्वास करना नहीं चाहते थे जो यद्यपि उनके पुराने देवताओंसे अधिक शक्ति रखनेवाला तो था लेकिन इस्लाम धर्ममें विश्वास रखनेवालोंसे बहुत कुछ चाहता भी था। जिस प्रकारके संयमकी अपेक्षा उनसे की जाती थी उस प्रकारके संयमका जीवन बिताना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। उन्हें द्यूत, सुरा, सुन्दरी तथा अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सबसे अधिक प्रिय थी। धन कमाना, यश उपार्जन करना, अपने शत्रुओंसे बदला लेना उनके जीवनका उद्देश्य था। ये अरब मूर्तिपूजक थे। उनमें साहस, अतिथि-सत्कार जैसे गुण पूर्ण रूपमें विद्यमान थे। कबीलेका

प्रेम और उसके प्रति वफ़ादारी उनमें कूट-कूटकर भरी थी। स्वाभिमान की मात्रा उनमें कम नहीं थी। आत्म-सम्मानमें चोट लगना उनके लिए असह्य था। अपने प्रति, अपने सम्बन्धियोंके प्रति अथवा कबीलेके प्रति किसी प्रकारके अपमानको वे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उस समय वे खूँख्वार हो उठते और बड़ी निर्दयतासे उसका बदला लेते। कबीले-कबीलेके बीच तथा एक खानदानकी दूसरे खानदानके साथ पारस्परिक शत्रुता उस कालमें सर्वत्र दिखाई पड़ती थी। उसी समयमें इस्लामका उदय अरबमें हुआ। इस्लाम इस विरोधको दूर करनेमें बहुत दूरतक सफल हुआ फिर भी वह आज भी किसी-न-किसी रूपमें अरब देशोंमें वर्तमान है। कबीलेके प्रति तथा पुरखोंके प्रति अरबोंके मनोभावका पता अबू तालिबके कथनसे चल जाता है। अबू तालिब, हजरत मुहम्मदके चाचा थे और उन्होंने अभीतक इस्लाम-धर्मको कबूल नहीं किया था। हजरत मुहम्मद उनसे इस्लाम-धर्म कबूल कराना चाहते थे। हजरत मुहम्मदके बहुतसे विरोधी मक्कामें थे। यहाँतक कि उनकी जानका भी खतरा था। अबू तालिबने मुहम्मद साहबसे कहा—"ओ मुहम्मद, मैं अपने पूर्व-पुरुषोंके धर्म तथा उनकी मान्यताओंको नहीं छोड़ सकता लेकिन जबतक मैं जिन्दा हूँ तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता[1]।" अबू तालिबको अपने पूर्व-पुरुषोंके साथ किसी भी हालतमें रहना पसन्द था। अपने पूर्व-पुरुषोंके साथ नरकाग्निमें दग्ध होते रहनेमें वे ज्यादा सुख पायेंगे बनिस्बत इसके कि उनके धर्मको छोड़कर तथा इस्लाम धर्मका पालनकर वे स्वर्गका सुख भोगें। धर्मकी बात चाहे जो हो, लेकिन अपने भतीजेपर वे किसी प्रकारकी आँच नहीं आने देंगे।

इस्लाम धर्मने अरब जातिके जीवन, उनके संस्कार, उनकी धारणाओं तथा मान्यताओंको एक जबर्दस्त धक्का दिया। इस्लामके उदयके पूर्व अरब जाति जिस अवस्थामें थी उसमें बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया।

---

1. इब्न हिशाम : पृ० १६०; ब्राउन द्वारा लिटररी हिस्ट्री आफ पर्सिया, पृ० १९३ पर उद्धृत।

29054

लेकिन ऐसा समझना भी ठीक नहीं होगा कि समस्त अरब जातिने आग्रहपूर्वक इस्लाम धर्मको ग्रहण किया। हृदयसे उन्होंने उसे क़बूल नहीं किया। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि तत्त्व-चिन्तन और दूसरे जीवनकी कल्पना अरबोंको किसी प्रकारकी प्रेरणा नहीं देती थी इसलिए उन्हें इस्लाम धर्मके सिद्धान्तोंको माननेमें केवल आपत्ति ही नहीं थी बल्कि उन्होंने प्रारम्भमें उसका विरोध भी किया। वैसे उन्होंने इस्लाम धर्मको स्वीकार तो कर लिया लेकिन उन्हें वह तभीतक अच्छा मालूम होता जबतक कि उनका परिवार सुखी रहता, शरीरसे वे स्वस्थ रहते, उन्हें स्वस्थ बच्चे पैदा होते, उनके धनमें वृद्धि होती तथा उनके सगे-सम्बन्धी फूलते फलते रहते। इसके विपरीत अगर कभी ऐसा समय आता कि उन्हें इन बातोंमें कमी दिखलाई पड़ती तो उसके लिए वे इस्लामको दोषी ठहराते और उससे पिण्ड छुड़ा लेना चाहते[1]। समस्त जीवन परमात्मासे भय खाते रहना, स्वर्ग-नरककी चिन्तासे बराबर अपने आपको चिन्तित करना, रोजा-नमाजका नियमपूर्वक पालन करना, आदि सारी चीजें उनके मनको नहीं भाती थीं। पहले वे सब कुछ अपने कबीले और सगे-सम्बन्धियोंके स्वार्थको दृष्टिमें रखकर करते थे और अब उनसे यह कहा जाने लगा कि इस्लामपर ईमान लानेवाले सभीको अपना भाई समझो और उन्हें अपने बराबर समझो। अरबोंकी दृष्टिमें यह कुछ जमनेवाली बात नहीं मालूम होती थी। लेकिन इतना सब कुछ होनेपर भी इस्लामने उनके समस्त जीवनकी धारा बदल दी और इस्लामकी एकके बाद एक होनेवाली विजयने उन्हें इन सब बातोंकी ओर ध्यान देनेकी गुंजाइश ही नहीं रहने दी। फलस्वरूप इन विजयोंने अरबोंके भीतर एक नये उत्साह, एक नये प्राणका संचार किया।

इब्न हिशाम द्वारा लिखित हजरत मुहम्मदके सबसे पुराने जीवन-चरित्रसे इस बातका अनुमान किया जा सकता है कि इस्लामने अरबोंको किस प्रकारसे अनुप्राणित किया। प्रारम्भमें मक्कामें नये बने हुए मुसल-

---

1. लि. हि. ए. पृ० १८६-१८७।

मानोंपर बहुत ही ज्यादा अत्याचार किया गया। इस अत्याचारके कारण तथा प्राणोंके भयसे उनमेंसे बहुत भागकर अबीसिनिया चले गये। अबीसिनियाके शासक नेगूशने उन लोगोंसे पूछा कि वे कौन-सा धर्म मानते हैं जो उनके बाप-दादोंके धर्मसे भिन्न है तथा जो अन्य धर्मोंसे नहीं मिलता। अबू तालिबका पुत्र जाफर भी उस दलमें था। उसने जवाब दिया—"ऐ बादशाह, हमलोग वहशी थे, मूर्तिकी पूजा करते थे, मरे हुए पशुओंका गला-पचा मांस खाते थे, शर्मनाक कार्योंमें लगे रहते थे, जिनसे विवाह सम्बन्ध करना अनुचित है उनसे विवाह-सम्बन्ध करते थे, अपने पड़ोसियोंके साथ खराब बर्ताव करते थे, शक्तिशाली निर्बलोंको दबाते थे; हम लोगोंका जीवन इसी प्रकारसे बीत रहा था कि परमात्माने पैगम्बरको हम लोगोंके बीच भेजा। उनके वंश, उनकी सचाई और ईमानदारी तथा पवित्र जीवनसे हम लोग अवगत हैं। उन्होंने हम लोगोंको परमात्माके रास्तेपर लगाया जिससे हम उसके एकत्वपर ईमान लावें और उसकी आराधना करें तथा उन पत्थरके टुकड़ों और मूर्तियोंको दूर हटा दें जिनकी पूजा हम तथा हमारे पूर्वज करते चले आ रहे थे। पैगम्बरने हमें आदेश दिया कि हम सत्य बोलें, सत्य आचरण करें, अपने पड़ोसियों तथा जिनसे रक्तका लगाव है उनके साथ अनुचित सम्बन्ध तथा व्यवहार न करें, बुरे कामों तथा खून-खराबीसे बचें। फिर उन्होंने आदेश दिया कि हम दुराचारसे बचें तथा किसीको धोखा न दें और अनाथोंके धनका अपहरण न करें तथा सती-साध्वी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट न करें। और उन्होंने आदेश दिया कि उस एक परमात्माको छोड़कर दूसरेकी उपासना न करें, नमाज पढ़ें, रोजा रखें और जकात दें[1]।"

मुसलमान इतिहास-लेखकोंने इस्लामके प्रादुर्भावके पूर्वकालको 'जाहिलिया-काल' नाम दिया है। वैसे अन्य इतिहास-लेखक इस्लामके उदयके ठीक पूर्वके एक सौ वर्षको इस कालके अन्तर्गत मानते हैं। 'जाहिलिया-काल' से इतिहास-लेखकोंका मतलब यह था कि उस कालके लोग

१. लि. हि. प., पृ० १८६-८७ पर उद्धृत।

अन्धकार में थे, जाहिल (मूर्ख) थे। वास्तवमें 'जाहिलिया-काल' नाम देकर वे यह जताना चाहते थे कि उस कालमें न कुरान जैसा धर्म-ग्रन्थ था, न कोई पैगम्बर था और न एकेश्वरवाद था। दक्षिणी अरब अल-यमनकी सभ्यताको देखते हुए उस कालको 'जाहिलिया-काल' मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता। मुहम्मद साहबने इसीलिए इसपर इतना अधिक जोर दिया है कि वे पहलेके देवी-देवताओं तथा मूर्तियोंकी पूजा और पहले-के विश्वासोंको पूर्ण रूपसे विनष्ट कर देना चाहते थे लेकिन यह सम्भव नहीं हो पाता कि पुरानी सभी धारणाओंको बिल्कुल ही खतम कर दिया जाय। अपनी उतनी चेष्टाके बावजूद भी मुहम्मद साहब इस सम्बन्धमें पूर्ण रूपसे सफल नहीं हो पाये। इस्लाममें प्रचलित काबामें रखे हुए काले पत्थरकी पूजा अथवा आबे-जमजमकी कल्पना आदि इस्लाम-पूर्व है। 'अल्लाह' शब्दका प्रयोग बहुत पुराना है। इस्लामके बहुत पूर्वके शिला-लेखोंमें 'अल्लाह' शब्द पाया गया है। 'अल्लाह' मक्काका प्रधान देवता था। मुहम्मद साहबके पिताका ही नाम अब्द-अल्लाह अर्थात् अल्लाहका दास था। निकोल्सन[1]का अनुमान है कि सम्भवतः मूर्त्तिपूजकोंकी देवी 'अल-लात'के लिए इस्लामके प्रभावके कारण 'अल्लाह' शब्दका प्रयोग किया जाता है। अरबके पुराने साहित्यमें इस जीवनके बादके जीवनके बारेमें स्पष्ट रूपसे कहीं कुछ नहीं मिलता। परलोक, स्वर्ग-नरककी कल्पना इस्लाममें सम्भवतः बाहरसे आयी। एकेश्वरवादके सम्बन्धमें यह समझना भ्रान्तिपूर्ण होगा कि हजरत मुहम्मदने पहले-पहल इसका प्रचार किया। अरबोंमें ही ऐसे लोगोंका एक समुदाय था जिसे एकेश्वरवादी कहा जा सकता है यद्यपि एकेश्वरवादके सम्बन्धमें उनके विचार अस्पष्ट ही थे। फिर भी इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि लोगोंके मनमें उस धर्मके प्रति जिसे वे अभीतक मानते आये थे, वैसी आस्था नहीं रह गयी थी और उन्होंने अन्य ढंगसे भी सोचना आरम्भ कर दिया था। उस कालकी धार्मिक तथा सामाजिक स्थितके प्रति उनमें अब वैसी श्रद्धा नहीं रह

1. लि. हि. अ., पृ० १३७।

गयी थी जिसे लेकर वे पहलेकी नाईं सन्तुष्ट रह सकें। पुरातनके प्रति उनकी भक्ति जो पहले वर्त्तमान थी उसमें कमी आने लगी थी और नयी बातोंको ग्रहण करनेके लिए उनका मन तैयार हो रहा था।

अरबकी राजनीतिक अवस्थामें भी विश्रृंखला आ गयी थी। दक्षिणी अरब—अल-यमन—की समृद्धि, ऐश्वर्य और स्वतन्त्रताका अपहरण हो चुका था। धू-नवास हिमियारीट वंशका अन्तिम बादशाह था। इसीके समय यमनपर अबीसीनियावालोंका अधिकार हुआ। उसने यहूदियों और नैजरानके ईसाइयोंपर अत्याचार करना शुरू किया। कहा जाता है कि उसने हजारों ईसाइयोंको मरवा डाला। इसकी खबर जब अबीसीनियाके बादशाहको लगी तब उसने अपने धर्मवालोंपर हुए अत्याचारका बदला लेनेके लिए अल-यमनपर चढ़ाई की और धू-नवासको हरा दिया। धू-नवासने अपने घोड़ेको समुद्रमें डाल दिया और सदाके लिए समुद्रमें विलीन हो गया। अबीसिनियाका आधिपत्य अल-यमनपर सन् ५२५ ई० से लेकर सन् ५७५ ई० तक बना रहा।

ईसाकी छठवीं शताब्दीके प्रारम्भमें अरेबियाके पूर्व और पश्चिममें दो शक्तिशाली साम्राज्य—बाइजैन्टियम और फारस—थे। ईसाई धर्मके माननेवाले अरब एक ही धर्मके अनुयायी होनेके कारण बाइजैन्टाइनके प्रति सहानुभूति रखते थे और वक्तपर उनसे मदद पानेकी आशा रखते थे। इसी प्रकारसे मूर्तिपूजक तथा यहूदी धर्मको माननेवाले अरब फारसके पक्षपाती थे। इसीलिए अरेबियाका घसान राज्य स्वतन्त्र होनेपर भी बाइजैन्टाइनकी अधीनता स्वीकार करता था और पूर्वी हिस्से का हीराका राज्य फारसकी ओर मददके लिए देखा करता। अल-यमन वालोंने बाइजैन्टाइन तथा पर्शियाके सम्राट्से अबीसिनियाके विरुद्ध सहायताकी याचना की। लेकिन दोनोंने सहायता देना अस्वीकार कर दिया। यमनके दूतकी बुद्धिमानीके कारण पर्शियाके बादशाह नौशेरवाँने सहायता देनेकी बात मंजूर कर ली। पर्शियाकी सेनाने अबीसिनियाकी सेनाको हरा दिया। मुहम्मद साहबके समयमें बाधान नामक एक व्यक्ति पर्शियाके

बादशाहके प्रतिनिधि स्वरूप अल-यमनपर शासन कर रहा था। उसने सन् ६२८ ई० (हिजरी सन्के छठे वर्ष) में इस्लाम धर्म कबूल कर लिया।

अरेबियाके पूर्वी और पश्चिमी प्रान्तोंके विपरीत मध्यभागके मरुभूमि-वाले हिस्सेमें वास करनेवाले अरब अपने आपमें ही मस्त थे। वे बिल्कुल स्वतन्त्र थे और उन्हें इस बातकी चिन्ता नहीं थी कि बाहरके प्रान्तोंमें क्या हो रहा है। उनकी दुनिया उनके निजी सुख-दुःख, लड़ाई-झगड़ों-तक ही सीमित थी। वे बड़ी निश्चिन्तताके साथ घुमक्कड़ोंकी जिन्दगी बिताते थे। उनके आपसके लड़ाई-झगड़े, कबीलोंकी प्रतिस्पर्द्धा, लूट-मार आदि बिना बाधाके चलते रहते। इसी समयमें हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ जो केवल अरबकी ही नहीं बल्कि संसारके इतिहासकी एक महत्त्व-पूर्ण घटना थी। इस्लामके उदयके बादसे पतनोन्मुख अल-यमन—दक्षिण अरेबियाका महत्त्व कम होते-होते बिल्कुल समाप्त हो गया और उसका स्थान अल-हिजाजने ले लिया। उत्तरी अरेबियाका सितारा चमक उठा और अल-हिजाज सारी शक्तियोंका केन्द्र बन गया।

हजरत मुहम्मदके जीवन, इस्लामके उदय तथा प्रसारकी चर्चा करनेके पहले इस्लामसे पूर्व मक्का, मदीना और काबाके सम्बन्धमें कुछ जानकारी कर लेना आवश्यक है। बहुत काल पूर्वसे ही अरेबियाके उस हिस्से—अल-हिजाज—में व्यापारके दो केन्द्र बन चुके थे। एक मकोरबा जो मक्काके नामसे प्रसिद्ध है और दूसरा यथरीप्पा। यथरीप्पा इस्लामके प्रादुर्भावके बाद मदीनाके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इन स्थानोंका ऐतिहासिक वृत्त जानना कठिन है। जो कुछ भी उनके सम्बन्धमें आज मालूम है वह मुसलमान इतिहास-लेखकोंका लिखा हुआ है और उनमें ऐतिहासिक तथ्योंका रूप इस्लामी परम्परा और विश्वासोंसे रञ्जित है। काबा जो उपासनाका स्थल है वह मक्केमें बना हुआ है। वह घनाकार है और आकार-प्रकारमें छोटा ही है। वह बिना छतका साधारण-सा मकान था। इस्लामी परम्पराके अनुसार वह आदमका बनवाया हुआ है। प्रलयके बाद अब्राहम और ईस्माइलने इसका पुनर्निर्माण कराया।

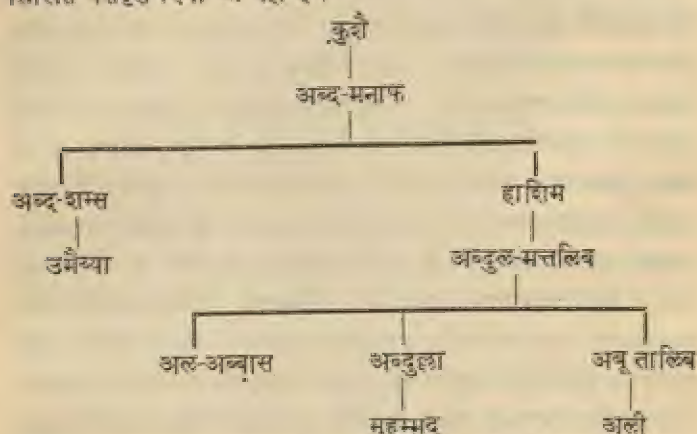
जब इसका निर्माण हो ही रहा था कि जिब्राइल सुप्रसिद्ध काला पत्थर लेकर आये और वह काबाके दक्षिण-पूर्वी कोनेपर जड़ दिया गया। जिब्राइलने उसकी पूजा करनेकी विधि भी बता दी। काबाके पुनर्निर्माणके सम्बन्धमें अल-अजराक़ीने अख़बार मक्का (पृ० १०४-७) में लिखा[1] है कि इस्लामके प्रादुर्भावके समय काबाका जो स्वरूप था उसे अल-वलीद इब्न अल-मुग़ीराने बनवाया था। ग्रीसके टूटे हुए जहाजोंके टुकड़ोंसे इसका पुनर्निर्माण हुआ था। ये जहाज लालसागरसे होकर अबीसिनिया जा रहे थे। लालसागरके किनारे ही ये टूट गये थे। इस काबाका प्रसिद्ध देवता हुबल था। हजरत मुहम्मद कुरैश-कबीलेके थे। इन्हीं कुरैशियोंके हाथमें काबाका प्रबन्ध तथा पूजा आदिकी व्यवस्था थी। हजरत मुहम्मदके लगभग एक सौ वर्ष पूर्वसे ही काबा कुरैशियोंके संरक्षणमें था और अपना कार्य वे बड़ी निपुणतासे करते थे। अरेबियाके विभिन्न स्थानोंसे लोग काबामें तीर्थ करने आते और इस प्रकारसे काबासे संलग्न रहनेके कारण दूर-दूरतक कुरैशियोंकी ख्याति थी। केवल इतना ही नहीं था कि काबाके कारण सर्वत्र लोग उन्हें जानते थे बल्कि उससे उन लोगोंका आर्थिक लाभ भी था। हजरत मुहम्मदके जन्मके एकसौ वर्ष पहलेसे ही उनके पूर्वजोंका अधिकार मक्कापर था। ख़ुज़ा वंशके हाथसे कुरैश वंशके एक व्यक्ति—क़ुसै—ने धोखा देकर मक्कापर अधिकार कर लिया था। क़ुसैने ख़ुज़ा वंशके अबू ग़ुबसानको शराब पिलाकर काबाकी चाभी हथिया ली थी। उसने कुरैशियोंको सङ्गठित किया। कुरैश-वंशवाले उसे बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। हजरत मुहम्मदका जन्म सन् ५७० या ५७१में क़ुसैके लगभग एक सौ वर्ष बाद हुआ।

हजरत मुहम्मदके जन्मके पहले ही उनके पिता अब्दुल्लाकी मृत्यु हो गयी और जब वे छः वर्षके हुए तब उनकी माँ आमिना मर गयी। अतएव उनकी देख-रेखका भार उनके पितामह अब्दुल-मत्तलिबके ऊपर पड़ा और जब उनकी भी मृत्यु हो गयी तब उनके चाचा अबू तालिब उनके

---

1. हि. अ., पृ० १००।

अभिभावक हुए। अबू-तालिबने बड़े स्नेह और आत्मीयताके साथ इस कार्यका सम्पादन किया। .कुरैसे मुहम्मदतककी वंशावलीकी हमारी जानकारी आगेके इतिहासको समझनेमें पूरी सहायक होगी अतएव निम्नलिखित वंशवृक्ष दिया जा रहा है।



इस बातका पता लगाना अब अत्यन्त कठिन है कि हजरत मुहम्मदकी माँने उन्हें कौन-सा नाम दिया था वैसे उनके कबीलेवाले उन्हें अल-अमीन कहते थे, लेकिन यह नाम न होकर सम्मान सूचक उपाधि है। जो हो, उनके बचपनकी बहुत-सी बातोंका पता नहीं चलता और जैसा कि स्वाभाविक है, बादमें चलकर उनके नामके साथ बहुत-सी किंवदन्तियाँ जुड़ गयी हैं। जन्मके बाद ही उनके बचपनके पाँच वर्ष मरुभूमिमें हलीमा नामक एक स्त्रीके संरक्षणमें बीते। उस कालकी एक विचित्र घटना कही जाती है जिसकी याद मुसल्मान बड़ी श्रद्धाके साथ करते हैं। कहा जाता है कि उस कालमें दो देवदूतोंने आकर मुहम्मदके हृदयको निकाल लिया था और उसे साफ कर दिया था। प्रारम्भका सबसे पहला[1]

१. मुसलमानोंका विश्वास है कि विशुद्ध आत्मा पापके कारण ही मनुष्य शरीरमें आता है और वही उसका पहला पाप है।

पाप जो काले रंगके मांसपिण्डके रूपमें उसमें था उसे उन लोगोंने निकाल दिया था। कहना बेकार है कि इस प्रकारकी कहानियाँ पैगम्बर-के महत्त्वको बढ़ानेके लिए गढ़ ली गयी हैं। इस प्रकारके उदाहरण प्रायः सभी धर्मोंमें पाये जाते हैं।

हजरत मुहम्मदके प्रारम्भिक जीवनके पचीस वर्ष कुछ इस प्रकारके बीते कि ऐतिहासिक तथ्यके रूपमें आज उन्हें मालूम करना कुछ कठिन है। पचीस वर्षकी उम्रमें उनकी शादी खदीजासे हुई जो सम्पत्तिवाली थी और उसका समाजमें सम्मान था। वह कुरैश वंशकी थी। शादीके समय उसकी उम्र चालीस वर्षकी थी। वह अत्यन्त ही भली और सुन्दर स्वभावकी थी। उसके जीवित रहते मुहम्मद साहब दूसरी किसी औरतकी बात सोच भी नहीं सकते थे। उसके साथ विवाह-सम्बन्ध होनेके कारण मुहम्मद साहब समाजमें एक प्रतिष्ठित व्यक्ति गिने जाने लगे। वे उसीके यहाँ नौकर थे और बड़ी ईमानदारीके साथ उन्होंने खदीजाके कारबारको सँभाला था। इस ईमानदारीकी बातको सुनकर ही खदीजाने मुहम्मदसे शादी की थी। इन दोनोंका २६ वर्षका विवाहित जीवन बड़े सुन्दर ढंगसे बीता। उसकी मृत्युके बाद भी मुहम्मद साहब खदीजाको भुला नहीं सके। इस विवाहके पहले मुहम्मद साहब निर्धन थे और भेड़ें चराया करते थे। अपने चाचा अबू तालिबके साथ व्यापारियोंके एक कारवाँके साथ वे सीरिया गये हुए थे। उस समय उनकी अवस्था बारह वर्षकी थी। खदीजाके साथ उनकी शादीने उनके जीवनको एक दूसरी दिशामें मोड़ दिया। अब वे आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र थे और उन्हें रोटीकी चिन्ता नहीं करनी थी। लेकिन उनके भीतर जो एक आध्यात्मिक शक्ति थी उसे अब प्रकाशमें आनेका अवसर मिला।

मक्कावालोंका विश्वास है कि वे अब्राहमके वंशज हैं और इस्माइल उनके पूर्व-पुरुष हैं। उनका कहना है कि अब्राहम एकेश्वरवादके माननेवाले थे। मुहम्मद साहबके बहुत पहलेसे ही 'हनीफ' कहे जानेवाले लोग मूर्तिपूजासे विरत होकर अब्राहमके धर्मकी खोजमें लगे हुए थे। उन

हनीफोंमें दो ऐसे नाम आते हैं जिनमें एक मुहम्मद साहबके मातृपक्षके सम्बन्धसे अपने थे और दूसरे खदीजाके चचेरे भाई थे। उमैय्या इब्न अबी-अल-साल्त तथा वरक़ा इब्न-नौफल, ये दोनों हनीफ मुहम्मद साहबके निकट सम्बन्धी होनेके कारण उनके लिए बहुत परिचित थे। इनका प्रभाव मुहम्मद साहबपर पड़ा हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। वरक़ा इब्न-नौफल जो खदीजाके चचेरे भाई कहे जाते हैं, दूसरी परम्पराओंके अनुसार ईसाई थे। जो हो, इससे इतना तो पता चल ही जाता है कि ऐसे लोग भी उस समय मक्कामें मौजूद थे जो परम्परागत धर्मोसे सन्तुष्ट नहीं थे और एकेश्वरवादके सम्बन्धमें जिज्ञासु थे। वैसे इन हनीफोंके किसी सङ्घटित दलका पता नहीं चलता। वे व्यक्तिगत रूपसे आध्यात्मिक चिन्तनमें लगे रहनेवाले प्राणी थे।

ऐसा कहा जाता है कि चालीसवें वर्षमें मुहम्मद साहब अलौकिक शक्तियोंके दर्शन करने लगे और उनके स्वप्न देखने लगे। वे एकान्तमें रहना चाहने लगे। प्रत्येक वर्ष वे अपने परिवारके साथ रमजानके महीनेमें एक महीनेके लिए मरुभूमिकी एक गुफामें जाकर एकान्त-सेवन करते और ध्यान करते[1]। हीरा पहाड़ इनके एकान्त-सेवनका स्थान था। हीरा पहाड़ मरुभूमिमें है और मक्कासे बहुत दूर नहीं है। इसी प्रकारसे जब वे एकान्त-सेवन कर रहे थे तब रमजानके अन्तमें उन्हें पहली बार इलहाम हुआ। उन्हें लगा जैसे कोई उनसे कह रहा है—'पढ़ो।' उन्होंने कहा—"मैं पढ़ना नहीं जानता।" दूसरी बार भी वैसी ही आवाज आयी। तीसरी बार फिर जब आवाज आयी 'पढ़ो' तब उन्होंने कहा "मैं क्या पढ़ूँ"। तब जो आवाज आयी वह क़ुरानकी सूरा ९६ : १–५ थी। कुछ दिनों बाद फिर उन्हें उसी प्रकारसे देववाणी सुनाई पड़ी। मुहम्मद साहब दोनों बार भयसे काँप उठे थे और अपनी बीबीसे अपने शरीरको ढँक देनेके लिए कहा था। उस कालके अरबोंमें प्रचलित विश्वासके अनुसार उनके मनमें यह बात बैठ गयी थी कि जिन्न और भूतका असर उनपर

---

१. क़ुरान : भूमिका, पृ० २।

हुआ है। लेकिन बादमें उन्होंने जिब्राइलको आकाश और पृथ्वीके बीच मनुष्य-रूपमें देखा, ऐसा मुसलमानोंका विश्वास है। जिब्राइलने मुहम्मदको बतलाया कि वे अल्लाहके पैगम्बर हैं और तब उनका भ्रम दूर हुआ और अपनी शक्तिका उन्हें परिचय हुआ। उन्होंने बतलाया कि परमात्मा एक और सर्वशक्तिमान् है तथा दुष्कर्म करनेवालोंको घोर नरकमें भेज देता है। नरकाग्निमें यातना सहने तथा दग्ध होनेके भयने अरबोंको बहुत अधिक प्रभावित किया और उससे त्राण पानेके लिए वे मुहम्मद साहबके बताये धर्मकी ओर झुके।

उनके धर्मको कबूल करनेवालोंमें सर्वप्रथम उनकी पत्नी खादीजा थी और दूसरे अली थे और तीसरा उनका नौकर जैद बिन हारीस था। अबू बक्रने भी उसी प्रारम्भिक कालमें इस्लाम धर्मको ग्रहण किया। वे कुरैशोंमें प्रभावशाली व्यक्ति थे। प्रारम्भमें मुहमद साहबने ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहा जिससे उन्हें दूसरोंके साथ सङ्घर्ष करना पड़े। चूँकि काबा एक बहुत बड़ा आमदनीका जरिया था इसलिए कुरैशोंकी उमैय्या शाखावालोंने मुहम्मदका जबर्दस्त विरोध किया। पहले तो कुरैशोंने उनका केवल मज़ाक ही उड़ाया लेकिन जब उन्होंने देखा कि इसका कुछ फल नहीं हो रहा है तो उन्होंने मुहम्मद तथा उनके अनुयायियोंपर तरह-तरहके ज़ुल्म करना प्रारम्भ कर दिया। मक्का छोड़कर बहुतोंने अबीसिनियामें शरण ली जहाँका ईसाई राजा नेगूश बहुत ही भला था। मुहम्मद साहबकी जानका खतरा था। खादीजा और अबू तालिबकी मृत्यु हो गयी। अब मुहम्मद और भी असहाय हो गये। उमर इब्नुल खत्ताबके मुसलमान हो जानेपर क़ुरैश और भी अधिक घबड़ा उठे और हरएक उपायसे मुहम्मदको मार डालनेकी फ़िक्रमें लगे। मुहम्मदने अपने दो सौ अनुयायियोंको यथरीब (अल-मदीना) में भाग जानेका आदेश दिया और स्वयं २४ सितम्बर[1], सन् ६२२ ई० को निकल भागे। मदीनेमें उनका खूब स्वागत हुआ और उनके बहुतसे

1. हि. अ., पृ० ११६।

सहायक हो गये। उनकी माँ मदीनेकी ही थीं। यही सुप्रसिद्ध हिजरा कहलाता है और यहाँसे अरबी इतिहासका जाहिलिया युग समाप्त होता है और मुस्लिम युगका प्रारम्भ होता है। सत्रह वर्षोंके बाद खलीफा उमरने उसी वर्ष (सन् ६२२ ई०) को प्रथम वर्ष मानकर हिजरी सन् चलाया। हजरत मुहम्मदने जिस दिन मक्का छोड़ा ठीक उसी दिनसे उमरने हिजरी सनका प्रारम्भ न मानकर उस सालके प्रथम चान्द्रमासके प्रथम दिनको माना। उस साल यह १७ जुलाईको पड़ा था।

जब तक मुहम्मद साहब मक्कामें रहे लोगोंको समझाने-बुझाने और अपने रास्तेपर लानेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगायी लेकिन हिजराके बाद जब वे मदीनेमें आये तब उनके जीवनमें राजनीति प्रमुख हो गयी। अब वे केवल धार्मिक नेता न रहकर राजनीतिक नेता भी बन गये। मक्कामें रहते हुए लोगोंको अपनी ओर लानेके लिए उन्होंने कुछ ऐसी बातें भी मान ली थीं कि जिनमें वहाँके लोगोंका विश्वास था। वैसे बादमें चलकर उन्होंने उनका प्रत्याख्यान भी किया। उनकी मक्का-कालीन सूराओं और मदीना-कालीन सूराओंको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दोनों स्थानोंमें उनके मनकी गति क्या थी। मक्कावाली सूराओंमें बराबर यह समझानेकी कोशिश की गयी है कि अल्लाहके सिवा और दूसरा कोई नहीं, मुहम्मद पैगम्बर हैं और कुरान नाजिल हुई है, कयामतके दिन सभीको अल्लाहके सामने खड़ा होना पड़ेगा और इस जिन्दगीमें जिसने जैसा किया है उसीके मुताबिक उसे फल मिलेगा, जो पुण्यात्मा हैं स्वर्गमें जायेंगे और जो पापी हैं वे नरकमें भेजे जायेंगे। मक्का-कालीन इन प्रारम्भिक सूराओंमें परमात्मा, धर्म आदि सम्बन्धी ही बातें हैं और मदीनेमें चूँकि मुहम्मद साहबको धर्म और राजनीति दोनोंको ही सँभालना था इसलिए उस कालकी सूराओंमें उनकी प्रतिच्छाया पायी जाती है। मदीनेमें चार प्रकारके लोग थे—मुहाजिरीन (जो मक्का छोड़कर भाग आये थे), अन्सार (मदीनानिवासी उनके सहायक), मुनाफिकीन (दिखावेके लिए इस्लामको माननेवाले) और यहूदी। तत्कालीन

अरेबियाके अन्य शहरोंकी नाईं मदीनेमें भी दो दल लड़ाई-झगड़े, आपसी कलहमें लगे हुए थे। अतएव मुहम्मद साहबका स्वागत करनेवाला एक बहुत बड़ा दल था। मक्काकी तरह उनका विरोध वहाँपर करनेका किसीको कोई भी कारण मौजूद नहीं था। मदीनेकी ऐसी अवस्था थी कि मुहम्मद साहबके लिए वहाँ सब कुछ अनुकूल ही पड़ा। मुहम्मद साहबके हाथमें शक्ति केन्द्रित होने लगी।

मदीनेकी अवस्थामें बहुत कुछ सुधार ले आ देनेके बाद मुहम्मद साहबकी दृष्टि मक्काकी ओर गयी। उनके अनुयायियोंने कुरैशोंके कारवाँको, जो अबू-सुफियानके नेतृत्वमें सीरियासे आ रहा था, घेर लिया। कुरैशोंकी मददके लिए मक्कासे बहुत लोग लड़नेके लिए आये और सन् ६२४ ई० के रमजान महीनेमें बादरकी लड़ाई हुई जो इस्लाम, अरब और संसारके इतिहासकी एक बहुत बड़ी घटना थी। पैगम्बरके तीनसौ साथियोंने एक हजार मक्कावालोंको बुरी तरहसे हरा दिया। इससे पैगम्बरकी शक्तिमें लोगोंका अगाध विश्वास हो गया। इसका अर्थ लोगोंने लगाया कि दैवीशक्ति मुहम्मदकी मदद कर रही थी। इस अन्ध विश्वासने और भी अधिक अरबोंको पैगम्बरकी ओर आकृष्ट किया। इस जीतका लोगोंपर ऐसा असर हुआ कि दूसरे वर्ष सन ६२५ ई० में मक्कावालोंने पैगम्बरको उहुदमें हरा दिया फिर भी पैगम्बरकी शक्तिमें लोगोंका विश्वास बना रहा। इसके बाद तो इस्लामकी विजय एक-पर-एक होती गयी और सम्पूर्ण अरेबिया पैगम्बरके अधीन हो गया। हजरत मुहम्मद धर्म और राजनीति दोनोंमें सर्वोच्च बने रहे और इस्लामी साम्राज्यका श्रीगणेश वहींसे हुआ। इसी मदीना-कालमें ही पैगम्बरने शुक्रवारको धार्मिक दिन माना। रमजानका एक महीनेका उपवास, अजाँ, काबाकी तीर्थ-यात्रा, किबला (मक्काकी ओर मुखकर नमाज पढ़ना) तथा काले पत्थरको चूमने आदिकी व्यवस्था पैगम्बरने दी। सन् ६३० ई० तक सम्पूर्ण मक्काने मुहम्मद साहबकी अधीनता स्वीकार कर ली और सन् ६३२ ई० की आठवीं जूनको अल्पकालीन बीमारीके बाद हजरत मुहम्मदकी मृत्यु हुई

और अबू बक्र प्रथम खलीफा हुए।

मुहम्मद साहबकी जीवन-सम्बन्धी बहुत-सी घटनाओंका प्रचार इस्लाम-के अनुयायियोंमें है। बहुत-सी घटनाएँ मन-गढ़न्त भी हैं और बहुत-सी अतिरञ्जित। उनके जीवन सम्बन्धी चमत्कारोंमें मिराजका एक बहुत बड़ा स्थान है। उसपर साधारणतः सभी मुसलमानोंका विश्वास है और विशेष रूपसे पर्शिया और टर्कीके रहस्यवादियों—सूफियोंका और भी अधिक। कहा जाता है कि मुहम्मद साहबने सातवें आसमानकी यात्रा इसी शरीरसे की थी। इसे मिराज कहते हैं। कहते हैं कि आसमानी यात्राके पहले वे काबासे यरुशलम लाये गये थे। यही कारण है कि मक्का और मदीना-के बाद मुसलमान यरुशलमको पवित्र मानते हैं। कहते हैं कि मुहम्मद साहबने वह यात्रा पंखवाले एक घोड़ेकी पीठपर की थी। उस घोड़ेका मुँह स्त्रीके मुख जैसा है और पूँछ मोरके जैसी। इसी प्रकारसे कुरानके सम्बन्धमें मुसलमानोंका विश्वास है कि वे अल्लाहके वचन हैं जिन्हें उसने इस पृथ्वी-पर पैगम्बर द्वारा भेजा है। ये वचन आविष्टावस्थामें मुहम्मद द्वारा उच्च-रित थे। इनके सम्बन्धमें इस्लामके अनुयायी किसी प्रकारका तर्क नहीं सुनते और अपने कार्योंका समर्थन वे कुरानकी आयतोंमें ढूँढ़ते हैं। हदीस और सुन्नाका स्थान भी मुसलमानोंके धार्मिक जीवनमें बहुत महत्त्व-पूर्ण है। हदीसोंका प्रचार मुहम्मद साहबके जीवित रहते ही हो गया था। यह एक चलन-सी हो गयी थी कि जब दो धार्मिक मुसलमान मिलते तो एक दूसरेसे समाचार पूछता और वह पैगम्बर सम्बन्धी किसी नयी घटना अथवा उनके कथनका जिक्र करता। उनकी मृत्युके बाद भी यह चीज बन्द नहीं हुई और हदीसोंका अर्थ केवल नये कथन अथवा घटनाएँ नहीं रह गया। इस्लामी साम्राज्यके विस्तारके साथ-साथ नयी परिस्थितियाँ सामने आती गयीं और उनके हलके लिए कुरानका सहारा ही काफी नहीं होता था इसलिए लोगोंने हदीसों और सुन्ना (मुहम्मद साहबके क्रिया-कलाप) का सहारा लेने लगे। बादमें चलकर नौबत यहाँतक पहुँची कि अपनी जरूरतोंके मुताबिक विभिन्न व्यक्ति और सम्प्रदाय हदीसोंकी सृष्टि

कर लिया करते थे। नोएल्दके[1] ने एक मुसलमानकी उक्तिका उल्लेख किया है कि धर्मात्मा कहे जानेवालोंने हदीसोंके मामलेमें जितना असत्यका सहारा लिया है उतना और किसी विषयमें नहीं। सन् ८७० ई० में बुखारीने[2] ६ लाख हदीसोंमेंसे केवल सात हजारको प्रामाणिक माना था!

हजरत मुहम्मदकी मृत्युके बाद नये इस्लामी राज्यके सामने जो सबसे विकट प्रश्न आया वह यह था कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो। सिवाय फातिमाके और कोई भी उनकी जीवित सन्तान नहीं थी। फातिमाकी शादी उनके चचेरे भाई अलीके साथ हुई थी। मुहम्मद साहबने किसीको अपना उत्तराधिकारी भी घोषित नहीं किया। वंशगत उत्तराधिकारकी बात अरबोंमें तबतक नहीं थी। कबीलेका प्रधान चुन लिया जाता था। उस समय कुरैश वंशके केवल तीन आदमी उसके लिए नजर आते थे। एक तो अबू बक्र थे जिनकी लड़की आयशा मुहम्मद साहबको ब्याही गयी थी और वे उसे बहुत प्यार करते थे। दूसरे उमर-बिन-अल-खत्ताब थे और तीसरे अली थे। अबू बक्र सबसे बड़े थे और उनके पक्षमें उमर-बिन-अल-खत्ताब और अबू-उबैद-इब्न-अल-जर्राह ये दो शक्तिशाली व्यक्ति थे। अबू बक्र ही प्रथम खलीफा चुने गये और उनके बाद उमर, उस्मान और अली खलीफा हुए। ये चारों मुहम्मद साहबके सन्निकट रह चुके थे और उनमें सादगी, धार्मिकता आदि थी इसीलिये ये चारों अलरशीदयून कहे जाते हैं। ये चारों मुहम्मद साहबके बताये पथ पर चलने वाले थे। ये लोग मुहम्मद साहबके साथ देनेवाले अनुयायियोंकी रायसे सभी काम किया करते थे। इनमें अलीको छोड़कर अन्य तीनों मदीनाको ही अपना मुख्य स्थान बनाकर सब कार्य करते रहे। अलीने इराकमें कूफाको अपनी राजधानी बनाया। इन चारोंका कार्यकाल सन् ६३२ ई० से लेकर सन् ६६१ ई० तक रहा जब कि अली कत्ल कर दिये गये।

---

१. लि. हि. अ., पृ० १४५।

२. वही, पृ० १४६।

अबू बक्रका कार्य-काल बहुत ही अल्प समय (सन् ६३२–६३४ ई०) तक रहा। मुहम्मद साहबकी मृत्युके बाद अरेबियाके अन्य भागोंमें जो लोग इस्लामसे विरत हो गये थे और झूठे पैगम्बरोंको मानने लगे थे उनके साथ लड़ाई करनेमें ही अबू बक्रका अधिक समय बीता। सम्पूर्ण अरेबिया को पहले काबूमें लाना ही उनके सामने सबसे मुख्य काम था। वे स्वयं बहुत सादा जीवन बितानेवाले और विनम्र थे लेकिन जहाँतक इस्लामका प्रश्न था, वे झुकना नहीं जानते थे। पैगम्बरमें वे पूरी आस्था रखनेवाले थे इसीलिए उन्हें 'अल-सिद्दीक' के नामसे पुकारते हैं। अरेबियामें उनके कालमें जो लड़ाइयाँ सम्पूर्ण अरबको इस्लामके झण्डेके नीचे लानेके लिए लड़ी गयीं उनका परिचालन करनेवाला खालिद इब्न-अल-वलीद था जिसे 'अल्लाहकी तलवार' कहते हैं। खालिदने तलवारके बलपर सम्पूर्ण अरेबियापर विजय प्राप्त की और अबू बक्रका अधिकार सर्वत्र स्थापित हो गया। मुसलमानी सेनाने सब जगह विजय प्राप्त की।

इन विजयोंने मुसलमानोंमें एक नया उत्साह भर दिया और सङ्गठित रूपसे लड़कर उन्होंने सम्पूर्ण अरेबियापर अधिकार किया था, उसका प्रयोग अब बाहर करनेकी बात भी उनके मनमें आने लगी। इस उत्साह-का समुचित प्रयोग उस कालके खलीफोंने किया। उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी-का काम किया कि कभी चैनसे न रहनेवाले लड़ाकू अरबोंको अन्य देशोंपर विजय प्राप्त करनेके लिए नियोजित किया। मुसलमानी फौजको अभूतपूर्व सफलता मिली। इस सफलताका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि मुहम्मद साहबकी मृत्युके बारह वर्षके अन्दर ही पर्शियन साम्राज्यको ध्वंसकर मुसलमानोंने अपने कब्जेमें कर लिया और दूसरी ओर सीरिया तथा मिस्रपर भी अधिकार जमाया। पर्शिया, इराक़, सीरिया और मिस्रपर विजय प्राप्त करनेका बहुत कुछ श्रेय खालिद इब्न-अल-वलीद तथा अम्र इब्न-अल-आसको है। मुसलमान ऐति-हासिकोंने इस बातपर अधिक जोर दिया है कि इन विजयोंके पीछे अल्लाहकी इच्छा थी तथा ये धार्मिक विजय थीं। वास्तवमें इन विजयोंका

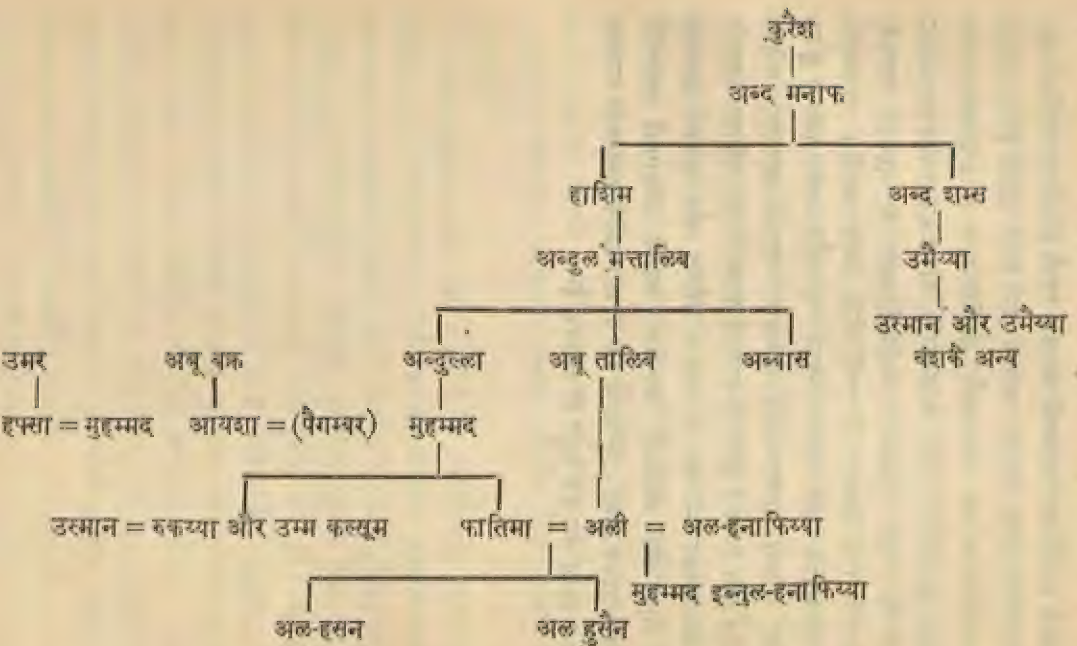
कारण केवल धार्मिक जोश ही नहीं था बल्कि आर्थिक कारण भी था। मरुभूमिके रहनेवाले अरबोंको इन विजयोंके साथ लूट-पाट करनेका भी पूरा अवसर मिलता था तथा खलीफाओंके लिए साम्राज्य विस्तारका मतलब अधिक समृद्धिशाली होना था। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि किसीमें भी यह धार्मिक जोश नहीं था। कुछ लोगोंमें यह भी जरूर ही रहा होगा। अरेबियासे बाहरके देशोंपर मुसलमानोंकी विजयका सिलसिला दूसरे खलीफा उमर बिन-अल-खत्ताब (सन् ६३४से सन् ६४४ ई०) के कालमें पूरे जोरका रहा और तीसरे खलीफा उस्मानके कार्यकालतक वह चलता रहा लेकिन उसमें उतनी तीव्रता नहीं रह गयी थी। एक देशसे दूसरे देशपर उनका आधिपत्य होता गया और वे और आगेकी ओर बढ़ते गये। अरबोंका साम्राज्य किसी सुचिन्तित पूर्व-योजनाका फल नहीं था बल्कि तत्कालीन परिस्थितियोंने उसे रूप दिया। अन्य देशोंको जीतनेके साथ-साथ उनपर शासन करनेका भार भी आता गया और उसके लिए अरबोंको साथ-साथ व्यवस्था करनी पड़ी। इसी प्रकारसे भिन्न-भिन्न देशोंपर आधिपत्यके कारण उनकी शक्ति भी बढ़ती जाती थी और उस शक्तिके हाथमें आ जानेपर और किसी अन्य देशको जीतनेमें उसका उपयोग करनेकी बात वे सोचते। इस प्रकारसे घटनाएँ और परिस्थितियाँ उनको आगे धकेलती जा रही थीं।

दूसरे खलीफा उमरके दस वर्षका काल बहुत ही महत्त्वका रहा। वे अदम्य उत्साहवाले बुद्धिमान व्यक्ति थे। इनके कालमें इस्लामकी विजय पराकाष्ठातक पहुँच गयी थी। बहुतसे देश जीत लिये गये और वे अरबी साम्राज्यका अङ्ग बन गये। उन्होंने नये इस्लामी साम्राज्यके शासनको सुदृढ़ बनाया और उसमें नियमितता ला दी। मुसलमान लेखकोंने उमरकी उच्छ्वसित प्रशंसा की है। वे बहुत ही सरल प्रकृतिके थे और बहुत थोड़े खर्चमें अपना काम चला लेते थे। शासन-कार्य सँभालनेमें वे अत्यन्त पटु थे। उन्होंने ही पहले पहल 'दीवान' (एक प्रकारका रजिस्टर) की व्यवस्था की जिसमें अरबोंके वंश, उनकी सामाजिक स्थिति

आदि दर्ज की गयी और उसीके अनुसार राजकोषसे उन्हें वृत्ति मिलती। उमरके कालमें सम्पूर्ण अरेबियाने इस्लाम धर्मको ग्रहण कर लिया और अन्य धर्मका कोई भी अनुयायी वहाँ नहीं रह गया। फौजके लिए अरबों की ही भर्ती होती। विजित देशोंमें इन अरबोंकी छावनियाँ थीं और उनका खर्च उन देशोंको देना पड़ता। इन छावनियोंमें दो प्रमुख थीं। बादमें चलकर इन दोनोंके स्थानपर दो शहर—बसरा और कुफा—बस गये। उनके सफल जीवनका अन्त एक पर्शियानिवासीके हाथों हुआ। वह ईसाई था और उमरका गुलाम था। उसका नाम फिरोज था। उमर मस्जिदमें नमाज पढ़नेवालोंके आगे थे उसी समय उसने जहरमें बुझाई हुई कटारसे उनकी हत्या कर डाली। तीसरी नवम्बर, सन् ६४४ ई० की यह घटना है। उमरकी इस हत्याने इस्लाममें जिस झगड़ेकी बुनियाद डाल दी वह इस्लामी-संसारके लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई। उसके बाद झगड़े, षड्यन्त्र, शासन-यन्त्रपर कब्जा करनेके लिए ख़ून-खराबी बहुत कालतक चलती रही। आज भी उसका अवशेष किसी-न-किसी रूपमें रह गया है।

तीसरे खलीफा उस्मान चुने गये। वे भी अलीसे बड़ा होनेके कारण खलीफा हुए। एक दल ऐसा भी था जो अलीको मुहम्मद साहबका वास्तविक उत्तराधिकारी मानता था। खलीफाके प्रश्नको लेकर बहुत ही अधिक ख़ून-खराबी हुई है। सम्भवतः इस्लाममें इसके जैसा और कोई प्रश्न नहीं रहा है जिसके लिए इतना ख़ून बहाया गया हो। उस्मानका काल सन् ६४४ ई० से लेकर सन् ६५६ ई० तकका है। उस्मान, कुरैशों-की उमैय्या शाखाके थे जिसने अन्ततक मुहम्मद साहबका विरोध किया था। उमैय्या शाखा प्रतिष्ठित थी और सम्पत्तिशाली थी। काबापर उसीका आधिपत्य था। अन्तमें जब कोई चारा नहीं रहा तो उन लोगोंने इस्लाम धर्मको ग्रहण कर लिया। उमैय्योंके विरोधी होनेपर भी उस्मान उन व्यक्तियोंमें थे जिन्होंने प्रारम्भमें इस्लाम कबूल कर लिया था। वे स्वयं धर्मात्मा थे और बड़े अच्छे स्वभावके थे। लेकिन वे कमजोर

थे। उनके हाथोंमें जब शासनकी बागडोर आयी तो उमैय्या लोगोंकी बन आयी। लेकिन इसके साथ ही अरबोंके पुराने ढंगके वंशोंके झगड़े, मक्का और मदीनेके बीचकी प्रतिस्पर्द्धा, मुहाजिरीन (जो प्रारम्भिक कालमें मुसलमान बन गये थे और अत्याचारके कारण मक्का छोड़कर मदीना चले गये थे) तथा अन्सारों (मदीनानिवासी जो मुहम्मद साहबके मददगार थे) का वैमनस्य ये सारी चीजें उभड़ आयीं। उस्मानको अपने वंशवालोंके प्रति विशेष रुझान था और इसी कारणसे कुरैश कबीलेके उमैय्या शाखावालोंने शासनके बहुतसे महत्त्वपूर्ण पदोंपर अधिकार जमा लिया। कुरैशोंकी हाशिमी शाखाके साथ उमैय्या शाखाके बीच मनोमालिन्य भी उग्र हो गया। उमैय्या और हाशिमी शाखाके बारे में थोड़ी और जानकारी कर लेना आगेके इतिहासको समझनेमें बहुत ही सहायक होगा। कुरैशोंकी इन दो शाखाओंके सम्बन्धको समझने में अगले पृष्ठका वंश-वृक्ष बहुत ही सहायक है—


कुरैश
अब्द मनाफ़
हाशिम
अब्द शम्स
अब्दुल मत्तालिब
उमैय्या
उस्मान और उमैय्या
वंशके अन्य
उमर
अबू बक्र
अब्दुल्ला
अबू तालिब
अब्बास
हफ्सा = मुहम्मद
आयशा = (पैगम्बर)
मुहम्मद
उस्मान = रुकय्या और उम्म कल्थुम
फातिमा = अली = अल-हनाफिय्या
मुहम्मद इब्नुल-हनाफिय्या
अल-हसन
अल हुसैन
शिया सम्प्रदायके इमाम तथा फातिमी खलीफे

ऊपरके वंश-वृक्ष[1]से हाशिम और उमैय्या शाखाओंके सम्बन्धमें हमारी जानकारीके साथ-साथ एक दो और बातोंका पता चलता है कि अबू बक्र और उमर, हजरत मुहम्मदके श्वसुर थे और उस्मान तथा अली उनके दामाद थे। अली उनके चचेरे भाई थे। बादमें चलकर उमैय्या और अब्बासी खलीफाओंकी हम चर्चा करेंगे तो यह वंश-वृक्ष बड़े कामका साबित होगा। जहाँतक तीसरे खलीफा उस्मानका प्रश्न है उन्होंने उमैय्या शाखावालोंके लिए ऐसी कमजोरी दिखलायी कि उस शाखाके ऐसे व्यक्ति भी उच्च पदपर आसीन हो गये जिनके बारेमें लोगोंको सन्देह था कि सच-मुचमें वे इस्लामपर ईमान लाते हैं या नहीं। मक्का और मदीनामें ऐसे अधिकारी तथा अन्य लोग थे जिनमें विलासिताकी मात्रा अत्यन्त बढ़ गयी थी और इससे धार्मिक मुसलमानोंको चोट पहुँचती थी। उस्मानके सगे-सम्बन्धियोंने जैसे उनके सम्पूर्ण शासनका भार ले लिया। उस्मानका सौतेला भाई अल-वलीद इब्न उक्बा, कूफाका शासक बना दिया गया। कहा जाता है कि एक बार वह शराब पीकर मस्जिदमें आया और गलत ढंगसे नमाज पढ़ चुकनेके बाद अन्य नमाज पढ़नेवालोंकी जमातसे पूछा कि इतना ही काफी है या वे लोग और कुछ अधिक सुनना चाहते हैं[2]। कहा जाता है कि उसने हजरत मुहम्मदके मुँहके ऊपर थूक दिया था[3]। उसके जैसे और भी कितने ऊँचे पदोंपर थे। लोगोंमें बहुत बड़ा असन्तोष फैल गया। उस्मानके समयमें ही सम्पूर्ण ईरान, अजरबैजान और आर्मिनियाका कुछ हिस्सा अरब साम्राज्यके अङ्ग बने, कुरानका प्रामाणिक रूप उन्होंने ही स्थिर किया, इसके अलावे व्यक्तिगत रूपसे वे धर्मात्मा और नेक स्वभावके थे, फिर भी उपर्युक्त कारणोंसे उनके विरुद्ध बलवा उठ खड़ा हुआ। अन्तमें अपने घरमें ही वे (१७ जून, सन् ६५६ ई०)

---

१. स्टैन्ली लेन-पूल, मुहम्मडन डायनेस्टीज़ (सन् १८९४ ई०), लि. हि. प., पृ० २१४ पर उद्धृत।

२. लि. हि. प., पृ० २१६।

३. हि. अ., पृ० १७६-१७७।

को मार डाले गये। अबू बक्रके पुत्र मुहम्मदने उनपर पहला वार किया। जिस समय हत्याकारी उनपर हमला कर रहे थे उस समय उनकी पत्नी नैला उन्हें बराबर बचानेकी कोशिश करती रही। इसी चेष्टामें उसकी उँगलियाँ कटकर अलग हो गयीं। सीरियावालोंको उभाड़नेके लिए चौथे खलीफा अलीके प्रतिद्वन्द्वी मुआवियाने उन कटी हुई उँगलियों तथा ख़ून-से भीगे हुए वस्त्रोंका प्रदर्शन किया था। उस्मानकी इस हत्याने जिस गृह-युद्ध और शत्रुताको जन्म दिया उसने इस्लामकी एकताकी नींव हिला दी। उमैय्योंने उस्मानकी हत्याके दोषका भागी अलीको भी बनाया। हत्यामें शामिल वे भले ही न हों लेकिन उस्मानको बचानेकी उन्होंने जरा भी चेष्टा नहीं की। खलीफाकी गद्दी पानेके लिये न-मालूम कितनी ख़ूनकी नदी बही!

अली २४ जून, सन् ६५६ ई० को चौथे खलीफा चुने गये। वे धर्मात्मा थे, अनेक गुणोंसे विभूषित थे, वीर थे लेकिन शासक होनेके गुण उनमें मौजूद नहीं थे। सम्पूर्ण इस्लामी दुनियाने उनके जीवित कालमें उन्हें खलीफा नहीं माना। उस्मानके विरोधमें लोगोंको उभाड़नेवालोंमें अलीके दो और साथी थे। उनमें एकका नाम तल्हा था और दूसरेका ज़ुबैर। अली जब खलीफा चुन लिये गये तब इन लोगोंको बड़ी निराशा हुई। उन दोनोंने अलीके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मुहम्मद साहबकी पत्नीने इन दोनोंका साथ दिया। बसराके पास लड़ाई हुई, जिसमें अलीके दोनों विरोधी मारे गये और आयशा पकड़ ली गयीं। अली ख़ून-खराबी नहीं होने देना चाहते थे। अपने शत्रुओं और विरोधियोंके लिए भी उनके मनमें किसी प्रकार की अवमानना की भावना नहीं रहती थी। अपने इसी गुणके कारण उन्होंने आयशाको बड़े सम्मानके साथ मदीना पहुँचवा दिया और अपने दोनों विरोधियोंको समुचित ढंगसे दफना दिया। सन् ६५६ ई० के जून महीनेके अन्तमें अली खलीफा चुने गये और यह लड़ाई ९ दिसम्बर, सन् ६५६ ई० को हुई। इस लड़ाईमें विजय प्राप्त करनेपर भी उन्हें चैन नहीं मिला। अपने प्रबल शत्रु

मुआवियासे भी उन्हें निबटना पड़ा। मुआविया इब्न-अबीसुफियान, खलीफा की ओरसे सीरियाका शासन करता था। उसने उस्मानके खूनका प्रतिशोध लेनेके लिए अलीके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा किया। पहलेके बहुतसे गवर्नरोंको तो अलीने बिना किसी कठिनाईके हटा दिया लेकिन मुआवियाने उनकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया; और इन दोनोंके बीच की लड़ाईने एक दूसरा रूप धारण किया। वास्तवमें उन दोनोंके बीच की लड़ाई खलीफाके पदके लिए थी। अलीने मदीना पहले ही छोड़ दिया था और इराकके कूफा शहरमें अपनी राजधानी बनायी थी। इराकमें उनके सहायक थे और सीरियामें उमैय्योंका दबदबा था। इराक और सीरिया की फौजें एक दूसरेके लिए सन्नद्ध थीं। मुआवियाके पक्षमें अम्र इब्नुल आस था जिसे मुआवियाने मिसका गवर्नर बनानेका वादा किया था। बहुत दिनोंतक दोनों पक्ष लड़ाईसे बचते रहे लेकिन यह स्थिति बहुत दिनों तक टाली नहीं जा सकी और कहते हैं कि पचास हजार इराकियों की फौज लेकर २६ जुलाई, सन् ६५७ ई० को अलीने सिफीनमें मुआवियापर चढ़ाई कर दी। अली प्रायः जीत चुके थे लेकिन इब्नुल आसने एक गहरी चाल चली जिसके कारण अलीकी जीत हारमें परिणत हो गयी। लड़ाई चल ही रही थी कि अकस्मात् भालोंपर कुरान की प्रतियाँ दिखाई पड़ीं। लड़ाई रुक गयी और उसका फैसला 'अल्लाहके शब्दों'पर छोड़ दिया गया। अलीने बहुत चेष्टा की कि उनके दलवाले इस धोखेमें न आवें लेकिन उनकी एक न चली और अपने पक्षके लोगोंकी बात उन्हें माननी पड़ी। अलीने अपनी इच्छाके विरुद्ध अबू-मूसा अल अशारीको पंच चुना और मुआवियाने इब्नुल आसको। इब्नुल आस राजनीतिके दाँवपेंचसे पूरा वाकिफ था और अबू मूसा धर्मपरायण व्यक्ति थे। इन दोनोंने मिलकर तय किया कि अली और मुआविया दोनोंमेंसे कोई भी खलीफा नहीं हो। इस निर्णयके कारण अलीकी ही क्षति हुई, क्योंकि वास्तवमें खलीफा तो वही थे और मुआविया केवल एक प्रान्तका गवर्नर। इस निर्णयके नाटकके दो वर्ष बाद मुआवियाने खलीफाके पदके

लिए अपना दावा पेश किया। अलीकी सबसे बड़ी क्षति यह हुई कि उनके सहायकोंका एक दल उनका परम विरोधी हो गया कि उन्होंने मुआवियाके साथ पंचायतकी बात क्यों स्वीकार की। मजेदार बात यह है कि इन्हीं लोगोंने अलीपर दबाव डालकर मुआवियाकी बात माननेके लिए बाध्य किया था। इन लोगोंके विरोधके कारण अलीको सीरियापर अधिकार करनेके मनसूबे त्याग देने पड़े। इनके ये विरोधी कट्टर धार्मिक थे और 'खारिजी' के नामसे प्रसिद्ध थे। इन 'खारिजियों' के साथ अलीको युद्ध करना पड़ा। यद्यपि वे बहुत बार हरा दिये गये लेकिन बारबार वे उठ खड़े होते। उनका यह ढङ्ग अब्बासी खलीफोंके समयतक चलता रहा। सन् ६६० ई० में अलीने मुआवियाके साथ सुलह कर ली। इसके कुछ ही दिनोंके बाद वे कूफामें मस्जिदकी ओर जा रहे थे, उसी समय अब्द-अल- रहमान इब्न-मुल्जम नामक एक खारिजीने उनकी हत्या कर दी। अलीकी मृत्युने जैसा असर पैदा किया वैसा उनके जीवित रहते नहीं हो सका। वे शिया सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता माने गये। मुहम्मद साहबके बाद अलीने ही अपनी मृत्युके बाद इस्लामी-दुनियाको अत्यधिक प्रभावित किया। वे शिया सम्प्रदायमें परमात्माके वली और प्रतिनिधि-स्वरूप गण्य हैं। बहुत ऐसे भी हैं जो उन्हें परमात्माका अवतार मानते हैं। अलीकी मृत्युके साथ खलीफाओंका एक युग समाप्त होता है और दूसरा युग प्रारम्भ होता है।

अलीतक जो चार खलीफा हुए वे चुनावके द्वारा नियुक्त हुए थे लेकिन अलीके बाद यह बात खतम हो गयी। समस्त खलीफा-युगको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है। प्रथम युग सन् ६३२ ई० से लेकर सन् ६६१ ई० तक समाप्त होता है। इसमें प्रथम खलीफा अबू बक्र हुए और इस युगके चौथे अन्तिम खलीफा अली थे। दूसरा युग उमैय्या खली-फोंका है। यह सन् ६६१ ई० से प्रारम्भ होता है जब मुआविया खलीफा बना और इसका अन्त सन् ७५० ई० में होता है जब अब्बासियोंने मारवान द्वितीयको हरा दिया। उमैय्या वंशके बारेमें हम देख चुके हैं कि वह मुहम्मद

साहबकी शाखामें नहीं पड़ता और उसमें इस्लाममें पूरा-पूरा ईमान लानेवालोंका अभाव था तथा उसने मुहम्मद साहबका विरोध किया और लाचार होकर अन्तमें इस्लामको कबूल किया। इन्हीं सब कारणोंसे मुसलमानोंकी यह धारणा है कि उमैय्या खलीफा केवल अपनी शक्तिसे शासक बने थे अतएव वे वैसे ही खलीफा मान लिये जाते हैं। सीरिया ही उनका प्रधान स्थान रहा और उन्होंने दमिश्कको अपनी राजधानी बनायी। तीसरा युग (सन् ७५० ई० से सन् १२५८ ई० तक) अब्बासी खलीफोंका युग है। अब्बासियोंकी राजधानी बगदादमें थी। इस युगका अन्त सन् १२५८ ई० की जनवरीमें होता है जब मंगोलोंने हूलागूके नेतृत्वमें बगदादपर कब्जा कर लिया। इनके अलावे शिया सम्प्रदायके फातिमी खलीफोंका मुख्य स्थान काहिरा था और उनका काल सन् ९०९ ई० से सन् ११७१ ई० तक है। स्पेनके कारडोवा स्थानमें अन्य उमैय्या खलीफोंका शासन (सन् ९२९ ई० से सन् १०३१ ई०) एक सौ दो वर्षोंतक रहा। इस्लामी दुनियाका आखिरी खलीफा युग कुस्तुनतुनियामें सन् १५१७ ई० से लेकर सन् १९२४ ई० तक था और सन् १९२४ ई०में खलीफा-पद ही खतम हो गया। प्रथमके चारों खलीफोंके बाद एक प्रकारसे चुनाव प्रणालीका अन्त ही हो गया जब मुआवियाने अपने बेटे यजीदको अपने बाद खलीफा मनोनीत किया।

साधारणतः मुसलमानोंमें और विशेष रूपसे धार्मिक प्रवृत्तिवाले मुसलमानों तथा सूफियोंमें हजरत मुहम्मदके बाद प्रथमके चार धर्म-परायण खलीफोंके प्रति बहुत बड़ा सम्मानका भाव है। उनका जीवन, हजरत मुहम्मदके जीवनके समान ही आदर्श माना जाता है। वे चारों सादा जीवन बितानेवाले निष्ठावान् व्यक्ति थे। सांसारिक सुखों और विलासमय जीवन उनके जीवनका आदर्श नहीं था। अबू बक्र बड़े ही विनयी और दयालु थे और पैगम्बरमें उनकी एकनिष्ठ भक्ति थी। दूसरे खलीफा उमरके बारेमें बहुत-सी आदर्शवादी कहानियाँ प्रचलित हैं और मुसलमान उनका नाम बड़े आदरसे लेते हैं। वे उनके जीवनको आदर्श खलीफाका

जीवन मानते हैं। तबारीके अनुसार वे आदर्श शासक थे और स्वयं अपनी प्रजाकी हालत देखना-सुनना चाहते थे। एक बार उन्होंने कहा था कि प्रजाकी हालत अपनी आँखों देखनेके लिए वे "सीरियाकी यात्रा करेंगे और दो महीने वहाँ रहेंगे, फिर मेसोपोटामिया जाकर दो महीने रहेंगे, दो महीने मिस्र, दो महीने बहराइन, दो महीने कूफा और दो महीने बसरामें रहेंगे और इस प्रकारसे सम्पूर्ण वर्ष शेष हो जायगा[1]।" वे सादा जीवन बितानेवाले थे। उनमें फिजूल खर्ची नहीं थी। अपनी भूलके प्रति वे बराबर सतर्क रहते। अपने प्रति वे कठोर थे। कर्तव्य पालनमें वे बिलकुल निर्भीक थे। कमजोरोंके प्रति सदय थे। इन सभी खलीफोंमें अलीका प्रभाव मुस्लिम-संसारमें सबसे अधिक है। शिया-सम्प्रदायने तो उन्हें मनुष्यकोटिसे उठाकर देवताकी कोटिमें रख दिया है।

अलीकी मृत्युके बाद उनके बड़े पुत्र अल-हसन खलीफा हुए लेकिन उनका बहुत समय हरमके भीतर बीता था इसलिए राजकाज सँभालना उनकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं था। इराक़वालोंने उन्हें खलीफा बनाया और मक्का, मदीनावालोंने यद्यपि इसमें बहुत अधिक उत्साह नहीं दिखाया फिर भी उन्होंने विरोध नहीं किया। वे अबू-सुफियानके पुत्र मुआवियाको हृदयसे नहीं स्वीकार करते थे क्योंकि जिस उमैय्या वंशके वे थे उसने अन्ततक मुहम्मद साहबका विरोध किया और दिलसे इस्लाम धर्मको कभी स्वीकार नहीं किया। चाहे जो हो, अल-हसनमें शासन करनेकी क्षमता नहीं थी और शासन-कार्यके बदले उनका बहुत समय अन्तःपुरके भीतर रंग-रलियोंमें बीत जाता। कहा जाता है कि अल-हसन-ने सौ शादियाँ कीं और तलाक़ दिये[2]। इस प्रकारसे एक ओर तो हसन-का जीवन विलासितामें बीतता था और दूसरी ओर जिन इराक़वालोंने उन्हें खलीफा बनाया था उन्होंने ही उनका साथ नहीं दिया अतएव मुआवियाकी शर्तें मानकर उन्होंने १० अगस्त, सन् ६६१ ई०को खलीफा-

१. लि. हि. अ., पृ० १८९।

२. हि. अ., पृ० १९०।

के पदका त्याग किया। मुआविया, उमैय्या वंशका प्रथम खलीफा हुआ, यद्यपि उस्मानके समयसे ही उमैय्योंका प्रभुत्व शासन-कालमें चला आ रहा था। मुआविया हसनको जीवनभर भरण-पोषणके लिए एक गहरी रकम पेन्शनके रूपमें देनेका वादा किये हुए था। बहुत दिनोंतक हसन इस पेन्शनको नहीं भोग सके। उन्हें जहर देकर मार डाला गया। किसीका कहना है कि हरमके किसी षड्यन्त्र[1]के कारण उन्हें जहर दिया गया तो किसीका कहना है कि मुआवियाके पुत्र यजीदके इशारेपर ऐसा किया गया।

मुआवियाका सबसे बड़ा सहायक जियाद इब्न अबीहि था। ऐसा कहा जाता है कि जियाद, मुआवियाका सौतेला भाई था। मुआवियाने उसे बसराका शासक बनाया। वह क्रूर प्रकृतिका निर्दय शासक था। मुआवियाने अपनी शक्ति बढ़ानेके लिए इस तरहके बहुतसे लोगोंको अपने पक्षमें कर लिया था। उसने अपने पुत्र यजीदको अपना उत्तराधिकारी चुना। अभीतक चुनावके द्वारा खलीफाकी नियुक्ति होती थी उसका मुआवियाने अन्त कर दिया। यजीद एक खानाबदोश मरुभूमिकी रहनेवाली स्त्री मैसूनका पुत्र था। खलीफा होनेके पहले ही मुआवियाने उससे शादी की थी। यजीदपर अपनी माँका अधिक प्रभाव पड़ा था। शराब तथा जीवनके अन्य विलासमय साधनोंको उसने अपने चारों ओर जुटा रखा था। धर्मके मामलेमें उसे किसी प्रकारका प्रतिबन्ध पसन्द नहीं था। वह बिल्कुल स्वतन्त्र प्रकृतिका व्यक्ति था। उसके जीवनकी दो घटनाओंने उसे बराबरके लिए समस्त इस्लामी दुनियामें घृणाका पात्र बना दिया है। एक तो कर्बलाके मैदानमें चौथे खलीफा अलीके दूसरे पुत्र अल-हुसैन तथा उसके दलवालोंका निर्दयता पूर्वक कत्लेआम और दूसरा काबाके ऊपर चढ़ाई और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देना। कर्बलाकी दुःखद घटनाके लिए जिम्मेवार व्यक्तियोंमें

---

१. वही, पृ० १९० ।
२. अ. हि. सा., पृ० ७१ ।

तीन और नाम आते हैं—इब्न जियाद, शिम्र, अम्र इब्न शाद। वे तीनों मुख्तारके हाथों (सन् ६८६ ई० में) मारे गये। मुख्तारने शिया सम्प्रदाय वालोंको लेकर हुसैनके ख़ूनका बदला लेनेके लिए आन्दोलन चलाया था।

इस काल (जून, सन् ६८८ ई०) तक आते-आते इस्लामी-दुनियाँमें वैमनस्य इस प्रकार बढ़ गया कि इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि मक्कामें हज करने जानेवालोंके धार्मिक कृत्योंका सम्पादन अलग-अलग चार परस्पर-विरोधी व्यक्तियोंके नेतृत्वमें हुआ; उमैय्या वंशका खलीफा अब्दुल मलिक, अलीका पुत्र इब्नुल हनाफिया, मक्का और मदीनामें (सन् ६८३ ई० से सन् ६९२ ई० तक) बगावत करके अपनेको खलीफा घोषित करनेवाला अब्दुल्ला इब्न ज़ुबैर तथा खारिजियोंका नेता नज़्द। उमैय्या वंशके हाथमें खलीफा पदका रहना धीरे-धीरे असम्भव होता जा रहा था। उसके चार परम विरोधी थे—धार्मिक प्रकृतिवाले असहाब (मुहम्मद साहबके साथ रहनेवाले) तथा अन्सार (मदीनामें मुहम्मद साहबके सहायक)। इन लोगोंके लिए उमैय्या शासकोंके अधार्मिक कृत्योंका बर्दाश्त करना कठिन हो गया था। दूसरे शिया सम्प्रदायवाले थे। कर्बलाकी घटनाके बादसे उन्होंने और अधिक जोर बाँधा। तीसरे खारिजी थे जिनमें कुछ कट्टरताके साथ इस्लामके सिद्धान्तोंके पालनपर जोर देनेवाले थे। इनके दलमें ऐसे लोग भी शामिल थे जो लूट-पाट किया करते थे और अत्यन्त क्रूर थे। चौथा विरोधी दल उन मुसलमानोंका था जो अरब जातिके नहीं थे और जिनके साथ शासकोंका व्यवहार अच्छा नहीं था। अरबोंके साथ उन्हें समानता नहीं दी जाती थी और वे विजित जातिके समझे जाते थे। ये 'मवाली' कहे जाते थे। इनमें बहुत ही अधिक असन्तोषकी भावना थी। अरब इन्हें गुलामसे थोड़ा ऊपर समझते थे। इस्लाम-धर्म कबूल करनेपर भी उनके शोषणका अन्त नहीं हुआ। उनपर तरह-तरहके अत्याचार किये जाने लगे और अधिकसे अधिक उनसे टैक्स वसूल किया जाने लगा। हज्जाज इब्न

यूसुफका अत्याचार सीमा पार कर गया था। वह उन मुसल्मानोंसे जो अरब जातिके नहीं थे, जजिया वसूल करता[1]। हज्जाज, उमैय्या खलीफा अब्दुल मलिकका (सन् ६८५ ई० से सन् ७०५ ई०) दाहिना हाथ था। उसने ही मक्कापर घेरा डाला था और उसे नष्ट-भ्रष्ट किया था। उमैय्या शासकोंके समयमें जितनी उन्नति अब्दुल मलिकके कालमें हुई उतनी पहले कभी नहीं हुई थी लेकिन उमैय्या शासकोंमें सबसे अधिक धर्म-परायण और निःस्वार्थ उमर इब्न अब्दुल अज़ीज़ (सन् ७१७ ई० से सन् ७२० ई०) था। उसने बराबर धर्मकी राहपर चलनेकी चेष्टा की। परलोककी चिन्ता उसके मनमें बराबर रहती। सांसारिक सुखोंके लिए वह कोई काम नहीं करना चाहता था। वैसे उससे उसे आर्थिक हानि हुई। अली (चौथे खलीफा) को मस्जिदोंमें शुक्रवारको इकट्ठा होकर गाली देनेकी एक प्रथा-सी चली आ रही थी, उसे उसने बन्द कर दिया। इससे शिया-सम्प्रदायवालोंमें उसके लिए एक आदरका भाव है। उमरके प्रति मुसल्मानोंमें कितना श्रद्धाका भाव है इसे इसी बातसे समझा जा सकता है कि उसका नाम उमर बिन-खत्ताब (तृतीय खलीफा) के साथ स्मरण किया जाता है। उमरकी मृत्यु उसी साल हुई जिस साल इस्लाम-के गौरवपूर्ण प्रथम सौ वर्ष पूरे होते थे। उस समय मुसल्मानोंमें बहुत बड़ा असन्तोष फैला हुआ था और आपसके झगड़े और मतभेद बहुत ही अधिक बढ़ गये थे। लोगोंके मनमें जैसे एक विश्वास घर किये हुए था कि एक बहुत बड़ी कोई घटना घटने वाली है।

उमैय्योंके पतनके तीन कारण वान [2]व्लोटनने बतलाये हैं। विदेशी शासकोंके प्रति इस्लामी साम्राज्यकी विजित जातियोंमें अत्यधिक घृणा थी और उनका विरोध बहुत ही जबर्दस्त था। दूसरा कारण शिया-सम्प्रदायवालोंका आन्दोलन था। शिया-सम्प्रदायवाले वैसे तो अली और मुआवियाके पारस्परिक संघर्षके समयसे ही उमैय्योंके खिलाफ थे लेकिन

१. लि. हि. प., पृ० २३४।
२. वही, पृ० २३२।

कर्बलाकी घटनाके बाद जिसमें हुसैनको निर्दयतापूर्वक मृत्युके घाट उतारा गया था, उनका नारा ही हो गया था कि 'हुसैनके खूनका बदला लो।' शिया सम्प्रदायवालोंने उमैय्योंके विरुद्ध बहुत ही अधिक प्रचार किया जिसका फायदा बादमें चलकर अब्बासियोंने उठाया। तीसरा कारण यह था कि शासकोंके अधार्मिक कृत्यों, विलासिता तथा अत्याचारसे इस्लामके अनुयायी ऊब उठे थे। उनके मनमें एक धारणा-सी बन गयी थी कि हिजरी सन्‌के प्रथम सौ वर्षोंके बीतते-न-बीतते उनका उद्धारकर्त्ता कोई मसीहा आयेगा। मुस्लिम जनताका विश्वास मसीहामें इतना अधिक था कि इसने राजनैतिक और धार्मिक इतिहासकी दिशा निर्धारित करनेमें बहुत बड़ा असर डाला। उस कालमें लोग तरह-तरहकी भविष्यवाणियोंके शिकार थे। सब तरफ एक विशृंखला फैली हुई थी। मुहम्मद साहबके कथनोंसे लोग अपनी अपनी बातोंका समर्थन कर रहे थे कि एक बहुत बड़े विध्वंसके बाद एक नया युग आयेगा। उमैय्योंके शासनके अन्तिम दिनोंमें यही अवस्था थी। उमैय्योंके शासनके अन्तके साथ-ही-साथ फारसवालोंका प्रभाव साहित्य, राजनीति आदिके क्षेत्रमें बहुत व्यापक हो गया। अरबोंका प्रभुत्व इन सब क्षेत्रोंमें एक प्रकारसे समाप्त हो गया।

अब्बासी वंशवाले उमैय्योंकी अपेक्षा हजरत मुहम्मदके वंशके अधिक सन्निकट थे। अब्बासियोंके पूर्वज अब्बास, मुहम्मद साहबके चाचा थे। मुहम्मद साहबके पिता अब्दुल्ला, अलीके पिता अबू तालिब और अब्बास तीनों भाई थे और अब्द अल-मत्तालिबके पुत्र थे। शिया-सम्प्रदायवाले यद्यपि अलीके वंशजोंको ही असली खलीफा मानते थे फिर भी उनकी दृष्टिमें उमैय्योंकी अपेक्षा अब्बासी अधिक निकटके मालूम होते थे अतएव उन्होंने उमैय्योंके विरुद्ध अब्बासियोंको मदद दी। अब्बासी बड़े ही बुद्धिमान थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितिका इस प्रकार-से उपयोग किया कि शासनसूत्र सहज ही उनके हाथोंमें आ गया। अब्बासियोंने अपने रहनेके लिए एक छोटेसे स्थान, हुमैमाको चुना।

हुमैमाकी स्थिति कुछ इस प्रकारकी थी कि सीरियासे मक्का हज करने जानेवालोंके रास्तेपर यह पड़ता था अतएव इस्लामी दुनियाकी खबरोंसे वे बराबर अवगत रहते। वहींसे उन्होंने अपना प्रचार बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ करना शुरू किया। उन्होंने यह अच्छी तरहसे समझ लिया था कि खुरासानसे उन्हें पूरी मदद मिलेगी। दीनावरीसे यह पता चलता है कि यह प्रचार कितने सुन्दर ढङ्गसे चल रहा था। जब शिया लोगोंने अब्बास-के वंशज मुहम्मद बिन अलीके पास अपने प्रतिनिधियोंको भेजा कि वे लोग उमैय्योंके विरुद्ध उनकी सहायता करेंगे तो अलीने कहा, जिसकी हम लोगोंको आशा है और जो हम चाहते हैं उसके लिए यह उपयुक्त समय है क्योंकि हिजरी सन्के सौ वर्ष पूरे हो गये[1] हैं। अब्बासियोंके प्रचारक चुपचाप अपना काम करते जाते थे और उमैय्योंके विरुद्ध वातावरण तैयार करते जाते थे।

खुरासान फ़ारसका एक अंग था। फ़ारसके रहनेवाले उमैय्योंके अत्याचारसे तंग आ गये थे और खुरासानके रहनेवाले अरब भी प्रायः फारसी सभ्यताके रंगमें रंग गये थे। फारसवाले उमैय्योंके विरुद्ध किसीका भी साथ देनेके लिए तैयार थे। कूफ़ासे अब्बासियोंके लिए काम करनेवाले सौदागरोंके वेशमें खुरासानके गाँव-गाँवमें जाकर प्रचार करते रहे। उन्होंने अपना प्रचार इस ढंगसे करना शुरू किया कि शिया सम्प्रदायवालोंको भी उससे पूरा सन्तोष रहा। उनके प्रचारका तरीक़ा बराबर यही रहा कि वे शासन-सूत्र पैग़म्बरके वंशवालोंके हाथमें देना चाहते हैं। अली और अब्बास ये दोनों ही हाशिमके वंशज थे, इसलिए वे अब्बास-का नाम न लेकर हाशिमका ही नाम लेते थे जिसमें अलीके अनुयायी शिया-सम्प्रदायवालोंको किसी प्रकारका सन्देह न हो। उनका प्रभाव खुरासानमें खूब बढ़ गया। उमैय्या वंशवालोंकी मदद करनेवाले अरबों-का पुराना झगड़ा नये सिरेसे उभड़ पड़ा। दक्षिण और उत्तरके अरब जहाँ-जहाँ भी थे, आपसमें लड़ पड़े। इन सब कारणोंसे उमैय्या

1. लि. हि. प., पृ० २३६।

वंशकी रीढ़ टूट गयी। अब्बासियोंका सबसे बड़ा सहायक अबू मुस्लिम था। वह अरब जातिका नहीं था। वह बहुत ही बड़ा साहसी था। उसने ९ जून, सन् ७४७ को अब्बासियोंका काले रङ्गका झण्डा मर्वमें फहरा दिया। इसके बादसे उमैय्योंके उजले रङ्गका झण्डा धीरे-धीरे लुप्त होने लगा और अन्तमें बिल्कुल ही लुप्त हो गया। उमैय्या वंशका अन्तिम खलीफा मारवाँ बैबिलोनियामें जाब नदीके किनारे सन् ७५० ई० की जनवरीमें बुरी तरहसे हार गया। इसके पहले ही ३० अक्तूबर, सन् ७४९ ई० को अबुल अब्बास, अब्बासी वंशका प्रथम खलीफा घोषित किया गया। उसने उमैय्या वंशका नाश कर दिया। वे लोग भी मार डाले गये जिनकी रक्षाका वचन अब्बासियोंने दिया था[१]। अब्दुल्ला जो अब्बासियोंका सेनापति था उसने अपने जानते उमैय्या-वंश वालोंके नाशमें कोई कोर-कसर नहीं रखी। उसकी अमानुषिकताकी कहानी मुसलमान इतिहास लेखकोंने लिखी है। निम्नलिखित घटनाका वर्णन याकूबी, मसूदी, फख्री आदि सभीमें मिलता है। २५ जून, सन् ७५० ई० को अब्दुल्लाने उनमेंसे अस्सीको भोजके लिए निमन्त्रित किया और भोजके समय ही उन सबोंको काट डाला। मृतकों तथा अर्द्ध-मृतकों-पर उन लोगोंने खाल ओढ़ा दी और उनकी दर्दनाक कराहके बीच उनका भोज चलता रहा[२]। इसी प्रकारसे सभी जगह अब्बासियोंने उमैय्या वंशवालोंको ढूँढ़ ढूँढ़कर निर्दयतापूर्वक मारा। उमैय्या वंशका अब्दुल रहमान किसी प्रकारसे भाग निकला और उसने स्पेनमें उमैय्या वंशकी प्रतिष्ठा की।

अब्बासियोंके शासनकालमें ईरानवालोंका प्रभुत्व बढ़ गया। कला, साहित्य आदि सभी क्षेत्रोंमें ईरानी प्रभावने काम करना शुरू किया। शासनमें भी उनका प्रमुख हाथ हो गया। महत्त्वके बहुतसे पदपर ईरा-नियोंकी नियुक्ति हुई। अभीतक अरबोंका जो महत्त्व इस्लामी दुनियामें

१. लि. हि. अ., पृ० २५३।
२. हि. अ., पृ० २८५।

था वह खतम हो गया। अब अरबों और अरब-भिन्न जातियोंमें वैसा विभेद नहीं रह गया। उनके आपसी संसर्ग घनिष्ठ होने लगे। अब्बासी-कालमें साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदिकी अत्यधिक उन्नति हुई।

अब्बासी खलीफोंका युग पहलेके दोनों खलीफा-युगोंसे कई बातोंमें भिन्न है। अब्बासियोंका युग प्रायः पाँच सौ वर्षका है। पहलेके दोनों युगोंमें अरबोंकी ही प्रधानता थी और उन दोनों युगोंको अरबी साम्राज्यवादका काल कह सकते हैं। उन दोनों युगोंमें खलीफा समस्त इस्लामी जगत्‌का शासक था। अब्बासी युगमें ये दोनों बातें खतम हो गयीं। अब्बासियोंके शासनको स्पेनवालोंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। अरबोंके बदले ईरानियों और बादमें चलकर तुर्कोंका प्रभुत्व शासनपर प्रतिष्ठित हो गया। अरबोंमें वह पहलेका अक्खड़पन नहीं रह गया था। अरब जातिवाले जहाँ ईरानियोंको तुच्छ और गुलाम समझते थे वहाँ इस कालमें आकर बात बिल्कुल उल्टी हो गयी। यहाँतक कि खलीफा अबू जाफर अल-मन्सूरके समयमें खलीफाके दरवाजेपर भीतर जानेके लिए अरब इन्तज़ारी करते रहते फिर भी सफल नहीं हो पाते वहाँ खुरासानवाले स्वतन्त्रतापूर्वक भीतर आते-जाते रहते और अरबोंकी हँसी उड़ाते[1]। इस कालमें 'शुऊबिय्यों' का ऐसा दल भी था जो इस बातपर जोर देता था कि सभी मुसलमान बराबर हैं, केवल इतना ही नहीं, वे अरबोंको कई जातियोंसे हीन भी मानते थे[2]। अब्बासियोंके शासनकालके प्रारम्भिक पचास वर्षोंमें तो किसी प्रकारसे अरबों और ईरानियोंकी निभ गयी लेकिन बादमें यह बात नहीं रह सकी। दोनों जातियोंकी प्रकृति एक दूसरीसे बिल्कुल भिन्न है अतएव बहुत बादमें चलकर धर्मकी समानता हो जानेपर भी वे एक नहीं रह सकीं। यह बात हारूँ अल-रशीदके दो पुत्रोंके झगड़ेमें और स्पष्ट हो गयी जब कि ईरानियोंने मामूनका पक्ष लिया और अरबोंने अमीन का। फिर भी दोनों एक दूसरेसे धीरे-धीरे ही अलग

१. गोल्ड ज़िहर, लि. हि. प. पृ० २६५ पर उद्धृत।
२. लि. हि. प., पृ० २६५।

हुए और उस समय जब उनका अलगाव पूरा हो गया दोनोंमें इस्लामी संस्कृतिका प्रभाव पूरा-पूरा पड़ चुका था।

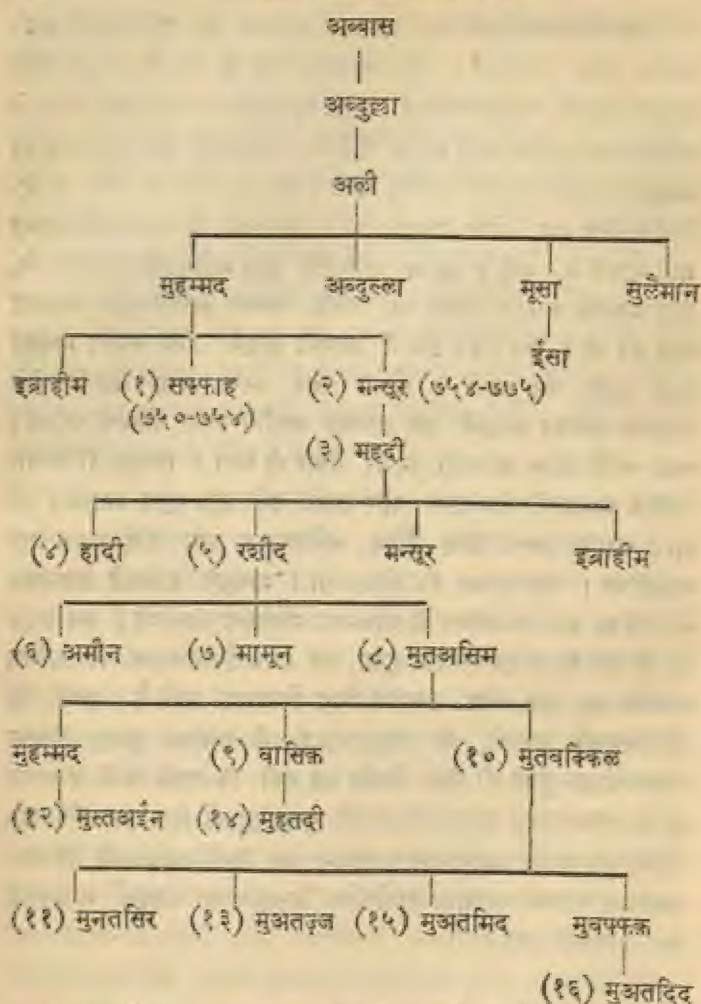
अब्बासी-युगका प्रारम्भिक काल (सन् ७५० ई० से सन् ८४७ ई० तक) पूराका पूरा ईरानियोंकी संस्कृतिके प्रभावमें आ गया। पोशाक, सङ्गीत, साहित्य आदि सभी क्षेत्रोंमें ईरान ही आदर्श बना गया। यह काल खलीफा-युगका स्वर्णयुग कहलाता है। इस कालमें विद्याका अनुराग और दर्शनके प्रति आकर्षण पूरी मात्रामें पाया जाता है। मुतवकिल जब खलीफा हुआ तब ईरानियोंका स्थान टर्कीवालोंने ले लिया। टर्की वालोंके प्रभावमें जब वृद्धि हुई तब वे सारी बातें जो उनसे पहले थीं, धीरे-धीरे कम होने लगीं। दार्शनिक तत्त्व-चिन्तनको एक गहरा धक्का लगा। चाहे जो हो, अरबोंकी चेष्टाओंके बावजूद भी वह स्थिति फिर नहीं आ सकी जिसमें अरब ही सर्वेसर्वा थे।

अब्बासी-वंशका पहला खलीफा अबुल अब्बास (सन् ७५० ई० से सन् ७५४ ई० तक) हुआ। उसने अपने आपको अल-सफ्फाह कहा और उसी नामसे वह इतिहासमें प्रसिद्ध हुआ। अब्बासीवंश राजनीतिमें अत्यन्त ही कुशल था। निर्दयतामें ये उमैय्योंसे बढ़कर ही थे, कम नहीं। इनके समयमें कम ख़ून-ख़राबी नहीं हुई। फिर भी अब्बासियोंने अपनेको जन-प्रिय बनानेके लिए बराबर सचेष्ट रखा। धर्ममें निष्ठा हो या न हो लेकिन अबुल अब्बासने धर्मके बाह्य चिह्नोंको बनाये रखा। जिस प्रचारके बलपर उन्होंने उमैय्योंको बदनाम किया उसका उपयोग अब उन्होंने अपने फायदेके लिए करना शुरू किया। लोगोंके मनमें इस बातको बैठानेकी चेष्टा की गयी कि अगर अब्बासी-खलीफा नहीं रहेंगे तो सारी दुनिया में विशृङ्खला फैल जायगी। इस प्रकारसे अब्बासियोंने धर्मको अपने शासनकी दृढ़ता और स्थायित्वके लिए काममें लगाया। उन अब्बासी-खलीफोंके सामने मुहम्मद साहब तथा प्रथम चार खलीफोंका धार्मिक और सादा जीवन आदर्श नहीं था बल्कि फारस और बाइजैन्टाइनके बादशाहोंका ठाटबाट, उनकी शानशौकत थी।

अल-सफ्फाहने कूफा तथा बसराको छोड़कर अल-हाशिमियामें अपने रहनेका स्थान बनाया[1]। यह स्थान अब नष्ट हो गया है। कूफा और बसरामें अलीके अनुयायियोंका प्रभाव था इसलिए सफ्फाहके लिए ये दोनों स्थान सुरक्षित नहीं मालूम होते थे। सफ्फाहके बाद दूसरे खलीफा मन्सूरने बगदाद शहरका निर्माण किया। यह एक गाँव था और अब्बासियोंके लिए सब दृष्टिसे उपयुक्त था। दमिस्कमें वे राजधानी बनाना नहीं चाहते थे, क्योंकि वहाँपर उमैय्योंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले थे, दूसरे बगदाद फारसके निकट था जिसके बलपर अब्बासियोंने सफलता प्राप्त की थी। सन् ७६२ ई० में शहरकी दीवारें उठने लगीं। मन्सूरने स्वयं पहली ईंट रखी[2]। काफी खर्च करके तथा देश-विदेशोंसे कारीगर बुलाकर मन्सूरने इस शहरका जल्दीसे जल्दी निर्माण कराया। चार वर्षोंके भीतर यह शहर बनकर तैयार हो गया। मन्सूरने ही अब्बासियोंके शासनकी नींव डाली और उसने उसे खूब सुदृढ़ बनाया। इसे सुदृढ़ बनानेमें उसके लिए नैतिक, अनैतिकका प्रश्न कोई महत्त्व नहीं रखता था। वह अत्यन्त ही योग्य था। मन्सूरके शासनसे प्रारम्भकर सौ वर्षोंका काल अब्बासियोंके शासनका गौरवपूर्ण काल था। सन् ७५४ ई० में जब कि मन्सूर खलीफा हुआ, सन् ८४७ ई० तक जब कि वासिक़ खलीफा था, सब ओर उन्नतिके चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। इसके बाद मुतवक्किलके समयसे, जो सन् ८४७ ई० में खलीफा हुआ, ह्रासका होना जो शुरू हुआ तो ऐसी स्थिति आ गयी कि उसमें किसी प्रकारका सुधार सम्भव नहीं था। वैसे बीचमें कुछ कालके लिए तरक्कीके शुभ लक्षण भी दिखाई पड़ने लगे थे लेकिन वह स्थिति क्षणस्थायी ही थी। प्रारम्भिक कालके अब्बासी खलीफोंका निम्नलिखित वंशवृक्ष अध्ययनके लिए उपयोगी सिद्ध होगा—

---

1. याकूबी, हि. अ., पृ० २८० पर उद्धृत।
2. हि. हि. अ., पृ० २५६।



सफ्फाहके बाद अबू-जाफर दूसरा अब्बासी खलीफा हुआ। इसने अपनेको अल-मन्सूर कहा। मन्सूरके बाद जो पैंतीस खलीफा हुए वे उसी-

के वंशके थे। अब्बासियोंमें यह सबसे बड़ा शासक हुआ। शासनके प्रारम्भमें ही इसे कई विरोधियोंसे लोहा लेना पड़ा। इसके चाचा अब्दुल्लाने इसके खलीफा होनेका विरोध किया। अबू-मुस्लिमने उसे हरा दिया। सात वर्षोंतक उसे कैदमें रखकर उसे एक ऐसे मकानमें रखा गया जो नमककी नींवपर जान-बूझकर बनाया गया था। उसके चारों ओर पानी था। उसके गिरनेसे वह उसीमें दबा हुआ रह गया। अबू-मुस्लिम भी शक्तिशाली हो गया था। मन्सूरने उसे भी धोखेसे अपने दरबारमें बुलवाया और वह वहीं मार डाला गया। शिया-सम्प्रदायवाले भी उसके विरोधी हो गये। शिया-सम्प्रदायवालोंने अब्बासियोंकी पूरी मदद की थी लेकिन बहुत जल्द ही उन्हें अपनी भूलका पता चल गया। मन्सूरने उन्हें दबा दिया। रावन्दिया, एक ईरानी सम्प्रदायका उद्भव उस कालमें हुआ। इस्लाम-धर्मके अन्तर्गत और कितने सम्प्रदायोंमें यह भी एक था। ये लोग खलीफाको ईश्वर मानते थे और पुनर्जन्ममें विश्वास करते थे। ये स्पष्ट रूपसे खलीफाको परमात्माके सदृश मानने लगे। इस्लामके आधारभूत सिद्धान्तोंके विरुद्ध यह मतवाद था, अतएव मन्सूरने इन्हें नेस्तनाबूद कर दिया। सन् ७५८ ई० में इनका खात्मा हुआ। इसी प्रकारसे और भी कई विरोधी दल मन्सूरके खिलाफ खड़े हुए जिन्हें मन्सूरने दबा दिया। उनमें प्रमुख शिया और रावन्दिया सम्प्रदायवालोंके अलावे सुनबाद (सन् ७५५ ई०) के नेतृत्वमें बलवा करनेवाले खुरासानी थे। उस्ताधसी (सन् ७६७ ई० से ७६८ ई०) भी उसके प्रबल विरोधी थे।

इन विरोधों और बगावतोंके बावजूद भी मन्सूरकी नीति सबको मिलाकर चलनेकी रही और इसमें उसे पूरी सफलता मिली। इसी नीतिको कार्यान्वित करनेमें तथा इसे बहुत दूरतक सफल बनानेमें ईरानके बरमकोंका बहुत हाथ था। बरमक ईरानका एक सम्भ्रान्त वंश था। ये बरमक वास्तवमें बौद्ध धर्मावलम्बी थे। बरमक संभवतः परमक (=श्रेष्ठ) का परिवर्तित रूप है। मसूदीके आधारपर [1]निकोल्सनने बरमकके सम्बन्धमें

---

१. लि. हि. अ., पृ० २५९।

बतलाया है कि बल्खके अग्नि-पूजकोंके मन्दिरका प्रधान पुजारी बरमक कहा जाता था। लेकिन हिटी[1]ने इब्न अल-फक़ीह, तबारी, और याकूतके आधारपर बरमकको बौद्ध विहारका प्रधान माना है। बरमकको बौद्ध विहारका प्रधान माननेका समर्थन अल-कज़वीनीके निम्नलिखित उद्धरणसे भी होता है। अल-कज़वीनी भूगोलका एक बड़ा पण्डित था। कज़वीनी[2]-का कहना है, कि—

"फारसवाले तथा तुर्क इस (नौबहारका मन्दिर) के प्रति श्रद्धाका भाव रखते थे और तीर्थ-यात्राके लिए वहाँ जाते थे तथा भेंट चढ़ाया करते थे। यह एक सौ हाथ लम्बा तथा उतना ही चौड़ा था और ऊँचा इससे भी अधिक था और बरमक इसका अधिकारी था। भारतवर्ष तथा चीनके बादशाह यहाँ आया करते और मूर्तिकी पूजा करते थे। वे बरमकका हाथ चूमते। इन देशोंमें बरमकका शासन (?) सर्वोपरि था। एकके बाद दूसरा बरमक होता और उनका सिलसिला इसी प्रकार चलता आ रहा था। उस्मान बिन अफ्फानके कालमें खुरासानपर अधिकार हो गया और खालिदके पिता बरमक हुए और उनके हाथमें उसकी व्यवस्थाका भार आ गया।" ऊपरके उद्धरणमें नौबहार नव-विहार-का ही बदला हुआ रूप है। नौबहारके भवनमें एक बहुत बड़ा गुम्बद था जिसका नाम द गोजे (De Goeje) ने अस्तन, अस्त और अस्तब माना है। मौलाना सय्यद सुलैमान [3]नदवीने उसे 'अस्तब' माना है। और उसे बौद्ध शब्द 'स्तूप' का फारसी और अरबी रूप कहा है। उन्होंने वैसा माननेका कारण बतलाया है कि "स्तूप बौद्धोंका उपासना मन्दिर होता है जिसमें बुद्धकी राख या समाधि होती है।" अतएव बरमकको बौद्ध विहारका प्रधान मानना कुछ अनुचित नहीं होगा।

---

१. हि. अ., पृ० २९४।

२. असारुल बिलाद (पृ० २२१-२२२) लि. हि. प. (पृ० २५७-२५८) में उद्धृत।

३. अ. भा. सं., पृ० ९९।

खालिद तथा उनके वंशजोंने अब्बासियोंके शासनके प्रारम्भिक कालमें उनकी हर तरहसे मदद की। सफ्फाह और मन्सूरके समय खालिद उनका प्रधान सलाहकार था। खालिद तथा उनके वंशधरोंके हाथमें अब्बासियोंके मन्त्रित्वका पद पाँचवें खलीफा हारूँ अल रशीदके समयतक रहा। ये वजीर कहलाते थे। वज़ीरका पद इन लोगोंने बड़ी बुद्धिमानी और योग्यताके साथ सँभाला। ये सभी स्वयं बड़े पण्डित और विद्याके अनुरागी थे। हारूँ अल-रशीदकी शिक्षा-दीक्षाका भार खालिदके पुत्र यहियापर था। हारूँ अल रशीद जब खलीफा हुआ तब यहिया उसका वज़ीर नियुक्त हुआ। वास्तवमें यहियाकी रायसे ही रशीदको खलीफाका पद प्राप्त हुआ था। भारतीय संस्कृतिसे ये बरमक पूरी तरहसे परिचित थे और इन्हीं लोगोंने ही भारतवर्षसे कितने विद्वानोंको अब्बासी खलीफोंके दरबारमें बुलवाया था। "अरबोंके राज्यके समय भारतके विषयमें जिसने सबसे अधिक हृदयसे ध्यान दिया, वह यहिया बिन खालिद बरमकी और दूसरे बरामका लोग हैं, जिनका वह कार्य और व्यवस्था भारतके विषयमें और वहाँके पण्डितों और वैद्योंको भारतसे बगदाद बुलवानेके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है[1]। बगदाद शहरके निर्माणमें खलीफा अल-मन्सूरको खालिद की रायकी जरूरत बराबर पड़ती थी। मन्सूरकी मृत्यु सन् ७७५ ई० के अक्तूबर महीनेमें हुई जब वह हज करनेके लिए मक्का जा रहा था। मक्काके पास ही उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके बाद भी बरमकोंका प्रभाव उसी तरहसे बना रहा। यहियाकी मृत्युके बाद उसके दो पुत्र—अल-फजल और जाफर—उसी योग्यताके साथ वजीरका पद सँभालते रहे। बरमकोंका प्रभुत्व सन् ८०३ ई० में जाकर खतम हुआ जब हारूँ अल-रशीदने जाफरको मरवा डाला। कहा जाता है कि जाफर अत्यन्त सुन्दर था। वह बहुत अच्छा वक्ता और लेखक था। नये-नये फैशनका आविष्कार भी उसने किया। उसकी हत्याके सम्बन्धमें कितनी तरहकी

1. इब्न नदीम : किताबुल् फेहरिस्त, पृ० ३४५ अ. भा. सं., पृ० ९८ पर उद्धृत।

बातें कही जाती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि वह बहुत शक्तिशाली होता जा रहा था और यह हारूँ अल-रशीदके लिए असह्य था। सबसे बड़ा कारण उसकी हत्याका यह समझा जाता है कि हारूँ अल-रशीदकी बहन अल-अब्बासाके साथ उसका अनुचित प्रेम-सम्बन्ध था। हत्याके समय जाफ़रकी उम्र तैंतीस वर्षकी थी।

खलीफा हारूँ अल-रशीदके नामके साथ अब्बासियोंके स्वर्ण-युगकी न-जाने कितनी कल्पित और वास्तविक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। अब्बासी खलीफोंका शासनकाल प्रायः पाँच सौ वर्षों तक रहा जिसमें पहला सौ वर्ष सब दृष्टिसे महत्त्वका रहा। शासनकी सुदृढ़ता एवं व्यवस्था, साहित्य, सङ्गीत तथा अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रोंका प्रसार इस कालमें खूब हुआ। यह काल लगभग सन् ७५४ ई० से लेकर सन् ८४७ ई० तक माना जा सकता है। इस कालमें मन्सूर, महदी, हारूँ अल-रशीद, मामून, मुतसिम और वासिकके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं और इनमें हारूँ अल-रशीद और मामूनका काल सर्व श्रेष्ठ रहा। इन सभी खलीफोंमें हारूँ अल-रशीदका नाम रहस्यमयतामें सबको पीछे छोड़ गया है। 'थाउजण्ड एण्ड वन नाइट्स' के इस रहस्यमय बादशाहसे प्रायः सर्वत्र लोग परिचित हैं। अच्छे और न्यायी शासकके ही रूपमें उसका नाम लिया जाता है। वैसे उसने जीवनमें ऐसे-ऐसे कार्य किये थे कि इतिहासकार उसे बड़ा बादशाह या अच्छा आदमी माननेके लिए तैयार नहीं। सङ्गीत तथा अन्य विद्याओंका वह प्रेमी तथा संरक्षक था और उसके दरबारमें बड़े-बड़े सङ्गीतज्ञ, भाषाशास्त्री, इतिहासज्ञ और कवि थे। सन् ७८६ ई० से सन् ८०९ ई० तक हारूँ अल-रशीदके कालमें बगदाद केवल शक्तिशाली ही नहीं समझा जाता रहा बल्कि वह एक संस्कृतिका केन्द्र माना जाता रहा।

हारूँ अल-रशीदने अपने उत्तराधिकारीका चुनावकर किसी प्रकारका झगड़ा भविष्यमें न होने देनेकी चेष्टा की लेकिन वह सफल नहीं हुआ। हारूँके अमीन और मामून दो लड़के थे। ये दोनों खलीफाके पदके लिए

लड़ पड़े। समूचे इस्लामी साम्राज्यमें अशान्ति छा गयी। इन दोनोंकी लड़ाई वास्तवमें अरबों और ईरानियोंकी लड़ाई थी। अब्बासियोंके खलीफा होनेके समयसे ही ईरानियोंका प्रभाव बढ़ता गया और अरबोंका नष्ट हो गया। इसके लिए अरबोंकी चेष्टा चलती रहती थी लेकिन सफल नहीं हो सकी। जबतक बरमक वजीरोंका बोलबाला रहा ये झगड़े शान्त थे और उनकी बुद्धिमत्ताके कारण अरबों और ईरानियोंमें खुलकर लड़ाई होनेका कभी मौक़ा नहीं आया। अमीन, खलीफा हारूँ अल-रशीदकी पत्नी ज़ुबैदा, जो उसकी चचेरी बहन भी थी, का लड़का था और मामून एक ईरानी दासीसे पैदा हुआ था। ये दोनों अभी अल्पवयस्क थे और दोनों ही अपने-अपने वजीरोंके प्रभावमें थे। अमीनका वजीर फजल अबी सह्ह था और फ़जल अबी राबिया मामूनका वजीर था। अमीन बड़ा था और उसीको हारूँ अल-रशीदने अपना उत्तराधिकारी चुना था और उसके बाद मामूनको। रशीदने अपने उत्तराधिकार सम्बन्धी बातोंकी दो प्रतियाँ मक्कामें रख छोड़ी थीं। जब अमीन और मामूनमें किसी प्रकार समझौता नहीं हो सका तो अमीनने उन दोनों प्रतियोंको फाड़ डाला। इसके बाद दोनोंका झगड़ा शुरू हो गया। अपने बड़े भाई अल-अमीन और चाचा इब्राहीम इब्न-अल-महदी (वह भी खलीफा पदके लिए अपने को उचित अधिकारी मानता था) के साथ मामूनकी लड़ाई प्रायः छः वर्षोंतक चलती रही। विजय मामूनकी ही हुई।

मामूनका शासन काल भी अब्बासी खलीफोंके युगका एक महत्त्वपूर्ण काल रहा। विद्रोह और आपसी झगड़े तो उस कालके सभी शासकोंके समयमें प्रायः कम या बेशी होते ही रहे। मामूनका शासन भी उसका अपवाद नहीं था। वह पहले बगदादमें आनेका साहस नहीं कर सका क्योंकि वह अरबोंकी शक्तिका केन्द्र बना हुआ था। शिया-सम्प्रदायवालोंकी ओर उसका विशेष झुकाव था। यह चीज उसमें इतनी अधिक थी कि उसने अलीके एक अनुयायीको अपना उत्तराधिकारी चुन लिया। इसके लिए उसको अपने परिवारवालोंके ही विरोधका

सामना करना पड़ा। वह सनातन-पन्थी बिल्कुल ही नहीं था। मुतज़िला-सिद्धान्तोंको भी उसने प्रश्रय दिया। इसके समयमें ही शक्तिशाली सेनापतियों तथा अन्य दूसरोंने शक्ति-सञ्चय कर अपना अपना राज्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। ख़लीफ़ोंके प्रभावका ह्रास धीरे-धीरे इसीके समय होना प्रारम्भ हो गया था, लेकिन बादमें तो यह सर्वत्र स्पष्ट हो गया। जिन लोगोंने इस्लामी साम्राज्यकी स्थापना की थी और जिनमें युद्ध करनेकी शक्ति थी वे उससे विरत होने लगे। उनमें विलासप्रियता भी अधिकसे अधिक बढ़ गयी। मामूनके समयतक कला, विद्या, दर्शन, साहित्यमें अभूतपूर्व उन्नति हुई। इन क्षेत्रोंमें जिस तीव्रगतिसे उन्नति हुई वह आश्चर्यजनक है। इतने कम समयमें उन सभी विषयोंकी पुस्तकोंका अरबीमें प्रणयन हुआ अथवा वे अन्य भाषाओं जैसे संस्कृत, फ़ारसी, ग्रीक आदिसे अनूदित हुईं।

मामूनके बाद इशाक़ ख़लीफ़ा हुआ। इशाक़ भी हारूँ अल-रशीदका ही पुत्र था, लेकिन ख़लीफ़ा होनेके साथ-ही-साथ उसने मुतसिमके लिए अपना पद छोड़ दिया। फ़ौज मामूनके पुत्र अब्बासके पक्षमें थी लेकिन वह अपने चाचाके विरुद्ध नहीं जाना चाहता था। वह भी मामूनकी तरहसे सनातन-पन्थी नहीं था और मुतज़िला-सिद्धान्तका पक्षपाती था। लेकिन वह सनातन-पन्थियोंके विरुद्ध सफल नहीं हो सका और ऐसा समय आया कि मुतज़िला-सिद्धान्तके माननेवाले जहाँ पहले दूसरोंका दमन कर रहे थे वहाँ वे स्वयं दमनका शिकार बन गये। मामूनके समय-तक ईरानियोंकी बनी रही लेकिन मुतसिमने अपनी रक्षाके लिए तुर्की संरक्षकोंको रक्खा। अभीतक ख़लीफ़ोंका दरबार बग़दादमें था उसे उसने हटाकर सामर्रामें बनाया जो थोड़े ही दिनोंमें एक सुन्दर शहर बन गया। इसके बादका चार सौ वर्षोंका इतिहास अब्बासी-ख़लीफ़ोंके क्रमशः पतनका इतिहास है। वैसे भी इस समयतक समूचे इस्लामी साम्राज्यपर ख़लीफ़ोंका अधिकार बहुत कुछ ख़तम हो चुका था।

अब्बासी-खलीफोंका शासनका यह पिछला युग जो लगभग चार सौ वर्षोंतक चलता रहा, वास्तवमें तुर्की सेनानियोंका शासन था। उन्हींके इशारेपर सब कुछ होता रहा। किसी भी खलीफामें इतनी शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह इन तुर्कोंका विरोध कर सके। किसी खलीफाने अगर चेष्टा भी की तो थोड़े ही दिनोंमें या तो वह हटा दिया गया या उसकी हत्या कर दी गयी अथवा चुपकेसे तुर्कोंकी बात मान लेनी पड़ी। इस कालमें षड्यन्त्रों और हत्याओंकी भरमार रही। एकके बाद एक खलीफा आते गये और खतम होते गये और यह क्रम चलता रहा। अल-मुतवक्किल (सन् ८४७ ई० से सन् ८६१ ई० तक) के कालमें तुर्कोंके महत्त्वाकांक्षी सैनिकोंका प्रभुत्व इतना बढ़ गया था कि वे अरबोंको सब प्रकारसे नीचा दिखाने लगे। इससे इरानी भी नहीं बच पाये, वैसे अरबोंकी अपेक्षा उनपर कम अत्याचार हुआ। ये सैनिक वास्तवमें पहलेके युद्धमें पकड़े गये कैदी थे। इनके अत्याचारोंसे अरब जनता घबड़ा उठी। सन् ८६१ ई० में मुतवक्किल नशेकी हालतमें तुर्की अङ्गरक्षकों द्वारा मार डाला गया। अपने पुत्र मुन्तसीरके इशारेपर उसकी हत्याकी गयी थी। मुन्तसीर खलीफा तो बना लेकिन एक वर्ष बीतते न बीतते वह भी मार डाला गया। उसके बाद अल-मुस्तमिन, अल-मुतज्ज और अल मुहतदी क्रमशः खलीफा हुए लेकिन नौ वर्षसे अधिक वे राज्य नहीं कर सके। तुर्की सैनिकों द्वारा वे सभी मार डाले गये। केन्द्रीय शक्तिके कमजोर हो जानेके कारण इधर-उधर कई छोटे-मोटे राज्योंकी भी स्थापना इस कालमें हुई जो दीर्घकालतक टिके रहे और अपनी सीमामें शान्ति बनाये रहे। उस कालमें कई जगह और भी खलीफा थे जैसे एक मिस्र में, एक मोरक्कोमें, एक स्पेनमें। ये खलीफा एक बातमें समान थे। वे सभी कुरैश वंशके थे।

तुर्कोंकी यह शक्ति कुछ समयके लिए कम हो गयी थी जब मुहतदी खलीफा हुआ। मुहतदी शक्तिशाली और योग्य व्यक्ति था। उसने तुर्कोंकी शक्ति क्षीण कर दी और यह बात कुछ दिनोंतक चलती रही। मुहतदीने

जो व्यवस्था ला दी थी वह प्रायः उसके बाद चार खलीफोंके शासन-कालतक चली। सन् ८६९ ई० से लेकर सन् ९०७ ई० तक तो तुर्क कुछ न कर सके लेकिन बादमें उनकी फिरसे बन आयी। खलीफा युगका अन्त मंगोलोंके आक्रमणके कारण हुआ। सन् १२५८ ई० में हुलागू अपनी मंगोल-फौजके साथ बगदादपर चढ़ आया और उसपर कब्जा कर लिया। खलीफाका शासन जो केवल नाममात्रके लिए ही रह गया था वह भी इसके बाद खतम हो गया। अनेक छोटे-छोटे राज्य उस समय उठ खड़े हुए। इन राज्योंमें कुछ प्रधानतया राजनीतिक आधारपर सङ्गठित थे और कुछका आधार धार्मिक था। अरब देश, ईरान, अफगानिस्तान, अफ्रीका आदिमें सर्वत्र इस प्रकारके राज्य दीख पड़ते हैं। ईरानमें ताहिरी, सफ्फारी, समनी, बुवैही आदि एकके बाद एक होते गये। अफगानिस्तानमें गजनवियोंका राज्य स्थापित हुआ। महमूद गजनी जिसने भारतवर्षपर सत्रह बार चढ़ाइयाँ कीं, सुबुक्तगीनका पुत्र था। सुबुक्तगीन एक तुर्की गुलामका पुत्र था और उसीने गजनवी वंशकी स्थापना की। यह वंश कट्टर इस्लामका अनुयायी था। इसने मुतज्जिला-सिद्धान्तके माननेवालोंका दमन किया। महमूदने अपने साम्राज्यका पूरा विस्तार किया लेकिन वह बहुत दिनोंतक रह नहीं सका। धर्मका आधार लेकर अफ्रीकामें फातिमियोंका वंश खड़ा हुआ। इस वंशने अपने आपको ही खलीफा पदका उचित अधिकारी बतलाया। ये लोग शिया थे। मिस्रमें सन् ११७१ ई० तक शिया-सम्प्रदाय वालोंका अधिकार बना रहा। ये लोग खलीफाके विरोधी थे। अयूबियोंने इनके हाथसे अधिकार छीनकर फिरसे सुन्नी सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा की। इसी प्रकारसे सेल्जुकोंका प्रभुत्व भी बहुत दिनोंतक बना रहा। इन लोगोंने गजनवियोंके साम्राज्यके पश्चिमी प्रान्तोंको अपने अधिकारमें कर लिया। सन् १०५५ ई० में तुगरिल बेगने बगदादपर कब्जा कर लिया। अब्बासी खलीफोंके समयमें राजनीतिक अवस्था इसी प्रकारकी बनी रही, जिसका प्रभाव समाज, साहित्य, धर्म आदि पर पड़ता रहा।

अब्बासियोंके शासनके प्रारम्भिक कालमें साहित्य, विज्ञान, धर्मके तात्त्विक विवेचन आदिपर खूब ध्यान दिया गया। अब्बासी खलीफा इस मामलेमें खूब सतर्क थे। उनका दावा था कि वे फिरसे इस्लामको सुदृढ़ कर रहे हैं और शासनके सम्बन्धमें वे कुरान और सुन्नाका अक्षरशः पालन कर रहे हैं। धार्मिक प्रवृत्तिके कारण ही ऐसा उन्होंने किया हो ऐसी बात नहीं थी। अपने शासनको सुसङ्गठित तथा लोकप्रिय बनानेके लिए धर्मके बाह्याचारपर उन्होंने अधिक जोर दिया। उमैय्या खलीफोंके कालमें धर्मपर इतना ध्यान नहीं दिया गया था। इन्हें हटानेके लिए जो क्रान्ति हुई और जिसने अब्बासियोंको खलीफाके पदपर आसीन कर दिया उसमें बड़ी बुद्धिमानीके साथ इस बातकी आशाका सञ्चार लोगोंके मनमें कराया गया कि अब्बासी-खलीफोंका काम फिरसे धर्मको सुप्रतिष्ठित करना है। यही कारण है कि जहाँ उमैय्याके कालमें शरिअत और सुन्नाके पण्डित और धार्मिकतापर जोर देनेवाले शासनसे अलग-से थे, अब्बासियोंके समयमें वे शासनका एक अंग बन गये। खलीफोंके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। काजीका स्थान बड़े सम्मान और दायित्वका था। इस कालमें विचारोंका स्वातन्त्र्य भी रहा। मुतज़िला-सिद्धान्तोंको प्रश्रय देनेवाले दो खलीफा भी थे। लेकिन यह विचार-स्वातन्त्र्य बादके अब्बासी खलीफोंके समयमें प्रायः नहीं रहा। धर्मके मामलेमें इस तरहकी स्वतन्त्रताका परिचय देनेवाले या तो निर्वासित हुए या बुरी तरहसे अपमानित कर उनकी हत्या कर दी गयी। खलीफा मुतवक्किलने तो अपने शासनमें इस बातपर बहुत ही अधिक ध्यान दिया कि सनातन-पन्थी कट्टर विचारोंको छोड़कर किसी प्रकारके विचारको प्रश्रय न दिया जाय। मुतज़िला-सिद्धान्तके माननेवालोंका बुरी तरहसे दमन किया गया। मुतवक्किल सन् ८४७ ई० से लेकर सन् ८६१ ई० तक खलीफा बना रहा। इस कालमें अली तथा शिया सम्प्रदायवालोंके प्रति घृणाके भावमें अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। मुतवक्किलने शिया मुसलमानोंके विरुद्ध किस प्रकारसे अपनी घृणाका प्रदर्शन किया इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है

है कि उसने कर्बलाके स्मारकको तोड़वा-फोड़वाकर उस ज़मीनको जुतवा दिया और वहाँ फसल बुनवा दी। हजरत अलीका मजाक उड़ानेके लिए अपने दरबारमें एक मसखरेके पेटपर तकिया बँधवाकर वह दरबारियोंके सामने उपस्थित कराता था। कहा जाता है कि उसका चेहरा हजरत अलीसे मिलता-जुलता था। हजरत अली बादमें चलकर मोटे हो गये थे इसीलिए उस मसखरेके पेटपर तकिया बाँधा जाता था। ईसाइयों और यहूदियोंके विरुद्ध भी उसने फर्मान निकाले। उन्हें एक विशेष ढङ्गकी पोशाक भी पहननी पड़ती थी और सिवा गधे और खच्चरोंके वे दूसरी सवारी नहीं कर सकते थे। उनके गिरजों या मन्दिरोंको उसने या तो ढहवा दिया या मस्जिदें बनवा दीं। इसके समयमें जो विचारोंकी स्वतन्त्रतापर रोक लगी वह कम या बेशी आजतक चलती आ रही है। इसके बादसे जितनी भी विचारधाराएँ या साधनाएँ इस्लामके अनुयायियोंमें दीख पड़ीं उन सबमें प्रायः यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अपनी बातोंका अनुमोदन कुरान, हदीस या सुन्नासे करते हैं। ईसाकी नवीं शताब्दीमें अबुल हसन अल अशारीने धर्मके नियम कानूनोंको ऐसा रूप दिया जिसमें विचार-स्वातन्त्र्यका स्थान नहीं रह गया। अशारी इस्लाम धर्मके बहुत बड़े स्मृतिकार थे। उन्होंने ही इस्लामी स्मृतिका प्रवर्त्तन किया। ईसाकी नवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धसे लेकर ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके प्रारम्भतकका काल राजनीतिक दृष्टिसे महत्त्वका नहीं है। लेकिन इस कालकी एक विशेषता रही है कि एक ओर तो कट्टरताकी वृद्धि होती है और दूसरी ओर धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्रोंमें नयी प्रवृत्तियोंका उदय होता है। यद्यपि यह बात बड़ी अद्भुत और असङ्गत-सी प्रतीत होती है कि कट्टरताके कारण उनका दबना तो दूर रहा उल्टे वे और जोर पकड़ती हैं।

हम देख चुके हैं कि इस्लामसे पूर्व अरबोंकी कैसी स्थिति थी और इस्लामके उदयके बादसे उसमें कितना बड़ा परिवर्तन आया। हम यह भी देख चुके हैं कि इस्लामके आविर्भावके बादकी दो, तीन शताब्दियोंमें

एक ओर तो अरबोंके साम्राज्यका विस्तार होता रहा और दूसरी ओर साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रोंका भी प्रसार होता रहा। अरबी भाषा इस्लामी साम्राज्यकी राजनीति, धर्म, साहित्य और दर्शनकी भाषा बन गयी। अरबसे बाहर यह अन्य समृद्ध भाषाओं और संस्कृतियोंके संपर्कमें आयी और यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि अरब-भिन्न जातियोंने इसे समृद्ध किया। अरबोंके लिए यह सम्भव नहीं था कि वे अपनी पिछड़ी हुई सभ्यता और संस्कृतिके बलपर संस्कृति और साहित्यके क्षेत्रमें अन्य जातियोंकी बराबरी कर सकते। अरबी भाषा और साहित्यको समृद्ध करनेमें फारसी साहित्य और ईरानियोंका बहुत बड़ा हाथ है। अरबी भाषाको अपनाकर अरबसे बाहरकी उन जातियोंने धार्मिक और अन्य प्रकारके साहित्यकी सृष्टि की और उस कालकी अरबी भाषाका जो कुछ भी श्रेष्ठ है वह उन्हींकी देन है। ऐसे बहुत ही कम अरब हैं जिन्होंने इस दिशामें उनके जैसा कुछ किया हो। कुछ ऐसे भी अरब हैं जिन्होंने इस क्षेत्रमें विशिष्टता प्राप्त की है लेकिन वे अरब जातिके होते हुए भी अरबसे बाहरके रहनेवाले थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा विदेशी भाषामें हुई थी, उनकी मातृभाषा भी अरबी नहीं थी।

हमारे अध्ययनके लिए इस बातको दृष्टिमें रखना आवश्यक है कि प्रारम्भिक कालमें इस्लाम धर्मके जो अनुयायी हुए उनमें विद्यानुराग अथवा बौद्धिकतामूलक चिन्तनका अभाव दीख पड़ता है। साहित्य, दर्शन आदिकी दृष्टिसे वे पिछड़े हुए थे। उनमें इस्लाम धर्मके प्रति जिसके साथ उनका अभी-अभी परिचय हुआ था, एक बहुत बड़ा उत्साह था। हजरत मुहम्मदके वचनों और आचरणोंका पालन वे वफ़ादारीसे करनेकी चेष्टा करते थे। उस समयके अरब देशके निवासी कला, विज्ञान, साहित्य-की दुनियासे अपरिचित थे। मुहम्मद साबहके वचनों तथा हदीसों आदि को मुखस्थ कर लेनेवालोंको आदरकी दृष्टिसे देखा जाता था। लगभग नवीं शताब्दीतक यही क्रम चलता रहा। अरबोंको उस समयतक इन सारी बातोंकी ओर ध्यान देनेकी फ़ुर्सत नहीं थी। उनका काम लड़ाइयाँ

लड़ना और शासन करनेमें खलीफाका हाथ बँटानेतक ही सीमित था। ईरानियोंका ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें एक-छत्र राज्य बना रहा और इस्लामके अनुयायियोंपर ईरानियोंका गहरा प्रभाव पड़ता रहा[१]।

---

१. इब्न खल्दून : मुकद्दिमा ; गोल्डज़िहर ; मुहम्मदनिस्चे स्टूडियेन ; लि. हि. अ. पृ० २७८ पर उद्धृत।

४. ईरानकी तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक अवस्था

इस्लामी सभ्यता और संस्कृतिमें ईरानका स्थान बड़े महत्त्वका है। ईरानी साहित्य, विचारधारा और परम्पराने इस्लामी विचारधाराको अत्यधिक प्रभावित किया है। ईरानियोंका इतिहास बहुत पुराना है। इस्लाम धर्मके ईरानमें प्रवेशके पूर्व ईरानका साम्राज्य दूर-दूरतक फैला हुआ था। हम पहले ही देख चुके हैं कि अरबका दक्षिणी भाग—अल-यमन—ईरानके सम्राट्के अधीन था। ईरानके इतिहासमें उत्थान और पतनके काल भी आते रहे लेकिन दीर्घकालव्यापी सुशासन और सुव्यवस्थाका भी परिचय वहाँवालोंको था। सासानियोंके कालमें ईरानकी समृद्धि ईर्ष्याकी वस्तु थी। इन्होंने बहुतसे देशोंपर अधिकार कर लिया था और उनके साम्राज्यकी सीमाका उल्लङ्घन करना विदेशियोंके लिये एक दुस्साहसकी बात थी। इन सासानी सम्राटोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि इन्होंने ईरानके प्राचीन धर्म और गौरवको फिरसे लौटाया। इन्हीं सासानी वंशवालोंके राजत्वकालमें इस्लाम धर्मका प्रवेश ईरानमें हुआ।

ईरानमें इस्लाम धर्मका प्रवेश ईरानके इतिहासकी एक ऐसी घटना है जिसके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि ईरानियोंके जीवनमें इतना गहरा प्रभाव डालनेवाली सम्भवतः अन्य कोई भी घटना नहीं घटी। इस घटनाका महत्त्व इसीसे समझा जा सकता है कि इस्लामके प्रवेशके बाद ईरानियोंने जैसे अपने सम्पूर्ण इतिहासको भुला देनेकी चेष्टा की। उन्होंने अपनी भाषा और लिपिको छोड़कर अरबी भाषा और लिपिको अपनाया। कुछ विषयों जैसे दर्शन अथवा धार्मिक तत्त्वोंके विवेचनके लिए केवल अरबी भाषाका ही प्रयोग वे करते रहे। इस्लामकी विजयके बाद इन विषयोंके लिए अपनी भाषाके प्रयोगकी बात वे सोच भी नहीं सकते थे। यह प्रवृत्ति इस्लामकी विजयके बादसे एक दीर्घकाल—लगभग

बारह सौ वर्षों—तक दीख पड़ती है। इन ईरानियोंमें अरबी भाषाके बहुत बड़े-बड़े साहित्यकार भी पैदा हुए। अरबी-साहित्यमें उनका जो स्थान है वह अरबोंको भी प्राप्त नहीं है। उन्हें समृद्ध साहित्य, पूर्ण विकसित सभ्यता विरासतमें मिली थी अतएव यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि उन्होंने अरबी साहित्य और इस्लामी विचारधाराको इतना अधिक प्रभावित किया। ईरानी साहित्य, कला, दर्शन आदि इस्लामी दुनियाकी अपनी वस्तु बन गये। जिसे आज हम इस्लामी संस्कृति कहते हैं उसका एक बड़ा भाग वास्तवमें ईरानी है। इस्लामने ईरानपर विजय तो प्राप्त की लेकिन इन सब क्षेत्रोंमें विजितोंने मानो उसपर विजय प्राप्त की। इन ईरानियोंपर विजय प्राप्त करना इस्लामके लिए सहज नहीं था। सीरियाको जिस सहज ढङ्गसे अरबोंने जीत लिया वैसा ईरानमें नहीं हो सका। ईरानी फौजोंका मुकाबला उनके लिए कम महँगा नहीं पड़ा। वास्तवमें ईरानके पास एक सुसङ्गठित सेना थी और उसकी शक्तिका स्रोत उसका फैला हुआ साम्राज्य था। चार सौ वर्षोंतक शक्तिशाली रोमनोंसे उनकी मुठभेड़ होती रही और उन्होंने पीछे पाँव नहीं दिया। इन्हीं सब कारणोंसे अन्य शामी जातियोंकी तरह ईरानके इन आर्योंपर विजय पाना इस्लामके लिए बहुत ही कठिन साबित हुआ। हम आगे चलकर देखेंगे कि ईरानकी भीतरी शक्ति कितनी कमजोर और विशृंखल हो गयी थी जिससे उन्हें इस नवोदित धर्मकी तेजस्विताके सामने सिर झुकाना पड़ा।

जो ईरानी साम्राज्य लगभग बारह सौ वर्षोंतक एक-सा बना रहा (अल्पकालके लिए इसमें व्यवधान पड़ा था जब अलेक्जेण्डरने ईरानियों पर विजय प्राप्त की और ईरानी परतन्त्र हो गये थे) उसकी समृद्धि, सभ्यता और संस्कृतिके सामने विजयी अरबोंकी क्या अवस्था थी इसका पता उस समयकी कुछ प्रचलित कहानियोंसे चलता है। अरब इतिहास-कारोंने इन कहानियोंका उल्लेख किया है। अरबोंने जब ईरानकी राज-धानीपर कब्जा किया और अरब सैनिक राजधानीमें आये तो वहाँकी

बहुत-सी वस्तुएँ उनके लिए अपरिचित थीं। राजधानीकी श्री और वहाँके विलासके साधनोंको देखकर अरब दंग रह गये। अरब सैनिकोंने तबतक कपूर नहीं देखा था और उसे उन्होंने नमक समझा[1]। सोनासे वे परिचित नहीं थे अतएव जब अरब सैनिकोंने लूटमें बहुत-सा सोना पाया तो उसे चाँदीसे बदलनेमें उन्हें जरा भी सङ्कोच नहीं हुआ[2]। उनकी दृष्टिमें चाँदी अधिक मूल्यवान साबित हुई। एक हजारसे अधिककी भी संख्या होती[3] है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं था। ईरानकी राजधानीमें आकर ही उन्होंने पहले पहल दरबारकी साज-सज्जा देखी। राजधानीकी सजावट, सम्राट्के महलकी भव्यता और उसका अलङ्करण अरबोंके लिए नयी चीज थी।

हमारे अध्ययनके लिए यह आवश्यक है कि ईरानकी राजनीतिक और धार्मिक परम्पराओंसे परिचय प्राप्त करें और ईरानमें इस्लामके प्रवेश-के ठीक पूर्वकी राजनीतिक और धार्मिक अवस्थाके सम्बन्धमें विशेष रूपसे जाननेकी चेष्टा करें। ईरानके प्राचीन इतिहास, साहित्य, कला, धर्म आदिका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन काम है। सासानियों (सन् २२९ ई० से लेकर सन् ६५२ ई० तक) का काल बहुत दूरतक इतिहासकी परिधिमें आ जाता है, फिर भी इन सासानी सम्राटोंके साथ भी बहुत-सी काल्पनिक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। फिरदौसीका 'शाहनामा' ईरानियों-की दृष्टिमें पहला ऐतिहासिक वृत्त है जो ईरानके बादशाहोंका परिचय देता है। 'शाहनामा'में ऐतिहासिक तथ्योंके सङ्ग्रहकी चेष्टा है लेकिन उस कालमें उतने ऐतिहासिक आँकड़े उपलब्ध नहीं थे जितने कि आज हैं अतएव यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि उसमें ऐतिहासिक तथ्योंके साथ कल्पित कहा-नियाँ जुड़ी हुई हैं।

ईरानी अपने देशको 'फारस'के बदले 'ईरान' कहना अधिक उचित समझते हैं। अन्य देशोंमें फारस और ईरानमें प्रभेद नहीं किया जाता।

---

१. अल-फखरी, हि. अ. पृ० १५६ पर उद्धृत।

२. वही, हि. अ. पृ१५६ पर उद्धृत।

३. बलाधुरी, हि. अ. पृ० १५७ पर उद्धृत।

'पारस' या 'फारस' वास्तवमें ईरानका एक प्रान्त है। इसके महत्त्वका कारण यह है कि 'फारस' प्रान्तकी अपनी एक विशेषता है जो आज भी वहाँ वर्तमान है। लेकिन इससे भी बढ़कर और शायद इसी वजहसे फारस-ने एक विशेष स्थान प्राप्तकर लिया कि दो राजवंशोंके संस्थापक फारस प्रान्तके ही थे। इनमेंसे प्रथम आकीमिनी वंश ईसा पूर्व छठवीं शताब्दीमें था और दूसरा सासानी वंश सन् ईसवीकी तीसरी शताब्दीमें हुआ। ईरान-वाले पारसी (जो अरबीमें फारसी हो गया है) शब्दका प्रयोग फारस प्रान्तके निवासीके लिए करते हैं अथवा अपनी भाषाके लिए करते हैं। फारसी भाषामें मीडिया, पार्थिया और फारसकी बोलियोंका सम्मिश्रण-सा हो गया है और आज वह समस्त देशकी भाषा मानी जाती है। भारतवर्षमें 'पारसी' शब्दका प्रयोग उन लोगोंके लिए किया जाता है जो पुराने पारसी धर्मके अनुयायी हैं। ईरानका मतलब 'आर्योंका देश' है। आवेस्तामें 'ऐरिया' शब्दका प्रयोग 'आर्य'के लिए किया गया है।

ईरानियोंके परम्परागत आख्यानोंके अनुसार उनका प्राचीनतम निवासस्थान आर्यनम-वायजो था जो इस पृथ्वीका स्वर्ग था। शीतकी उग्रताके कारण उन्हें वह स्थान छोड़ना पड़ा। उसकी भौगोलिक स्थितिके बारेमें आज निश्चित कुछ कहना कठिन है। बहुतोंका मत है कि ईरानके उत्तरी प्रान्त अजरबैजानका उत्तरी हिस्सा आर्यनम-वायजो था लेकिन मौर्गन इससे सहमत नहीं हैं। चाहे जो हो, लेकिन इतना सत्य है कि यह परम्परा बहुत पुरानी है अतएव इसके पीछे कोई-न-कोई तथ्य अवश्य है। कहा जाता है कि अति प्राचीनकालमें आर्यनम-वायजोको छोड़कर वे सुग्द (वर्तमान बुखारा) और मुरु (वर्तमान मर्व)में चले आये। कहा जाता है कि आर्योंके कई दल ईरानमें आये। उनमें एक दल जो इतिहासमें मीदके नामसे प्रसिद्ध है, दक्षिणी रूससे आकर ईरानी प्लेटोके पश्चिमी भागमें बस गया। ये मीद बड़े शक्तिशाली थे। इन लोगोंने अपनी राजधानी एकबतन (वर्तमान हमदान) में बनायी। यह शब्द अब ईरानसे विलुप्त हो गया है। इन मीदोंके बाद ईरानका

दूसरा राजवंश आकीमिनी अत्यन्त शक्तिशाली हुआ। मीदोंके बारेमें पूरा पता अब नहीं लगता। उनके किसी भी शिलालेख आदिका पता अभीतक नहीं चला है और उनके सम्बन्धमें जो कुछ भी आज ज्ञात है उसका आधार अन्य देशों या राजवंशोंके शिलालेख आदि हैं। दूसरा दल ईरानके पूरबी भागमें आ बसा जो आजका फारस प्रान्त है। ईरानका इतिहास अपने आपमें मनोरञ्जक है लेकिन अध्ययनकी दृष्टिसे उसके ब्योरेमें हमें नहीं जाना है। इस प्रसंगको छोड़नेके पहले हमें जरथुस्त्रके सम्बन्धमें कुछ जान लेना आवश्यक है चूँकि जरथुस्त्रका प्रभाव ईरानपर दीर्घकालीन रहा है। उसी प्रकारसे रुस्तम और उसके नामके साथ जुड़ी हुई कहानियोंकी भी थोड़ी चर्चा कर लेना आवश्यक है।

जरथुस्त्र शब्दकी व्युत्पत्तिका पूरा-पूरा पता नहीं चलता। इसमें उस्त्र (उष्ट्र = ऊँट) शब्द आया है लेकिन इससे पूरे शब्दके अर्थका पता नहीं चलता। जरथुस्त्रका पूरा नाम स्पितम (अथवा स्पिताम) जरथुस्त्र था। इसमें स्पितम शब्द कबीलेका बोधक है। 'स्पितम' शब्द संस्कृत 'श्वित्र' (प्राचीन फारसी शब्द 'हित') का रूपान्तर है जिसका अर्थ 'उजला' है। जरथुस्त्रमें 'उस्त्र' शब्द उष्ट्र (ऊँट) के लिए आया है इसमें [1]मौल्टनको जरा भी सन्देह नहीं है। जरथुस्त्र शब्दके कितने अर्थ किये गये हैं जैसे पुराने ऊँटोंका मालिक, ऊँटको पीड़ा पहुँचाना[2] आदि। मौल्टनके अनुसार जरथुस्त्रके माता-पिता किसी ऊँटके स्मृतिरक्षार्थ जिसपर वे बहुत दिनों सवारी करते रहे होंगे ऐसा नाम दिया[3] होगा। प्रचलित धारणाके अनुसार जरथुस्त्रका निवासस्थान अत्रोपतिन (अजरबैजान) है। वैसे बहुतोंको इसमें सन्देह है कि जरथुस्त्र नामका कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था या नहीं। इसी प्रकारसे जरथुस्त्रके कालके सम्बन्ध-

१. अ. ज़ो., पृ० ८१-८२।

२. ज़ो. स्ट., पृ० १६।

३. अ. ज़ो., पृ० ८२।

में कुछ निश्चित रूपसे कहना कठिन है। परम्परासे चली आती हुई धारणाओंपर विश्वास कर लेनेके सिवा और दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता। अधिकांश विद्वानोंका मत है कि अत्रोपतिन (पश्चिमी ईरान)को ही जरथुस्त्रका मूलस्थान मानना चाहिये। अत्रोपतिन (अजरबेजान) शब्दमें 'अत्रो' (अतर→अथर) शब्द ध्यान देने योग्य है। 'अथर'का अर्थ अग्नि है और जरथुस्त्रके पहले 'अथर्वण' शब्दका प्रयोग मिलता है। 'अथर्वण'का अर्थ 'अग्निका रक्षक' पुरोहित है। गाथामें इस शब्दका प्रयोग नहीं मिलता लेकिन एक जगह गाथामें 'जाओतर' (संस्कृत–होतर < होतृ) शब्दका प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ पुरोहित है। उत्तरकालीन गाथाओंमें 'जाओतर' शब्दका प्रयोग प्रधान पुरोहितके लिए किया गया है जिसका काम गाथाओंका पाठ है।[1] अतएव अत्रोपतिनको जरथुस्त्रका जन्मस्थान माननेकी जो ईरानी परम्परा है वह युक्तिसङ्गत मालूम होती है। ऐसा भी कहा जाता है कि वे ईरानके उत्तर-पश्चिम भागके रहनेवाले थे लेकिन वहाँपर उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद वे अपने मतका प्रचार करनेके लिए ईरानके उत्तर-पूर्वी भाग बैक्ट्रिया (बल्ख) में आये जहाँ उन्हें पूरी सफलता मिली। यहाँसे उनके मतका प्रचार बड़ी तेजीसे समस्त ईरानमें हुआ। ईरानके इस भागके साथ उनका नाम अत्यधिक जुड़ा हुआ है। सम्भवतः इसीलिए उनके निवासस्थानके सम्बन्धमें इतना अधिक मतभेद है। ईरानी परम्पराके अनुसार वे मागियोंके मीद कबीलेके थे।

ऐतिहासिकोंने जरथुस्त्रके जीवनके सम्बन्धमें जो खोज की है उसके अनुसार उनके पिताका नाम पौरुषस्प (भूरे रंगके घोड़ोंवाला) और माताका नाम दुग्धोवा (जिसने गायें दुही हैं) है[2]। उनके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें पहलवी साहित्यमें बहुत सामग्री मिल जाती है। उनकी तीन पत्नियोंका भी जिक्र आता है जिसमें तीसरी पत्नी ह्वोवी थी जिसे

---

१. अ. ज़ो, पृ० १२२।

२. वही, पृ० ८२।

कोई सन्तान नहीं थी। कहा जाता है कि जरथुस्त्रका बड़ा लड़का पुरोहित था, दूसरा सैनिक और तीसरा कृषक। भारतीय आर्योंकी वर्ण-व्यवस्थासे इसकी तुलना की जा सकती है। होवीके पिताका नाम फरशाउस्त्र था। फरशाउस्त्रके भाई जामास्पसे जरथुस्त्रकी पुत्री पौरुचिस्तकी शादी हुई थी। उनके जन्मके समयकी भी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि उनके जन्मके समय नाना प्रकारकी अद्भुत घटनाएँ हुईं। बच्चेको नष्ट करनेके लिए न-मालूम कितने जादू-टोनाका प्रयोग दुष्ट-शक्तियों द्वारा किया गया लेकिन बच्चेके तेजके सामने उनकी एक भी न चली। कृष्णके जन्म तथा बाल्यावस्थाके साथ इसी प्रकारकी कितनी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। जरथुस्त्रने युवावस्थामें अपना समय एकान्त-सेवन और तपस्यामें बिताया। नाना विघ्न-बाधाओं और प्रलोभनोंका सामना उन्हें उस समय करना पड़ा और सबपर उन्होंने विजय पायी। सात बार उन्हें दिव्य दर्शन हुए और तब उन्हें पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति हुई। इसके बाद उन्होंने अपने मतका प्रचार किया। प्रारम्भमें किसीने भी उनकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया, उनका अनुयायी होना तो दूर की बात थी। मत-प्रचारके प्रथम दशकमें उन्हें एक ही अनुयायी मिला! इससे उन्हें निराशा हुई। गाथाओंमें उनकी इस निराशाका आभास मिलता है। जरथुस्त्र इसके बाद उत्तर पूर्वी ईरानमें आये जहाँ उन्हें पूरी सफलता मिली।

पूर्वी ईरानमें आनेके बाद जरथुस्त्रके मतका इतनी शीघ्रतासे फैलनेका एक कारण यह भी था कि उन्होंने वीस्तास्प नामक राजाको अपने मतके अनुकूल बना लिया। इस राजाने अनुयायी बनकर उनके मतके प्रचारमें अदम्य उत्साहका परिचय दिया। लेकिन उसे अपना अनुयायी बनानेमें जरथुस्त्रको अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। दो वर्षोंके सतत प्रयाससे राजा उनका अनुयायी बना। राजाके पुरोहितोंका कोप-भाजन जरथुस्त्रको बनना पड़ा। षड्यन्त्र करके उनके शत्रुओंने उन्हें जेलमें डलवा दिया। उनकी मुक्तिका कारण उनकी दैवी-शक्ति कही

जाती है। उन्होंने राजाके एक काले बीमार घोड़ेको चंगा कर दिया[१]। राजाके पण्डितोंसे भी उन्हें शास्त्रार्थ करना पड़ा था। उन पण्डितोंने जादूके बलसे जरथुस्त्रको पराजित करना चाहा लेकिन उनकी एक न चली और जरथुस्त्र सब प्रकारसे विजयी हुए और राजा उनके प्रभावमें आ गया। वीस्तास्पको फिरदौसीने अपने महाकाव्यमें गुस्तास्प कहा है। ईरानी परम्पराको स्वीकार करते हुए दारमेस्तेतर[२]ने वीस्तास्प (गुस्तास्प, हैस्तस्पस) को डेरियसका पिता और साइरसका समकालीन माना है लेकिन गेल्डनर इससे सहमत नहीं। गेल्डनरने इस राजाका साइरससे बहुत पहले होना बतलाया है[३]। कहा जाता है कि यह राजा खुरासान प्रान्तके किश्मार[४] स्थानका था। राजाके मत-परिवर्तनके पहले ही उसके वज़ीरके दो लड़के जरथुस्त्रके प्रभावमें आ गये थे और उनके अनुयायी हो गये थे। उन दोनोंके बाद रानीने भी इस धर्मको स्वीकार कर लिया था। राजाके धर्म-परिवर्तनके साथ-साथ उसका समस्त दरबार इस नये पैगम्बरका अनुयायी हो गया। राजाका प्रधान वजीर जामास्प और उसका भाई फरशाउस्त्र इस धर्मके दो प्रबल सहायक हुए। हम पहले ही देख चुके हैं कि इनमें पहला जरथुस्त्रका दामाद था और दूसरा उनका श्वसुर। जामास्पके बारेमें कहा जाता है कि जरथुस्त्रकी मृत्युके बाद वही इस धर्मका प्रधान बनाया गया।

जरथुस्त्रके जीवनके सम्बन्धमें गाथाओंसे बहुत कुछ नहीं जाना जा सकता और बादमें चलकर जैसा कि सभी धर्मोंके अनुयायियोंमें देखा जाता है, जरथुस्त्रके अनुयायियोंने भी बहुत-सी कहानियाँ उनके नामके साथ जोड़ दीं। ऐसी हालतमें जो कुछ भी थोड़ा-सा उनके जीवनके सम्बन्धमें जाननेका प्रयास किया गया है उसे सम्पूर्ण रूपसे ऐतिहासिक

---

१. ज़ो. स्ट., पृ० २१।

२. लि. हि. प., पृ० ९६।

३. वही, पृ० ९५।

४. हि. प. प्र. खं., पृ० १०४।

तथ्यके रूपमें ग्रहण नहीं किया जा सकता। इन सब सामग्रियोंकी छान-बीनसे ऐसा पता चलता है कि वीस्तास्प तथा उसके मन्त्रियोंने इस धर्मके सम्पूर्ण ईरानमें प्रचार करनेके लिए अदम्य उत्साह दिखलाया और कहा जाता है कि इसका प्रभाव-क्षेत्र ईरानसे बाहरतक पहुँच गया था। तुरानके कुछ भागोंमें यह धर्म फैला और बादकी परम्पराको अगर ठीक माना जाय तो इस धर्मका प्रसार भारतवर्ष और ग्रीसके कुछ हिस्सोंतक हो गया। कहा जाता है कि नये धर्मके इन अनुयायियोंने मध्य एशियाकी तुरानी जातियोंपर आक्रमण किया। इसी कारणसे सम्भवतः तुरानी सरदार अरजातस्पने ईरानपर चढ़ाई की। ये धार्मिक युद्ध मुख्यतः खुरा-सानतक सीमित थे। जरथुस्त्रके जीवनके पिछले दस वर्षोंकी यह मुख्य घटना रही है। जब तुरानियोंने दूसरी बार चढ़ाई की तब जरथुस्त्र सतहत्तर[1] वर्षके थे और बल्खमें मारे गये। यद्यपि वे मारे गये लेकिन उनके धर्मकी पूर्ण विजय हुई। परम्परागत विश्वासोंको स्वीकार करते हुए जैक्सनने जरथुस्त्रका जन्म ईसासे ६६० वर्ष पूर्व माना है और मृत्यु ईसासे ५८३ वर्ष पूर्व मानी है[2]।

जरथुस्त्रकी मृत्युके बाद भी यह धर्म फूलता-फलता रहा। आकी-मिनी राजाओंने इस धर्मको स्वीकार कर लिया। डेरियस सबसे पहला बादशाह था जो इस धर्मका कट्टर अनुयायी था। अधिकांश विद्वानोंने इसे स्वीकार किया है। जो हो; ईरानका यह राष्ट्रीय धर्म हो गया। अले-क्जेन्डरने जब ईरानपर आक्रमणकर उसपर विजय प्राप्त की तब इस धर्मको एक गहरा धक्का लगा। उसने धर्मग्रन्थ आवेस्ताको जला दिया और इस धर्मको नष्टभ्रष्ट करनेमें कुछ कसर नहीं रख छोड़ी। लेकिन यह ईरानसे लुप्त नहीं हुआ। सेल्यूसियों और पार्थियनोंके शासनकालमें इस धर्मका फिरसे ईरानमें प्रचार हुआ और सासानियोंका काल इसके चरम उत्कर्षका काल है। चार सौ वर्षोंसे भी अधिक इसका आधिपत्य ईरानपर

---

१. ज़ो. स्ट., पृ० २३।
२. हि. प. प्र. खं., पृ० १०५।

बना रहा लेकिन अन्तमें जब इस्लामका ईरानमें प्रवेश हुआ तब इसकी जड़ उखड़ गयी। भीतरी प्रहार भी इस धर्मपर होते रहे लेकिन उनसे इस धर्मको कुछ वैसी क्षति नहीं हुई थी। इस्लामने बाहरसे आकर इसको समूल नष्ट कर डाला। ईरानमें कुछ ही लोग रह गये हैं जो इस धर्मको आज भी मानते हैं। भारतवर्षकी पारसी जाति इस धर्मकी अनुयायी है और इस धर्मके माननेवालोंका सङ्घटित समुदाय अब केवल भारतवर्षके पारसियोंका ही है।

जरथुस्त्रके सिद्धान्तोंकी चर्चा करनेके पहले आवेस्ताकी कुछ जानकारी कर ली जाय। आवेस्ता जरथुस्त्रके अनुयायियोंका धर्म-ग्रन्थ है। आवेस्ताको वे दैव-वाणी मानते हैं जो जरथुस्त्रके द्वारा संसारमें प्रकट हुई। आवेस्ताकी भाषाको लेकर विद्वानोंमें गहरा मतभेद है। आवेस्ताकी भाषाका नाम 'आवेस्तिक' दिया गया है। यह भाषा आकीमिनी सम्राटोंके शिलालेखोंमें व्यवहृत भाषासे भिन्न है। आवेस्तामें कुछ गाथाएँ मिलती हैं। उन गाथाओंकी भाषा आवेस्ताकी भाषासे भिन्न है। कहा जाता है कि बारह हजार चमड़ेके टुकड़ोंपर स्वर्णाक्षरोंमें लिखा हुआ वह इक्कीस जिल्दोंमें[1] था जिसे अलेक्जेण्डरने नष्ट कर दिया। पार्थियन राजाओंके कालमें फिरसे इसके उद्धारकी चेष्टा की गयी और उसके कुछ अंशोंका सङ्कलन भी किया गया। ईसाकी प्रथम शताब्दीमें पार्थियन बादशाह वोलगासेस, प्रथमने इस ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया लेकिन कहा जाता है कि इसको पूरा करानेवाला आर्देशीर था। आर्देशीर सासानी वंशका संस्थापक था।

'जेन्दावेस्ता'का प्रयोग 'आवेस्ता'के लिए किया जाता है। लेकिन यह एक भ्रान्ति है। जरथुस्त्र-धर्मका पवित्र ग्रन्थ वास्तवमें केवल 'आवेस्ता' है और 'जेन्द' पहलवी भाषामें लिखा हुआ उसका अनुवाद तथा मूल पाठपर की गयी टीका है। साधारणतः मूल पाठके साथ ही यह दिया हुआ रहता है अतएव 'आवेस्ता'के साथ 'जेन्द' शब्द जोड़कर 'जेन्दावेस्ता'

१. हि. प. प्र. खं., पृ० १०५।

कर लिया गया है। कभी-कभी लोग आवेस्ताकी भाषाको ही 'जेन्द' भाषा समझ लेते हैं लेकिन यह भूल है। 'जेन्द' जो 'आवेस्ता'की व्याख्या मात्र है पहलवी भाषामें लिखित है। अभी जो आवेस्ता वर्तमान है उसमें बहुत ही कम अंश प्राचीन धर्म-ग्रन्थका रह गया है। सासानियोंके समयमें जो आवेस्ताको सङ्कलित करने और रूप देनेकी चेष्टा की गयी उसमें भी समय-समयपर कुछ-न-कुछ जुड़ता गया। अतएव आवेस्ताके सम्बन्धमें जो पहले धारणा थी कि वह प्राचीन कालका है बादमें चलकर खतम हो गयी। सबसे मजेकी बात यह है कि आवेस्ताका जो वर्तमान रूप देखनेको मिलता है और जो सासानी बादशाहोंके प्रयत्नोंका फल है वह भी आज पूरा-का-पूरा उपलब्ध नहीं।

वर्तमान आवेस्ताके चार भाग हैं—(१) यस्न, (२) विस्पर्द, (३) वेन्दीदाद और (४) यश्त। यस्नमें विभिन्न दैवी-शक्तियोंके स्तुतिगीत हैं। इन स्तोत्रोंके द्वारा भिन्न-भिन्न शक्तियों की स्तुतिकी जाती है। यस्न पूजन-विधियोंसे भरा हुआ है। इसीमें प्राचीन गाथाएँ भी अन्तर्भुक्त हैं। यस्नके ७२ अध्याय हैं। विस्पर्द अपने आपमें स्वतन्त्र नहीं है। यह यस्नसे सम्बद्ध है। यह यस्नका पूरक है और आनुष्ठानिक विधियोंका इसमें सङ्कलन है। पूजाके लिए यस्नके साथ ही इसकी भी आवश्यकता पड़ती है। इसके तेइससे सत्ताइसतक अध्याय हैं। वेन्दीदादके बत्तीस अध्याय हैं जो फरगर्द कहलाते हैं। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकारसे प्रायश्चित करना चाहिये, आत्मशुद्धिके कौन-कौनसे नियम हैं, पापोंसे निवृत्ति कैसे हो सकती है आदि। वर्तमान आवेस्ताका एक बहुत बड़ा अंश वास्तवमें वेन्दीदाद है। यश्त स्तोत्र हैं। महीनेके प्रत्येक दिनके देवताके लिए यश्त हैं। आवेस्ताका प्राचीनतम अंश गाथाओंमें सुरक्षित है। इन गाथाओंमें जरथुस्त्र एक सुधारकके रूपमें हैं। उनके ऐतिहासिक रूपका उसमें दर्शन मिलता है। आवेस्ता मानव-जातिके इतिहासमें अपना एक विशेष स्थान रखता है। प्राचीन धर्मोंमें जरथुस्त्रीय धर्मका महत्त्व रहा है। किसी समय इसका क्षेत्र व्यापक रहा है और यह मनुष्यके इतिहासमें अपना एक गहरा

प्रभाव छोड़ गया है। ईरानकी विचारधारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे इससे प्रभावित होती रही है। इसने अन्य धर्मोंको भी प्रभावित किया है। जरथुस्त्रने मनुष्य-जातिको आशाका सन्देश सुनाया है। जरथुस्त्रके अनुसार मनुष्य अच्छी और बुरी शक्तियोंके द्वन्द्वसे अन्तमें मुक्ति पाता है और उसके सद्विचारोंकी ही विजय होती है। अच्छी शक्ति उसे अच्छाईकी ओर खींचती है और बुरी शक्ति बुराईकी ओर। इन दोनों शक्तियोंमें निरन्तर जो सङ्घर्ष चल रहा है उसमें मनुष्य अपना रास्ता चुननेको स्वतन्त्र है। और जरथुस्त्रने बतलाया है कि अन्तमें अच्छी शक्तिकी ही विजय होती है। बुराईपर अच्छाईकी यह विजयका सन्देश मनुष्यके अन्तरमें आशाका सञ्चारकर जाता है। जरथुस्त्रीय धर्मने यहूदी-धर्मको प्रभावित किया था और इस प्रकारसे उसका प्रभाव ईसाई-धर्मपर आज भी परिलक्षित होता है।

जरथुस्त्रके अनुसार समस्त सृष्टिके भीतर अच्छे और बुरेका सङ्घर्ष बराबर चल रहा है। सृष्टिका जो कुछ भी अच्छा, जो कुछ भी शुभ और मङ्गलमय है वह अहुरमज़्दाका बनाया हुआ है। यह अहुरमज़्दा आकीमिनी सम्राटोंका कुल-देवता था। उसकी जो आकृति बनी हुई पायी जाती है उसमें वह एक सुरमाके रूपमें दिखलाया गया है। उसे एक पङ्खसे युक्त या पक्षियोंके डैनेसे युक्त गोलाकार प्रकाश-मण्डलपर खड़ा हुआ दिखलाया गया है। यह अहुरमज़्दा या ओरमज़्द आर्य देवता वरुणका परिवर्तित रूप है। जरथुस्त्रके प्रभावमें आकर वरुण (यूरेनस), अहुर बन गये जो सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकर्त्ताके रूपमें अवतरित हुए। यस्त, १३ में अहुरमज़्दाने कहा है कि वे ही आकाशके आधार हैं तथा इस समस्त पृथ्वीमें व्याप्त हैं। गाथाओंके अहुरमज़्दा परवर्ती आवेस्ताके अहुरमज़्दासे भिन्न हैं। गाथाओंमें एक मङ्गलमय सृष्टिकर्त्ताकी कल्पना की गयी है। ऐसा कहा जा सकता है कि गाथाओंमें एकेश्वरवादका प्रतिपादन किया गया है। परवर्ती आवेस्तामें अन्य देवताओंकी भी पूजा अपना स्थान बना लेती है और अहुरमज़्दा यद्यपि अपनी प्रधानता बनाये रखते हैं फिर

भी केवल वे ही एक आराध्य नहीं रह जाते। अहुरमज़्दाको छः गुणोंसे विभूषित करते हैं—मङ्गलमयी शक्ति, न्यायपरायणता, पवित्रता, स्वास्थ्य, अमरत्व और कार्यकरी शक्ति। गाथा-युगमें इन छः गुणोंका मानवीकरण किया गया और अहुरमज़्दासे अलग इनकी कल्पना की गयी लेकिन ऐसा भी माना गया है कि वे भिन्न-भिन्न और अलग नहीं हैं और केवल गुणोंका सङ्केत मात्र करनेवाले हैं। लेकिन परवर्ती आवेस्ता-कालमें यह बात नहीं रह गयी। इन छः गुणोंको छः उपास्य देवताओंका रूप दे दिया गया। इनके साथ ही अन्य प्राकृतिक शक्तियोंका भी दैवीकरण हो गया और अहुरमज़्दाके साथ-ही-साथ इनकी भी उपासना होने लगी। जिन देवताओंको ज़रथुस्त्रने स्थान-च्युत कर दिया था उन्होंने फिरसे आसन ग्रहण कर लिया।

अशुभ और बुरी शक्ति जो शुभ और अच्छी शक्तियोंके साथ-साथ वर्तमान है, उनका प्रतीक अंग्र मैन्यु या अहरिमान है। यह नाम गाथाओंमें केवल एक बार आया है। परवर्ती आवेस्तामें यह बार-बार आता है। यह ज़रथुस्त्रकी अपनी कल्पना है। द्रुज, जो ऋग्वेदका द्रुह (=अनिष्टकारी दुष्ट शक्ति) है, अंग्र मैन्युसे अधिक प्रचलित था। यह अहरिमान, अहुरमज़्दाका विरोधी है और अशुभ करनेवाला है। उसमें अहुरमज़्दाके शुभकर्मोंके प्रतिरोध करनेकी शक्ति है और इस प्रकारसे कुछ कालके लिए अहुरमज़्दाकी शक्तिको वह बाधा पहुँचा सकता है। उसकी सर्वशक्तिमान होनेवाली शक्तिको यह खर्वित करता है। वैसे अन्तमें अहुरमज़्दाकी मङ्गलविधायिनी शक्ति ही विजयी होती है।

मनुष्य पापका प्रायश्चित्त शुभकर्मोंके सम्पादन द्वारा कर सकता है। जो जितना अधिक पुण्य सञ्चय करेगा उतना ही उसका आनेवाला जीवन सुखमय होगा। उसके सञ्चित पुण्य-कर्मोंका लेखा-जोखा अहुरके 'आवास' में लिखा हुआ रहता[1] है। ज़रथुस्त्र धर्मके पथपर चलनेवाले व्यक्तिके किसी भी शुभकर्मको नष्ट नहीं होने देते। वह उसके पुण्य-खातेमें

१. बार्थोलोमय : अ. ज़ो. पृ० १६० पर उद्धृत।

दर्ज हुए बिना बाकी नहीं रहता। मनुष्य शुभकर्मों द्वारा, सत्य-भाषण द्वारा तथा सत्यनिष्ठा और शुभ विचारोंके द्वारा धर्मको शक्ति-सम्पन्न बनाता है और इनके विपरीत आचरण करके अधर्मको बढ़ाता है। सत्य-निष्ठा और सदाशयता, दूसरोंको सहायता पहुँचाने आदिको आवेस्तामें पूरा महत्त्व दिया गया है।

वेन्दीदादके अनुसार जरथुस्त्रीय धर्मके तीन मूलभूत सिद्धान्त हैं। (१) कृषि और पशुपालन मनुष्यके लिए श्रेष्ठ कर्म हैं। जीविकोपार्जनकी दृष्टिसे इनसे बढ़कर और दूसरा कोई काम नहीं हो सकता। (२) सृष्टिमें भलाई और बुराईमें निरन्तर सङ्घर्ष चल रहा है। (३) हवा, पानी, आग और पृथ्वी ये पवित्र तत्त्व हैं इन्हें अपवित्र नहीं करना चाहिये। उपवासके लिए इस धर्ममें कोई स्थान नहीं। उपवासके विरुद्ध आदेश दिये गये हैं। विवाहको आवश्यक माना गया है। हेरोडोटसके अनुसार राजा उस परिवारको सालमें पुरस्कार देता था जिसके घरमें सबसे अधिक व्यक्ति हों। बहु-विवाहपर भी कोई रुकावट नहीं है। बहते हुए जलके स्रोत अथवा आगको अपवित्र करना अधार्मिक माना जाता है। आग जिसमें अपवित्र नहीं होने पावे, पुरोहित यज्ञ-वेदीके पास जब रहता है तब अपने मुँहको ढँके हुए रहता है।

सासानी सम्राटोंने ईरानमें फिरसे जरथुस्त्रीय धर्मको जीवित किया और नये सिरेसे उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की। सासानियोंका काल (सन् २२१ ई० से सन् ६५२ ई० तक) कई दृष्टियोंसे ईरानके इतिहासका महत्त्वपूर्णकाल है। ईरानी इस कालको बड़े गर्वके साथ याद करते हैं। इन सासानी सम्राटोंने ईरानको वास्तविक रूपमें स्वतन्त्र किया और प्राचीन ईरानी साम्राज्यके गौरवको फिरसे लौटाया। आकीमिनी-कालके प्रतापको सासानियोंने पुनर्जीवित किया। सासानी अपनेको आकीमिनी-वंशका मानते हैं। ईरानी इतिहासकार पार्थियनोंको यह गौरव देनेके लिए तैयार नहीं। उनके प्रति ईरानियोंके भीतर एक घृणाका भाव है। इन्हीं पार्थियनोंको पराजितकर सासानियोंने अपना साम्राज्य कायम किया।

ईरानी परम्पराके अनुसार अन्तिम आकीमिनी शासक इस्फन्दियारको रुस्तमने मार डाला। इस्फन्दियारका पुत्र बहमन था जिसने अपनी बहन हुमैसे शादी की। बहमनके पुत्र दाराका जन्म बहमनकी मृत्युके बाद हुआ। बहमनका भाई सासान था। दाराका जन्म जब हुआ तो सासान-को बड़ी निराशा हुई कि अब उसे गद्दी नहीं मिलेगी। सासानने राज-धानी छोड़ दी और जङ्गलोंमें जाकर गड़ेरियेका जीवन बिताने लगा। इसी सासानसे सासानी वंशकी उत्पत्ति हुई।

सासानी वंशकी उत्पत्तिके साथ कितनी काल्पनिक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। उन कहानियोंको पढ़नेसे ऐतिहासिक तथ्योंका पता तो उतना नहीं चलता लेकिन उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सासानियोंने किस प्रकारसे राजाको परमात्माका प्रतिनिधि माननेके सिद्धान्तको पल्लवित किया। फिरदौसीके शाहनामा तथा पहलवी भाषामें लिखित कारनामकमें ये कहानियाँ प्रायः एक ही जैसी हैं[1]। इनके अनुसार ईरान दो सौ चालीस छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था और उनके अलग-अलग शासक थे और पार्थियनोंका अन्तिम शासक आरदवाँ उनमें प्रधान था। इन शासकोंमें फारसका राजा पापक था जिसे पुत्र नहीं था। सासान जो बहमनकी पाँचवीं पीढ़ीमें पड़ता है, उसके यहाँ चरवाहेकी नौकरी करने लगा। एक दिन इस पापकने स्वप्न देखा कि उसके गड़ेरिये सासानके सिरसे निकलनेवाले ज्योति-पुञ्जसे समस्त संसार आलोकित है। उसने दूसरे दिन सपनेमें देखा कि बहुमूल्य आभूषणोंसे सज्जित उजले हाथीपर सवार होकर सासान बाहर निकलता है और सब लोग उसकी अधीनता स्वीकार कर रहे हैं। तीसरी रातको उसने फिर सपनेमें देखा कि पवित्र अग्नि सासानके घरमें बड़े जोरोंसे जल रही है और समस्त संसारको प्रकाश-मय बना रही है। पापकने सासानके वंशका हाल जाननेके बाद उसे राजाओंके आभूषणसे विभूषित किया और उससे अपनी लड़कीकी शादी कर दी। ज्योतिषियों और विचक्षण लोगोंने पापकके सपनोंका मतलब

1. लि. हि. प., पृ० १३७-१५० तथा हि. प., पृ० ३९३।

बतलाते हुए पापकसे कहा था कि या तो सासानको राज्य प्राप्त होगा या उसके पुत्रको। सासानका पुत्र आर्देशीर पापककी लड़कीसे ही उत्पन्न हुआ जो सासानी वंशका प्रथम बादशाह हुआ।

आर्देशीरके नामके साथ भी कल्पित कहानियाँ जुड़ी हुई हैं जिनसे सासानी सम्राटोंके देव-अंशसे युक्त होनेकी पुष्टि होती है। ईश्वरका प्रतिनिधि होनेका दावा सासानियोंका जिस हदतक पहुँच गया था वह बहुत कम जगहोंमें देखा जाता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि ईरानमें इस सिद्धान्तका जितना प्राबल्य था उतना अन्य जगहोंमें नहीं। इस सिद्धान्तने अपना प्रभाव इतना अधिक डाला कि समस्त ईरानकी जनताका इसमें अगाध विश्वास हो गया। ईरानी जनतामें यह चीज इतनी अधिक घर कर गयी है कि ईरानी सम्राटोंके विरुद्ध बलवा करनेवाला अथवा जबर्दस्ती गद्दीपर कब्जा करनेवाला जब-तक राज-परिवारका न हो अथवा उसके साथ उसका रक्तका सम्बन्ध न हो तबतक उसे ईरानी जनताका सहयोग नहीं प्राप्त हो सकता। यह चीज इस्लामके प्रवेशके बाद भी ईरानी जनतामें पायी जाती है। हम पहले ही देख चुके हैं कि इसी सिद्धान्तके कारण ईरानियोंने अलीके खलीफा होनेका समर्थन किया और उन्हें ही हजरत मुहम्मदका असली उत्तराधिकारी माना। शिया-सम्प्रदायकी प्रबलता जो ईरानमें इतनी अधिक हुई उसके मूलमें यही सिद्धान्त कार्य करता रहा है।

आर्देशीरके नामके साथ जुड़ी हुई कल्पित कहानीसे यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकारसे राजाको ईश्वरका प्रतिनिधि माननेका सिद्धान्त ईरानी समाजमें चलता आ रहा है। फिरदौसीने शाहनामा-में इसका जिक्र किया है। कहा जाता है आरदवाँके दरबारसे आर्देशीर एक परम रूपवती और चतुर लड़कीको लेकर फारस भाग आया। आर-दवाँकी राजधानी रे में थी।[1] फिरदौसीने उस लड़कीका नाम गुलनार बतलाया है। गुलनार आरदवाँको सभी मामलेमें सलाह दिया करती थी।

१. लि. हि. प. पृ० १४३।

वह आर्देशीरसे प्रेम करने लगी और सब कुछ छोड़कर उसके साथ भाग आयी। सम्राट् आरदवाँको अत्यन्त क्रोध हुआ और उसने चार हजार आदमियोंकी एक छोटी-सी फौज लेकर उनका पीछा किया। उनका पीछा करते हुए वह एक गाँवमें पहुँचा और गाँववालोंसे उन दोनोंके बारेमें पूछा। उन लोगोंने बतलाया कि वे लोग सूर्योदयके समय हवाकी तरहसे उड़ते हुए घोड़ेपर गये और अब वे इतनी दूर निकल गये होंगे कि आरदवाँके लिए उन लोगोंको पकड़ लेना असम्भव-सा है। लोगोंने यह भी बतलाया कि एक बहुत बड़ा और अत्यन्त सुन्दर भेड़ा उन दोनोंके पीछे दौड़ा चला जा रहा था। आरदवाँने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उधरसे एक कारवाँ आ रहा था और कारवाँवालोंसे उसे मालूम हुआ कि वे दोनों हवाके समान घोड़ेपर सवार उड़े जा रहे थे। और एक सवारके बगलमें एक सुन्दर भेड़ा बैठा हुआ था। आरदवाँको बतलाया गया कि वह भेड़ा खुर्रके-कयान (राजकीय तेज) है और वह आर्देशीरको प्राप्त हो गया है। अतएव उसका पीछा करना व्यर्थ है। यह सुनकर आरदवाँ पीछा करना छोड़ लौट पड़ा।

आर्देशीर सासानी वंशका संस्थापक हुआ। आर्देशीरके नामके साथ यद्यपि बहुत-सी कल्पित कहानियाँ जुड़ी हुई हैं फिर भी वह ऐतिहासिक व्यक्ति है। उसके समयके सिक्के और शिलालेख भी पाये गये हैं। उसके पुत्र शापूरके समयके दो शिलालेख पाये गये हैं जिनसे इस वंशसे सम्बन्धित बातोंका पता चलता है। एक तो नक्शे रजबका शिलालेख है जो पहलवी भाषामें है और उसके साथ उसका अनुवाद ग्रीक भाषामें दिया हुआ है। दूसरा शिलालेख हाजियाबादका है जो नक्शे रजबवाले शिलालेखसे बड़ा है। आर्देशीरने पार्थियनोंको हराया और ईरानके बहुत-से प्रदेशोंको जीतकर अपने राज्यमें मिलाया। केवल देशके भीतरी प्रान्तोंपर ही उसने विजय नहीं प्राप्त की बल्कि उसके प्रभुत्वका विस्तार ईरानके बाहरतक पहुँच गया था। आर्देशीरने पार्थियनोंको हारमुजकी लड़ाईमें पूरी तरहसे पराजित कर दिया। साधारणतः ऐतिहासिक सन् २२६ ई० या सन् २२७ ई०

को सासानी वंशकी स्थापनाका साल मानते हैं जब हारमुजकी लड़ाई हुई थी। कहा जाता है कि आर्देशीर ने जरथुस्त्री-धर्मको बड़े उत्साहसे पुन-र्जीवित किया और समस्त देशको इस धर्मका अनुयायी बनाया। पार्थियन राजाओंने भी जरथुस्त्री-धर्मको अपनाया था लेकिन बादमें धीरे-धीरे वे इससे विरत होते गये। पार्थियनोंके समयमें मागियोंकी पूछ नहीं होती थी और पवित्र अग्नि भी अपना तेज खो चुकी थी और सूर्य, चन्द्र तथा अन्य देवताओंकी पूजा चल पड़ी थी। आर्देशीरने फिरसे मागियोंको उनके उचित स्थानपर बिठाया और जरथुस्त्री धर्मको क्रियाशील बनाया।

आर्देशीरके पुत्र शापूर प्रथमका काल राजनीतिक दृष्टिसे महत्त्वका तो रहा ही लेकिन हमारे अध्ययनकी दृष्टिसे उस कालमें मानी-धर्मका प्रभाव और विस्तार सबसे महत्त्वकी घटना थी। इस धर्मने बादकी पीढ़ियोंपर एक गहरा और व्यापक प्रभाव डाला है। इसीलिए यह आवश्यक है कि इस धर्मकी थोड़े विस्तारके साथ चर्चा की जाय। शापूर सन् २४० ई० में गद्दीपर बैठा लेकिन इस अध्ययनकी दृष्टिसे उसके राज्यकी राजनीतिक घटनाओंकी चर्चा करना बहुत कामका नहीं साबित होगा अतएव इस प्रसङ्गके मनोरञ्जक होनेपर भी हम इसकी चर्चा नहीं कर रहे हैं।

मानी-धर्मका प्रभाव समान रूपसे पूर्वी तथा पश्चिमी देशोंपर पड़ा। इस शक्तिशाली धर्मके तत्त्वों तथा मानीके व्यक्तित्वको बहुत दिनोंतक यूरोपीय विद्वानोंने पश्चिमी विद्वानोंके प्रकट किये हुए विचारोंके आधार-पर ही समझनेकी कोशिश की है। लेकिन यह आधार अपने आपमें अपूर्ण तथा एकाङ्गी था और उसमें भ्रान्तियोंका होना बिल्कुल स्वाभाविक था। बादमें फारसी तथा अरबी ग्रन्थोंके आधारपर मानी-धर्मका अध्ययन प्रारम्भ हुआ। ये आधार बहुत दूरतक सही और दुरुस्त थे लेकिन जिन यूरोपियन विद्वानोंने इनका सहारा लिया उनकी दृष्टि-भङ्गी अपनी थी और वह बहुत कुछ पहलेके किये हुए अध्ययनों तथा यूरोपीय ग्रन्थोंसे प्रभावित थी। इसीलिए किसीने मानी-धर्मको जरथुस्त्री-धर्मसे प्रभावित ईसाई-धर्म कहा तो किसीने इसे ईसाई-धर्मसे प्रभावित जरथुस्त्री-धर्म

कहा। मजेकी बात यह है कि ईसाई-धर्म और जरथुस्त्री-धर्म दोनों ही इस धर्मके कट्टर विरोधी हैं। हम आगे जब इस धर्मके सिद्धान्तोंका अध्ययन करेंगे तो देखेंगे कि यह धर्म कितना अधिक भारतीय विचार-धारा तथा बौद्ध-धर्मसे प्रभावित है। इस धर्मकी विवेचना सम्भवतः भारतीय विद्वानोंने नहीं की है। मैं समझता हूँ कि जिस दिन भारतीय विचारधारा और परम्परासे परिचित विद्वान इस धर्मकी छानबीन करेंगे तो बहुतसे तथ्योंपर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ेगा। मुझे इस बातका आग्रह नहीं है कि यह धर्म भारतवर्षसे ज्योंका त्यों ईरानमें पहुँच गया है।

मानी-धर्म ईसाकी तीसरी शताब्दीमें ईरानमें रूप ग्रहण करता है और लगभग एक हजार वर्षतक बना रहता है। ईसाकी तेरहवीं शताब्दीमें अलग एक धर्मके रूपमें यह सदा-सर्वदाके लिए विलुप्त हो गया। यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि इतने विरोधी तत्त्वोंके मौजूद रहते हुए भी यह धर्म इतने लम्बे कालतक टिका रहा और बहुत-से लोग इसके अनुयायी बने रहे। खलीफा हारूँ अल-रशीदके पिता खलीफा अल-महदी-के समयमें मानी-धर्मके अनुयायियोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गयी कि उनके दमनके लिए एक विशेष कर्मचारी नियुक्त किया गया था। यह अवस्था इसके प्रारम्भके लगभग साढ़े पाँच सौ वर्षोंके बादकी है। अल-महदीका काल सन् ७७५ ई० से सन् ७८५ ई० है। सन् ९९८ ई० में 'फिहरिस्त' के अनुसार केवल बगदादमें इस धर्मके कट्टर अनुयायियोंकी संख्या तीन सौ थी[1]। प्रच्छन्न रूपसे यह आज भी बना हुआ है। इस धर्मके प्रवर्तक मानीका जन्म सन् २१५ ई० या सन् २१६ ई० में हुआ। कहते हैं कि वह हमदानका रहनेवाला था और एक पैरका लंगड़ा था। कहते हैं कि उसकी माँ पार्थियनोंके राजवंशकी थी। उसके पिताका नाम पातक था। कहा जाता है कि जब उसकी उम्र बारह या तेरह वर्षकी थी, उसी समयसे उसे ईश्वरीय ज्ञानका प्रकाश मिलने लगा और जब वह चौबीस वर्षका हुआ तब उसने अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करना शुरू

१. लि. हि. प. पृ० १६३।

किया। इसके लिए उसे जैसे ईश्वरीय आदेश मिला और उसने सर्वप्रथम अपने आपको इस रूपमें शापूर प्रथमके राज्यारोहणके समय प्रकट किया। यह घटना सन् २४२ ई० की है। ऐसा कहा जाता है कि पहले ही उसने शापूरके भाई फिरोजको अपना अनुयायी बना लिया था। कुछ दिनोंतक तो उसका प्रभाव शापूरपर काफी बना रहा लेकिन बादमें चलकर शापूर उससे अप्रसन्न हो गया। उसने उसे देशनिकालेकी आज्ञा दे दी। बीस वर्षोंसे भी अधिकके निर्वासन कालमें[1] उसने अपना समय भारतवर्ष, तिब्बत और चीनमें बिताया। याकूबी[2]का कहना है कि शापूरने जब मानीके सिद्धान्तोंको स्वीकार कर लिया तब बहुत लोगोंने इस बातकी चेष्टा की कि शापूर मानीके सिद्धान्तोंको न माने लेकिन शापूरने उसपर ध्यान नहीं दिया और दस वर्षोंतक उसपर मानीका प्रभाव बना रहा। कहा जाता है कि जब अग्निपूजक पुरोहितने उसे शास्त्रार्थमें हरा दिया तब शापूर मानीकी बातोंको माननेसे विरत हुआ और क्रुद्ध होकर उसे फाँसीकी आज्ञा दे दी। लेकिन वह भागकर भारतवर्षमें चला आया और तबतक वहाँ रहा जबतक शापूरकी मृत्यु नहीं हो गयी। मानी सन् २७१ ई० में निर्वासनसे लौटकर ईरान चला आया और शापूरके पुत्र हुरमुज या हौर्मिसदासने उसका खूब सम्मान किया। उसने अपने मतका प्रचार करना प्रारम्भ किया और अल्पकालमें ही उसके बहुत अनुयायी हो गये। मेसोपोटामियाके ईसाइयोंमें उसे बहुत बड़ी सफलता मिली। दुर्भाग्यवश हुरमुज एक ही वर्षतक राज्य कर सका और उसका भाई बहराम[3] प्रथम राजा हुआ। यह विलासी था और उसका बहुत समय आमोद-प्रमोदमें ही बीत जाता था। मानी और उसके सिद्धान्तोंका यह परम शत्रु था। उसने मानी तथा उसके अनुयायियोंके विरुद्ध एक

१. ज़ो. स्ट., पृ० १८९।

२. लि. हि. प., पृ० १५६।

३. अल-बरुनी और अल-याक़ूबीने बहरामको हुरमुज़का पुत्र कहा है।

ज़बर्दस्त अभियान चलाया। उसने मानीको पकड़ मँगवाया। अल-बरूनी-का कहना है कि बहरामने उसे मरवा डाला और उसके शरीरमें घास भरवाकर जन्दे-शापूरके दरवाजेपर टँगवा दिया। उस दरवाज़ेको आज भी 'मानी-दरवाजा' कहते हैं। अल-याक़ूबीके अनुसार बहरामने मानीको रातभर कैदमें रखनेके लिए आज्ञा दी थी और यह कहा था कि दूसरे दिन उसे फाँसी दे दी जायगी। मानीकी मृत्यु दुश्चिन्ताके कारण अपने आप कैदमें हो गयी और दूसरे दिन उसके मृत शरीरमें बहरामने घास भरवा दिया।

मानीके बहुतसे अनुयायियोंको बहरामने मरवा दिया। बहरामने तीन वर्ष (सन् २७२ ई० से सन् २७५ ई० तक) राज्य किया। मानीके अनुयायी प्राणोंके भयसे ईरान छोड़कर ट्रान्सोक्सियानामें भाग गये और शमनियों (= श्रमणों) के साथ वास करने लगे और जैसा कि फ़िहरिस्तमें[1] कहा गया है, जब-जब उनपर अत्याचार किया गया वे देश छोड़कर भाग जाते और उन देशोंमें जाते जहाँ उन्हें शरण मिलती। खलीफा अल-मुक़्तदिर (सन् ९०८ ई० से सन् ९३२ ई०) के कालमें उनपर बहुतसे जुल्म किये गये और उन्हें देश छोड़कर भागना पड़ा। इन्हीं मानीके भगोड़े अनु-यायियोंमें लगभग पाँच सौ समरकन्दमें थे। खुरासानके गवर्नरको जब यह पता चला तो उसने उन्हें मरवा डालनेकी धमकी दी। फ़िहरिस्तके लेखक-का कहना है कि जब चीनके बादशाहको यह मालूम हुआ तो उसने कहलवा भेजा कि अगर उनपर किसी प्रकारकी आँच आयी तो वह अपने राज्यमें बसनेवाले सभी मुसलमानोंको मरवा डालेगा और मस्जिदोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा। खुरासानके गवर्नरने इसपर उन लोगोंसे सिर्फ जिज़िया टैक्स लेकर उन्हें छोड़ दिया। फ़िहरिस्तके आधारपर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मानीके अनुयायी उन्हीं स्थानोंपर गये जहाँ पहलेसे ही बौद्ध-धर्मके अनुयायियोंका केन्द्र था। चीनके बादशाहसे मतलब मंगोलोंसे हो सकता है जो बौद्ध-धर्मके अनुयायी थे।

---

१. लि. हि. प. पृ० १६३।

फिहरिस्तमें यह भी कहा गया है कि बहरामके अत्याचारसे तथा प्राणोंके भयसे भागकर बल्ख नदी पारकर 'खाकों'—जिसे ब्राउनने 'खाँ' कहा है—के राज्यमें वे लोग चले गये। बल्ख बौद्ध-धर्मके अनुयायियोंका केन्द्र था। 'खाँ' मंगोलोंकी उपाधि थी और वे बौद्ध-धर्मके माननेवाले थे। इन सारी बातोंको ध्यानमें रखते हुए तथा समान रूपसे ईसाइयों, जरथुस्त्री-धर्मके माननेवालों, यहूदियों और मुसल्मानोंकी उनके प्रति शत्रुताके भावको देखते हुए यह अनुमान करना गलत नहीं होगा कि मानीका धर्म बौद्ध-धर्मका संस्करणमात्र था अथवा बौद्ध-धर्मसे अत्यधिक प्रभावित था।

मानीके सिद्धान्त क्या थे? कहा जाता है कि मानीके लिखे हुए कई ग्रन्थ हैं जिनमें उसने अपने मतपर प्रकाश डाला है। अल-याकूबीने उसके कई ग्रन्थोंका उल्लेख किया है जिनमें उसके सिद्धान्त, साधना, आध्यात्मिक रहस्य आदिपर प्रकाश डाला गया है। उन पुस्तकोंके नाम हैं—कान्जिवुल-इहिया, शाबरकाँ, किताबुल-हुदा वाअत-तदबीर, सिफ्रुल असार तथा सिफ्रुल जवाबिर।

मानीने इस संसारको दुःखका कारण और सम्पूर्णतया माया-मोह और कलुषसे भरा हुआ माना है। यह प्रकाश और अन्धकारके संयोगसे निर्मित है। अतएव इससे छुटकारा पानेके लिए और उस प्रकाशमें मिल जानेके लिए संसारके माया-मोहका त्याग करना चाहिये। बुराइयोंसे बचना चाहिये। अतएव ब्रह्मचर्य और संन्यासपर इस धर्ममें जोर डाला गया है। शादी करना और सन्तान उत्पन्न करना इस दृष्टिसे गर्हित माना गया है। यद्यपि यह संसार बुराइयोंसे भरा हुआ है लेकिन इसकी अच्छाई और सार्थकता एक बातमें है और वह यह कि यह संसार मुक्ति पानेका अवसर प्रदान करता है। इसमें रहकर मनुष्य मुक्ति पानेका प्रयास करता है यही एकमात्र वस्तु है जिसे इस संसारकी अच्छाई कहा जा सकता है। अन्धकार और प्रकाश दो बिल्कुल भिन्न तत्त्व हैं अतएव मुक्ति लाभ होनेपर यह समस्त ब्रह्माण्ड टूटकर बिखर जायगा और प्रकाश उस परम-ज्योतिमें मिल जायगा और अन्धकार उससे अलग हो जायगा। अन्धकार

न विनष्ट होनेवाला है और न उसे मुक्ति ही प्राप्त हो सकती है। मानी-धर्म संन्यास, तपस्या, आदिपर जोर देता है। असत्य-भाषण और मिथ्याचरणकी निन्दा तथा संसारके प्रलोभनोंसे बचनेके लिए इसमें बार-बार कहा गया है। समस्त विश्वको अपना समझनेकी ओर यह धर्म प्रेरित करता है। इस धर्मने यहूदी धर्मका बहुत बड़ा विरोध किया है लेकिन बुद्ध, ईसा और जरथुस्त्रको पैगम्बर माना है। ईसाके बारेमें कहा गया है कि जिन ईसाको क्रासपर चढ़ाया गया वे विधवाके पुत्र थे, असली ईसा तो ज्योति-स्वरूप थे जिन्होंने नर रूप धारण किया था। कुरानमें भी ईसाके बारेमें कुछ इसी प्रकारकी बात कही गयी है। मूर्ति-पूजाका विरोध इस धर्ममें है। लोभ, हत्या, चोरी, असत्य, व्यभिचार आदिसे बचनेके लिए इस धर्ममें आदेश दिया गया है। धर्ममें किसी प्रकारके आडम्बरको बुरा माना गया है। इस धर्मका प्रभाव काल और देश दोनोंमें व्याप्त था। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि ईसाकी तीसरी शताब्दीमें इसका प्रादुर्भाव हुआ और ईसाकी तेरहवीं शताब्दीतक इसका अस्तित्व बना रहा। इसने कला और साहित्यपर व्यापक प्रभाव डाला है। इसका प्रभावक्षेत्र यूरोपसे लेकर मध्य एशिया और तिब्बततक था। ईरानमें इस्लामके प्रवेशके बाद भी यह किसी-न-किसी रूपमें बना रहा। बहुतसे प्रभावशाली लोग मानी-धर्मके अनुयायी होनेके सन्देहमें खलीफों द्वारा मार डाले गये। दक्षिण फ्रान्समें सन् १२०९ में साइमन डि मौन्टफोर्टने बहुतोंको मानी-धर्मका अनुयायी कहकर मार डाला। इस धर्मने बादके मतवादों और विचारधाराओंको किसी-न-किसी रूपमें प्रभावित किया है। कहते हैं कि यजीदियोंके कुछ सिद्धान्तोंमें मानी-धर्मके अवशेष रह गये हैं। मानीके जीवन तथा धर्म सम्बन्धी बहुत सामग्री इधर मिली है जिससे इस धर्मके सम्बन्धमें बहुत कुछ प्रकाशमें आया है। तुरफानके ओएसिस तथा पूर्वी तुर्किस्तानमें जो लिखित सामग्री मिली है उसको प्रकाशमें लाने तथा उसकी व्याख्या करनेका श्रेय जर्मन प्रोफेसर एफ, डबल्यू. के. मूलरको है। सन् १९०४ ई० में प्रोफेसर मूलरका यह अध्ययन प्रकाशित हुआ है।

मानी-धर्मके सम्बन्धमें अधिक जानकारी प्राप्त करनेके लिए एडवर्ड जी० ब्राउनकी पुस्तक 'ए लिटररी हिस्ट्री आफ़ पर्शिया' तथा ए. वी. विलियम्स जैक्सनकी पुस्तक 'ज़ोरैस्ट्रियन स्टडीज़: ईरानियन रेलिजन एण्ड वेरियस मोनोग्राफ्स' की सहायता ली जा सकती है।

इस्लामके अनुयायियोंने मानीके अनुयायियोंको 'ज़िन्दीक़' कहा है। यह 'ज़िन्दीक़' शब्द भी कम रहस्यमय नहीं है। इसकी तरह तरहसे व्युत्पत्ति करनेकी चेष्टा की गयी है। बेवानने[1] इसपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। मानीके उन अनुयायियोंको जो साधारण कोटिके थे और जो ब्रह्मचर्य पालन तथा संन्यास-जीवन नहीं बिता सकते थे, उन्हें फ़िहरिस्तमें 'श्रमआ' कहा गया है और जो संन्यास जीवन बिताने वाले थे, उपवास करते थे, सांसारिक प्रलोभनोंसे विरत थे उन्हें 'सिद्दीक़' कहा गया है। सम्भवतः यह अरमइकका 'ज़द्दीक' शब्द है जो पहलवीमें 'ज़न्दीक' हो गया और उसीका अरबी रूप 'ज़िन्दीक़' है। इस शब्दका प्रयोग प्रारम्भमें केवल मानी तथा मानीके अनुयायियोंके लिए किया जाता था और बादमें उन सभी लोगोंके लिए इसका व्यवहार होने लगा जो इस्लामके विरोधी तथा इस्लामके सिद्धान्तोंमें पूरी आस्था नहीं रखते थे। जाहिज़ (सन् ८६८ ई०) ने सम्भवतः मानी तथा उसके अनुयायियोंके लिए ही इस शब्दका प्रयोग किया था[2]। लेकिन गोल्ड-ज़िहर[3]का कहना है कि जाहिज़ने 'ज़िन्दीक' शब्दका प्रयोग किसी भारतीय साधु, बौद्ध भिक्षु अथवा उनकी नक़ल करनेवालोंके लिए किया था। अबुल अलाके अनुसार 'ज़िन्दीक' वह है जो पैग़म्बर और पवित्र ग्रन्थपर ईमान नहीं लाता। 'ज़िन्दीक' कहकर बहुतोंको मौतके घाट उतारा गया है।

मानीकी तरहसे ईसाकी पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें मज़दकका

---

१. लि. हि. प., पृ० १५९।

२. लि. हि. अ., पृ० ३७५।

३. हि. अ., पृ० ४३५।

आविर्भाव हुआ था जिसके मतको माननेवाले पूर्वी ईरानमें बहुसंख्यक लोग थे। मजदकके सिद्धान्तोंका प्रचार बड़ी तेजीसे हुआ। निम्न श्रेणीके लोगोंको इसने विशेष रूपसे आकृष्ट किया। यह मत इतना प्रभावशाली हो उठा कि इसने राष्ट्रीय भावनाके साथ संयुक्त होकर अब्बासी खलीफोंके विरुद्ध एक बहुत बड़े विद्रोहका रूप धारण किया और इसका दमन करना अब्बासियोंके लिए साधारण काम नहीं था। खलीफा मन्सूर (सन् ७५४ ई०–सन् ७७५ ई०)को इनके विद्रोहका सामना करना पड़ा।

मजदकके सिद्धान्त भारतीय विचारधारासे बहुत अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। मजदकका कहना था कि संसारकी सारी बुराइयोंकी जड़ तीन वस्तुओंमें है—ईर्ष्या, क्रोध और लोभ। इन्हीं तीनोंके कारण संसारमें इतना दुःख है और इतना वैषम्य फैला हुआ है। यह वैषम्य परमात्माकी इच्छाके विरुद्ध है। परमात्मा सबको समान दृष्टिसे देखता है और समस्त संसारके प्राणियोंमें समानताका भाव भरना ही मजदकने अपना उद्देश्य बतलाया है। सबमें समानता लाना मजदकका सबसे बड़ा सिद्धान्त था। उसने सम्पत्तिपर सबका समान अधिकार माना है और बहुतोंका यह भी कहना है कि उसने स्त्रियोंपर भी सबका समान अधिकार बतलाया है। इसके सम्बन्धमें जो कुछ सामग्री आज प्राप्त है वह उसके विरोधियोंका लिखा हुआ है जिसपर सब समय विश्वास कर लेना उचित नहीं होगा। मजदकके सिद्धान्तोंमें संन्यासका भी स्थान है। मांस खाना अथवा खून बहाना इस धर्ममें वर्जित है। भोजनमें संयम तथा अल्पाहारपर जोर दिया गया है। पशु-बलि इस धर्मकी दृष्टिमें निन्दनीय है। कहा जाता है कि अपने धर्मके प्रचारके लिए मजदकने छल-कपटका भी आश्रय लिया था और सासानी बादशाह कोबाद या कबादको उसने अपने धर्ममें छलके द्वारा ही दीक्षित किया। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ईसाई तथा जरथुस्त्री धर्मवाले मजदकोंके परम शत्रु थे। अतः जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि इन बातोंपर विश्वास करनेमें सब समय सावधानी बरतनी होगी क्योंकि ऐसा भी सम्भव है कि उसे लोगोंकी दृष्टिमें नीचा

दिखानेके लिए उसके विरोधियोंने ये कहानियाँ गढ़ ली हों। कोबाद जो सन् ४८७ ई० में ईरानका बादशाह हुआ इस धर्ममें दीक्षित हो गया और इसके लिये उसे राजगद्दी छोड़नेके लिए बाध्य भी होना पड़ा। उसका भाई जामास्प गद्दीपर बैठा लेकिन लोगोंके बहुत चाहनेपर भी उसने कोबादको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाई और बादमें उसके लिए गद्दी भी छोड़ दी। दूसरी बार जब राज्यका अधिकार कोबादके हाथमें आया उसने मजदक-धर्म से राजकीय संरक्षण हटा लिया। नोए-ल्दकेका कहना है कि कोबादने इसीलिए इस धर्म को स्वीकार किया कि वह पुरोहितों तथा अन्य सरदारोंकी शक्ति कम करना चाहता था अतएव इस धर्म के उत्थान और पतनमें तत्कालीन राजनीतिका बहुत बड़ा हाथ रहा है।

अरब इतिहासकार तबारीके अनुसार मजदक पर्सपोलिसका रहनेवाला था जो निशापुर प्रान्तमें है। बहुत लोगोंको इसमें सन्देह है कि इस धर्म का प्रवर्त्तक मजदक था। कुछ लोगोंका कहना है कि वास्तवमें जरादुश्त नाम-का एक व्यक्ति जो फारस प्रान्तके फसा स्थानका रहनेवाला था, वही इस धर्म का जन्मदाता है। उसके पिताका नाम खुरंगाँ बतलाया जाता है। आवेस्ताके पहलवी भाषामें अनुवाद करनेवाले अनुवादकने मजदकके पिताका नाम बामदाद लिखा है। चाहे जो हो, मजदकने जब इस धर्म में बादशाह कोबादको दीक्षित किया तो उसकी प्रजामें इस धर्म का प्रचार बड़े जोर-शोरके साथ शुरू हुआ। जैसा कि हमने पहले कहा है कि इस धर्म के प्रचारमें तथा राजाका आश्रय पानेमें राजनीतिका बहुत बड़ा स्थान था उसी प्रकारसे मजदक तथा उसके अनुयायियोंकी हत्या तथा मजदक-धर्म के विनाशमें भी राजनीतिका ही हाथ रहा है। इतना तो निश्चित है कि कोबादके समय (सन् ५२८ ई० के अन्त या सन् ५२९ ई० के प्रारम्भ) में ही मजदकोंका नाश हुआ और जो बचे-खुचे रहे उनका नाश नौशेरवाँने कर दिया। नौशेरवाँ सन् ५३१ ई० में गद्दीपर बैठा। इस तरहसे यह धर्म कुचल दिया गया लेकिन यह समझना गलत

होगा कि यह धर्म हमेशाके लिए विलुप्त हो गया। कई शताब्दियों बाद निजामुल-मुल्कने अपनी पुस्तक 'सियासतनामा'में लिखा है कि इस्माइली इन्हीं मजदकोंके वंशधर हैं।

मजदकके अनुयायियोंके विनाशमें नौशेरवाँका बहुत बड़ा हाथ था। नौशेरवाँके राजत्व काल (सन् ५३१ ई०-सन् ५७८ ई०)की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओंमें यह भी एक थी। नौशेरवाँ सासानी वंशका एक बहुत प्रतापशाली बादशाह हुआ। उसके राजत्वकालमें ईरानकी उन्नति विभिन्न क्षेत्रोंमें हुई। उसकी न्यायप्रियता, दृढ़ता, उदारता, बुद्धिमत्ता तथा शासन करनेकी योग्यता ने उसके नामके चारों ओर एक ऐसे वातावरणकी सृष्टि कर दी है कि आज भी ईरानी बड़े गर्वसे उसकी याद करते हैं। वास्तवमें ईरानके इतिहासमें उसका स्थान बहुत ही ऊँचा है। जहाँ उसने बाहरी शत्रुओंपर विजय पायी वहाँ उसने भीतरी शासनको भी सुदृढ़ और सुव्यवस्थित किया। देशको समृद्धिशाली बनानेके लिए उसने कृषि-सुधार, सड़क आदिके निर्माणपर खूब जोर दिया। उसका ध्यान कहाँतक गया था इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि जब उसे लगा कि जनसंख्याकी वृद्धि देशकी उन्नतिके लिए आवश्यक है तो उसने एक प्रकारसे लोगोंको बाध्य किया कि स्त्री, पुरुष कोई भी अविवाहित न रहे। उसने इस बातपर ध्यान दिया कि सभी लोग काम करें। कोई बैठा न रहे। उसने यहाँतक इसपर जोर दिया कि भिखमंगी और बेकार समय काटनेवालेके विरुद्ध कानून बनाया और उन्हें जुर्म करार दिया। उसके समयमें कला, संस्कृति, दर्शन आदि की ईरान में खूब उन्नति हुई। विद्याका प्रचार खूब हुआ। भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानोंका उसके दरबारमें खूब सम्मान था। कहते हैं कि भारतवर्षसे शतरंजका खेल नौशेरवाँके समयमें ही ईरानमें गया और फिर वहाँसे यूरोप में।

नौशेरवाँके राजत्वकालकी दो घटनाओंका महत्त्व ईरानके इतिहासमें बहुत अधिक कहा जा सकता है। एक तो नौशेरवाँका दक्षिणी अरब-अल-

यमन-पर अधिकार करना और दूसरा नौशेरवाँके राज्य करनेके बयालीसवें वर्षमें हजरत मुहम्मदका अरबमें जन्म लेना। इस्लामके अनुयायियोंमें कितनी ऐसी कहानियाँ प्रचलित हैं जिनका सम्बन्ध नौशेरवाँ तथा हजरत मुहम्मदसे है। इस तरहकी कहानियाँ बादमें गढ़ ली गयी हैं जिनका उद्देश्य हजरत मुहम्मदके चमत्कारोंको सिद्ध करना है। उनकी दैवी-शक्तिको प्रकट करनेके लिए उन कहानियोंके नाना रूप प्रचलित हैं। इस तरहकी कहानियाँ प्रायः सभी धर्म-संस्थापकोंके नामके साथ जुड़ी हुई हैं। कहा जाता है कि जिस समय हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ उस समय नौशेरवाँको कई प्रकारके अशुभ लक्षण दिखलाई पड़े जिससे उसका चित्त शंकासे भर गया। कहते हैं कि उसका राजमहल भूकम्पसे काँप उठा और हजार वर्षों बिना बुझे जलती रहनेवाली पवित्र अग्नि बुझ गयी तथा सावझीलका पानी अकस्मात् सूख गया[1]। नौशेरवाँको इसका भीतरी अर्थ बतलाया गया कि उसके बाद उसके वंशके चौदह राजाओं तथा रानियोंका अधिकार ईरानकी गद्दीपर रहेगा। भाग्यचक्र कुछ ऐसा रहा कि नौशेरवाँके बाद उसके वंशके ग्यारह बादशाहोंका राज्य केवल पाँच वर्षोंके भीतर ही शेष हो गया। नौशेरवाँके पहलेके चौदह बादशाहों-का राज्य लगभग दो सौ वर्षोंतक था। नौशेरवाँकी मृत्युके बाद हत्या, षड्यन्त्रका बोलबाला रहा और सासानी वंशका पराभव आरम्भ हुआ और देखते-ही-देखते इस वंशका अन्त हो गया। इस प्रतापी वंशका अन्तिम बादशाह यज्दीगर्द तृतीय अत्यन्त निकम्मा और कमजोर साबित हुआ। अन्तमें उसे गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। वह इस्फहान, कर्मान होता हुआ बल्ख गया लेकिन उसके दुर्भाग्यने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसके पास जवाहिरातको छोड़कर अब और ऐसी कोई चीज नहीं रह गयी थी जिससे उसके बादशाह होनेका पता चलता। मर्वमें वह ठहरा हुआ था जब किसीने जवाहिरातके लोभमें पड़कर उसकी हत्या कर दी। चार सौ वर्षोंतक ईरानपर

१. लि. हि. प. पृ० १४१

सासानियोंका अधिकार बना रहा। आज भी ईरानी यज्दीगर्द तृतीयका उसके राज्यारोहणके दिन हर साल बारह सितम्बरको याद कर लिया करते हैं।

जिस प्रकारसे नौशेरवाँको आनेवाली घटनाओंका पता अशुभ लक्षणों-से लगा उसी प्रकारसे खुसरु परवीजको भी ये अशुभ लक्षण दीख पड़े जिनका अर्थ था कि सासानी वंशका अब विनाश होनेवाला है। इन अशुभ लक्षणकी चर्चा इस्लामके अनुयायी अतिरञ्जित करके कहते हैं। इस्लाम धर्मके धर्म प्रवण व्यक्तियोंतक ही यह बात सीमित नहीं है बल्कि मुसल्मान इतिहास-लेखकोंने भी इनका वर्णन किया है। तबारीके अनुसार खुसरु परवीजको कई प्रकारके अशुभ लक्षण दीख पड़े। कहा जाता है कि खुसरुने एक देवदूत की छाया देखी जो राजदण्डको तोड़ रहा था जिसका मतलब यह लगाया गया कि ईरानी सम्राट्की शक्ति उसी प्रकार-से टूट रही है। यह भी कहा जाता है कि दीवारोंपर लिखा हुआ यह पाया गया कि परमात्माने एक पैगम्बर भेजा है और उसके सामने एक धर्म-ग्रन्थ भी प्रकट किया है। उसपर ईमान लानेवालेका यह लोक और परलोक दोनों सुधर जायगा। अतएव खुसरु परवीजको चेतावनी दी गयी थी कि अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसका तथा उसके साम्राज्यका शीघ्र ही नाश हो जायगा। यह भी कहा जाता है कि टाइग्रीस नदीमें खुसरु परवीजके आदेशसे बाँध बाँधा जाता था वह बार-बार टूट जाता था। इसी प्रकारके और अनेक अलौकिक चिह्नोंकी बात कही गयी है, और उनका परिणाम यही निकाला गया है कि खुसरु परवीजका नाश होगा। मुहम्मद साहब तथा इस्लाम धर्मके महत्त्व तथा आतङ्कको अधिकसे अधिक लोगोंके मनमें बैठानेके लिए अनेक कहानियाँ बादमें गढ़ ली गयी हैं। चाहे जो हो, धीरे-धीरे ईरानी साम्राज्यका पतन हो गया और अरबों का आधिपत्य सम्पूर्ण ईरानपर हो गया। इस्लामका प्रसार ईरानमें हुआ और बारह सौ वर्षोंसे आनेवाला ईरानी साम्राज्य (जिसमें कुछ दिनोंके लिए बाधा उपस्थित हो गयी थी) इस्लामकी नयी शक्तिके सामने बिखर गया।

इसके बादका ईरानका इतिहास अरबके इतिहासके अङ्ग जैसा रहा और यह स्थिति प्रायः आठ सौ से भी अधिक वर्षोंतक समान रूपसे बनी रही।

ईरानके रहनेवाले आर्य हैं और उनकी पुरानी संस्कृति है यह हम देख चुके हैं। शामियोंके सामने उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ी और इस्लामके आधिपत्यके तीन सौ वर्षोंमें फारसीका स्थान अरबीने ले लिया, बोलचालमें भी कुछ हदतक उसने अपना स्थान बना लिया। अरबी सुसंस्कृत लोगोंकी भाषा मानी जाने लगी। लेकिन यह स्थिति वैसी ही नहीं बनी रही, फिरसे फारसी भाषाने अपना खोया स्थान प्राप्त कर लिया। ईरानी सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य, दर्शन आदिको अरबोंने बहुत दूरतक कबूल कर लिया। नये मुसलमान बने हुए ईरानियोंने इस्लामी दुनियाको बहुत-सी चीजें दीं।

सम्पूर्ण ईरानपर जितनी आसानीसे अरबोंने आधिपत्य जमा लिया उतनी आसानीसे इस्लाम-धर्मकी विजय ईरानमें नहीं हुई। सम्पूर्ण ईरानने तो आजतक भी इस्लामको नहीं स्वीकार किया है लेकिन ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है जो मुसलमान नहीं हैं। ईरानमें इस्लाम-धर्मकी विजयके कारणोंमें बहुत लोगोंने कहा है कि तलवारका बल मुख्य था। प्राणोंके भयसे लोगोंने इस्लामको कबूल कर लिया। लेकिन यह बात सम्पूर्ण सत्य नहीं है। केवल तलवारके बलपर ही उसकी विजय नहीं हुई। बहुत जगह मुसलमान विजेताओंको उदारतासे काम लेना पड़ा और जरथुस्त्री-धर्मसे कहीं समझौता भी करना पड़ा। कालक्रमसे बहुत-सी ऐसी भी चीजें थीं जो जरथुस्त्री-धर्मसे इस्लाममें प्रवेश कर गयीं और जरथुस्त्री-धर्मके अनुयायी ईरानियोंके इस्लाम-धर्म स्वीकार करनेमें सहायक सिद्ध हुईं[1]। इस्लाम-धर्मके कई सिद्धान्तोंमें उनके पुराने धर्मकी छाप उन्हें दीख पड़ी जैसे आदिम मानवका निर्दोष होना, स्वर्ग-नरककी कल्पना, देवता और दैत्य, अल्लाहके रूपमें अहुर मज्दा तथा इब्लिसके

1. ग्रो. स्ट., पृ० १७८।

रूपमें अहरिमान, शरीरका पुनः जी-उठना, आवेस्ताके निर्देशके समान नये धर्ममें भी पाँच बार प्रार्थनाका निर्देश आदि[१]। यह भी सही है कि प्रारम्भमें बहुत लोग मौतके घाट उतार डाले गये थे। गैर-मुस्लिमोंको नाना प्रकारके उत्पीड़न और अत्याचार सहने पड़े थे। उन्हें लाञ्छित और अपमानित होना पड़ा था और इससे बचनेके लिए उन्होंने इस्लामको कबूल कर लिया। एक कारण यह भी था कि वे शासनके कार्योंमें सन्देह-की दृष्टिसे देखे जाते थे और राज्यकार्यमें उन्हें स्थान नहीं मिलता था। जरथुश्त्री धर्मवालोंने इन्हीं सब कारणोंसे इस्लाम-धर्मको ग्रहण किया। अगर इस तरहके प्रमाण पाये जाते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि बहुतसे लोग मार डाले गये तो ऐसे भी प्रमाण मौजूद हैं जिनसे यह पता चलता है कि बहुत समय मुस्लिम विजेताओंने उदारता भी दिखायी थी। अल-मुतसिम (सन् ८३३ ई० सन् ८४२ ई०) के कालमें एक मुसलमान जेनरलने एक इमाम और एक मुअज्जिनपर इसलिए कोड़े लगवाये थे कि उन्होंने सुग्दमें अग्नि पूजकोंके एक मन्दिरको तुड़वाकर उसके स्थानपर मस्जिद बनवा दी थी[२]। खलीफा उमरने जब मागियोंपर विजय प्राप्त की तो उनकी समझमें यह नहीं आ रहा था कि वे उनके साथ कैसा बर्ताव करें। वे इसी उलझनमें पड़े हुए थे कि अब्दुर्रहमान बिन औफने कहा कि उनके साथ भी वैसा ही बर्ताव होना चाहिये जैसा कि धर्म-ग्रन्थके माननेवालोंके साथ किया जाता है[३]। जो इस्लामके अनुयायी थे उन्हें खैरात करनी पड़ती थी और जो इस्लामको नहीं स्वीकार करते उन्हें जिज़िया टैक्स देना पड़ता था। ऐसे बहुतसे लोग थे जिन्होंने जिज़िया देना तो स्वीकार किया लेकिन इस्लाम-धर्मको नहीं कबूल किया। बलाधुरी, जिसकी मृत्यु सन् ८९२ ई०में हुई, एक अरब इतिहासज्ञ था। उसने इस्लामकी विजय-

१. लि. हि. प., पृ० २०२।

२. लि. हि. प. पृ० २०१।

३. गोबिनो प्रि. इ., पृ० २०८ पर उद्धृत।

पर एक पुस्तक लिखी है। उसने बतलाया[1] है कि मुसलमान हो जानेके बदले बहुतसे मागी-धर्मके अनुयायी और यहूदी जिज़िया देते रहे। इसपर अरबों-ने कहा कि हजरत मुहम्मदके कथनानुसार केवल उन्हीं लोगोंसे जिज़िया लेना धर्मानुमोदित है जिनके धर्ममें पवित्र-ग्रन्थका स्थान है, मागियोंके धर्ममें ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं अतएव उनसे जिज़िया लेना धर्म-विरोधी कृत्य है। इसका समर्थन कुरानकी एक आयत (५: १०४) से हुआ है जिसका आशय है कि जो लोग इस तरह की बात सोचते हैं वे नासमझ हैं, उन्हें अपनी ही ओर देखना चाहिये और जो कुछ वे नहीं जानते उसे परमात्मा उनपर प्रकट कर देगा जब वे उसके पास लौटकर जायँगे। इस तरहके बहुतसे उदाहरण पाये जाते हैं जिनसे यह समझा जा सकता है कि ईरानवालोंके साथ धर्म-परिवर्तनके मामलेमें उदारता भी दिखायी गयी थी। धीरे-धीरे अरबों और ईरानियोंमें सम्पर्क भी बढ़ता जा रहा था और उसके साथ ही उनकी आपसकी आत्मीयता भी बढ़ती जाती थी। इस वजहसे भी ईरानी इस्लामकी ओर झुकते गये और मुसलमान बनते गये। आर्नल्ड[2] ने एक और कारण बतलाया है कि जरथुस्त्री-धर्मके अनुयायी भी ईरानके अन्य धर्मावलम्बियों जैसे मानीके धर्मके माननेवालों अथवा मजदकके अनुयायियोंके साथ बहुत बुरा बर्ताव करते थे और उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते थे अतएव इनका उन लोगोंपर बहुत बड़ा आक्रोश था। उनके अत्याचारसे ये सभी पीड़ित थे। इस धर्मको प्रश्रय देनेवाले राजवंशके प्रति भी इन धर्मोंके अनुयायियोंका कम क्रोध नहीं था। अतएव ये सभी जरथुस्त्री-धर्मसे ऊब उठे थे और इस्लाम-धर्मको उन्होंने त्राताके रूपमें देखा। ईरानमें सबसे अधिक सफ-लता इस्लाम-धर्मको शहरोंमें मिली। व्यापारी वर्ग तथा कारीगरोंने बड़े उत्साहसे इसका स्वागत किया। इसका प्रधान कारण यह था कि वे जरथुस्त्री-धर्मके अनुसार पतित माने जाते थे। जरथुस्त्री-धर्म जल, अग्नि

---

१. प्रि. इ. पृ. २०१।

२. प्रि. इ., पृ० २०६-२०७।

और पृथ्वीको अपवित्र करना पाप मानता है और व्यापारी वर्ग तथा कारीगरोंको रात-दिन इनसे सम्बद्ध रहना पड़ता है। इनके बिना उनका काम नहीं चलता। अतएव जरथुस्त्री-धर्मके अनुसार उन्हें उच्चस्थान नहीं प्राप्त हो सकता था। इस्लाममें उनके लिए ये सारी बाधाएँ नहीं थीं और उसमें उन्हें समानता और सम्मान मिला। ईरानपर इस्लामकी राजनीतिक तथा धार्मिक विजयके सम्बन्धमें ब्राउनने अपनी पुस्तक 'लिटररी हिस्ट्री आफ पर्शिया' में पूरी सामग्री जुटा दी है।

---

५. इस्लामके सम्प्रदाय

सन् ७५० ई० से सन् १००० ई० तकका काल इस्लामके इतिहासमें बहुत महत्त्व रखता है। इस कालमें अब्बासी खलीफोंका इस्लामी दुनिया-पर आधिपत्य रहा। साहित्य, संस्कृति, दर्शन आदिकी अभूतपूर्व उन्नति हुई। इस कालकी कितनी विचारधाराएँ, कितनी मान्यताएँ आज भी किसी-न-किसी रूपमें इस्लामी दुनियामें वर्त्तमान हैं। इस्लामके अन्तर्गत बहुतसे सम्प्रदायोंका आविर्भाव इसी कालमें हुआ। इस कालमें कभी-कभी विचार-स्वातन्त्र्यका इतना अधिक प्राबल्य रहा कि दक़ियानूसी विचार-वालोंपर अनेक अत्याचार हुए और ऐसा भी हुआ कि किसी खलीफा विशेषके कारण दक़ियानूसी विचारोंको प्रश्रय मिला और अधिक स्वतन्त्र प्रकृतिवालोंको उसका फल भुगतना पड़ा। इस्लाम-धर्मके प्रारम्भिक कालसे ही राजनीति और धर्मका ऐसा सम्बन्ध बना रहा कि बहुत-सी विचारधाराएँ राजनीतिके कारण पैदा हुई और उन्होंने धार्मिक मतभेदका रूप ले लिया अथवा कितने धार्मिक मतवाद बादमें चलकर राजनीतिके साथ युक्त हो गये। बहुत ही कम ऐसे मतवाद हैं जिनका राजनीतिसे सम्बन्ध न रहा हो।

इस्लामके सम्प्रदायोंमें सबसे पुराने और प्रथम-प्रथम सङ्गठित होनेवाले दो सम्प्रदाय हैं—खारिजी और शिया। ये दोनों समसामयिक हैं, वैसे खारिजीका प्रादुर्भाव पहले हुआ। ये दोनों तत्कालीन राजनीतिक परि-स्थितिके परिणाम हैं जो बादमें धार्मिक सम्प्रदायके रूपमें बदल गये। लेकिन दोनोंके आविर्भावमें धार्मिक दृष्टिकोणकी प्रधानता थी और अपने-अपने दृष्टिकोणोंके अनुसार ही उन्होंने कभी किसीका साथ दिया या विरोध किया। हजरत अली, जो चौथे खलीफा थे, अपने जीवित कालमें

सम्पूर्ण इस्लामी दुनियामें वह स्थान नहीं पा सके जो उनके पहलेके तीन खलीफोंको प्राप्त हो चुका था। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि उमैय्या वंश किस तरह उनका विरोधी था और मुआवियाके साथ किस प्रकारसे उन्हें लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं। जब सिफ्फीनकी लड़ाईमें हजरत अली और मुआवियाके बीच इस बातपर सुलह हो गयी कि खलीफा कौन हो इसका निर्णय पञ्चायतके द्वारा कर लिया जाय तो इसका सबसे बड़ा विरोध खारिजियोंने किया। खारिजियोंका कहना था "ला हुक्म इल्ला लिल्लाही" अर्थात् केवल परमात्मा ही निर्णय कर सकता है। अतएव अलीको चाहिये था कि सब प्रकारसे अपने ऊँचे पदकी रक्षा करते। वे चुनावके द्वारा खलीफाके पदपर आसीन हुए थे इसलिए खारिजियोंका कहना था कि उन्होंने पञ्चायतकी बात मानकर धर्मके सिद्धान्तोंकी अवहेलना की है और इसके लिए उन्हें प्रायश्चित्त करना होगा। खारिजियोंके मुख्य सिद्धान्तोंमें सर्वप्रथम यह है कि खलीफाकी नियुक्ति चुनावके द्वारा होनी चाहिये और उसे मुसलमानोंके समक्ष उत्तरदायी होना होगा। खलीफा कोई भी हो सकता है उसमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं होना चाहिये बशर्तेकि वह मुसलमानों द्वारा चुना गया हो। इस्लामी साम्राज्यके बहुत फैल जानेपर उसमें अनेक देशके लोग आ गये जिन्होंने इस्लाम धर्मको अङ्गीकार किया। खारिजियोंने अपने सिद्धान्तको व्यापक बनानेके लिए बादमें यह भी मान लिया कि किसी भी देशका आदमी खलीफा हो सकता है और यह कोई जरूरी नहीं है कि वह कुरैश वंशका ही हो। यहाँतक उन्होंने स्वीकार किया कि अगर एक गुलाम भी खलीफा चुन लिया जाय तो उसमें उन्हें आपत्ति नहीं होगी। सुन्नी इसे नहीं स्वीकार करते। उनका यह भी कहना था कि कोई भी व्यक्ति खलीफा तभीतक बना रह सकता है जबतक लोग उससे सन्तुष्ट रह सकें। अगर उसकी नीति तथा व्यवहारसे लोग असन्तुष्ट हों तो खलीफाको हटाया जा सकता है। इतना ही नहीं, उसकी हत्या भी की जा सकती है। कहा जाता है खलीफा उस्मानको एक खारिजीने ही मार डाला था। हजरत अलीके

विरुद्ध भी इन्होंने बगावतका झण्डा खड़ा किया और सिफ्फीनकी लड़ाईसे लौटते समय कूफा पहुँचनेके पहले ही हरूरा[1] स्थानमें तीन हजार[2] की संख्यामें वे अलीकी फौजसे अलग हो गये और उनके साथ अलीको लड़ाई करनी पड़ी। शहरस्तानीके अनुसार यह संख्या बारह हजार थी। उनका नेतृत्व करनेवाला अब्दुल्ला इब्न-वह्ब अल-रासिबी[3] था। नहरवांमें वे जमा हुए। यद्यपि उनकी संख्या अलीकी सेनाकी अपेक्षा बहुत कम थी फिर भी उनमें जो धार्मिक जोश भरा हुआ था उससे उनमेंसे लगभग आधे ऐसे थे जिन्होंने धर्मके लिए मर जाना पसन्द किया। खारिजियोंका नाश एक बहुत बड़े पैमानेपर हुआ लेकिन वे बिल्कुल खतम नहीं हो गये।

उनके अन्य सिद्धान्तोंमें दूसरा यह था कि जो नमाज नियमित रूपसे नहीं पढ़ता, रोजा नहीं रखता तथा अन्य इसी प्रकारके कृत्योंका समुचित पालन नहीं करता वह काफिर है। तीसरा यह था कि अगर कोई मुसलमान किसी पापका प्रायश्चित्त किये बिना मर जाय तो उसे हमेशाके लिए नरकाग्निमें दग्ध होता रहना पड़ेगा। चौथा यह था कि अन्य मुसलमान अगर खारिजियोंके मतको नहीं मानते तो उनसे लड़ाई करनी चाहिये और उन्हें खत्म कर देना चाहिये[4]। वे इसमें विश्वास करते हैं कि परमात्माने बराबरके लिए सबके सुख और दुःखका निर्णय कर दिया है और सब कुछ उसीके अनुसार होता है। अतएव वे शिशुको भी निर्दोष नहीं मानते। उमरके बाद वे किसी भी खलीफाको नहीं स्वीकार करते और अपने इमामोंको ही वास्तविक उत्तराधिकारी मानते हैं। खारिजियोंके अनुसार मुसलमानोंमें जो सर्वश्रेष्ठ हो वही खलीफा हो सकता है और मुसलमानोंके ऊपर उसे ही शासन करना चाहिये। अगर इस पदको

---

१. लि. हि. अ., पृ० २०८।

२. हि. अ., पृ० १८२।

३. वही, पृ० १८२।

४. आ. इ. क., पृ० ३५१।

पानेके लिए कोई चेष्टा कर रहा है अथवा इसमें अगर कोई उसकी मदद कर रहा है तो वह गुनहगार[1] है और शासक होनेके अयोग्य है। इसीलिए खारिजियोंने उमैय्योंका बराबर विरोध किया यद्यपि वे इसमें बहुत अधिक सफल नहीं हो सके। उमैय्या खलीफोंके विरुद्ध खारिजियोंकी कारवाई कुछ कम खतरनाक नहीं थी। यह विकट परिस्थिति उमैय्योंके लिए सन् ७०० ई० तक बनी रही। सन् ६९९ ई० में शबीब बिन यजीद अश-शैहानीकी मृत्युके बादसे खारिजियोंके विरोधकी तीव्रता बहुत कम पड़ गयी। खारिजोंकी दृष्टिमें उस्मान और अली दोनों ही खलीफा होनेके योग्य नहीं थे। इन दोनोंके प्रति खारिजियोंके मनमें बड़ी घृणा थी। वे उन सभी मुसलमानोंको उनके समस्त परिवारके साथ मार डालनेके लिए तैयार थे जो उस्मान और अलीको काफिर माननेके लिए तैयार नहीं थे[2]। खारिजी साधारणतः अत्यधिक कट्टर थे और उनमें जो बहुत ही उग्र थे वे हाथमें तलवार लेकर प्रत्येक मुसलमानसे यह पूछा करते कि वह उनसे सहमत है या नहीं[3]। इस प्रकारकी हत्या उनकी दृष्टिमें धर्मकी रक्षाके लिए थी। पड़ोसी अगर उनके अनुसार धर्मके रास्तेपर नहीं चलता है तो उसका जीवन धारण करना वे बेकार समझते थे और व्यर्थ ही इस जीवनको वे उसे ढोने नहीं देते थे! ऐसा था उनका धार्मिक उत्साह! कुरान उनके जीवनको परिचालित करता था और धर्मके नामपर उन्होंने बहुत कुछ किया। नरकाग्निका भय उन्हें इस बातकी प्रेरणा देता था कि वे कहीं भी धर्मानुमोदित (अवश्य उनकी दृष्टिसे) कर्मके विरुद्ध आचरण करनेवालेको इस संसारसे विदा कर देनेके लिए प्रस्तुत रहते थे!

खारिजियोंमें अधिकांश मरुभूमिमें रहनेवाले स्वतन्त्र प्रकृतिके अरब थे जिनमें आपसी समानताकी भावना चरमपर थी। वे परमात्माके सिवा दूसरे किसीके सामने सिर झुकाना नहीं जानते थे। इन लोगोंके दलमें

१. मु. क्री., पृ० ३६।

२. लि. हि. अ. पृ० २११।

३. मु. क्री., पृ० ४१।

ऐसे लोग भी थे जो कठोर जीवन बिताते थे और जिनके जीवनमें उपवास तथा प्रार्थनाका स्थान बहुत महत्त्वका था। ये 'शुरात' के नामसे भी परिचित हैं। 'शुरात' से मतलब बेचनेवाला है अर्थात् जो स्वर्गके लिए अपनी जिन्दगी और धन बेचता है। इसी प्रकारसे 'खारिजी' का अर्थ है जो परमात्माके लिये ईमान नहीं लानेवालोंके बीचसे अपना घर छोड़कर निकल आवे। ये लोग इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं थे कि कुरैश वंशका ही कोई खलीफा हो सकता है। इसके बदले वह अपने लोगोंमेंसे किसीको अपना सरदार बनाना अधिक पसन्द करते। ये लोग मरुभूमिमें घुमक्कड़ जीवन बितानेवाले कबीलोंके थे और इनके रक्तमें वे सभी संस्कार मौजूद थे जो उन कबीलोंमें चले आ रहे थे। यही कारण है कि यद्यपि ये बसरा और कूफामें बस गये थे और नागरिक जीवन बिताने लगे थे फिर भी उनके पूर्व-संस्कार उनमें बने रहे।

खारिजियोंका पूर्व रूप हजरत मुहम्मदकी मृत्युके पहले ही दीख पड़ा था जब इस दलके लोगोंने इस्लामके विरोधमें अपने आपको सङ्घटित किया था। उनका नेतृत्व करनेवाला मुसैलमा था[१]। इस्लाम-धर्मके इतिहासमें विद्रोहों तथा खून-खराबी करनेमें खारिजियोंका हिस्सा कम नहीं है। इन लोगोंने उमैय्या वंशवालोंका बराबर विरोध किया। उमैय्या वंशवालोंको वे कभी खलीफा पदका अधिकारी माननेके लिए तैयार नहीं थे। वे किसी भी प्रकारके शासनको माननेके लिए तैयार नहीं थे। धार्मिकता और निर्दयता एक ही साथ जैसी इन खारिजियोंमें देखी जाती है वैसी अन्यत्र शायद ही देखनेको मिले। राह चलते हुए निर्दोष व्यक्तियोंको लूट लेना, गर्भवती स्त्रीके पेटमें तलवार घुसेड़ देना उनके लिए अत्यन्त सहज था। विधर्मीके साथ किसी प्रकारका अत्याचार करना उनकी दृष्टिमें न्यायसङ्गत था। उनकी कुछ अन्य कारवाइयों तथा अन्तरात्माके विवेक सम्बन्धी विशेष दृष्टिभङ्गीके साथ उनकी अमानुषिकता और निर्दयतासे तुलना करें तो आश्चर्य होता है। कहा जाता है कि राह चलते

१. आ. इ. क., पृ० ५५०

उनमेंसे एकने किसी पेड़से गिरे हुए फलको उठाकर खा लिया उसपर उसके कुछ साथी चिल्ला उठे कि उसने उस फलको बिना अधिकारके खा लिया है क्योंकि उसने उसका मूल्य नहीं चुकाया है। इसी प्रकारसे एकने किसी सूअरको मार डाला जो उसके रास्तेमें आ पड़ा था। उसके साथियोंने प्रतिवाद किया कि यह पाप है। इसपर उसने उस सूअरके मालिकको खोजकर उस सूअरका दाम दे दिया[1]।

खारिजियोंका समर्थन साधारण मुस्लिम जनताने नहीं किया अतएव उमैय्योंका बहुत कुछ विरोध करनेपर भी वे उनका कुछ बिगाड़ नहीं सके। ओमानमें उनका दल बहुत सङ्गठित था और सन् ७५१ ई० में सम्भवतः उन्होंने चुनावके द्वारा उस प्रान्तमें अपना पहला इमाम चुना जो सन् ७५३ ई० में मार डाला गया। सन् ७९१ ई० में उन्होंने दूसरा इमाम चुना और अब्बासियोंके विरुद्ध उठ खड़े हुए और लगभग एक सौ वर्षोंतक स्वतन्त्र रहे। अब्बासियोंने जब ओमानपर दखल जमा लिया तो इमाम मार डाला गया। सन् ११५४ ई० से सन् १४०६ ई० तक उनका कोई भी इमाम नहीं था। सन् १७४१ ई० में अहमद इब्न सईद इमाम चुना गया और उसने मस्कतमें अपनी राजधानी बनायी। उसके पुत्रकी मृत्युके बाद दूसरा इमाम नहीं चुना गया। अब भी कुछ खारिजी जंजीबार तथा उत्तर अफ्रीकामें हैं[2]। इस प्रकारसे हम देख सकते हैं कि खारिजियोंका उत्थान-पतन होता रहा। यद्यपि उनका उद्देश्य सफल नहीं हो सका और बार-बार उनका दमन होता रहा फिर भी वे बार-बार सङ्गठित होते रहे। राजनीतिके क्षेत्रमें जैसी हलचल उन्होंने मचा रखी थी और उमैय्या तथा अब्बासी खलीफोंको उनके विरुद्ध हथियार उठाना पड़ा था वैसी ही हलचल उन्होंने धार्मिक क्षेत्रमें भी मचा दी थी। खारिजियोंके अनुसार पाप करनेवाला मुसलमान बना हुआ नहीं रह सकता जब कि सनातनपन्थी मुसलमान यह मानते हैं कि अगर इस्लाम-धर्मका

---

१. अल-फखरी लि. हि. प., पृ० २२३ पर उद्धृत।

२. कैलि., पृ० १८९।

अनुयायी बहुदेववादको नहीं मानता है तो अन्य कोई पाप करनेपर भी मुसलमान बना रह सकता है। इस प्रकार खारिजियोंने लोगोंको यह सोचनेके लिये बाध्य किया कि सच्चा मुसलमान कौन है और काफिर कौन है। स्वयं खारिजियोंमें भी कई दल हो गये थे। शहरिस्तानीने[१] इस प्रकारके छः समुदायोंके नाम गिनाये हैं। अजारिक जो अबू रशीद नफे इब्न अजरकके अनुयायी थे। इबाधिया जो अब्दुल्ला इब्न इबाधके अनुयायी थे। इसी प्रकारसे नज्दत इब्न अमीरके अनुयायी नज्दत अजारिया कहलाते थे और अब्दुल करीम बिन अजरदके अनुयायी अजारिदके नामसे पुकारे जाते थे। इनके अलावे सुफा़रिद और जियादिया और दो खारिजियोंके ही अन्तर्गत थे। कहा जाता है कि खारिजियोंका मूल रूप तो नहीं रहा लेकिन भिन्न-भिन्न नामों और रूपोंमें बारबार उनका आविर्भाव होता रहा। कुछ लोग[२] जाहिरियों और वहाबियोंको भी खारिजी कहनेके पक्षमें हैं। कालक्रमसे ये खारिजी सूफियोंके विरोधी हो गये और जियारत आदिको धर्मानुमोदित नहीं माना। उन्होंने सन्त-परम्परा तथा उसके सिद्धान्तोंकी मुखालफ़त की।

तत्कालीन दो अन्य मुस्लिम सम्प्रदाय खारिजियोंके विरोधी थे। वे दोनों मुरीजी और शिया थे। मुरीजी खारिजियोंके जबर्दस्त विरोधी थे। इस सम्प्रदायका आविर्भाव सीरिया और मेसोपोटामियामें हुआ[३]। वान क्रेमरका मत[४] है कि मुरीजियों और मुतजिलियोंका आविर्भाव उमैय्या खलीफोंकी राजधानी दमिश्कमें हुआ। देखते-देखते इस सम्प्रदायमें बहुसंख्यक लोग अन्तर्भुक्त हो गये। मुरीजी खारिजियोंके विपरीत इस बातमें विश्वास करते थे कि इस्लाम-धर्मके किसी अनुयायीके पाप-पुण्यका विचार करनेवाला परमात्मा है। वही सब कुछका जाननेवाला है। और यह

१. शिप. इ., पृ० ३५५-५६।
२. आ. इ. क., पृ० ५५१।
३. वही, पृ० ५५१।
४. लि. हि. प. पृ० २७९-२८०।

किसीको नहीं मालूम कि वह विशेष व्यक्तिके सम्बन्धमें क्या करेगा अतएव किसी मुसलमानको काफिर नहीं कहा जा सकता। इसीलिए वे खारिजियों-की तरह उमैय्या वंशका विरोध नहीं करते। वे उस्मान, अली अथवा मुआविया सबको परमात्माका सेवक मानते थे और उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारका निर्णय देना गलत समझते थे। 'मुरीज' शब्द 'अरजआ' से बना है जिसका अर्थ है भविष्यके लिए टालना। किसीको पापी मानने या न माननेका अधिकार परमात्माके सिवा और किसीके हाथों वे नहीं छोड़ना चाहते थे। अपने इसी दृष्टिकोणकी वजहसे जहाँ एक ओर वे अली और उस्मानको खलीफा माननेके लिए तैयार थे वहाँ शिया सम्प्रदायवालों-का अलीके लिए और उमैय्या वंशवालोंका उस्मानके लिए किसी विशेष शक्तिसे सम्पन्न तथा देवत्वसे युक्त माननेके अयथार्थ दावेको स्वीकार करने-के लिए वे प्रस्तुत नहीं थे। उमैय्या वंशके खलीफोंके सम्बन्धमें मुरीजियोंका दृष्टिकोण पक्षपातरहित था। उन्होंने खारिजियोंके विपरीत धर्मके मामलेमें अधिक उदारता दिखायी। इस्लामी संसारने खारिजियोंकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। तत्कालीन शासकवर्गकी विलासिता और सांसारिकतासे यद्यपि मुस्लिम जनता उब उठी थी फिर भी वह खारिजियोंकी तरह बहुत आगे नहीं बढ़ना चाहती थी। उमैय्या वंशके खलीफोंके शासनकाल-में उनका सम्मान बना रहा चूँकि उनके सिद्धान्तोंसे उन्हें प्रश्रय मिलता था। उमैय्या वंशके अन्तके साथ उनका भी कोई स्थान नहीं रह गया। इतिहासकी दृष्टिसे इस सम्प्रदायके सम्बन्धमें कुछ भी निश्चित रूपसे कहना कठिन है। इस सम्प्रदाय सम्बन्धी सामग्री नहींके बराबर मिलती है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि मुरीजी पाप-पुण्यका निर्णय परमात्मापर छोड़ देते हैं तथा इस्लाम-धर्मके अनुयायीको वे काफिर माननेके पक्षमें नहीं हैं। इसके अलावे उनके अन्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं—वे मानते हैं कि परमात्मा और धर्मपर ईमान लाना ही वास्तविक वस्तु है, व्यवहार चाहे जैसा भी क्यों न हो। कुछ तो ऐसे भी थे जिनका कहना था कि

मुसलमान इस्लामके बाह्याचारोंको नहीं माननेपर भी अथवा अन्य धर्मके अनुरूप आचरण करते रहनेपर भी मुसलमान बना रह सकता[1] है अगर वह हृदयसे अल्लाहपर ईमान लानेवाला हो। धर्मको वे अन्तरकी वस्तु मानते हैं। उनकी दृष्टिमें भिन्न-भिन्न धर्मोंको माननेवाले सभी गैर-मुस्लिम समान रूपसे गलत पथपर हैं। उनका यह भी कहना है कि सिवाय आत्मरक्षाके एक मुसलमानको दूसरे मुसलमानसे नहीं लड़ना चाहिये। केवल दिखावेके लिए इस्लामपर ईमान लानेको वे निरर्थक समझते हैं। परमात्माकी उपासनाके सिवा और किसीकी उपासनाको वे स्वीकार नहीं करते। मुरीजियोंके उदार दलमें अबू हनीफा हुए थे जो सुन्नियोंके एक सम्प्रदायके संस्थापक थे। वे ईसाकी आठवीं शताब्दीके उत्तरार्ध (सन् ७६७ ई०) में हुए थे। आज उनके अनुयायियोंकी संख्या करोड़ोंमें है।

इस्लामके प्रारम्भिक युगमें जिन सम्प्रदायोंका आविर्भाव हुआ उनमें शिया-सम्प्रदाय बहुत ही अधिक महत्त्वका रहा। खलीफाके पदको लेकर जो मतभेद शुरू हुआ और जो अपने आपमें केवल राजनीतिसे सम्बन्धित था उसने बादमें चलकर धार्मिक रूप ले लिया और उसने अपना पूरा प्रभाव इस्लामी दुनियामें विस्तार किया। इस्लाम धर्मके अन्तर्गत शिया सम्प्रदायका आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। समस्त संसारमें शिया-सम्प्रदायवालोंकी संख्या वर्त्तमान समयमें लगभग एक करोड़ पचास लाख है। समस्त मुसलमानोंकी संख्याका यह लगभग सात फी सदी है। शिया लोगोंकी संख्या बीस लाख भारतमें है, पन्द्रह लाख इराकमें है, अल-यमनमें दस लाख है जहाँ वे जैदी कहलाते हैं, एक लाख तीस हजार सीरिया और लेबनानमें है जहाँ वे मताविला कहलाते हैं। इनके अलावे शिया लोगोंमें भी जो कट्टर तथा उग्र हैं वे समस्त मुसलमानोंकी संख्याके लगभग आठ फी सदी हैं। इनकी संख्या लगभग दो करोड़ बीस लाख है। इनमें इस्माइली, ड्रूज, नुसैरी, यज़ीदी आदि सम्प्रदाय हैं। तृतीय खलीफा

---

1. लि. हि. अ., पृ० २२२।

उस्मानकी हत्याने तत्कालीन इस्लामी दुनियाके मतभेदको स्पष्ट कर दिया और उनके दो दल हो गये। अभीतक उनमें इस प्रकारके दलोंकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। अलीके समर्थक शिया-सम्प्रदायवाले हैं। वे चुनाव द्वारा खलीफाका निर्वाचन उचित नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें खलीफा वंश-परम्परासे नियुक्त किया जाना चाहिये। हजरत मुहम्मदके बाद उन्हें कोई पुत्र नहीं रह गया जो उनका उत्तराधिकारी होता और उन्होंने स्वयं किसीको उत्तराधिकारी नहीं बनाया। अतएव अरबोंमें अधिकांशने अपनी परम्पराके अनुसार चुनाव द्वारा ही खलीफाकी नियुक्तिका अनुमोदन किया। लेकिन कुछ अरबोंने और विशेषतः ईरानियोंने वंश-परम्पराको ही खलीफा पदका आधर माना। वे खलीफामें ईश्वरीय विभूतिका आरोप करते हैं, इसलिए अली जो हजरत मुहम्मदके दामाद थे तथा उनके साथ उनका निकटस्थ रक्त सम्बन्ध था, वही शिया-सम्प्रदायवालोंकी दृष्टिमें खलीफा हो सकते थे। यह विवाद उमैय्या वंशवालोंके कालमें अत्यधिक स्पष्ट हो गया। अली और मुआ-वियाके झगड़ेमें दो दल हो गये। मुसलमानोंमें अपनी-अपनी दृष्टिभंगीके अनुसार बहुत-से या तो अलीके सहायक हो गये या मुआवियाके। 'शिया' वास्तवमें 'दल' को कहते हैं। अतएव दोनों व्यक्तियोंको केन्द्र करके मुस-लमानोंके दो 'शिया' हो गये। मुआवियाके खलीफा हो जानेपर उसका 'शिया' अनावश्यक हो गया लेकिन अलीका 'शिया' उनकी मृत्युके साथ समाप्त होना तो दूर, कालक्रमसे और भी बढ़ता गया और स्पष्ट रूप लेता गया। अब तो 'शिया' शब्द रूढ़ि हो गया है और अली तथा उनके बेटों और वंशधरोंको वे इमाम मानते हैं। खलीफाके बदले वे इमामको ही मानने लगे। सुन्नी खलीफाको मानते हैं और शिया इमामको। सुन्नी-सम्प्रदाय बहुत बादमें चलकर सङ्घटित हुआ।

यहाँपर 'इमाम' शब्दकी चर्चा कर लेना आवश्यक है। शिया सम्प्र-दायवालोंका विश्वास है कि इमाम ईश्वरीय विधानके फलस्वरूप इस संसारमें अवतरित होता है अतएव वह विशिष्ट गुणोंसे विभूषित होता है।

यही कारण है कि वे मनुष्यों द्वारा चुने हुए व्यक्तिको खलीफा माननेके लिए तैयार नहीं क्योंकि मनुष्यकी शक्ति सीमित है और उससे भूल हो सकती है। शिया सम्प्रदायवालोंकी दृष्टिमें इमाम निष्पाप और सर्वोत्कृष्ट चरित्रवाला होता है। पवित्रता और सत्याचरणकी दृष्टिसे वह अन्य मनुष्योंसे ऊपर है। इस प्रकारका व्यक्ति भगवान्‌की शक्ति द्वारा ही प्रकट होता है। चुनाव द्वारा कोई भी इस प्रकारका व्यक्ति नहीं पा सकता। इब्न खल्दूनने खलीफा और इमामका अन्तर बतलाया है। खल्दूनका कहना है[1] कि खलीफा सांसारिक विषयोंका परिचालन करता है जब कि आध्यात्मिक और परमात्मा विषयक व्यापारोंका सञ्चालन इमाम द्वारा होता है। अतएव जो व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न नहीं है तथा चरित्रवान नहीं है, उसके हाथमें परमात्मा आध्यात्मिक विषयोंको नहीं छोड़ सकता। परमात्मा किसी भी समय धर्मके रास्तेपर चलनेवालोंको ऐसे एक व्यक्तिके बिना नहीं रहने देता जो उन्हें धर्मके रास्तेपर चलावे[2]। शिया लोगोंका कहना है कि परमात्माने पहलेसे ही यह विधान कर रखा है कि इमाम कौन हो। उनके अनुसार परमात्माने ही अलीको हजरत मुहम्मदके बाद इमाम बनाकर भेजा है और उनके वंशधरोंमें वह आध्यात्मिक ज्योति दे दी है जिससे उनके सिवा दूसरा कोई इमाम नहीं हो सकता। पैगम्बरने परमात्मा सम्बन्धी गुह्य ज्ञान अलीको दिया था और वह ज्ञान उनकी वंश-परम्परामें ही सीमित रहा। कुरैश वंशका होनेसे ही कोई इमाम नहीं हो सकता। वह अलीके वंशधरोंमेंसे ही हो सकता है। इसका फल यह हुआ है कि शिया लोग अबू बक्र, उमर और उस्मानको खलीफा माननेके लिए तैयार नहीं।

'इमाम' शब्दका अर्थ नेतृत्व करना है। डा० पर्सी बैजर[3] के अनु-

---

१. स्पि. इ., पृ० ३१९।

२. मसूदी : मुरूज़-उज़-ज़हब (स्पि. इ. पृ० ३१८ पर उद्धृत)।

३. इमाम्स एण्ड सयीदस ऑफ ओमान (स्पि. आ. इ. पृ० ३१८ पर उद्धृत।

सार इमाम वह है जो उदाहरणस्वरूप दूसरोंके सामने रहे और जिसके उदाहरणको अपने सामने रखकर लोग अपना जीवन बितावें। इसी अर्थमें मुहम्मद साहब तथा अन्य खलीफोंके लिए इस शब्दका प्रयोग किया गया है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि शिया और सुन्नी दोनों ही इस शब्दका प्रयोग करते हैं लेकिन दोनोंकी दृष्टिभंगीमें बहुत अन्तर है। आज भी 'इमाम' शब्दका प्रयोग एक सङ्कुचित अर्थमें होता है। नमाज पढ़नेके समय नमाज पढ़नेवालोंके दलका नेतृत्व करनेवाला व्यक्ति भी इमाम कहा जाता है। यह मस्जिदका एक कार्यकर्ता मात्र है। अपने इस कार्यके लिये उसे वृत्ति भी मिलती है। यह सहज ही समझा जा सकता है कि शियाकी दृष्टिमें इमाम कौन है और वह इस व्यक्तिसे कितना भिन्न है। सुन्नियोंका कहना है कि यह जरूरी नहीं है कि मुहम्मद-के वंशवाले ही इमाम हों अथवा उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने कालका महत्तम व्यक्ति हो और जिसमें किसी प्रकारका दोष न ढूँढ़ा जा सके। सुन्नी इस बातको स्वीकार नहीं करते कि वह व्यक्ति किसी ऐसे विशिष्ट गुणसे युक्त है जो इस जगत्में अलभ्य है। उसके लिए कार्य करनेकी बौद्धिक क्षमता, स्वतन्त्र तथा बालिग होना ही पर्याप्त है। वह लोगोंकी रायसे अपना उत्तराधिकारी चुन सकता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि शिया सम्प्रदायवालोंकी दृष्टिमें इमाम होनेका अधिकारी कौन है। शिया सम्प्रदायवालोंके अन्तर्गत कुछ ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जो और भी आगे बढ़ जाते हैं। हाशिमिया उसी प्रकारका एक सम्प्रदाय है जो ताविलके सिद्धान्तको मानता है। 'ताविल' का अर्थ व्याख्या करना है। हाशिमिया[1] इस बातको मानते हैं कि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होनेवाले प्रत्येक व्यापारका एक गूढ़ अर्थ है। प्रत्येक आकृतिके पीछे एक शक्ति है। इस संसारकी प्रत्येक दृश्यमान वस्तुका प्रतिरूप दूसरे जगत्में ढूँढ़ा जा सकता है। अली सभी रहस्योंसे अवगत थे और उन्होंने अपने पुत्र मुहम्मद इब्नुल हनाफियाको उनसे परिचित कराया और हनाफियाने उसे

1. शहरस्तानी (लि. हि. अ. पृ० २२० पर उद्धृत)।

अपने पुत्र अबू हाशिमको बतलाया। इसलिए उनकी दृष्टिमें वही वास्तविक इमाम हो सकता है जिसे इस ज्ञानका परिचय प्राप्त हो गया है।

'इमाम' शब्दका प्रयोग कुरानमें दो अर्थोंमें हुआ है। एक तो धर्मका उपदेश करनेवाले व्यक्तिकी नियुक्तिके अर्थमें और दूसरा धर्मग्रन्थके अर्थमें। अब्राहम, आइज़क और जैकबके सम्बन्धमें उन्हें इमाम बनानेकी बात कही गयी है जिसमें कि परमात्माके आदेशोंके पालनमें वे लोगोंको नियोजित करें। शिया सम्प्रदायवालोंने इस इमामको मनुष्य और परमात्माके बीचकी कड़ी बना दिया। यह इमाम, शिया लोगोंके अनुसार दिव्य शक्तिवाला है और परमात्माके द्वारा विशेष रूपसे चुना जाता है जिसमें कि वह ईश्वरीय अंश धारण करे। उसीका अनुसरण कर मनुष्य मुक्ति पा सकता है। इस प्रकारसे शिया न केवल इसीमें विश्वास करते हैं कि परमात्मा एक और अद्वितीय है तथा क़ुरान उसके द्वारा प्रकट किया हुआ धर्मग्रन्थ है जो किसीका बनाया हुआ नहीं है और अनादि है बल्कि वे इनके साथ ही उपर्युक्त इमाममें भी विश्वास करते हैं। परमात्मा द्वारा विशेष कार्यके लिए निर्मित इमामपर सम्पूर्ण रूपसे ईमान लाना ही शिया लोगोंकी दृष्टिमें सब कुछ है। लेकिन शिया लोगोंका विश्वास है कि ऐसा व्यक्ति हज़रत अलीके वंशमें ही उत्पन्न हो सकता है, अन्यत्र नहीं। शिया-सम्प्रदायमें भी कुछ लोग ऐसे हैं कि वे इमामको अन्य मनुष्योंसे अलग एक विशेष कोटिका ही नहीं मानते बल्कि उसे ईश्वरका अवतार[१] भी मानते हैं। कुछ तो अलीको हज़रत मुहम्मदसे भी बढ़कर मानते हैं। उनका कहना है कि परमात्मा उस ईश्वरीय ज्ञानको अलीपर ही प्रकट करना चाहता था लेकिन जिब्राइलने मुहम्मदको ही अली समझ लिया[२]।

शिया-सम्प्रदायमें इमाममें दिव्यत्वका आरोप इतना अधिक करनेका कारण बहुत लोगोंने ईरानी संस्कार बतलाया है लेकिन अधिकांश

१. हि. अ. पृ० २४८।
२. वही, पृ० २४८।

लोगोंका यह कहना है कि इसका कारण तत्कालीन एक नगण्य सम्प्रदाय-का प्रभाव था। कहते हैं कि इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक अब्दुल्ला इब्न सबा था। यह यमनके सना स्थानका रहनेवाला था और यहूदी था। इसने खलीफा उस्मानके कालमें इस्लाम धर्मको ग्रहण किया था। यह अलीको ईश्वरीय गुणोंसे विभूषित मानता था। पुनर्जन्मका सिद्धान्त भी यह मानता था। उस्मानके काल (सन् ६५३ ई०) में इसने अपने मतका प्रचार मिस्रमें किया था। इसका कहना था कि ईसाकी तरह मुहम्मद भी पुनः अवतरित होंगे। इसने अलीके प्रति अपनी भक्तिमें इतनी अति कर दी कि अलीको लाचार होकर इसे देश-निकालेकी सजा देनी पड़ी चूँकि अलीमें इसने इस प्रकारसे ईश्वरीय शक्तिका आरोप करना प्रारम्भ किया जिसे सनातन-पन्थी इस्लामके लिए बर्दाश्त करना कठिन था। इसने यहाँ-तक कहनेमें सङ्कोच नहीं किया कि अली ही परमात्मा हैं।[1] यहाँपर यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि ईरानी विचारधाराका इस दिशामें बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा। ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका मतलब यह नहीं है कि इस देवत्वके आरोपमें ईरानियोंके संस्कारका प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि केवल इतना ही है कि केवल इसीको मूल कारण समझ लेना ठीक नहीं होगा। इस सम्बन्धमें दोनों प्रकारके विचार प्रकट किये गये हैं और यह कहना अत्यन्त कठिन है कि सबाके कारण अथवा ईरानियोंके कारण यह देवत्वका आरोप शिया-सम्प्रदायमें आया। लेकिन इतना बिलकुल स्पष्ट है कि सासानी वंशके समयमें जिस प्रकारसे राजामें ईश्वरत्वका आरोप किया गया था उसका प्रभाव ईरानके इतिहासपर दीर्घकालीन रहा है। इसी संस्कारके कारण ईरानमें शिया-सम्प्रदायका बोलबाला है।

शिया-सम्प्रदाय भी कई छोटे-छोटे उप-सम्प्रदायोंमें बँट गया। मुहम्मद साहबके वंशधरोंमेंसे किसी एकको केन्द्र कर दल सङ्घटित होने लगे। उस समयकी स्थिति ऐसी हुई कि शिया-सम्प्रदाय धीरे-धीरे सनातन-पन्थी इस्लामसे दूर हटता गया और जितने लोग खलीफासे असन्तुष्ट

1. लि. हि. अ., पृ० २१६।

थे अथवा अन्य राजनीतिक कारणोंसे उनसे अलग हटते गये वे सभी इसमें अन्तर्भुक्त होते गये। यह हालत इस सीमातक पहुँच गयी थी कि इस्लामी राज्यका अस्तित्व भी खतरेमें पड़ गया था। 'तावील' (व्याख्या) के सिद्धान्तोंने इस स्थितिमें और भी अधिक सहायता पहुँचायी। इस सिद्धान्तका आश्रय लेकर लोग अपनी रुचि और सुविधाके अनुसार कुरान तथा मुहम्मद साहबके वचनोंका अर्थ लगाने लगे। इन लोगोंका कहना था कि प्रत्येक दृष्टिगोचर होनेवाली वस्तुका एक भीतरी अर्थ है और उनके प्रत्येक उप-सम्प्रदायवाले इस बातका दावा करते थे कि वे जिसके अनुयायी हैं उसीपर परमात्माने उनका अर्थ प्रकटित किया है और वे ही ठीक-ठीक उनका मतलब बतला सकते हैं। शिया-सम्प्रदायके अन्तर्गत हाशिमिया सम्प्रदायवालोंका विश्वास है कि अलीको इस दृश्यमान जगत्‌के रहस्योंका पता था और उन्होंने उस रहस्यको अपने पुत्र मुहम्मद इब्नुल हनाफियापर प्रकट किया और हनाफियाने उस ज्ञानको अपने पुत्र अबू-हाशिमको बतलाया[1]। शिया-सम्प्रदायके प्रारम्भिक दो प्रमुख दलोंमें एक हाशिमिया दल था और दूसरा इमामिया। इमामियोंके अनुसार इमाम वही हो सकता है जो पैगम्बरकी पुत्री फ़ातिमाकी वंश-परम्परामें पड़ता हो अथवा ईरानके सासानी वंशका हो, अतएव वे अलीके दोनों पुत्र हसन और हुसैनको स्वीकार करते हैं जो फ़ातिमाके पुत्र थे लेकिन इब्नुल हनाफिया-को नहीं मानते जो अलीका पुत्र तो था लेकिन उसकी माँ हनफी वंशकी थी। हाशिमिया इस बातको स्वीकार नहीं करते कि इमामका पैगम्बरकी वंश-परम्परामें होना जरूरी है। उनके लिए यही पर्याप्त था कि वह अली-की वंश-परम्परामें पड़ता है। वे इब्नुल हनाफियाको इमाम मानते हैं। इनके मतानुसार अली द्वारा प्रकट किये हुए ज्ञानका अधिकारी ही इमाम हो सकता है। इसी प्रकारसे और भी अनेक सम्प्रदाय शिया-सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त थे। उनमें कुछकी चर्चा हम आगे करेंगे।

शिया-सम्प्रदायवालोंको सबसे अधिक सफलता ईराकमें मिली थी और

---

१. शहरस्तानी, लि. हि. अ., पृ० २२० पर उद्धृत।

आज भी ईराक़में शिया ही अधिक हैं। इसी प्रकारसे ईरानमें भी इनकी संख्या अधिक है। शिया लोगोंको अपने उद्देश्यमें वैसी सफलता नहीं मिली और खलीफाका पद हस्तगत करना उनके लिए कभी सम्भव नहीं हुआ। उन्हें अगर कुछ सफलता मिली तो उसका श्रेय मुख्तारको है जो स्वयं अरब जातिका था। उसका जन्म एक सम्भ्रान्त परिवारमें हुआ था। उसने अलीके पुत्र इब्नुल हनाफियाका पक्ष लिया था। उसे अत्यधिक सफलता मिली। उसके सबसे बड़े सहायक 'मवाली' थे जो अरब जातिके नहीं थे और इस्लाम-धर्म ग्रहण करनेपर भी उन्हें अरब जातिवाले विजित और गुलाम समझते थे। अरब उन्हें सम्मानका स्थान नहीं देते थे। उनके मनके भीतर एक विद्वेष और क्षोभ था। मुख्तारके समयमें ही हजारोंकी संख्यामें ईरानी शिया-सम्प्रदायको अपना चुके थे।

सनातन-पन्थी मुसलमानों तथा खलीफोंके अनेक अत्याचार शिया-सम्प्रदायवालोंको सहने पड़े। खलीफा मुतवकिलने अलीके मक़बरे तथा कर्बलामें अल-हुसैनके मक़बरेको तोड़वा-फोड़वा डाला था। खलीफा अल-क़ादिरने सन् १०२९ ई० में बग़दादकी मस्जिदसे शिया-सम्प्रदायके अधिकारीको निकालकर उसके स्थानपर एक सुन्नीको रखा। इन सब ज़्यादतियोंका फल यह हुआ कि शिया-सम्प्रदायमें यह एक प्रकारसे सिद्धान्त रूपमें स्वीकार कर लिया गया कि जहाँपर विरोधी शक्तिशाली हो और जहाँपर अपनी अथवा अपने धर्मके अनुयायीकी सुरक्षाका प्रश्न हो वहाँ दिखलानेके लिए अपने विरोधीके धर्मका अनुसरण किया जा सकता है। यह तक़ियाका सिद्धान्त कहलाता है। इस्माइलियोंसे सम्पूर्ण शिया-सम्प्रदायने तक़ियाके सिद्धान्तको अपनाया। एक समय ऐसा भी था कि शिया-सम्प्रदायवालोंके लिए हज करना भी असम्भव था अगर वे सुन्नियोंके जैसा धर्माचरण नहीं करते[1]। इस प्रकारसे तक़ियाका एक विशेष स्थान शिया-सम्प्रदायवालोंमें हो गया। लेकिन इसका एक और उपयोग उस कालमें हुआ। तक़ियाकी आड़में ऐसे बहुत शिया-सम्प्रदायवाले थे

1. स्पि. इ., पृ० ३३६।

जो खलीफा-पदके उचित उत्तराधिकारीके प्रश्नको लेकर अपना विरोध प्रकट करते रहे और इमामके प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते रहे। शिया लोगोंका विश्वास है कि उनके अधिकांश इमामोंको खलीफोंने छल करके नृशंसतापूर्वक मरवा डाला था। खलीफा अली उनके प्रथम इमाम हैं। उनके बाद उनके पुत्र अल-हसन दूसरे तथा अल-हुसैन तीसरे इमाम हुए। अल-हुसैनके वंशके ही बादके नौ इमाम हुए। शिया-सम्प्रदायकी एक शाखा इस्ना असारिया है जो इन बारह इमामोंको स्वीकार करती है। इन पिछले नौमेंसे कहा जाता है कि चारको खलीफोंने जहर देकर मरवा डाला। जाफरकी मृत्यु सन् ७६५ ई० में मदीनेमें हुई, मूसाकी सन् ७९९ ई० में बगदादमें। इसी प्रकार अली अल-रीजा, तूसमें सन् ८१८ ई० में मार डाले गये और मुहम्मद अल-जवाद सन् ८३५ ई० में बगदाद-में मृत्युको प्राप्त हुए। दूसरे इमाम, खलीफोंके विरुद्ध लड़ते-लड़ते मरे या खलीफों द्वारा पकड़े जाकर जल्लादके हाथों मौतके घाट उतारे गये। ग्यारहवें इमाम हसन अल-अस्करीको खलीफा मुतवक्किलने मदीनासे सामर्रामें निर्वासित कर दिया और वे वहाँपर मुतवक्किलके उत्तराधिकारी द्वारा कैदखानेमें डाल दिये गये। वे जेलसे बाहर नहीं निकल सके और वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र मुहम्मद जो बारहवें इमाम माने जाते हैं, केवल पाँच वर्षके थे जब अपने पिताकी खोजमें सामर्राकी बड़ी मस्जिदके तहखानेमें घुस पड़े और वहाँसे लापता हो गये। शिया लोग उन्हें बारहवाँ इमाम मानते हैं। उनका विश्वास है कि वे कुछ कालके लिए (गैब) छिप गये हैं और इस संसारको पापसे मुक्त करनेके लिए प्रकट होंगे। वे सच्चे इस्लामकी स्थापनाके लिए आयेंगे। भग-वत्प्रेरित वे इस संसारमें आकर समस्त संसारपर विजय प्राप्त करेंगे। उन्हें शिया लोग महदी अर्थात् पथ-प्रदर्शक कहते हैं। वे और भी कई नामोंसे शिया-सम्प्रदायवालों द्वारा स्मरण किये जाते हैं—मुन्तजर (प्रतीक्षित), क़ायम (जीवित) आदि। यद्यपि वे छिपे हुए हैं फिर भी वे क़ायम अल-जमाँ (काल-विजेता) हैं। शिया लोगोंका विश्वास महदीमें कितना

अधिक है इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि इब्न खल्दून (ईसाकी चौदहवीं शताब्दी)ने लिखा है कि उस तहखानेके पास शिया लोग जाते थे और प्रार्थना करते थे कि महदी प्रकट हो जायँ। जो बच्चा उसमें अदृश्य हो गया था उसकी मृत्यु भी हो सकती है ऐसी सम्भावना शिया लोगोंको असम्भव प्रतीत होती है।

इमामोंकी संख्याको लेकर शिया-सम्प्रदायवालोंमें कालक्रमसे दो दल हो गये। एक दल बारहों इमामको मानता है जब कि दूसरा दल सात इमामोंको ही वास्तविक उत्तराधिकारी मानता है। १५०२ ई० में सफा-वियोंने ईरानमें बारह इमामको माननेवाले सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा की। वे अपनेको सातवें इमाम मूसा अल-काजिमका वंशज मानते हैं। ईरानके शाहको ईरानी शिया महदीका प्रतिनिधि मानते हैं। शाह उन्हींके नाम राजकाज सँभालते हैं। ईरानवालोंका विश्वास है कि अन्तिम सासानी बादशाह यज्दीगर्दकी लड़की शहरबानूकी शादी हुसैनके साथ हुई थी। चौथे खलीफा अली जो पैगम्बरके चचेरे भाई थे और फातिमा जो पैगम्बर-की पुत्री थी हुसैनके पिता-माता थे अतएव हुसैन ईश्वरीय अंशके धारण करनेवाले थे। शहरबानू चूँकि सासानी बादशाहोंके वंशकी थी जो ईश्वरके प्रतिनिधि तथा ईश्वरीय अंश धारण करनेवाले समझे जाते थे, अपने आपमें राजकीय तथा ईश्वरीय अंशको धारण करनेवाली थी। शहरबानू और हुसैनके विवाहकी ऐतिहासिकतामें सन्देह है लेकिन ईरानी शिया सम्प्रदायवालोंका इसमें पूर्ण विश्वास है। चौथेसे बारहवें इमामतक 'नौ इमामोंकी जननी' शहरबानू समझी जाती है। ईरानी बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे उसकी याद करते हैं। इमामोंके सम्बन्धमें नीचेकी तालिका पूरी उपयोगी सिद्ध होगी।

(१) अली (सन् ६६१ ई०)

(२) अल-हसन (सन् ६६९ ई०)

(३) अल-हुसैन (सन् ६८० ई०)

(४) अली ज़ैनल आबिदीन (सन् ७१२ ई०)

ज़ैद

(५) मुहम्मद अल-बाक़िर (सन् ७३१ ई०)

(६) जाफ़र अल-सादिक़ (सन् ७६५ ई०)

इस्माइल (सन् ७६० ई०)

(७) मूसा अल-काज़िम (सन् ७९९ ई०)

(८) अली अल-रिज़ा (सन् ८१८ ई०)

(९) मुहम्मद अल-जवाद (सन् ८३५ ई०)

(१०) अली अल-हादी (सन् ८६८ ई०)

(११) अल-हसन अल-अस्करी (सन् ८७४ ई०)

(१२) मुहम्मद अल-मुन्तज़र अल-महदी (सन्८७८ई०)

दूसरा दल जो सात इमामोंको स्वीकार करता है वह साबिय्या कहलाता है। छठवें इमाम जाफ़र अल-सादिक तक तो साबिय्या और इस्ना असारिया (बारह इमामोंको माननेवालादल)में कोई मतभेद नहीं लेकिन सातवें इमामको लेकर इन दोनों दलोंमें मतैक्य नहीं। इस प्रश्नको लेकर

वे दोनों दल बहुत अलग हो गये। जाफरने इस्माइलको अपना उत्तराधिकारी चुना था लेकिन बादमें जब यह मालूम हुआ कि इस्माइल शराब पीता है और दुश्चरित्र है तो जाफरने अपने दूसरे पुत्र मूसा अल-काजिमको अपना उत्तराधिकारी बनाया। अधिकांश शिया सम्प्रदायके अनुयायियोंने जाफरके इस निर्णयको स्वीकार कर लिया लेकिन कुछ लोग ऐसे भी थे जो इस्माइलको ही इमाम मानते रहे। इस्माइलकी मृत्यु जाफरके जीवित रहते ही हो गयी। उसके शवको सब लोगोंके बीच घुमाया गया कि जिसमें किसीको भी यह सन्देह न रह जाय कि उसकी मृत्यु नहीं हुई है। लेकिन इस्माइलको सातवाँ इमाम माननेवाले दलने, जो इस्माइली कहलाया, इस बातको माननेसे इन्कार कर दिया कि उसकी मृत्यु भी हो सकती है। इस्माइल ही उनके अदृश्य महदी हैं। उनका कहना था कि एक बार वे उत्तराधिकारी चुन लिये गये तब उस निर्णयको फिरसे अमान्य नहीं किया जा सकता। इस्माइली यह भी कहते हैं कि शराब तो वे जानकर पीते थे। उनके ऐसा करनेका मतलब था कि वे दिखलाना चाहते थे कि पैगम्बरने इसके सम्बन्धमें जो कहा है वह रूपककी भाषामें कहा है और उनके पीछे एक अन्य अर्थ छिपा हुआ है। इस्माइलियोंके लिए सातकी संख्याका एक विशिष्ट स्थान हो गया।

इस्माइलियोंमें भी मतभेद हो गया। एक दल यह मानता है कि इस्माइलकी मृत्यु नहीं हुई और वे फिर लौट आयेंगे। उनकी दृष्टिमें इस्माइल सातवें और अन्तिम इमाम हैं। दूसरा दल इस बातको नहीं स्वीकार करता। इस दलका कहना है कि पिताके रहते ही इस्माइलकी मृत्यु हो गयी इसलिए वे इमाम नहीं हुए। उनका इमामके लिए इसीलिए चुनाव हुआ था कि उनके पुत्र मुहम्मद इमाम हो सकें। अतएव वे मुहम्मदको ही सातवाँ इमाम मानते हैं। उनकी दृष्टिमें वे ही अन्तिम और पूर्ण इमाम हैं। चाहे जो हो, इस्माइलियोंकी स्थिति कुछ वैसी नहीं थी जिसे कुछ प्रधानता दी जा सके। इस्माइली-सम्प्रदाय एक प्रकारसे गौण, अप्रधान सम्प्रदाय ही था। बादमें चलकर इसने एक

विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। अब्दुल्ला बिन मैमून अल-कद्दाहने जैसे इस सम्प्रदायमें एक प्राणका सञ्चार कर दिया। सन् ८७३-७४ ई० में उसका आविर्भाव हुआ। वह इस्माइलके पुत्र मुहम्मदको सातवाँ और अन्तिम इमाम मानता था। उसने राजनीति और धर्मके क्षेत्रमें एक तहलका मचा दिया। उसका प्रचार गुप्त रूपसे चलता था। वह ऐसा शक्तिशाली सिद्ध हुआ कि उसके पहले इस्लामी शासकोंको इस प्रकारकी स्थितिका शायद ही कभी सामना करना पड़ा हो। उसने समस्त इस्लामी-जगत्में अपने प्रचारकोंको भेजा। उसके अनुसार बाहर जो प्रकट दीखने-वाला सत्य (जाहिर) है उसके पीछे असली अर्थ छिपा हुआ (बातिन) है। इस मतको माननेवाले बादमें बातिनीके नामसे प्रसिद्ध हुए।

अब्दुल्ला बिन मैमूनको अभूतपूर्व सफलता मिली। उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहना सम्भव नहीं। उसकी सफलताका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि उसकी मृत्युके बाद भी उसका चलाया हुआ आन्दोलन रुका नहीं बल्कि उग्रतर ही होता गया। उत्तरी अफ्रीकामें इस आन्दोलनके बहुत समर्थक थे। अब्दुल्लाके प्रचारका वहाँ इतना प्रभाव था कि सन् ९०९ ई० में वहाँके लोगोंकी मनःस्थितिका पता पाकर सईद बिन हुसैन सीरिया छोड़कर वहाँ चला गया। वहाँ उसने अपनेको महदी बतलाया जिसके आनेकी लोग दीर्घकालसे प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने अपनेको मुहम्मद बिन-इस्माइलका परपोता बतलाया और अपना नाम अबू-मुहम्मद ओबैदुल्ला रखा। वह अब्दुल्ला बिन मैमूनका पोता था। उसने एक शहर बसाया जिसका नाम महदिया रखा और वहाँ राजधानीकी प्रतिष्ठा की। इसने जिस वंशकी प्रतिष्ठा की वह फातिमी कहलाया चूँकि ये लोग अपनेको पैग़म्बरकी पुत्री फातिमाका वंशज कहते थे। यह वंश धीरे-धीरे शक्तिशाली होता गया और मिस्र तथा सीरियापर उसने कब्जा कर लिया। बादमें चलकर इन्होंने अपनी राज-धानी काहिरामें बनायी। इस वंशका अन्त सन् ११७१ ई० में सलादीनके हाथों हुआ। फातिमियोंके शासनकालमें सर्वत्र उदारता दीख पड़ती है।

सर्वत्र शान्ति थी। लोग सुखी थे और विद्याकी चर्चा भी उस कालमें काफी हुई। इस्माइलियोंकी दृष्टि उदार थी। दूसरे धर्मवालोंके प्रति उन्होंने अनुदारता नहीं दिखलायी। इस प्रकारकी उदार दृष्टिके साथ-साथ धर्मके मामलेमें अगर फातिमी वंश सीमाका अतिक्रमण नहीं कर जाता तो सम्भवतः वह स्थायीभावसे टिक जाता और समस्त मुस्लिम-जगत्पर अपना प्रभाव डालता रहता। लेकिन ऐसा हो नहीं सका। फातिमी खलीफोंने बुद्धिमानीका परिचय नहीं दिया।

छठवें फातिमी खलीफा अल हाकिमने अपनेको परमात्माका अवतार बतलाया। इस्माइलियोंके अन्तर्गत द्रुज सम्प्रदायवालोंने इसे स्वीकार किया। उनके धर्म-ग्रन्थोंमें उसे इसी रूपमें स्वीकार किया गया है। फातिमी वंशका अस्तित्व बना नहीं रह सका और सीरिया तथा ईरानवाले उसके पतनके कारण हुए।

अब्दुल्ला बिन मैमून अल-कद्दाहके सिद्धान्तोंका स्वागत करने और पूरी शक्तिसे प्रचार करनेमें कूफाके एक व्यक्तिका जबर्दस्त हाथ है जो क़रमतके नामसे प्रसिद्ध है। ठिगने क़दके कारण ही वह क़रमतके नामसे पुकारा जाने लगा। उसका पूरा नाम हमदान बिन अल-अशास था। उसीके नामपर इस्माइली सम्प्रदायके अन्तर्गत क़रमती सम्प्रदाय सङ्गठित हुआ। ये क़रमती बड़े ही खूँख्वार थे। उन्होंने बहुत लूट-पाट मचाई। मक्कापर कब्जा करके काले पत्थरको ये उड़ा ले गये। बाईस वर्षोंके बाद अपने आप उसे फिर काबामें रख गये। कारवाँको लूट लेना उनके लिए एक साधारण-सी बात थी। ये दक्षिणी ईरान और यमनमें फैल गये। हमदानने कूफाके पास अपनी राजधानी दार-अल-हिजरामें बनायी। ये क़रमती अपने विरोधियोंका खून बहानेमें जरा भी नहीं हिचकते थे, यद्यपि ये सबमें बराबरी और भाईचारेका प्रचार करते थे। सम्पत्ति—यहाँतक कि स्त्री—पर भी ये सबका समान अधिकार मानते थे, उनके विरोधियोंका ऐसा कहना है। इनका सङ्गठन गुप्त रूपसे अपना कार्य करता था। इस दलमें घुमक्कड़ अरबोंकी संख्या ही अधिक थी।

हम देख चुके हैं कि इस्माइली-सम्प्रदाय एक अप्रधान और गौण सम्प्रदाय था तथा अब्दुल्ला बिन मैमून अल-कद्दाहने उसमें नवीन प्राणका सञ्चार किया। प्रारम्भिक इस्माइली-सम्प्रदायसे अब्दुल्ला बिन मैमूनने केवल इस्माइली नाम भर लिया और उसके सिद्धान्त तथा विकासका श्रेय उसीको है। उसने जिन सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठा की उन्हींका आधार लेकर इस्माइलियोंके अन्य उप-सम्प्रदाय गठित हुए। हम यह भी देख चुके हैं कि इस्माइलियोंके कई उप-सम्प्रदाय सनातन-पन्थी इस्लामसे इतना अधिक अलग चले गये और ऐसे सिद्धान्तोंका प्रचार करने लगे जिन्हें इस्लामी दुनिया बर्दाश्त नहीं कर सकी और उनमेंसे अधिकांशका अन्त उन्हीं कारणोंसे हुआ। बहुत लोगोंका कहना है कि अब्दुल्ला ईरानी था अतएव उसके मनमें अरबोंके प्रति घृणाका भाव था और प्रकारान्तरसे इस्लामकी विरोधी भावना भी उसके मनके भीतर काम कर रही थी। उसने अनुभव किया कि इस्लामके आविर्भावसे अरबोंकी प्रतिष्ठा बढ़ी है और ईरानकी प्रतिष्ठा मिट गयी है अतएव उसने अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया। लेकिन बहुत लोग इसे स्वीकार नहीं करते। चाहे जो हो, इतना सही है कि सनातन-पन्थी इस्लामसे उसके सिद्धान्तोंका बहुत मेल नहीं है। सात और बारह इमामोंकी संख्याका आधार लेकर इस्माइली-सिद्धान्त बने हैं। उनका कहना है कि संसारमें विशेष रूपसे सातकी संख्या और उससे कुछ कम बारहकी संख्याका प्रभाव दीख पड़ता है। वे कहते हैं कि इन्हीं संख्याओंका अनुसरण प्रकृतिके बहुतसे व्यापारोंमें किया गया है जैसे ग्रह सात हैं तो राशियाँ बारह हैं; सप्ताहमें सात दिन होते हैं तो सालमें बारह महीने आदि। इस्माइली सिद्धान्तके अनुसार परम-सत्यका ज्ञान मनुष्यके लिए सहज उपलब्ध नहीं है। उस ज्ञानको वह अपने आप ही प्राप्त नहीं कर सकता। उसके लिए उसे विवेकबुद्धिकी आवश्यकता है जो एकदेशीय नहीं है वरन् सार्वलौकिक है। इस सार्वलौकिक विवेकबुद्धिका आश्रय पाकर ही वह उस परम सत्यको जान सकता है। यह बुद्धि भी तालीम द्वारा ही उसे हासिल होती है। यह

तालीम अथवा पथ-प्रदर्शन समय-समयपर आनेवाले पैग़म्बरों द्वारा ही सम्भव है। युगकी आवश्यकताओं तथा उस कालमें मनुष्यकी ज्ञान-शक्तिके विकासके अनुसार ही पैग़म्बरों या नातिकोंका आविर्भाव होता है। इस प्रकारके छ पैग़म्बर हो चुके हैं। उन पैग़म्बरोंके नाम इस प्रकार हैं—आदम, नूह, इब्राहिम, मूसा, ईसा और मुहम्मद। सातवें तथा अन्तिम पैग़म्बर मुहम्मद बिन इस्माइल हैं। इन्होंने ही पहले पहल ईश्वरीय ज्ञानके भीतरी रहस्योंको प्रकट किया है। प्रत्येक पैग़म्बर या नातिकके बाद सात इमाम होते हैं जिनमें पहला उस सच्चे ज्ञानको नातिकसे पाता है। मुहम्मद बिन इस्माइलसे ज्ञान प्राप्त करनेवाले इमाम अब्दुल्ला बिन मैमून अल-क़दाह हैं। यह पहले ही हम देख चुके हैं कि इस्माइली भी कई सम्प्रदायोंमें विभक्त हो गये थे। उन सबकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है।

कुछ ऐसे शिया-सम्प्रदाय हैं जो सीमाका अतिक्रमणकर गये हैं, वे 'गुलात'के नामसे प्रसिद्ध हैं। शहरिस्तानीने[1] बतलाया है कि उनके चार मुख्य सिद्धान्त हैं जो इस्लाम-धर्मके विरुद्ध पड़ते हैं। ये चार पुनर्जन्म, अवतारवाद, परमात्मामें मनुष्यके रूपका आरोप और इमामका पुनः लौटना हैं। इन सम्प्रदायोंमें नुसैरी, द्रुज, करमती आदि ऐसे हैं जिनके सिद्धान्तोंसे स्वयं शिया-सम्प्रदायवाले घबड़ा उठते हैं। बारह इमामोंमें आस्था रखनेवाले शिया-सम्प्रदायके अनुयायी ही संख्यामें अधिक हैं। वे उपर्युक्त सम्प्रदायोंके समान सीमाका अतिक्रमण नहीं करते। दूसरी छोरपर शिया-सम्प्रदायके अन्तर्गत ज़ैदी हैं जो सुन्नियोंके बहुत निकट आ जाते हैं। वे अन्य शिया-सम्प्रदायोंकी तरह अदृश्य इमाम, तक़िया आदिमें विश्वास नहीं करते। प्रायः सभी शिया-सम्प्रदाय सूफ़ियोंके कट्टर विरोधी हैं।

उमैय्या ख़लीफ़ोंके कालमें एक ऐसे सिद्धान्तके दर्शन होते हैं जिसका धार्मिक क्षेत्रमें गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा। यह मुतज़िलाका सिद्धान्त था। इस सिद्धान्तकी तार्किकता और विचार-स्वातन्त्र्य अभूतपूर्व थे।

---

1. लि. हि. प. पृ० १११

इसके आविर्भावकी कहानी बड़ी अद्‌भुत है। कहा जाता है कि हसन अल-बसरासे जब यह पूछा गया कि धर्मपर ईमान लानेवाला व्यक्ति अगर कोई पापकर्म करे तो उसे धर्मपर ईमान लानेवाला व्यक्ति कहा जायगा या उसे धर्मसे च्युत माना जायगा। खारिजियोंके कारण उस कालमें यह प्रश्न बड़े महत्वका हो गया था। हसन अभी इस प्रश्नपर विचार ही कर रहे थे कि उनके शिष्य वासिल बिन अता अल-गज्जाऊने फौरन जवाब दिया कि वह व्यक्ति न धर्मसे च्युत ही माना जायगा और न उसे ईमान लानेवाला ही माना जायगा, उसकी स्थिति इन दोनोंके बीचकी होगी। यह वासिल ईरानका रहनेवाला था। एक दूसरी परम्पराके अनुसार इस शिष्यका नाम अमर बिन उबैद था। चाहे हो जिस मस्जिदमें ये लोग थे उसके एक दूसरे हिस्सेमें जाकर वह अपने मतकी व्याख्या करने लगा। इसपर हसनने कहा कि वासिल हमसे अलग हो गया है। उस समय हसनने जो यह कहा "इतजला अन ना" तो वासिलके विरोधियोंने उसे "अल-मुतजला" कहना प्रारम्भ किया। "इतजला अन ना"का अर्थ "हम लोगोंसे फ़रक हो जाना" है। इस्लाम-धर्मके ज्ञाता भारतीय विद्वानोंका मत है कि वासिल स्वयं हटकर नहीं गया बल्कि वहाँसे हटा दिया गया। इब्न खल्लिकानका भी मत है कि वह निकाल दिया गया। ऐसी हालतमें 'मुतजला' शब्दका प्रयोग ठीक है। उनकी दृष्टिमें 'मुतजिला' शब्दका प्रयोग उसी हालतमें ठीक है जब यह माना जाय कि वासिल अपनी इच्छासे चला गया[१]। इस कहानीकी ऐतिहासिकतापर विश्वास किया जाय या नहीं लेकिन इससे इतना पता चल जाता है कि मुतजिला सिद्धान्तका जन्म बसरामें हुआ।

मुतजिला सिद्धान्तका आधार तर्क है। प्रारम्भमें सनातन-पन्थी इस्लामसे इसका दो बातोंमें गहरा मतभेद है। मुतजिला सिद्धान्तके माननेवाले परमात्मामें किसी (सिफत) गुणका आरोप करनेके लिए तैयार नहीं होते। परमात्मामें शक्ति, ज्ञान, प्राण-शक्ति आदि गुणोंका आरोप

---

१ रिप. इ., पृ० ४९३।

करना मुतजिला सिद्धान्तके अनुयायियोंकी दृष्टिमें परमात्माके एकत्वको खर्वित करना है। उनका कहना है कि इन गुणोंका शाश्वत मानना एकेश्वरवादके सिद्धान्तका विरोध करना है। मुतजिला सिद्धान्तके माननेवालोंके अनुसार सनातन-पन्थी परमात्माके जात और सिफतको अलग मानते हैं और कहते हैं कि ये दोनों अलग किये जा सकते हैं। इस बातको मुतजिला सिद्धान्तवाले स्वीकार नहीं करते। इस बातपर भी वे आपत्ति करते हैं कि सनातन-पन्थी, कुरानको अनादि और अनिर्मित कहते हैं। वह मनुष्यकी कृति नहीं है। उसका नाश नहीं होता। मुतजिला सिद्धान्तवाले सनातन-पन्थियोंके इस मतको एकेश्वर-वादका विरोधी मानते हैं। सनातन-पन्थियोंसे इस बातमें भी उनका मतभेद है कि मनुष्यके भाग्यको परमात्माने पहलेसे ही स्थिर कर रखा है तथा अच्छा या बुरा कुछ भी करना मनुष्यकी अपनी इच्छा पर नहीं निर्भर करता। इस भाग्यवादी दृष्टिकोणका विरोध मुतजिला करते हैं। मुतजिलाके माननेवालोंका कहना है कि अगर इस बातको स्वीकार किया जाय कि नियति सब कुछ कराती है जिसपर मनुष्यका कोई वश नहीं और इस प्रकारसे किये हुए पापोंके लिए परमात्मा मनुष्यको दण्ड देता है तो इसका मतलब यह होगा कि परमात्मा निरंकुश, स्वेच्छाचारी और बेरहम है। उनके अनुसार परमात्मा उन कर्मोंके लिए किसीको दण्डका भागी नहीं बनाता जिनपर संसारके प्राणियोंका कोई वश न हो। परमात्माने बुराईकी सृष्टि नहीं की है। इसलिए इन सिद्धान्तोंको माननेवाले अपनेको "अहलुल अदल वात तौहीद" कहते हैं जिसका मतलब है कि वे परमात्माकी न्यायप्रियता और उसके एकत्वपर ईमान लाते हैं। इस्लाम-की प्रथम शताब्दीमें नियतिवादका बोलबाला था। मुतजिला सिद्धान्तके माननेवालोंने इसके विरोधमें युक्ति दी और अपने मतका प्रतिपादन किया। कुरानको भी वे मनुष्य-कृत मानते हैं। उनमें कितने ऐसे थे जिन्होंने कुरानकी तरह उसी भाषाका प्रयोगकर ग्रन्थ लिखे। उनका एकमात्र उद्देश्य था कि वे यह दिखला दें कि वैसी भाषा और वैसे ग्रन्थ-

की रचना मनुष्यके लिए सम्भव है और उसमें किसी प्रकारके दिव्यत्व अथवा अलौकिकताका आरोप निरर्थक है।

मोटे तौरपर मुतज़िला सिद्धान्त निम्नलिखित है—परमात्मा अनादि और अनन्त है। उसके ज़ात और सिफ़त अभिन्न हैं। उसके हाथ-पाँव; मुँह आँख आदिका प्रयोग केवल रूपकके रूपमें ग्रहण करना चाहिये। कुरानका वक्तव्य ही प्रधान है। उसकी भाषाको अलौकिक कहना कुछ अर्थ नहीं रखता। परमात्मा न्यायी है और वह मनुष्यके साथ न्यायका व्यवहार करता है। परमात्मा बराबर भला ही करनेवाला है। बुरे कर्मका दोष उसके मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता, वह मनुष्यके ऊपर निर्भर करता है। मनुष्यके भले, बुरे कर्मोंका दायित्व मनुष्यपर है। ज्ञान, बुद्धिके द्वारा परमात्माको जाना जा सकता है। नियतिवादका सिद्धान्त ग़लत है। धर्मके भीतरी तत्त्वोंको बिना समझे बूझे माननेका कोई मतलब नहीं। परमात्माके सिवा सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। वलीके सिद्धान्तको वे नहीं मानते। उनका कहना है कि इसका मतलब किसी विशेष व्यक्तिको दूसरोंसे ऊँचा मानना है। उनके मतानुसार जो काम एक मुसल्मान कर सकता है उसे दूसरा मुसल्मान भी कर सकता है अतएव किसी विशेष-व्यक्तिको अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न क्यों माना जाय। वे यह नहीं मानते कि क़यामतके दिन परमात्माके दर्शन होंगे और न यही मानते हैं कि परमात्मा और मनुष्यके बीच किसी मध्यस्थकी ज़रूरत है। मनुष्यको अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोगना पड़ता है। मुतज़िलाके अन्तर्गत और कई सम्प्रदाय गठित हो गये जैसे वासिलिया, हुज़ैलिया, नज्ज़ा-मिया आदि जिनके ब्योरेमें जाना हमारा अभीष्ट नहीं है।

हम यह पहले ही देख चुके हैं कि मुतज़िला सिद्धान्त अब्बासी ख़लीफ़ा मामून (सन् ८१३ ई०—सन् ८३३ ई०) तथा उसके पुत्र ख़लीफ़ा अल-वासिक़ (सन् ८४२ ई०—सन् ८४७ ई०) के कालमें अत्यधिक शक्तिशाली था। वह एक प्रकारसे राजधर्म स्वीकार कर लिया गया था। दुर्भाग्यकी बात यह है कि जो मुतज़िला-सिद्धान्त विचार-

स्वातन्त्र्यका पक्षपाती था और कट्टरताका विरोधी था वही धर्म और सिद्धान्तके नामपर दूसरोंपर अत्याचार करनेका जरिया बन गया। खलीफा अल-मामूनने मुतजिला-सिद्धान्तके विरोधियोंको सजा देनेके लिए व्यवस्था की है। बहुतोंसे उसने स्वीकार कराया कि कुरान मनुष्य-कृत है और इसे नहीं स्वीकार करनेके कारण बहुतोंको सजा भुगतनी पड़ी। अहमद बिन हनबल उन चौबीस प्रमुख और सम्भ्रान्त मुसलमानोंमें थे जिनके सामने कुरान सम्बन्धी इस प्रश्नको रखा गया कि वह अनादि है या मनुष्य द्वारा निर्मित है। उनमेंसे अधिकांशने भयके मारे स्वीकार कर लिया कि वह मनुष्य-कृत है लेकिन हनबलने इसे माननेसे इनकार कर दिया। हनबल सुन्नियोंके चार सनातन-पन्थी सम्प्रदायोंमें एकके प्रवर्तक थे। मामूनकी अचानक मृत्यु हो गयी नहीं तो यह कहना मुश्किल है कि हनबलकी कैसी गति होती। इसी प्रकारसे अपने पिताकी नाईं खलीफा अल-वासिक़ने मुतजिलाके सिद्धान्तोंका प्रचार किया। कुछ कैदियोंको एक बार उसने इसलिए मुक्त कर दिया कि वे कुरानको मनुष्य-कृत मानते हैं और इसमें विश्वास करते हैं कि क़यामतके दिन परमात्माका साक्षात्कार नहीं होगा। जिन लोगोंने इसे नहीं माना उन्हें उसने फिरसे जेलमें भिजवा दिया[1]। मुतजिला-सिद्धान्तके माननेवालोंके दो केन्द्र बसरा और बगदाद थे।

मुतजिलोंके शास्त्रीय और दार्शनिक विवेचन आम मुस्लिम जनताको आकर्षित नहीं कर सके। उनका ह्रास खलीफा मुतवक्किलके शासन-कालमें होने लगा। मुतवक्किल (सन् ८४७ ई०—सन् ८६१ ई०) ने फिरसे सनातन-पन्थी कट्टरताकी प्रतिष्ठा की और मुतजिला सिद्धान्तका दमन किया। दसवीं शताब्दीके मध्यमें अबुल हसन अल-अशारीने सनातन-पन्थी सिद्धान्तोंकी खामियोंको दूर करते हुए मुतजिला-सिद्धान्तका विरोध किया। उसने जिस कट्टरताका प्रतिपादन किया वह आजतक चली आ रही है। अशारी पहले मुतजिला-सिद्धान्तका ही माननेवाला था लेकिन

1. तबारीः लि. हि. अ. पृ० २८५।

बादमें वह उसका विरोधी हो गया। वह जब चालीस वर्षकी उम्रका था तब उसने विरोधी-दलको अपनाया और समस्त जीवन मुतजिला सिद्धान्त-का विरोध करता रहा। तर्क करनेकी शक्ति तथा अनेक युक्तियाँ उसने मुतजिला सिद्धान्तसे ही ग्रहण की थीं। लेकिन मुतजिला सिद्धान्त बिल्कुल खतम नहीं हो गया। ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें जमख्शरी इस सिद्धान्त-का बहुत बड़ा अनुमोदक था। वह कुरानका एक बहुत बड़ा व्याख्या करनेवाला था। ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें रय्य (अफगानिस्तान) में मुतजिला-सिद्धान्तके अनुयायियोंका पता चलता है। महमूद गजनीने उन्हें वहाँसे निर्वासित किया और उनके ग्रन्थोंको जला दिया।

मुतजिलोंको अन्य मुस्लिम-सम्प्रदायोंकी तरह कुछ विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई। लेकिन मुतजिला-सिद्धान्तने एक दूसरे ढंगसे इस्लामी विचारधाराको प्रभावित किया। राजनीति और धार्मिक क्षेत्रमें उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं रहा लेकिन विचारके क्षेत्रमें इसने अपना व्यापक प्रभाव डाला। उस समयकी अन्य विचारधाराओं और सम्प्रदायोंको एक नये ढंगसे सोचनेके लिए इसने मार्ग दिखाया। विचार-स्वातन्त्र्यके लिए इसने एक वातावरण तैयार कर दिया। इख़्वानुल सफा आदि जैसे दल इसके बाद ही हुए। 'पवित्र आत्माओंकी बिरादरी' के नामसे इन्होंने अपना परिचय दिया। ईसाकी दसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें ये धार्मिक आचरणको अपनानेवाले व्यक्ति इस काममें लग गये कि धर्म और विज्ञानमें सामञ्जस्य स्थापित किया जाय। उन्होंने अपना एक दल सङ्घ-टित किया जिसका उद्देश्य था कि वे धार्मिकता, पवित्र जीवन, सत्य आदिके रास्तेपर चलकर परमात्माका अनुग्रह प्राप्त करें। उन्होंने इस बातकी कोशिश की इस्लामके सिद्धान्तोंको तर्कसङ्गत और वैज्ञानिक दृष्टिसे उचित ठहराया जाय। उन सिद्धान्तोंकी विवेचना उन्होंने इसी दृष्टिसे की। इन्होंने इस दिशामें जो कुछ किया वह सन् ९७० ई०[1] के लगभग पचास ग्रन्थोंके रूपमें प्रकाशित हुआ। उन्होंने इन ग्रन्थोंमें धार्मिक कहा-

१. म्क्यूगेल, लि. हि. प. २९२ पर उद्धृत।

नियों, रूपकों आदिका उपयोग किया। ऐसा करनेके पीछे उनका यह उद्देश्य था कि लोगोंको उन बातोंका पता चले, वे ज्ञान विज्ञान, धर्म, दर्शनसे परिचय प्राप्त करें। उनका कहना था कि धर्मके नियमोंमें बहुत-सी बुराइयाँ इसलिए पैदा हो जाती हैं कि मनुष्यको ठीक-ठीक बातोंका पता नहीं होता। अज्ञानवश वे बहुत-सी गलतियाँ करते हैं और समुचित ज्ञानके अभावमें गलत चीजोंको भी धर्ममें शुमार कर लेते हैं। अगर दर्शन आदिसे मनुष्यको परिचय प्राप्त हो जाय तो वह अपने आपको पवित्र बना सकता है और अपने दोषोंको दूर कर सकता है तथा उनसे बचनेमें समर्थ हो सकता है। ये लोग बसराके थे। कमसे कम पाँचके नाम तो अब भी लोगोंको ज्ञात हैं। वे यों हैं—अबू-सुलैमान मुहम्मद बिन माअशर अल-बैयुस्ती अथवा अल-मुकद्दसी, अबुल हसन अली-बिन-हारून अज जनजानी, अबू-अहमद अल-मिहजानी, (नहजूरी) अल-औफी और जैद बिन रिफाआ। कुछ लोगोंका कहना है कि ये लोग वास्तवमें इस्माइली-सिद्धान्तके प्रचारक थे[1]।

सनातन-पन्थी सुन्नियोंकी चार प्रमुख शाखाएँ हैं जो आपसमें एक दूसरेसे प्रायः मिलती-जुलती हैं और उनमें आपसी मैत्रीका भाव है। ये चारों परस्पर एक दूसरेके इमामोंके प्रति सम्मानका भाव रखते हैं और चारोंमेंसे किसी भी शाखाके इमामके साथ उन्हें नमाज पढ़नेमें आपत्ति नहीं। ये चारों सनातन-पन्थी शाखाएँ, सुन्नी सम्प्रदायकी हैं जिसकी संख्या इस्लाम के अन्य सम्प्रदायोंसे बहुत ही अधिक है। सुन्नी सम्प्रदायवाले ही समस्त संसारमें बहुमतमें हैं। धर्मशास्त्रकी व्याख्या तथा कर्मकाण्डको लेकर ही ये चार शाखाएँ हुईं। ये चार शाखाएँ अपने-अपने संस्थापकोंके नामसे ही सुपरिचित हैं। इनमें सबसे पहली और पुरानी शाखा हनीफी है जिसके संस्थापक अबू हनीफा थे। इनका जन्म सन् ७०० ई० में हुआ। ये एक ईरानी गुलामके पुत्र थे। ये एक व्यापारी थे और इस्लामी धर्मशास्त्रमें इनका अद्भुत प्रवेश था। इन्होंने अपने मतका प्रचार अपने

1. लि. हि. अ., पृ० ३७१।

शिष्योंमें किया। इनका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं था। इनके सिद्धान्तोंका पता इनके शिष्य अबू यूसुफ (सन् ७९८ ई०) की 'किताब अल-खराज' से चलता है। इनकी मृत्यु सन ७६७ ई० में हुई। धर्माचरण के लिए अथवा धार्मिक कर्मकाण्डमें अनुचित-उचितके विचारके लिए इन्होंने 'हदीस' पर उतना जोर नहीं दिया जितना 'क़यास' पर। 'क़यास' से उनका मतलब तर्क द्वारा व्यापकसे व्याप्यके अनुमानसे था। उनका कहना था कि धर्म-सम्बन्धी नियम-कानूनोंको विचार कर अमलमें लाना उचित है। किसी भी व्यक्तिको यह अधिकार है कि वह समझ-बूझकर अपना रास्ता तय करे। अमीर अलीका[1] कहना है कि हनीफा शिया-सम्प्रदायमें दीक्षित थे और धर्मशास्त्रकी शिक्षा उन्होंने इमाम जाफर अस-सादिकसे ग्रहण की थी। बादमें वे शिया सम्प्रदायके विरोधी हो गये। संसारके सुन्नी-सम्प्रदायकी लगभग आधी संख्या हनीफी शाखामें पड़ती है। भारतीय मुसलमानोंमें अधिकांश इसी शाखाके अनुयायी हैं। मध्य एशिया, टर्की, अफगानिस्तान, मिस्र आदिमें भी अधिकांश मुसलमान इसी शाखाके हैं। लगभग ग्यारह करोड़ अस्सी लाख मुसलमान हनीफी शाखाके हैं। अन्य तीन शाखाएँ मालिकी, शाफी और हनबली हैं। मालिकियोंकी संख्या लगभग तीन करोड़ है, शाफियोंकी सात करोड़ तीस लाख और हनबलियोंकी तीस लाख है।

हनीफी शाखा उदार है और मालिकी शाखा उससे अधिक अनुदार। वे कट्टरताके उपासक हैं। वे हदीसको ही प्रधानता देते हैं। इस कट्टरता और अनुदारताका कारण सम्भवतः यह है कि इस शाखाका जन्म मदीनेमें हुआ और इसके प्रवर्तक मालिक इब्न अनास थे जिनके बारेमें कहा जाता है कि वे पैग़म्बरके जीवन और सोचनेके ढंगसे अधिक परिचित थे। हदीसोंका हवाला देकर ही किसी कृत्यके औचित्य या अनौचित्यपर वे विचार करते थे। उनका जन्म मदीनेमें सन ७१३ ई० या सन् ७१४ ई० हुआ था और मृत्यु सन् ७९५ ई० में हुई थी। मालिककी

1. स्पि. इ. पृ० ३५१।

मृत्यु हारूं अर्रशीदके कालमें हुयी। इब्न खल्लिकान[1]का कहना है अल-मन्सूर द्वारा मालिक बड़ी बेरहमीसे कोड़ोंसे पिटवाया गया चूंकि खलीफाको सन्देह था कि वह अब्बासियोंका विरोधी है लेकिन उससे जनतामें उसका सम्मान बढ़ता ही गया। इन दोनों शाखाओंके प्रादुर्भावके बादसे धर्म शास्त्रका अध्ययन क्रमशः उन्नति करता गया।

तीसरी शाखा शाफीके प्रवर्त्तक मुहम्मद इब्न-इद्रीस अस शाफी थे। ये कुरेश वंशके थे। इनका जन्म गाजा (सीरिया) में सन् ७६७ ई० में हुआ। इसी साल अबू हनीफाकी मृत्यु हुई थी। इन्होंने मदीनेमें अश-शाफीसे शिक्षा ग्रहण की थी। बगदाद और कैरो ही इनके क्षेत्र थे जहाँ इनका प्रभाव अधिक था। इनकी मृत्यु भी कैरोमें सन् ८२० ई० में हुई। उस समय खलीफा मामूनका शासन चल रहा था। ये न मालिकियोंकी तरह कट्टर थे और न हनीफियोंकी तरह उदार थे। इन दोनोंके बीचका मध्यम पथ इनका कहा जा सकता है। इनके अनुयायी मिस्रके कुछ हिस्सेमें, भारतवर्षके उपकूलवाले भागमें, पूर्वी अफ्रीकामें, सिंहलमें तथा मलाया आदिमें हैं। फिलस्तीन तथा पश्चिमी और दक्षिणी अरबमें भी शाफीके अनुयायी पाये जाते हैं। भारतवर्षके बोहरा लोगोंमें भी इनके मतके माननेवाले हैं।

चौथी शाखा हनबली है। इसके जन्मदाता अहमद इब्न हनबल थे। ये अत्यन्त दकियानूस थे। इनके अनुयायियोंकी कट्टरता और दकियानूसीपनके कारण खलीफा मामूनसे लेकर उनके बादके होनेवाले खलीफोंके शासन कालतक बहुत अधिक दंगे हुए, बहुत अधिक खून खराबी हुई[2]। जैसे जब इब्न हनबलकी मृत्यु हुई तो वे सन्तोंमें गिने गये। वर्तमान कालमें इनके अनुयायियोंकी संख्या बहुत कम हो गयी है। वहाबियोंमें ही अब वे अधिकतर रह गये हैं। ये अश-शाफीके शिष्य थे और हदीसका अक्षरशः पालन करनेपर जोर देते थे। इब्न

१. लि. हि. प., पृ० २९५।

२. हि. सा., पृ० २७७ (पाद टिप्पणी, ३)

खल्लिकान[1]का कहना है कि शाफीने मिस्रके लिए रवाना होते समय कहा था कि इब्न हनबलके जैसा धर्मका और धर्मशास्त्रके नियमोंका जानकार और व्यवस्थापक बगदाद में कोई नहीं है। ये खलीफा मामून और खलीफा मुतसिम बिल्लाहके धार्मिक दृष्टिकोणका विरोध करते रहे। इनके प्राणोंका भी भय था लेकिन वे अपने सिद्धान्तपर डटे रहे। वे अरब जातिके थे। उनका जन्म ७८० ई० में हुआ था और मृत्यु ८५५ ई० में हुई। बगदादमें ही उनकी मृत्यु हुई।

ये चारों, इमाम कहे जाते हैं और सुन्नियोंकी श्रद्धाके पात्र हैं। काल-क्रमसे जैसे-जैसे समय बीतता गया लोग इन धर्म-शास्त्रकी व्यवस्थाओं और पाबन्दियोंके कायल होते गये और उनके लिए धर्माचार्यों और धर्म-शास्त्रोंके जानकारोंके वचन ही कानून बन गये। उनकी व्याख्या ही ठीक समझी जाने लगी। न्याय-अन्याय, औचित्य-अनौचित्यका विचार उनकी दी हुई व्यवस्थाओं और व्याख्याओंके प्रकाशमें किया जाने लगा। शरि-यतके अनुसार मुसलमानोंके जीवनके सभी कारबार चलते हैं। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक सम्बन्धोंको वे शरियतके अनुसार स्थिर करते हैं। अपने धर्मवालोंके साथ, अपने सम्प्रदायवालोंके साथ कैसा सम्बन्ध रहना चाहिये आदि प्रश्नका हल वे शरियतसे निकालना चाहते हैं। पाँच प्रकारके कर्मोंका विधान वे सभीके लिए करते हैं—(१) फर्ज जिसका पालन आवश्यक है, जिसकी अवहेलनासे दण्ड भोगना पड़ता है और जिसके पूरा करनेसे मनुष्य पुरस्कारका अधिकारी होता है; (२) मुस्तहब्ब, जिसका पालन शुभदायक है लेकिन जिसके नहीं करनेसे किसी प्रकारका दण्ड नहीं भोगना पड़ता (३) जायज, ऐसे कर्म जो उचित हैं उनके लिए दण्ड या पुरस्कारका प्रश्न कानूनकी दृष्टिसे नहीं उठता; (४) मकरूह, जो अनुचित तो हैं लेकिन जिनके लिए दण्ड नहीं भोगना पड़ता और (५) हराम, जिन कर्मोंके करनेका निषेध किया गया है और जिनके लिए दण्ड भुगतना पड़ता है। चाहे जो हो, सुन्नियोंकी कट्टरता उसी कालसे

---

१. लि. हि. प., पृ० २९५ पर उद्धृत।

बनी हुई है और उसी प्रकारसे चलती आ रही है।

तत्कालीन अरबी और ईरानी समाजकी धार्मिक अवस्थाके इस संक्षिप्त परिचयसे यह समझना कठिन नहीं होगा कि इस्लामी दुनियामें तरह-तरहकी विचारधाराएँ क्रियाशील थीं। इस्लाम-धर्मके अन्तर्गत नाना प्रकारके धार्मिक आन्दोलन चल रहे थे। उस कालकी विचारधाराओंमें कुछ तो ऐसी थीं जो स्वाभाविक रूपसे इस्लामी देशोंमें उत्पन्न हुई थीं और कुछ बाहरी थीं जो इस्लाम-धर्मको नाना भावसे प्रभावित कर रही थीं। इस सम्पूर्ण कालमें अर्थात् ईसाकी सातवीं शताब्दीसे लेकर ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीतक अरब, ईरान तथा अन्य इस्लामी देशोंकी धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति एक दूसरेसे इस प्रकार उलझी हुई थीं कि उनमेंसे किसी एकको समझनेके लिए दूसरीका समझना आवश्यक है। इस्लामके अन्तर्गत कुछ ऐसे सम्प्रदाय थे जो राजनीतिके कारण उत्पन्न हुए लेकिन बादमें चलकर उन्होंने धार्मिक रूप ले लिया और कुछ ऐसे थे जो पूर्णतया धार्मिक थे लेकिन वे अपनेको राजनीतिसे अछूता नहीं रख सके। इसी कालमें तथा इन्हीं परिस्थितियोंके बीच सूफीमतका आविर्भाव और विकास हुआ। अतएव सूफीमतका अध्ययन करते समय इन परिस्थितियोंको अपनी आँखोंसे ओझल नहीं होने देना चाहिये। इन विभिन्न शक्तियोंकी क्रियात्मकता और गतिशीलताकी पृष्ठभूमिमें सूफीमतका अध्ययन ठीक होगा।

---

६. सूफ़ीमतका आविर्भाव

प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें ही हम देख चुके हैं कि इस्लामके रहस्य-वादी 'सूफी' नामसे परिचित हैं और इस्लामका रहस्यवाद अथवा सूफियों-का दर्शन ही 'तसव्वुफ़' है। नाना भावसे नाना विचारकों और साधकोंने इसपर विचार किया है। प्रमुख सूफी तथा मुस्लिम साधकोंने समय-समय-पर 'सूफी' शब्दकी व्याख्या करते हुए उसपर प्रकाश डाला है। यहाँपर उन्हींके कथनोंसे हम 'सूफ़ी' शब्दका अर्थ समझनेकी चेष्टा करेंगे।

लेकिन इस प्रकारसे भी 'सूफी' शब्दका अर्थ समझना कुछ कम कठिनाई नहीं उपस्थित करता। इसके दो कारण हैं। प्रथम तो यह कि प्रारम्भसे ही इसकी नाना प्रकारकी परिभाषाएँ और व्याख्याएँ की जाती रही हैं जिनके आधारपर निश्चित रूपसे निर्णय दे देना कि इसे ही सूफी-धर्म कहा जा सकता है और इसे नहीं, अत्यन्त अनुचित होगा। इसके सम्बन्धमें कितना विचार किया गया है और सूफी तथा तसव्वुफ़की कितनी परिभाषाएँ की गयी हैं इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि फरीदुद्दीन अत्तार (सन् १२३० ई० के लगभग) ने सन्तोंके जीवन-सम्बन्धी अपनी पुस्तक 'तज़किरातुल औलिया' में इस तरहकी सत्तर परिभाषाओंका ज़िक्र किया है। दूसरा कारण यह है कि सूफीमत इस्लामके अन्तर्गत कोई ऐसा सङ्घटित सम्प्रदाय नहीं है कि उसके मतों और सिद्धान्तोंको एक सुसङ्घटित नियमित प्रणालीके अन्दर रखा जाय[1]। मानी-धर्म अथवा इस्माइली आदि जैसे सम्प्रदायों और मतोंकी नाईं यह किसी विशेष प्रणालीमें बँधा हुआ नहीं है[2]। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है कि सूफियोंमें अनेकानेक वैषम्यके रहते हुए भी उनके

१. गोल्डज़िहर : ज. रा. ए. सो. (१९०४), पृ० १३० ।

२. लि. हि. प., पृ० ४२२ ।

अनेकों ऐसे सिद्धान्तों और धार्मिक मान्यताओंको एक विशेष प्रणालीमें अन्तर्भुक्त किया जा सकता है जिनके सम्बन्धमें विभिन्न विचारों और दृष्टिकोणवाले सूफी-सम्प्रदायोंमें मतैक्य है। कुछ ऐसे आधारभूत सिद्धान्त हैं जिन्हें कम या बेशी प्रायः सभी सूफी-सम्प्रदाय मानते हैं। प्रारम्भिक कालमें इनका कोई सम्प्रदाय नहीं बना था और व्यक्तिगतरूपसे वे साधनामें लीन रहते थे लेकिन बादमें चलकर उनके सिद्धान्त, मत और सम्प्रदाय सङ्कुचित हुए।

बहुत कालतक उन साधकोंके व्यक्तिगत जीवन और उनकी जीवन-चर्याको देखकर ही सूफी सिद्धान्तोंको स्थिर करनेका प्रयास किया गया था। वे साधक इस्लाम-धर्मके विभिन्न सम्प्रदायों और विचारधाराओंमें नहीं पड़ते। उनकी अलग अपनी विशिष्टता थी। इस साधनाके व्यष्टिवादी होनेके कारण विभिन्न सूफी साधकोंका दृष्टिकोण एक दूसरेसे बहुत अलग पड़ जाता है। ये साधक अत्यन्त उदार थे और धार्मिक तथा साम्प्रदायिक बन्धनोंके प्रति उदासीन-से ही रहते थे। प्रारम्भिककालीन उन साधकोंकी न बँधी बँधाई बोली है और न नियम-क़ानूनोंकी ज़बर्दस्त शृङ्खलामें ही वे बँधे दीख पड़ते हैं। इसके साथ ही ये अपने आपको संसारके झमेलोंसे अलग रखना चाहते थे और अपने मतके प्रचारका उनमें कोई आग्रह नहीं था। 'सूफी' शब्दकी जितनी भी परिभाषाएँ उप-लब्ध हैं उनके आधारपर सूफियोंमें पाये जानेवाले गुणोंकी अगर तालिका बनायी जाय तो वह कम लम्बी-चौड़ी नहीं होगी। लेकिन नाना गुणोंसे सूफियोंको विभूषित करनेकी इस चेष्टासे इतना तो अवश्य पता चल जाता है कि लोगोंमें साधारणतः उनके प्रति एक सम्मानका भाव था। 'सूफी' शब्दकी नाना प्रकारसे केवल व्याख्या ही नहीं की गयी है बल्कि अपने-अपने दृष्टिकोणसे उसे रूप देनेकी भी चेष्टा की गयी है जिनमें सब समय सूफियोंके प्रति न्याय नहीं हुआ है। इसीको लक्ष्य करते हुए हुज्वीरीने कहा[1] है कि सूफियोंके लिए सूफी-सिद्धान्त सूर्यसे भी अधिक स्पष्ट है अतएव

१. कश्फ०, पृ० ३४।

उन्हें किसी प्रकारकी व्याख्याकी आवश्यकता नहीं, फिर भी सारा संसार उसकी अपनी अपनी व्याख्या लिये हुए प्रस्तुत है, यह दूसरी बात है कि उसने उसका अर्थ समझा है या नहीं।

मारूफ अल-करखी (सन् ८१५ ई०) खलीफा हारूँ अर्रशीदके कालमें एक साधक हो चुके हैं। कहा जाता है कि वे परमात्माके पीछे पागल थे। उन्होंने सूफीमतकी चर्चा करते हुए बतलाया है कि परमात्मा सम्बन्धी सत्यका जानना और मानवीय वस्तुओंका त्याग ही सूफीका धर्म है। निकोल्सनके मतानुसार यह परिभाषा ही सम्भवतः सूफी-धर्मकी सबसे पुरानी परिभाषा[1] है। और अन्य परिभाषाएँ भी हो सकती हैं लेकिन उनका अभीतक पता नहीं चला है। अन्य साधकोंने भी बतलानेकी चेष्टा की है कि सूफी कौन हैं ? अथवा सूफीका धर्म क्या है ? अबुल हुसैन अननूरीका कहना है कि सूफीको "संसारसे घृणा होती है और परमात्मासे प्रेम।" नूरीका समय सन् ९०७ ई० के लगभग है। इसी प्रकारसे जुनैद (सन् ९०९-९१० ई०) ने बतलाया है कि तसव्वुफका मतलब यह है कि परमात्मा तुम्हें अपने निजके स्वार्थके लिए जीवन धारण न करने दे और ऐसा कर दे कि तुम उसीके लिए जियो। अबू-अली कुजवीनीके अनुसार सूफीमत "सुन्दर व्यवहार" है। अबूसह सालुकीके मतसे विधि-निषेधोंसे बचना ही सूफीमत है। बिशर अलहाफीने बतलाया है कि सूफी वह है जो परमात्माके सहारे अपने हृदयको पवित्र रखता है। बिशर अल-हाफीकी मृत्यु सन् ८४१ ई० के लगभग हुई थी। अबूसईद फजलुल्लाने इसकी परिभाषा करते हुए बतलाया है कि एकाग्र-चित्तसे परमात्मामें ध्यान लगाना ही सूफीमत है। अबू बक्र शिबली कहते हैं कि यह परमत्याग है अर्थात् इस संसारमें अथवा आनेवाले जीवनमें परमात्माके सिवाय अन्य किसी ओर ध्यान नहीं जाने देना ही इसकी विशेषता है। जून नून मिस्रीने सूफीके लक्षणोंको बतलाते हुए कहा है कि सूफी वह है जो वचन और कर्ममें सामञ्जस्य बनाये रखता है और उसका

---

१. लि. हि. अ., पृ० ३८५।

मौन ही उस अवस्थाका परिचय देता है और जो सांसारिक बन्धनोंको दूर कर देता है। अबुल हुसैन अन-नूरीने एक जगह और बतलाया है कि नफ्स (वासनामय हृदय) के सभी आनन्दोंका परित्याग सूफीका धर्म है ("अततसव्वुफ़ तरकुकुल्ली हाज़िन नफ़्सी")। एक परिभाषामें कहा गया है कि सूफी वह है जो न किसी वस्तुका अधिकारी है और न वह स्वयं किसीके अधिकारमें है। कुछ लोगोंका कहना है कि सूफियोंकी विशेषता यह है कि उनका हृदय पवित्र है और उनके कर्तव्य भी पवित्र हैं। इस प्रकारसे अनेक परिभाषाएँ देखनेको मिलती हैं जिनमें नाना प्रकारसे सूफियोंके गुणोंपर प्रकाश डाला गया है। हुज्वीरीने जैसे कहा है कि सच्चा सूफी वही है जो अपवित्रताको पीछे छोड़ आया है[1]। इन समस्त परिभाषाओंमें इस बातपर जोर दिया गया है कि बाहर और भीतरकी शुद्धि और पवित्रता बनाये रखना सूफी साधकका कर्तव्य है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी समस्त इच्छाओं, समस्त वासनाओंको मिटाकर परमात्माकी इच्छापर ही अपनेको छोड़ दे। सूफी-मतकी विशद रूपमें विवेचना करनेवाले अल्-कुशैरीने बाह्य और आभ्यन्तरिक जीवनकी पवित्रताको ही सूफी-धर्म माना है। उसका कहना है कि पवित्रता एक श्रेष्ठ वस्तु है, चाहे जिस प्रकारकी भाषाके द्वारा उसे क्यों न व्यक्त किया जाय और उसके विपरीत अपवित्रता है जिसका परित्याग करना चाहिये।

'सूफी' शब्दकी व्युत्पत्तिके बारेमें भी मतभेद है और नाना प्रकारकी युक्तियों द्वारा इस शब्दकी विभिन्न व्युत्पत्तियोंको उचित ठहरानेकी कोशिश की गयी है। वास्तवमें अभी हम जिन व्युत्पत्तियोंका उल्लेख करेंगे उनमें सूफी-साधकोंके जीवनको ही दृष्टिमें रखकर उसे समझा गया है। अबू नसर अल-सर्राजने अपनी पुस्तक 'किताब अल-लुमा' में 'सूफी' शब्दपर विचार करते हुए बतलाया है कि 'सूफी' शब्द अरबीके 'सूफ़' शब्दसे निकला है जिसका अर्थ 'ऊन' है। भाषाशास्त्री इस व्युत्पत्तिको

1. कश्फ०: पृ० ३२।

ठीक मानते हैं। इस व्युत्पत्तिको ठीक माननेका कारण बतलाते हुए अल-सराजने कहा है कि ऊनका व्यवहार पैगम्बर, सन्त तथा साधक करते आये हैं। इसका पता विभिन्न हदीसों और विवरणोंसे चल जाता है। अतएव ऊनका वस्त्र धारणकर एकान्त जीवन बितानेवाले साधकोंके जीवनको दृष्टिमें रख यह नाम रख लिया गया हो तो इसमें कुछ असङ्गति नहीं मालूम होती। इस व्युत्पत्तिको [1]नोएल्दकेने ठीक माना है। उसने दिख लाया है कि इस्लामकी प्रथम दो शताब्दियोंमें आम तौरपर लोग ऊनी वस्त्रका व्यवहार करते थे और विशेष रूपसे संन्यास जीवन बितानेवाले इसका उपयोग करते थे। 'सूफ' (ऊन) से 'सूफी' शब्द बना, इस मतको माननेवाले अधिकांश हैं। ब्राऊन[2] इसी मतको मानता है और इसकी पुष्टिमें उसने बतलाया है कि पर्शियामें इन रहस्यवादी साधकोंको "पश्मीना पूश" (ऊन पहननेवाला) कहा गया है। मासूदीके आधारपर ब्राउन[3]ने और भी आगे कहा है कि इस मतकी पुष्टि हो जाती है। मासूदीने बतलाया है कि प्रारम्भिक कालसे ही लोगोंने ऊनी वस्त्र धारण करनेको जीवनकी सादगी तथा विलासितासे दूर रहनेका प्रतीक मान लिया था जिसपर हजरत मुहम्मद तथा प्रथम चार खलीफोंने जोर दिया है। लुई मासिग्नोने[4] भी 'सूफ' से ही 'सूफी' शब्द का बनना माना है और अन्य व्युत्पत्तियोंको माननेसे इन्कार कर दिया है। अबू बक अल-कलाबाधी तथा इब्न खल्दून भी 'सूफी' शब्दको 'सूफ' (ऊन) से ही बना हुआ मानते हैं[5]। त्रिवेन्द्रममें सन् १९४५ ई० के दिसम्बरमें होनेवाली अखिल भारतीय फिलासफी कांग्रेसके इस्लामिक फिलासफी सेक्शनके अध्यक्ष-पदसे भाषण देते हुए मीर वलीउद्दीनने

१. इ. रे. ए. (खंड १२), पृ० १० ।

२. लि. हि. प., पृ० ४१७ ।

३. लि. हि. प., पृ० ४१७ ।

४. इ. इ. (खण्ड ८), पृ० ६८१ ।

५. इ. क. (खण्ड २०, सं. ४), पृ० ३७४ ।

'सूफी' शब्दकी व्युत्पत्तियोंपर विचार किया है और अन्तमें वे इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि 'सूफ' (ऊन) शब्दसे बना हुआ अगर इसे मान लिया जाय तो यह शब्द ठीक है और व्याकरणकी दृष्टिसे भी शुद्ध है[1]। निकोल्सनने भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे इसे ठीक नहीं माना है[2]। 'सूफ' शब्दसे 'सूफी' शब्दके बननेवाले मतको जो माननेवाले हैं उनकी दृष्टिसे सूफी वह मर्मी साधक है जो ऊनी चोगेका व्यवहार करता है और परम-प्रियतमके रूपमें परमात्माकी उपासना करना ही जिसने अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया है।

और भी कई प्रकारसे 'सूफी' शब्दकी व्युत्पत्तिपर विचार किया गया है। 'सफा' (पवित्रता) शब्दसे 'सूफी' का निकलना बहुत लोग मानते हैं। साधकोंमें बहुतोंने इसे ही माना है। हुजवीरीने 'सफा' शब्दसे ही 'सूफी' का बनना माना है। लेकिन व्याकरणकी दृष्टिसे लोगोंने इसे ठीक नहीं माना है। उनका कहना है कि अगर 'सफा' शब्दको स्वीकार किया जाय तो उससे 'सूफी' शब्द नहीं बनेगा बल्कि उसका रूप 'सफवी' होगा। कुछ लोगोंका कहना है कि पैगम्बरके समयमें मदीनेकी मस्जिदके सामने बेञ्चपर बैठनेवाले भक्तों 'अह्ल अल-सुफ्फाह' के 'सुफ्फाह' शब्दसे 'सूफी' शब्द बना है। लेकिन इसमें भी वही दोष है 'सुफ्फाह' से 'सुफ्फी' शब्द बन सकता है, 'सूफी' नहीं। अतएव इसे भी लोगोंने स्वीकार नहीं किया है। कुछ लोगोंने 'सफ्फे अव्वल' के 'सफ्फ' शब्दसे 'सूफी' शब्दकी सङ्गति लगायी है। 'सफ्फे अव्वल' का मतलब प्रार्थनामें निरत ईमान लानेवालोंकी प्रथम पंक्ति है। लेकिन 'सफ्फ' से 'सफ्फी' शब्द बनेगा, 'सूफी' नहीं। गियासुल लुगातमें 'सूफाह' शब्दसे इसका बनना माना गया है। कहा जाता है कि जाहिलिया कालमें अरबोंकी एक ऐसी जाति थी जो सांसारिक व्यापारोंसे अलग होकर मक्काके देवालयकी सेवामें नियुक्त हो गयी। कुछ लोग 'बनू सूफा' नामक एक घुमक्कड़ जातिके 'सूफा' शब्दसे

१. वही, पृ० ३७४।
२. इ. रे. ए., (खण्ड १२), पृ० १०।

इसका निकलना मानते हैं। सूफी फ़कीर भी अपने दो-चार शागिर्दोंके साथ जगह-जगह घूमा करते थे। इसी तरहसे ग्रीक शब्द 'सोफिस्ता' से 'सूफी' और 'थियोसोफिया' शब्दसे 'तसव्वुफ' की व्युत्पत्ति करनेकी चेष्टा की गयी है। इसी प्रकारसे अनेक प्रकारसे इसकी सङ्गति बैठानेकी कोशिश की गयी है। लेकिन आज अधिकांश लोग 'सूफ़' (ऊन) से ही 'सूफी' शब्दका बनना मानते हैं।

कहा जाता है कि ऊनी वस्त्रोंका व्यवहार ईसाई सन्तोंमें प्रचलित था और ईसाई सन्तोंसे ही सूफी साधकोंमें इस प्रकारके ऊनी चोगेका व्यवहार आया है। 'लबीसल सूफ़' का व्यवहार उन साधकोंके लिए अरबीके प्राचीन साहित्यमें आया है जिन्होंने संसारका त्याग करके संन्यास-व्रत ले लिया है। बादमें चलकर इसका अर्थ हो गया कि वह 'सूफी' हो गया है।[१] इसका प्रमाण मिलता है कि सन् ७१९ ई० में उनका व्यवहार ईसाइयोंसे लिया हुआ माना गया है। हसन-अल-बसरीके एक शिष्य फरकद सबखीको इस ऊनी वस्त्रके व्यवहारके लिए बुरा-भला कहा गया है।[२] सन् ७८४ ई० में हम्माद बिन सल्मा बसरामें आया तो उसने फरकद अल-सबीको समझाया कि उसे ऊनी वस्त्र नहीं पहनना चाहिये क्योंकि वह ईसाइयोंका वस्त्र है।[३] लेकिन कालक्रमसे इसका व्यवहार इतना बढ़ गया और इस प्रकारसे सूफी साधकोंने इसे अपनाया कि लोगोंने इसे सूफी-साधकका पहनावा मान लिया और इसे इस्लामसम्मत माननेके लिये कितनी हदीसोंका हवाला दिया जाने लगा। हुजवीरीने सच्चे सूफीकी विशेषताको स्पष्ट करनेके लिए अबू बक्रके जीवन-सम्बन्धी एक कहानी बतलायी है। उसमें कहा गया है कि अबू बक्रका हृदय इस मायावी दुनियासे मुक्त था, क्योंकि उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी और सब कुछ देकर तथा

१. इ. रे. ए. (खण्ड १२) पृ० १० ।
२. इ. इ. (खण्ड ८) पृ० ६८२ ।
३. इ. रे. ए. (खण्ड १२) पृ० १० ।

ऊनी चोगा (खिलीम) धारणकर वे पैगम्बरके पास गये। पैगम्बरने पूछा कि उन्होंने अपने परिवारके लिए क्या छोड़ा है ? अबू बक्रने जवाब दिया कि "सिर्फ परमात्मा और उनके पैगम्बरको"। यह सही है कि इस प्रकारकी कहानियाँ तथा हदीसें बादकी गढ़ी हुई हैं परन्तु उनसे इतना पता अवश्य चल जाता है कि ऊनी वस्त्रोंका व्यवहार बादमें चलकर केवल अपनाया ही नहीं गया बल्कि उसे साधकों, संसारत्यागियों तथा परमात्माके प्रेममें मग्न रहनेवालोंका पहनावा भी मान लिया गया। इन्हीं सब कारणोंसे 'सूफी' शब्दकी व्युत्पत्तिको 'सूफ' (ऊन)से माननेके पक्षमें अधिकांश लोग हैं। वैसे सूफी साधकोंमें साधारणतया 'सफ़ा' शब्द-को ही पसन्द किया गया है। हुजवीरीने कहा भी है कि 'सफा' सर्वत्र प्रशंसाके योग्य[1] माना गया है क्योंकि पवित्रता परमात्माके प्रेमियोंका विशिष्ट गुण है और वे मेघ-मुक्त सूर्यकी तरह हैं। अत्तारने भी 'तज-किरातुल औलिया'में सूफी और तसव्वुफकी जो सत्तर परिभाषाएँ दी हैं उनमें तेरहमें 'सफा' शब्दका प्रयोग है जब कि 'सूफ' शब्दका प्रयोग केवल दो बार किया गया है।

'सूफी' शब्दका व्यवहार किसी व्यक्तिके नामके साथ उपाधिरूपमें जुड़ा हुआ कबसे मिलता है इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। लेकिन कुशैरीके अनुसार इस शब्दका प्रचलन ईसाकी नवीं शताब्दीके प्रारम्भमें बहुत अधिक हो गया। 'अवारीफुल मारीफ'के प्रणेता शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दीका भी ऐसा ही कथन है कि पैगम्बरकी मृत्युके दो सौ वर्षोंके बाद ही इस शब्दका आविर्भाव हुआ। वैसे बादमें चलकर सूफी सम्प्र-दायके सम्बन्धमें लिखनेवालोंने जो उसके किसी-न-किसी सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त थे इस बातको बहुत दूरतक बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। इन लोगों-के अनुसार यह शब्द और मत पैगम्बरके समयसे अथवा उससे भी पहलेसे

१. कश्फ०; पृ० ३०।
२. वही, पृ० ३२।
३. लि. हि. अ. पृ० २२८, पाद टिप्पणी २।

चला आ रहा है। उनके कथनोंमें भावना और कल्पनाका ही प्राधान्य रहता है, अतएव इतिहासकी दृष्टिसे उनका कोई भी मूल्य नहीं है। जामी[1]का कहना है कि सर्वप्रथम इस शब्दको अपने नामके साथ जोड़नेवाला कूफाका अल-हाशिम था। अबू हाशिम सुफियान, अल-सावरीका समसामयिक था जिसकी मृत्यु सन् ७७७ ई० में हुई। मासिञोने अबू हाशिमके साथ कूफाके एक कीमियागार जाबिर इब्न हैयानका भी नाम लिया है जो सूफी शब्दका प्रयोग प्रथम-प्रथम करनेवालोंमें था[2]। जाहिज और मुहासिबीके आधारपर मासिञोने दिखलाया है कि सन् ८१४ ई० के लगभग कूफामें मुस्लिम रहस्यवादियोंका एक सम्प्रदाय वर्तमान था। इसका अन्तिम प्रधान अब्दक अल-सूफी था जिसकी मृत्यु सन् ८२५ ई० में हुई। वह सम्प्रदाय शिया लोगोंके मतसे प्रभावित था। स्थानकी दृष्टिसे सूफी शब्दका व्यवहार कूफातक ही उस कालमें सीमित था। उसका अपना एक अलग मत था जो ईसाई सन्तोंके जीवनसे प्रभावित था। निकोल्सन[3]का कहना है कि अरबी लेखकोंमें सम्भवतः बसराका जाहिज प्रथम था जिसने 'सूफी' शब्दका प्रयोग किया है। जाहिजका काल सन् ८६९ ई० का है। इसमें सन्देहकी गुंजाइश नहीं कि प्रारम्भिक कालमें संन्यास जीवन बितानेवाली प्रवृत्ति ही प्रमुख थी जिसने बादमें रहस्यवादी प्रवृतियोंको अपनाया। संन्यास जीवन और रहस्यवादी प्रवृत्तिका संयोग उमैय्या खलीफोंके शासनके अन्तिम दिनोंमें दीखने लगता है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। अब्बासी खलीफोंके शासनके प्रारम्भिक कालमें ही यह प्रवृत्ति अत्यधिक व्यापक हो उठती है और 'सूफी' शब्दका प्रसार अधिक-से-अधिक हो जाता है। पहले जहाँ यह शब्द व्यक्तियोंके नामके साथ जुड़ा हुआ मिलता है वहाँ पचास वर्षोंके भीतर इसका प्रयोग सम्पूर्ण ईराक़के रहस्यवादी साधकोंके लिए होने लगा और दो सौ वर्ष

१. न. उ. पृ० ३४।
२. इ. इ. (खंड ८), पृ० ६८१।
३. इ. रे. ए. (खंड १२) पृ० १०।

बीतते न बीतते प्रायः सभी मुस्लिम रहस्यवादी साधकोंके लिए इसका व्यवहार होने लगा। तबसे आजतक 'सूफी' शब्दका व्यवहार उसी अर्थमें होता आ रहा है।

सूफी-मतके आविर्भावको लेकर कम मतभेद नहीं है। जहाँतक पता चलता है कि प्रारम्भिक कालमें तापस जीवन बितानेवाले व्यक्तियोंका ध्यान इन मर्मी सिद्धान्तोंकी ओर गया। सम्भव है कि यह रहस्यवाद जिसमें परमसत्ता की उपलब्धि प्रकृतिके सभी व्यापारोंमें साधकको होती है, साधकोंका स्वानुभूत हो और इस्लाम-धर्मसे सीधे उन्होंने इसे पाया हो। इस्लामका एकेश्वरवाद इस प्रकारके रहस्यवादके अनुकूल नहीं पड़ता। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस तरह की बात कुरानमें पायी ही नहीं जाती। "अल्लाहके सिवाय सारी वस्तुएँ हालिक (नाशवान) हैं" (कुल्लो नफशीन हालिकुन इल्ला वज्हे हु) अथवा "जिस ओर भी तुम दृष्टि फेरो अल्लाहका जल्वा नजर आयगा" (फाएनमा तवल्लू फसमा वज्ह हिल्ला)। परन्तु इस तरहकी बातें बहुत खोज ढूँढ़कर ही निकाली जा सकती हैं। इस्लाम सामाजिक-धर्म है, वैयक्तिक नहीं। सामाजिक-धर्म एक सङ्घटित समुदायका रूप ले लेता है अतएव बाह्याचार उसका एक प्रधान अङ्ग बन जाता है। रोजा, पाँच बार की नमाज, हज आदि धार्मिक कृत्य और आचारपर इस्लाम काफी जोर देता है। इतना ही नहीं बल्कि इसमें यह भी विश्वास किया जाता है कि इस्लाम-धर्मपर ईमान लानेवाले ही स्वर्गके अधिकारी हो सकते हैं। इसका फल यह हुआ है कि वैयक्तिक साधना और अन्य धर्मोंके प्रति संसारके बहुत-से धर्मोंमें जो उदारता दीख पड़ती है वह इस्लाममें बहुत अधिक नहीं पायी जाती। इस्लाममें जितनी कट्टरता है उतनी इन सूफी साधकोंमें नहीं।

सूफीमतके आविर्भाव सम्बन्धी विभिन्न मतोंकी चर्चा करनेके पहले यह देख लेना ठीक होगा कि क्या कारण है कि इसके आविर्भावको लेकर इतना मतभेद है। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रारम्भिक कालमें मुसलमान साधक प्रधान रूपसे फ़क़ीरों या दरवेशोंका जीवन बिताते थे।

वे गरीबीसे अपना समय काटते थे और बड़े ही विनम्र थे। उनमें परमात्मासे भय खानेकी प्रवृत्ति उग्रतम थी। कठोर जीवन बिताना, दुनियाके प्रलोभनोंसे बचकर परमात्माका स्मरण करना आदि उनकी साधनाके अङ्ग थे। वे वैयक्तिक रूपसे साधनामें रत थे और उनका कोई सङ्गठित सम्प्रदाय नहीं था। यह बात जरुर थी कि इस प्रकारके साधक प्रायः मिला-जुला करते थे और क़ुरानका अध्ययन तथा आध्यात्मिक विषयोंकी चर्चा आपसमें किया करते थे। लेकिन इसके बाद ही उन साधकोंमें इससे भिन्न प्रवृत्तिके दर्शन होने लगते हैं जिसका अनुमोदन मुहम्मद साहबके वचनोंसे नहीं होता, वैसे वे साधक अपनेको पैग़म्बरका सच्चा अनुयायी बतलाते हैं। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि उन्होंने अपने क्रिया-कलाप अथवा मतके प्रतिपादनके लिए बहुत सी हदीसोंकी भी सृष्टि कर ली। इस नयी प्रवृत्तिको अगर यह समझा जाय कि प्रारम्भिक कालकी संन्यास वृत्तिसे वह उत्तरोत्तर विकसित हुई हो तो वह भूल होगी चूँकि उस प्रवृत्तिको इस्लाम-धर्मके आधारभूत सिद्धान्तोंमें पाना कठिन है। इसके साथ ही एक दूसरी वस्तु की ओर भी अध्येताओंका ध्यान जाना आवश्यक है। जितनी यह बात सही है कि सूफियोंकी बहुत-सी प्रवृत्तियाँ और सिद्धान्त इस्लाममें ढूँढ़नेसे नहीं मिलते उतनी ही यह बात भी सही है कि कोई भी प्रवृत्ति या सिद्धान्त बाहरसे उनपर लाद नहीं दिये गये। उन प्रवृत्तियोंके उद्गमको ढूँढ़नेके साथ-साथ यह भी देखना होगा कि उस समय कौन-कौनसे ऐसे कारण थे जिन्होंने मुसलमान साधकोंको उनकी ओर झुकनेके लिए बाध्य किया। जिस कालमें सूफीमत और सूफी साधकोंके दर्शन होते हैं उस कालकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवस्थाका अध्ययन भी आवश्यक है। उमैय्या वंशके शासनके अन्तिम दिनोंमें समूचे इस्लामी संसारमें एक विशृङ्खला हो गयी थी। आपसके मतभेद, ख़ून-ख़राबी, शासकोंकी विलासिता कुछ इस हदतक पहुँच गयी थी कि वे साधक उनसे ऊब उठे थे और अधिक-से-अधिक अन्तर्मुखीन और संसारके प्रति विरक्त हो उठे थे। उनके लिए किसी अन्य

आधारकी जैसे आवश्यकता आ पड़ी थी। अब्बासियोंके शासनके प्रारम्भिक कालकी धार्मिक मान्यताओंके प्रति जो सन्देहके भाव थे उन्होंने अपना कुछ कम प्रभाव नहीं डाला। चाहे जो हो, जिस नयी प्रवृत्तिका उदय उस कालमें हुआ वह सनातन-पन्थी इस्लामसे मेल नहीं खाती।

प्रारम्भिक कालके फ़क़ीरी जीवन बितानेवाले साधकका उद्देश्य कष्ट भोगकर तथा सांसारिक वस्तुओं और सुखोंका त्यागकर इस्लाम-धर्ममें बताये हुए दूसरे जन्मके सुखोंको प्राप्त करना था। उसके लिए गरीबीका अपने आपमें महत्त्व था। उसे वह पुण्य समझता था। उसके मनमें यह बात काम कर रही थी कि सांसारिक सुखोंसे मुख मोड़कर दुनिया की नजरोंमें जो कष्टमय जीवन समझा जाता है उसे वरण करनेसे परमात्मा खुश होगा और उसे उसके बदलेमें आनेवाले जीवनमें सुख, आनन्द प्रदान करेगा। अतएव वह फ़क़ीरी जीवन और सांसारिक प्रलोभनोंसे बचनेको पुण्य भी मानता था और साथ ही दूसरे जीवनमें परमात्मा द्वारा दिये जानेवाले आनन्द और सुखको प्राप्त करनेका साधन भी मानता था। लेकिन सूफ़ी इसे ठीक नहीं मानता। वह आनेवाले जीवनके सुखोंको प्राप्त करनेके लिए फ़क़ीरी जीवनको नहीं अपनाता बल्कि परमात्माका अनुग्रह और आध्यात्मिक 'अहवालों' (अवस्थाओं) को प्राप्त करना चाहता है। उसके लिए गरीबी अपने आपमें वैसी कोई चीज नहीं और न दूसरे जन्मके सुखोंका ही कोई महत्त्व उसकी दृष्टिमें रहता है। अतएव सूफ़ी केवल न फ़क़ीर ही है जो गरीबीको अपनाये हुए है और न केवल संन्यास जीवन ही बितानेवाला है बल्कि इन दोनोंके साथ ही साथ वह और भी कुछ है। उसके भीतर अध्यात्मवाद और रहस्यवादकी प्रवृत्तियाँ भी रहती हैं।

अन्य धर्मोंके रहस्यवादियोंकी तरह सूफ़ियोंका चरम लक्ष्य भी परमात्माके साथ मिलन है, उसके साथ एकत्व प्राप्त करना है। सम्पूर्ण रूपसे बिना किसी फलकी आशा किये अपने आपको समर्पण कर देना सूफ़ी अपना धर्म मानता है। परमात्माका प्रेम ही उसके लिए सब कुछ है और

परमात्माकी प्राप्तिके लिए वह प्रेमको ही साधन मानता है। उसका कहना है कि प्रेमके द्वारा परमात्माके मिलनका मार्ग खुल जाता है और प्रेमके द्वारा उसकी प्राप्ति सम्भव है। सूफी मानते हैं कि सांसारिक प्रलोभनोंसे अपनेको दूर रखकर साधक अपने अन्तःकरणको शुद्ध करता है और फिर प्रेमके द्वारा उसके साथ एकत्व प्राप्त कर सकता है। वे परमात्माको प्रियतम कहकर सम्बोधन करते हैं। परमात्मा और मनुष्यके बीच इस प्रकारके सम्बन्धकी कल्पना सनातन-पन्थी इस्लाम नहीं कर सकता। क़ुरानमें परमात्माके प्रेमका उल्लेख बहुत कम और गौण होकर आया है, जैसे मक्काकालीन एक सूरा (८५, १४)में अल्लाहको 'अल-वदूद' कहा गया है। एक दूसरी सूरा (३, ३१)में कहा गया है कि यदि परमात्मासे तुमको प्रेम है तो मेरा अनुसरण करो और तब परमात्मा तुमसे प्रेम करेगा और तुम्हारे पापोंको क्षमा कर देगा, क्योंकि वह क्षमाशील और दयालु है। इसमें अल्लाह और पैग़म्बरको माननेके लिए कहा गया है। परमात्माके प्रति मनुष्यके प्रेमका उल्लेख क़ुरानमें केवल तीन बार आया है[1]। अतएव सूफियोंकी भावाविष्टावस्था, उनके प्रेमोन्माद और परमात्माको पानेकी आतुरता क़ुरानसे आयी हुई नहीं जान पड़ती। इस्लाम-धर्मकी प्रकृतिमें इस प्रकारकी रहस्यवादी भावना नहीं है। वैसे ऐसा कहनेका अर्थ यह नहीं है कि रहस्यवादी भावना इस्लाममें एकदम नहीं है, लेकिन इतना अवश्य है कि प्रारम्भिक कालके धार्मिक प्रवृत्तिवाले मुसलमानोंका ध्यान उसकी ओर नहीं था। उनका उस प्रवृत्तिसे कोई परिचय नहीं था। उनके लिए परमात्मा भयका कारण ही अधिक था। उसका मङ्गलमय, दयालु स्वरूप उनके लिए उस कालमें उतना परिचित नहीं था। उससे और मनुष्यसे तथा उसके सुख-दुःखसे उसे कोई मतलब नहीं था। अतएव ऐसा समझना गलत नहीं होगा कि मनुष्य और परमात्माके बीच प्रेमका सम्बन्ध तथा अन्य रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ उसमें बाहरसे आयीं।

इस्लाम-धर्मका प्रसार बड़ी तेज़ीसे हुआ और वह विभिन्न विचार-

---

१. निकोल्सनः आ. प. सू. पृ० ६।

धाराओंके संस्पर्शमें आया। पैग़म्बरकी मृत्युके बाद उनके अनुयायियोंने फ़ारस, सीरिया और मिस्रमें अपना प्रभुत्व जमा लिया और इस प्रकारसे वे पुराने धर्मों, धर्मशास्त्रों और दार्शनिक विचारधाराओंके सम्पर्कमें आये। उनके प्रभावमें आकर उनका सीधा-सादा धर्म धीरे-धीरे रूपान्तरित होता गया। मुसल्मानोंके प्रत्येक विचार-क्षेत्रमें इन बाहरी विचारधाराओंका प्रभाव ढूँढ़ा जा सकता है। उनके कानून तथा धर्मशास्त्रमें ही नहीं वरन् उनके संन्यास और रहस्यवादकी प्रवृत्तिमें भी ये बाहरी प्रभाव क्रियाशील रहे हैं[1]।

इन बाहरी प्रभावोंके सम्बन्धमें पर्याप्त मतभेद है। सूफ़ीमतके आविर्भाव सम्बन्धी नाना प्रकारके मत उपस्थित किये गये हैं। सूफ़ियों तथा उनके दृष्टिकोणसे सहानुभूति रखनेवाले मुसलमानोंका कहना है कि सूफ़ियोंके मत और सिद्धान्त तथा साधन-पद्धतिका आधार क़ुरान और और हदीस हैं। उनका कहना है कि सूफ़ीमतका आविर्भाव पैग़म्बर और क़ुरानके वचनोंके पीछे जो अर्थ है उसीसे हुआ है। उनकी दृष्टिमें साधारणतः उनके जो अर्थ हम समझते हैं वास्तवमें वही उनके अर्थ नहीं हैं बल्कि उनके पीछे एक गूढ़ार्थ है। सूरा ५६ में, जो वाक़िआके नामसे अभिहित किया जाता है, व्यक्तियोंको तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया गया है। वे जो दाँयी ओर रहनेवाले हैं वे असहाब-उल-मैमन कहे गये हैं और जो बाँयी ओर के हैं उन्हें असहाब-उल-मशअम कहा गया है और तीसरे मुक़र्रब्यून कहे गये हैं। अवारीफ़ुल मारीफ़में शहाबुद्दीन सुहरवर्दीने इसका ज़िक्र किया है और उनका कहना है कि क़ुरानमें जो मुक़र्रिब शब्द आया है वह वास्तवमें सूफ़ीका पर्याय है। तुर्किस्तान और मवर उन-नहर में ये साधक छः सौ वर्षोंतक मुक़र्रबिनके नामसे पुकारे जाते रहे हैं। इनके और भी नाम हैं जैसे साबिरिन (सब्र रखनेवाले), अब्रार (पुण्यात्मा), ज़ुह्हाद (धर्मात्मा) आदि। ये सभी नाम क़ुरानमें आये हुए हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि सूफ़ीके ये पर्याय नहीं थे। बादमें सूफ़ियोंने इनको

---

1. आ. प. सू., पृ० ७।

अपनाया और इसमें उनका यही उद्देश्य था कि यद्यपि सूफी शब्द क़ुरान-में नहीं आया है फिर भी ये शब्द उन्हींको दृष्टिमें रखकर प्रयुक्त हुए हैं। कहना नहीं होगा कि सूफियों की इस चेष्टाके पीछे यह मनोवृत्ति काम कर रही थी कि उनके सिद्धान्त तथा उनकी जीवन-चर्या क़ुरान तथा पैग़म्बर द्वारा अनुमोदित हैं। मुकर्रबिन शब्दका प्रयोग उन लोगोंके लिए किया गया है जो परमात्माके सिवा और किसीको नहीं जानते, एकमात्र उसीको अपना सहारा मानते हैं और सबसे बढ़कर वे अपने तथा अपने सृजनहार-के बीचके सम्बन्धसे पूर्ण अवगत रहते हैं। असहाब-उल-मैमन वे हैं जो परमात्मापर ईमान लाते हैं, अपने धार्मिक कृत्योंमें व्यतिक्रम नहीं होने देते और इनके द्वारा वे समझते हैं कि आनेवाले जीवनमें वे पुण्यभागी होंगे और परमात्मा उन्हें उनके सुन्दर कर्मोंका फल देगा। और बाँयी ओर रहनेवाले असहाब-उल-मशअम धर्मके पथसे विमुख होते हैं, परमात्माको छोड़कर अन्यकी उपासना करते हैं और उन्हें सच्चा मार्ग नहीं मालूम रहता। सूफी बहुतसी हदीसोंका हवाला देते हैं और उनसे अपने मतका अनुमोदन करते हैं वैसे उन हदीसोंकी प्रामाणिकतापर सब समय विश्वास नहीं किया जा सकता। अपने मतके समर्थनमें वे कुछ इस प्रकारकी हदी-सोंका हवाला देते हैं, जैसे—"जो अपनेको जान लेता है वह अपने पर-मात्माको जान जाता है"; अथवा "मैं एक छिपा हुआ खजाना था और मैं अपनेको प्रकट करना चाहता था इसलिए मैंने सृष्टि की कि मैं जाना जा सकूँ" आदि। पैग़म्बरके जीवन तथा क़ुरानकी छानबीन करनेपर यह सहज ही देखा जा सकता है कि इस मतका समर्थन उनसे नहीं होता। अतएव उनके मतको इस सीमातक मान लेनेमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती कि बाहरसे आये हुए दार्शनिक विचारों एवं सिद्धान्तोंको ग्रहण करते समय सूफियोंने उन्हें अपनी परम्पराओं और धारणाओंके अनुरूप बना लिया।

सूफीमतके आविर्भाव-सम्बन्धी अन्य मतोंमें इस बातको लेकर गहरा मतभेद है कि यह रहस्यवादी प्रवृत्ति आखिर आयी कहाँसे? जब इस बातको मानना कठिन है कि इस्लाम-धर्मसे यह आयी तब यह

आवश्यक है कि इस बातकी खोज की जाय कि वह कहाँसे आयी ? इस दृष्टिसे सूफीमतका अध्ययन केवल यूरोपीय विद्वानोंने ही किया है। उनमें अधिकांशका मत है कि उस कालमें जिस समय सूफीमतने रूप लेना प्रारंभ किया था, ग्रीक दर्शन और ग्रीक विचारकोंका प्रभाव इस्लामी दुनियामें अधिक था। एडल्बर्ट मर्क्सने प्रारम्भिक कालके सूफी साधकोंके कथनोंका अध्ययन किया और इस नतीजेपर पहुँचा कि सूफीमतका आविर्भाव यूनानी दर्शनसे हुआ। उसके अध्ययनमें सबसे बड़ा दोष यह रहा कि उसने उन सूफियोंके जीवनवृत्त, उनके देश आदिको बिना ध्यानमें रखे ही अपना परिणाम निकाला। अध्ययनके लिए यह आवश्यक था कि उन साधकोंकी पारिपार्श्विक परिस्थिति तथा उनके देशकी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्थाका ध्यान रखा जाता। मर्क्सने सूफी-सिद्धान्तोंको पूरा-का-पूरा यूनानी दर्शनकी देन मान लिया है, लेकिन निकोल्सन[1]को इससे पूरा सन्तोष नहीं है। निकोल्सन तथा ब्राउनने नास्टिक मत तथा यूनानी और नव-अफलातूनी दर्शनके प्रभावको बहुत दूरतक स्वीकार किया है। ब्राउनका कहना है कि अन्य विचारधाराओंकी अपेक्षा सूफीमतके सिद्धान्तोंके बननेमें नव-अफलातूनी दर्शनका सबसे अधिक हाथ है[2]। इसको स्वीकार करते हुए भी ब्राउनका कहना है कि जबतक इस बातका पूरा पता न चल जाय कि नव-अफलातूनी दर्शन स्वयं पूर्वी देशों और विशेष रूपसे ईरानसे कहाँतक प्रभावित है तबतक यह कहना सम्भव नहीं कि सूफीमतने नव-अफलातूनी दर्शनसे कितनी प्रेरणा ग्रहण की और कितनी पूर्वके देशोंकी विचारधारासे। नौशेरवाँके राजत्व-कालमें सात दार्शनिक जो नव-अफलातूनी-दर्शनकी परम्पराके थे, अपने देशसे भागकर ईरान गये। लेकिन इसका अनुमान करना कठिन है कि उन्होंने अपने विचारोंका वहाँ कितनी दूरतक प्रचार किया तथा उनका वहाँपर कितना प्रभाव पड़ा। गोल्डजिहरने इस मतका प्रत्याख्यान करते

---

१. लि. हि. अ., पृ० ३८९।
२. लि. हि. प., पृ० ४२०।

हुए बतलाया[1] है कि ब्राउनके जैसे मत रखनेवाले विद्वानोंका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि जिन पूर्वी क्षेत्रोंमें सूफीमतका विकास हुआ वहाँ नव-अफलातूनी सिद्धान्तों एवं उसके सदृश अन्य सिद्धान्तोंका पहुँचना कठिन था। अतएव उसका कहना है कि जैसे-जैसे इस्लामका प्रसार अन्य देशोंमें होता गया, सूफीमतमें पारिपार्श्विक परिस्थितियोंके कारण नयी-नयी चीजोंका समावेश होता गया। उसने बौद्ध-धर्मके प्रभावको स्वीकार किया है। निकोल्सनने यूनानी प्रभावको सूफीमतके आविर्भाव तथा विकासमें प्रमुख स्थान दिया है[2]। उसका कहना है कि खलीफा हारूँ अर्रशीदके कालसे लेकर खलीफा मुतवक्किलके समयतक यूनानी संस्कृति-से इस्लामी दुनियाका सम्पर्क बना रहा और यूनानी दर्शन, साहित्य और चिकित्सा-शास्त्रका अनुवाद अरबी भाषामें होता रहा। लेकिन निकोल्सन-के अनुसार यूनानी संस्कृतिका प्रभाव केवल पुस्तकोंके द्वारा ही मुसल-मानोंपर नहीं पड़ रहा था बल्कि बहुत-सी विचारधाराएँ भी अपना प्रभाव विस्तार कर रही थी जिनका सम्बन्ध यूनानसे था[3]। कहा जाता है कि यूनानी प्रभावके कारण इस्लामके प्रारम्भकालीन संन्यासका रूप बदल गया और रहस्यवादी प्रवृत्तियोंका उसमें प्रवेश हुआ तथा संन्यास-जीवनके क्रिया-कलापोंका उद्देश्य यह माना जाने लगा कि वे आत्माकी शुद्धिके लिए साधन मात्र हैं[4]। आत्मशुद्धिका प्रयोजन यह समझा जाता था कि आत्मा विशुद्ध होकर परमात्माको जान सके, उससे प्रेम कर सके तथा उसके साथ एकत्व प्राप्त कर सके। निकोल्सनने नव-अफलातूनी दर्शनके अतिरिक्त ईसाई-धर्म, बौद्ध-धर्म प्रभृति अन्य विचारधाराओंसे भी इसका प्रभावित होना माना है[5]। कुछ लोगोंका ऐसा भी कहना है

१ ज. रा. ए. सो. (१९०४), पृ० १३१–१३२।

२. लि. हि. अ. पृ० ३८८।

३. वही, पृ० ३८८।

४. निकोल्सन : आ. प. सू., पृ० ८।

५. इ. रे. ए. (खंड १२), पृ० ११।

कि सूफीमत वास्तवमें आर्य-जातिके धार्मिक विकासके फलस्वरूप उत्पन्न हुआ जबकि कुछ लोग इसके आविर्भावको सेमिटिक (शामी) धर्मकी विजयके विरुद्ध आर्योंकी प्रतिक्रिया[१] माना है। बहुत लोगोंने यह भी कहा है कि सूफीमत वास्तवमें हिन्दुओंके वेदान्त-दर्शनका इस्लामी-संस्करण है[२]। इन रहस्यवादी प्रवृत्तियों और विचारधाराओंके अतिरिक्त सूफियोंकी कितनी ऐसी क्रियाएँ हैं जिनमें भारतीय योगकी क्रियाओंकी छाप है। सूफियोंके 'जिक्र'की क्रियाओंमें हिन्दू योगियोंके कुछ क्रिया-कलापोंको ढूँढ़ा जा सकता है[३]। वान क्रेमरके साथ गोल्डजिहर इस बात-पर एक मत है कि सूफियोंमें भावाविष्टावस्थाको उत्पन्न करनेवाली कुछ क्रियाएँ तथा प्राणायाम आदि जैसी क्रियाएँ निस्सन्देह सूफीमतमें भारत-वर्षसे आयी हैं[४]। लतायफी-सित्ताके सिद्धान्त और शरीरके भीतर उनका अवस्थान बहुत कुछ योगकी कुण्डलिनी और चक्रोंपर आधारित है[५]। सूफीमतपर भारतीय विचारधाराके प्रभावको स्वीकार करनेमें ब्राउनको अत्यधिक सङ्कोच है[७]। ब्राउनका कहना है कि जिस क्षेत्रमें सूफीमतका आविर्भाव हुआ उसमें भारतीय प्रभावका पहुँचना थोड़ा कठिन है। उसके विपरीत शोपेनहावरने इसे सम्पूर्णतया भारतीय माना है[८]।

---

१. इ. एच. पामर : ओ. मि. (प्राक्कथन) पृ० ११।

२. लि. हि. प., पृ० ४१९।

३. ब्रूगेस : डि. इ., पृ० ६०९। तथा सर विलियम जोन्स : डि. इ., पृ० ४२६ पर उद्धृत।

४. लुई मासिन्गो : इ. इ. (खण्ड ८), पृ० ६८५।

५. टाइटस : इण्डि. इ., पृ० १५० पर उद्धृत।

६. ख्वाजा खाँ : स्ट. त. पृ० ८१ तथा जान ए. सुभान : सूफिज़्म, पृ० १४९।

७. लि. हि. प., पृ० ३०१।

८ ज. रा. ए. सो. (१९०४), पृ० १२१ तथा वानक्रेमर, दोज़ी : लि. हि. प. पृ० ३००।

सूफीमतके आविर्भावकी चर्चा करते हुए रेनाल्ड ए. निकोल्सनने कहा है कि बहुत लोगोंने सूफीमतके आविर्भावको सेमिटिक (शामी) धर्मकी विजयके विरुद्ध आर्योंकी प्रतिक्रिया माना है। परन्तु "यदि सूफीमत आर्योंकी विरोधी भावनामात्र था तो इस असंन्दिग्ध तथ्यकी व्याख्या कैसे की जा सकती है कि प्रारम्भिक कालमें इस्लाम धर्मके कुछ प्रमुख रहस्य-वादी सीरिया तथा मिस्रके रहनेवाले थे और अरब जातिके थे ? उसी तरहसे बौद्ध तथा वेदान्त-दर्शनसे इसके आविर्भावकी वकालत करनेवाले यह भूल जाते हैं कि इस्लामी सभ्यतापर भारतीय प्रभावकी मुख्य धारा बादके काल की है तथा मुस्लिम धर्म-शास्त्र, दर्शन और विज्ञान प्रथम-प्रथम एक ऐसी भूमिमें अङ्कुरित हुए जो यूनानी संस्कृतिसे सराबोर थी[1]। निकोल्सनके इस वक्तव्यमें दो बातें हैं। प्रथम तो यह कि प्रारम्भिककालमें यूनानी संस्कृतिका प्रभाव सीरिया और मिस्रपर पूरा-पूरा था अतएव उसने विचार-क्षेत्रमें इस्लामको प्रभावित किया। हम पहले ही देख चुके हैं कि मर्क्स, ब्राउन और निकोल्सनने यूनानी, नव-अफलातूनी तथा ईसाई विचारधाराके प्रभावको प्रारम्भिक कालमें इस्लामी जगत्पर प्रमुख प्रभावके रूपमें स्वीकार किया है। निकोल्सनके वक्तव्यमें दूसरी बात जो दीख पड़ती है वह यह है कि उसने भारतीय प्रभावको सूफीमतके विकास-में सहायक तो माना है लेकिन उसकी क्रियाशीलताको प्रारम्भिक कालमें माननेमें उसे सङ्कोच है। बादमें यह प्रभाव इस्लामी जगत्पर पड़ा है इसे वह मानता है। इसी बातको उसने स्पष्ट रूपमें कहा है कि ईसाई-धर्म, नव-अफलातूनी दर्शनके साथ-साथ बौद्ध-धर्म और भारतीय विचारधाराने सूफीमतके विकासमें सहायता पहुँचायी है इस बातको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।[2] वानक्रेमरने सूफीमतपर दो प्रत्यक्ष प्रभावोंको स्वीकार किया है—ईसाई साधकोंका तापस जीवन और बादमें चलकर बौद्धोंकी चिन्ताधारा। बौद्ध तत्त्व-चिन्ताके द्वारा इस्लामकी रहस्यवादी प्रवृत्तिमें

१. निकोल्सन : मि. इ., पृ० ९।

२. निकोल्सन : इ. रे. ए. (खंड १२), पृ० ११।

जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, वानक्रेमरने उन्हें ही असली सूफीमत माना है[1]। सूफीमतका अध्ययन करनेवाले प्रायः सभी स्वीकार करते हैं कि सूफीमतके विकासमें भारतीय विचारधाराका प्रभाव पड़ा है परन्तु इस बातमें मतभेद है कि यह भारतीय प्रभाव उसके आविर्भाव-कालमें क्रियाशील था या नहीं। जैसे ब्राउनका मत है कि सूफीमतपर प्रमुखरूपसे वेदान्तसार तथा कम या वेशी अन्य भारतीय दर्शनके प्रभावको माननेवाले दोनोंकी कुछ समानताओंको देखकर ही इस नतीजेपर पहुँच जाते हैं कि भारतीय विचारधाराका हाथ सूफीमतके आविर्भावमें था लेकिन ऐतिहासिक दृष्टिसे वे इसपर विचार नहीं करते। उसका कहना है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे देखनेपर यह बात स्पष्ट हो जायगी कि सासानियोंके कालमें और विशेष रूपसे नौशेरवाँके समय ईरानको भारतीय विचरधारासे कुछ-कुछ परिचय प्राप्त हुआ यद्यपि अन्य मुस्लिम देश उससे बिलकुल अछूते रहे। अल-बरूनीने कुछ संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद अरबीमें अवश्य किया लेकिन उस समय तक सूफीमत पूर्ण विकसित हो चुका था[2]। अब हम यहाँपर विचार करना चाहेंगे कि ऐतिहासिक दृष्टिसे सूफीमतके आविर्भाव-कालमें भारतीय प्रभाव क्रियाशील था या नहीं। और किसी अगले अध्यायमें यह समझनेकी चेष्टा करेंगे कि भारतीय विचारधाराने किस सीमातक इसे प्रभावित किया है और दोनोंमें कहाँतक समानता है और कहाँतक असमानता है।

ऐतिहासिक तथ्योंपर विचार करनेके पहले यहाँपर हम देखना चाहेंगे कि सूफी-साधक जिनके कथनों और जीवन-चर्याको देखकर सूफीमतके आविर्भाव और विकासको समझनेका प्रयास किया जाता है उनमें किसीका भारतीय विचारधारा और रहस्यवादसे परिचय था या नहीं। वैसे इस बातसे ही हम सन्तोष नहीं कर लेना चाहते कि रहस्यवादी प्रवृत्तिका जन्म-

१. लि. हि. प., पृ० ३० ।

२. लि. हि. प., पृ० ४१९ ।

दाता भारतवर्ष ही है[1]। इ. सी. ब्वाएट्सने अपने लेख 'मिस्टिसिज्म एन्ड महम्डेनिज़्म'में दिखलाया है कि यह स्वीकार किया जा सकता है कि रहस्य-वादी प्रवृत्तिका प्रसार भारतवर्षसे ही अन्य देशोंमें हुआ। प्लेटोके बारेमें कहा जाता है कि वह भारतवर्ष या ईरानमें आया था। उसके आनेका उद्देश्य अध्यात्म विद्याकी जानकारी प्राप्त करना था। वैसे यह अध्यात्म ज्ञान पाइथेगोरस और मिस्रके द्वारा पहले ही इटलीमें पहुँच चुका था[2]। जो हो, यहाँपर हम केवल साधकोंके सम्बन्धमें ही कुछ विचार करना चाहते हैं। जामीने कहा[3] है कि जून-नून जो मिस्र देशका था, सूफियों-का प्रमुख था और उसके ही दिखाये रास्ते पर सूफियोंकी साधना चलती है। सभी उससे सम्बन्धित हैं। प्रारम्भके सूफी-साधकोंमें जून-नूनका स्थान अपना महत्व रखता है। उसने मारिफत अर्थात् चरम ज्ञानके सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा की जो परमात्माके अनुग्रहसे साधकको प्राप्त होता है तथा जिसकी प्राप्तिसे साधकका हृदय परमात्माको प्रत्यक्ष कर लेता है। जून-नूनके बारेमें यह कहा जाता है कि वह मिस्र देशका था और यूनानी संस्कृतिसे प्रभावित था। भारतवर्षसे उसका सम्बन्ध बिल्कुल ही नहीं था। वह नव-अफलातूनी दर्शनका जानकार था और अपनी साधनामें उससे प्रभावित था। मिस्रसे भारतवर्षका सम्बन्ध था या नहीं इसकी चर्चा हम बादमें करेंगे। यहाँ हम जून-नूनके समसामयिक बायजीद अल-बिस्तामीकी चर्चा करना चाहेंगे जिसका प्रारम्भिक कालके अन्य साधकोंकी तरह सूफीमतके बनने और विकसित होनेमें बहुत बड़ा हाथ था। बायजीद अल-बिस्तामीके नामके साथ 'फ़ना'का सिद्धान्त जुड़ा हुआ है। कहा जाता है वही पहला व्यक्ति है जिसने 'फ़ना'के सिद्धान्तसे मुस्लिम साधकोंका परिचय कराया। 'फ़ना'का

---

१. ब्रूगेस : डि. इ., पृ० ४२६। हि. ज. (सन् १९१५), पृ० १६८–१६९।

२. जोन्स : डि. इ. पृ० ४२६ पर उद्धृत।

३. न. उ., पृ० ३६।

सिद्धान्त बौद्ध 'निर्वाण' से लिया गया है। समस्त बुराइयोंका दूर हो जाना और विशुद्ध आत्माका परमात्मामें लय हो जाना 'फ़ना'का अर्थ समझा जाता था। 'फ़ना'का सिद्धान्त तत्कालीन सूफियोंके बीच एक अत्यधिक चर्चाका विषय था। सूफी सिद्धान्तमें इस 'फ़ना'का बहुत महत्त्वका स्थान है। बायजीद फारसका रहनेवाला था और उसका जन्म एक ऐसे परिवारमें हुआ था जो जरथुस्त्री धर्मका माननेवाला था। उसका गुरु कुर्दिस्तानका एक कुर्द था। अत्तारने 'तज़किरातुल औलिया' में बायजीदके सम्बन्धमें कहा है कि उसे भारतीय योगके प्राणायामकी क्रियाओंका पता था। वह भारतवर्षमें आकर रह चुका था। उसने रहस्यवादी प्रवृत्तिका परिचय यहाँ रहकर प्राप्त किया। रहस्यवादी साधनामें दीक्षित करनेवाला उसका गुरु सिन्ध प्रान्तका था[1]। उसका नाम अबू अली था। अबू अलीके जरिये ही उसे 'फ़ना'के सिद्धान्तका पता चला। अतएव ऐसा कहना ठीक नहीं कि सूफी साधकोंको उस कालमें भारतीय चिन्ताधाराका पता नहीं था, बायजीदकी मृत्यु सन् ८७२ ई० के लगभग हुई। इसी प्रकारसे मन्सूर बिन अल-हल्लाजका भारतवर्षमें आने और यहाँकी अध्यात्मविद्यासे परिचय प्राप्त करनेके प्रमाण पाये जाते हैं[2]। मन्सूर बिन अल-हल्लाजके वचनोंने सूफीमतको अत्यधिक प्रभावित किया है। सूफी-साधकोंमें बायजीद और मन्सूर दोनों ही शीर्ष-स्थानीय थे और दोनोंने ही बहुत दूरतक सूफी चिन्ताधाराको प्रभावित किया है। वास्तवमें भारतीय चिन्ताधाराने कहाँतक इस्लामी जगत्‌को उस कालमें प्रभावित किया है इसका अध्ययन समुचित ढंगसे अभीतक नहीं हुआ है।

यद्यपि निकोल्सन और ब्राउनने इस बातपर पूरा जोर दिया है कि सूफीमतके आविर्भाव-कालमें उस क्षेत्रमें भारतीय प्रभाव बिल्कुल नहीं था फिर भी इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि अरबके साथ भारतवर्षका

---

१. इ. रे. ए. (खंड १२), पृ० १२।
२. लि. हि. प., पृ० ४३४-४३५।

घनिष्ठ सम्बन्ध था। मिस्रके साथ भी भारतवर्षका बहुत पुराना सम्बन्ध था, इसके प्रमाण पाये गये हैं। मिस्रके साथ अतिप्राचीन कालमें भारतवर्षका व्यापार चलता था और भारतीय व्यापारी अपने दलके साथ वहाँ जाते और वास करते थे। ये व्यापारी केवल यात्रीकी तरह जाते और चले आते हों ऐसी बात नहीं है बल्कि वे वहाँके शहरों और बन्दरगाहोंमें स्थायी रूपसे अपना कार्यालय रखते थे। मिस्रमें रहनेवाले एक भारतीय व्यापारीका पता चलता है जो वहाँ स्थायी रूपसे रहता था। उसका सम्मान भी समाजमें था। कहा जाता है कि उसे एक मन्दिरके पुजारीका काम भी सौंपा गया था[१]। इस बातका भी पता चलता है कि सम्राट् अशोकने मिस्र, सीरिया और मेसिडोनियाके राजदरबारोंमें बौद्ध-धर्मके प्रचार तथा बौद्ध-धर्ममें लोगोंको दीक्षित करनेके लिए धर्म-प्रचारकोंको भेजा था[२]। भारतीय व्यापारी भिन्न-भिन्न देशोंमें भारतीय-धर्म, संस्कृति और सभ्यताके सन्देशवाहक थे। अपने साथ वे देवमूर्तियोंको भी ले जाया करते थे जिनकी वे वहाँपर उपासना किया करते थे। ईसाकी दूसरी शताब्दीमें अलेक्जेन्ड्रियाके सुप्रसिद्ध ज्योतिषी टाल्मी (Ptolmey) ने अपने भूगोलमें जावाका वर्णन 'जबदीउ' कहकर किया है। इससे पता चलता है कि जावाका संस्कृत नाम 'यवद्वीप' उस समयमें मिस्रवालोंमें प्रख्यात हो गया था। इससे यह अनुमान करना गलत नहीं होगा कि भारतवर्षकी अन्य वस्तुओंका भी उन्हें कम या बेशी पता अवश्य रहा होगा। हम यह देख चुके हैं कि भारतीय अध्यात्मविद्या मिस्रसे होकर ही इटली पहुँची जिसने प्लेटोको खूब प्रभावित किया। इन सभी बातोंसे इस परिणामपर पहुँचना कुछ गलत नहीं होगा कि भारतीय विचारधाराका पता मिस्र-वालोंको अतिप्राचीन कालसे था और बादमें भी वे उससे अपरिचित नहीं रहे। नव अफलातूनी दर्शन भी भारतीय चिन्ताधारासे अत्यधिक प्रभावित है वैसे यह कहना कठिन है कि उसका प्रभाव कितनी दूरतक पड़ा है।

---

१. गार्डन चाइल्ड : व्हा. है. हि. पृ० २३९।
२. वही, पृ० २३९।

अरब और भारतके बीच व्यापारका सम्बन्ध बहुत पहलेसे था, यह हम पहले ही देख चुके हैं। मिस्र, सीरिया, तथा यूरोपके देशोंके साथ भारतीय मसाले, बहुमूल्य पत्थर तथा सुगन्धित द्रव्यों आदिका व्यापार बहुत प्राचीन कालसे अरबोंकी मध्यस्थतामें चला आ रहा था। बहुत-सी ऐसी वस्तुओंको यूरोपवाले बहुत कालतक अरबमें ही उत्पन्न हुआ समझते थे और अरब व्यापारी उन्हें इस बातको जानने नहीं देना चाहते थे कि ये वस्तुएँ भारतवर्षसे आती थीं। ईसा पूर्व दसवीं शताब्दीतक अरबोंके साथ इस भारतीय व्यापारका पता चलता है। इन ऐतिहासिक तथ्योंके ब्योरेमें यहाँ अधिक जाना अभिप्रेत नहीं। उनके अल्पाधिक उल्लेख मात्रसे ऐसा देखा जा सकता है कि इस्लामके उदयके बहुत पूर्वसे ही भारतवर्ष तथा अरबके बीच पारस्परिक यातायात और व्यापारका सिलसिला था। यह जानकारी तथा आपसी सम्बन्ध इस्लामके उदयके बादसे उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अरबोंने सम्भवतः पहली बार सन् ६३६ ई० में एक छोटेसे भारतीय बन्दरगाहपर चढ़ाई की[१]। मुहम्मद बिन कासिम सन् ७१० ई० के लगभग सिन्ध पहुँचा और बहुतसे स्थानोंपर उसने अधिकार कर लिया। याकूबी के अनुसार उसके जीते हुए शहरोंमें अल-देबुल नामक एक बन्दरगाह था जिसमें एक बुद्धकी प्रतिमा पायी गयी जो चालीस हाथ ऊँची थी। ये सब स्थान सन् ७११-ई० ७१२ ई० के बीच जीत लिये गये थे। मुल्तान सन् ७१३ ई० में मुसलमानोंके हाथमें आ गया। यह बौद्धोंका एक सुप्रसिद्ध तीर्थ था। यहाँपर मुसलमानोंने बहुतसे बौद्ध यात्रियोंको बन्दी बना लिया। सन् ७५१ ई० में हिशाम सिन्धका शासक होकर आया और गुजरात देशमें अपनी विजयके उपलक्ष्यमें एक मस्जिद बनवायी जो सम्भवतः सिन्धको छोड़कर भारतवर्षकी पहली मस्जिद थी।[३] ध्यान देनेकी बात है कि जिस कालमें सूफीमतके रूप

---

१. हि. अ., पृ० २१० ।

२. सुलैमान नदवी : अ. भा. सं., पृ० १२ ।

३. वही, पृ० १५ ।

ग्रहण करनेकी बात कही जाती है उस कालके पहलेसे ही भारतवर्षके साथ अरबोंका घनिष्ठ सम्बन्ध हो चुका था। इन राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्धोंके साथ-साथ वे यहाँके लोगों, रहन-सहन, धर्म, साधना-पद्धति आदिके सम्पर्कमें भी आये। वे यहाँके बौद्ध संन्यासियों, तान्त्रिकों, सिद्ध-पीठोंसे अवगत हो चुके थे। सिन्धके लोगोंसे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध होना बिल्कुल स्वाभाविक है। सिन्धमें उस कालमें बौद्ध-धर्मका प्रचार था इसका पता अरबोंके विवरणसे चलता है। आठवीं शताब्दीके प्रारम्भमें बुद्धपुर[1] नामकी एक बस्तीका पता चलता है और बौद्धोंके उपासना-मन्दिर नवविहार[2]का भी वर्णन मिलता है। बौद्ध-धर्म तथा बौद्ध-संन्यासियोंसे उनका परिचय बहुत पहले हो चुका था।

मध्य एशियामें बौद्ध-धर्मके माननेवाले थे। जिस समय इस्लामने उन अञ्चलोंपर अधिकार जमाया उस समय मध्य एशियामें बौद्ध-धर्मका पूरा प्रसार था। इस्लामकी विजयके साथ-साथ वहाँपर इस्लाम-धर्मका प्रवेश हुआ और बौद्ध-धर्मके अनुयायियोंने इस्लामको कुबूल किया। हिजरी सन्‌की तीसरी शताब्दीमें बौद्ध-धर्मको अल-समनीय कहा जाता था। समनीयसे उनका मतलब श्रमणों (अथवा समनों) का सिद्धान्त था। बहुत-से यूरोपीय विद्वानोंने समनीय शब्दपर विचार किया है। मैक्समूलर इसे 'श्रमण' शब्दसे निकला हुआ मानते हैं। इब्ननदीम (हिजरी सन् ३७५) के एक वर्णनसे समनीय शब्दपर पूरा प्रकाश पड़ता है। उसने अल-फेहरिस्त (पृ० ३४५) में लिखा[3] है—

"मैंने एक खुरासानीके हाथका लिखा हुआ लेख पढ़ा था, जिसने खुरासानके पुराने समयकी और फिर अपने समयकी बहुत-सी बातें लिखी थीं। यह एक नियमावलीके रूपमें था। उसमें लिखा था कि समनीयः के पैगम्बरका नाम बोजआसफ था और पुराने समयमें इस्लामसे पहले ट्रान्स-

---

१. इलियटका इतिहास, प्र. खंड, पृ० १२८।

२. वही, पृ० १०।

३. अ. भा. सं., पृ० १७९-१८०।

काकेशियाके लोग इसी धर्मके अनुयायी थे। समनीयः शब्द संस्कृतके समनःसे निकला है। ये लोग संसारमें रहनेवाले सभी लोगों और धर्मोंके माननेवालोंसे अधिक उदार होते हैं। इसका कारण यह है कि इनके पैग़म्बर (मतके प्रवर्त्तक) बोजआसफने इनको बतलाया है कि सबसे बड़ा पाप जो नहीं करना चाहिये और जिसका मनुष्यको कभी विश्वास न रखना चाहिये, यह है कि कोई अपने मुँहसे 'नहीं' न कहे। ये लोग इसी उपदेशपर चलते हैं और 'नहीं' कहना इनकी दृष्टिमें 'शैतान' का नाम है और इनका धर्म 'शैतान' को दूर करना है।"

"शैतान" का प्रयोग इब्ननदीमने "संसार या जीवनके दुःखों, दोषों या विपत्ति"के लिए किया है और शैतानको दूर करनेसे मतलब उन दोषों और दुःखोंसे छुटकारा पाना है। ऊपरके वर्णनमें जो बोजआसफ शब्द आया है वह बोधिसत्त्वका रूपान्तर[1] है। बोजआसफ या बुदासफ शब्दको लेकर भी लोगोंमें बहुत दिनोंतक काफी मतभेद रहा लेकिन अब प्रायः सभी विद्वान् इसे बोधिसत्त्वका रूपान्तर मानते हैं। वैसे यह शब्द और बोजआसफकी कहानी यूरोपके धार्मिक जीवनमें इस तरहसे प्रवेश कर गयी है कि ये एक महान् ईसाई सन्त माने जाते हैं।

और बहुतसे ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि इस्लाम-धर्मके पहले अफगानिस्तान, मध्य एशिया, खुरासान और भारत-वर्षके पश्चिमोत्तर प्रदेशमें बौद्ध-धर्मका प्रचार था। लगता है जैसे इन देशोंमें ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें ही बौद्ध-धर्मका लोप हो गया। अरबोंको इन बौद्ध मतावलम्बियोंका परिचय प्राप्त था। उन्हें उनकी पूजा-पद्धति और बुद्धकी मूर्तियोंको देखनेका अवसर मिला था। अरबीमें बुद्धकी मूर्तियोंसे ही मूर्ति शब्दका पर्याय 'बुद्द' हो गया है। अरबीके शब्दकोशमें भी इसका समावेश हो गया है। पहले बहुत लोगोंकी धारणा थी कि 'बुत' शब्द फारसीका है। अरबीमें 'बुद' की तरह और

१. विन्टरनित्स : स. प्रा. इ. लि., पृ० ६५।

भी अन्य शब्दोंका व्यवहार मिलता है। अल-बरुनीने[1] मन्दिर अथवा मन्दिरके जैसे उपासना-गृहको 'बहार' अथवा 'विहार' कहा है। इसका सम्बन्ध बौद्ध-विहारोंसे है। उसने बौद्ध श्रमणों अथवा समनियोंके लिए 'मुहम्मिरा' शब्दका प्रयोग किया है जिसका अर्थ 'लाल रङ्गमें रँगे हुए वस्त्रका धारण करनेवाला' है। इस प्रकारसे हम सहज ही देख सकते हैं कि अरबोंको बौद्ध-धर्मके इन बाह्याचारोंका पूरा पता था।

इन सम्बन्धोंको स्थापित करनेमें बौद्ध-तीर्थयात्रियों और रमते संन्यासियोंका भी बहुत हाथ रहा है। कहा जाता है कि हिजरी दूसरी शताब्दीके मध्यमें बसरामें अनेक सम्प्रदायों और धर्मोंके लोग रहा करते थे। वासिल बिन अता, जहम बिन सफवान और बौद्धोंके शास्त्रार्थकी बात भी कही जाती है[2]। इससे यह समझना कुछ कठिन नहीं है कि धर्मके तत्त्वोंका भी विवेचन उस प्रारम्भिक कालमें हुआ करता था। बौद्ध तीर्थ-यात्रियोंकी दूर-दूरकी यात्राओंके विवरण मिलते हैं। ये तीर्थयात्री भारत, चीनकी सीमाओं, बल्ख आदि स्थानोंमें प्रायः आया-जाया करते थे। इस प्रकारके सम्बन्धोंके कारण मुस्लिम देश बौद्धोंके आचार-विचार, पूजा-पद्धति, मन्दिर-मूर्तियों आदिसे अनभिज्ञ नहीं थे। जिस प्रकारसे सीरिया, मिस्र आदिमें जब इस्लामका प्रचार हुआ तो वहाँके ईसाई साधकों और ईसाई तथा अन्य मतावलम्बियोंकी रीतियों तथा आचारोंका प्रभाव मुसलमानोंपर पड़ा, उसी प्रकारसे जब मध्य एशिया तथा पूर्वी तुर्किस्तान आदिमें मुसलमानोंने विजय प्राप्त की तब उनपर बौद्ध-धर्म और बौद्ध भिक्षुओंका असर पड़े बिना नहीं रह सका। दसवीं शताब्दीमें बुखारा बौद्ध-धर्मका एक केन्द्र था। उस कालमें वहाँपर सालभरमें दो बार मेला लगता था, जिसमें बुद्धकी प्रतिमाएँ बिकती थीं। पत्थरोंमें बुद्धके जीवन-सम्बन्धी बहुत-सी घटनाओंका अङ्कन किया जाता था और ये पत्थर भी उन मेलोंमें बिकनेको आते

१. एडवर्ड सैचो : अ. ब. इ. (भूमिका पृ० ४६)।

२. अ. भा. सं०, पृ० १९७।

थे। बुखारा इन सबके लिए प्रसिद्ध था। मंगोलियन भाषामें बौद्ध मन्दिर या मठको 'बुखार' कहते हैं। गोल्डजिहरका कहना है कि 'बुखार' शब्द 'विहार'से बना है[1]। ईसाकी दसवीं शताब्दीतक पूर्वी तुर्किस्तानमें बौद्ध-धर्मका पूरा जोर था और उसके बादकी तीन शताब्दियोंतक कुछ-न-कुछ उसका अवशेष वहाँ रह गया था।

दो प्रकारकी संस्कृतियाँ अगर पास ही पास हों तो वे एक दूसरेको प्रभावित करती हैं। साधारण जनताका बाह्याचारोंसे परिचित होना स्वाभाविक है। मुस्लिम जनताने निकटवर्ती क्षेत्रोंमें बौद्ध श्रमणोंकी दिनचर्या, संन्यासी-जीवन आदिको देखा था और बहुत अंशमें वह प्रभावित भी हुई थी। इन बाह्याचारोंके साथ-साथ बौद्ध-दर्शनका भी कुछ-कुछ परिचय धार्मिक प्रवृत्तिवाले मुसलमानोंको था। लेकिन यह भी सही है कि बौद्ध-धर्मके दर्शन-ग्रन्थोंका अध्ययनकर उसके सूक्ष्म तत्त्वोंको जाननेकी चेष्टा उन्होंने नहीं की और न त्रिपिटकका अनुवाद ही उन्होंने अरबी और फारसीमें किया था। जो कुछ भी ज्ञान उन लोगोंने प्राप्त किया था वह सुना-सुनाया था और जिसे उन लोगोंने बौद्ध-साधकोंकी जीवनचर्यामें स्वयं देखा था। कहा जाता है कि सूफी साधकोंने मालाका व्यवहार इन बौद्ध भिक्षुओंसे सीखा। कट्टर मुसलमान इन साधकोंको मालाका व्यवहार करते देख अप्रसन्न होते थे। उलेमाओंने मालाको धर्म-विरोधी समझकर इसका घोर विरोध किया। इस्लाममें माला जपनेकी क्रियाका जब प्रवेश हुआ तब उसका रूप इस्लामके अनुरूप बना। इस्लाम-धर्ममें परमात्माको ९९ नामोंसे याद किया जाता है अतएव मालामें भी ९९ दाने हुए। अबू अल-कासिम अल-जुनैदके हाथमें माला देखकर किसीने प्रतिवाद किया तो जुनैदने कहा—"मैं उस वस्तुका त्याग नहीं करना चाहता जो परमात्मातक पहुँचनेमें मदद पहुँचाती है[2]।"

मुसलमानोंकी द्रुतगामिनी सैनिक विजयके सामने उन देशोंकी

---

१. ज. रा. ए. सो. (सन् १९०४) पृ० १४०।
२. अल-कुशैरी : हि. अ. पृ० ४३८ पर उद्धृत।

बौद्ध जनता टिक न सकी और उसने पराजय स्वीकार कर ली। इस विजयके साथ-साथ उन लोगोंने इस्लाम-धर्मको भी कबूल कर लिया लेकिन पुश्त-दर-पुश्तसे आती हुई अपनी परम्पराओंको नहीं छोड़ा। उन्होंने बदली हुई परिस्थितिके अनुकूल उन्हें बना लिया। जैसे कन्दहारके बौद्ध अनुयायियोंने जब इस्लाम-धर्म ग्रहण किया तो बुद्धके जिस जल-पात्रको वे पवित्र मानते आये थे और जिसके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी, उसका परित्याग वे नहीं कर सके। उस जलपात्रके साथ कालक्रमसे बुद्धके बदले मुहम्मदका नाम जुड़ गया। इस प्रकारकी अनेक वस्तुओं और रीति-रिवाजोंके पूर्वरूपका पता आधुनिक शोधोंके द्वारा लगा है। सीलोनमें एक चट्टानपर पद-चिह्न बना हुआ है। वह पद-चिह्न समान रूपसे बौद्धों, हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा पूजा जाता है। बौद्ध उसे बुद्धका पद-चिह्न मानते हैं, हिन्दू विष्णु (?) का और मुसलमान आदम (अली ?) का। जहाँतक अलीका प्रश्न है यह किसीके ध्यानमें नहीं आता कि अली कभी सीलोनमें नहीं आये।

भारतीय चिन्ताधारासे अरब तथा अन्य देशोंका परिचय एक और अन्य ढंगसे हुआ। भारतीय कथा, कहानियों, ज्योतिष-ग्रन्थों आदिका अनुवाद अरब तथा ईरानमें बहुत पहलेसे ही होने लगा था। पञ्चतन्त्रका अनुवाद बहुत पहले ईरानकी प्राचीन भाषा 'पहलवी' में बरजो नामक हकीमने ईरानी बादशाह खुसरू नौशेरवाँ (सन् ५३१ ई० से सन् ५७८ ई० तक) के राजत्वकालमें किया था। इस अनुवादका अब पता नहीं चलता, लेकिन सन् ५७० ई० में बुद नामक व्यक्तिने इस पहलवी अनु-वादसे सीरियाकी भाषामें अनुवाद किया और लगभग सन् ७५० ई० में अब्दुल्ला इब्नमोकफ्फाने अरबीमें अनूदित किया। इसी अरबी अनुवादके द्वारा पाश्चात्य जगत् पञ्चतन्त्रकी कहानियोंसे परिचित हुआ। अरबी अनु-वादमें अनुवादकने कई और कहानियाँ शामिल कर दी हैं। उनमें कुछ ऐसी भी हैं जो महाभारतसे ली गयी हैं, कुछ बौद्ध कहानियाँ हैं और कुछ अन्य भारतीय कहानियाँ हैं। इसके सम्बन्धमें बैरुनी लिखता है—"अब्दु-

ल्ला बिन मोकफ़ाने जो मजूसियों या अग्निपूजकोंके 'मानी' नामक सम्प्रदायका अनुयायी था, मूल पुस्तकके अनुवादमें अपने विचारों और धार्मिक विश्वासके अनुसार कई जगह पाठ बदले हैं। मैं हृदयसे यह चाहता था कि मुझे इसकी मूल पुस्तक पञ्चतन्त्रका शुद्ध और ज्योंका त्यों अनुवाद करनेका अवसर मिलता[1]।" इख़वानुस्सफ़ाके निबन्धोंमें भारत-की कई कथाओं और कहानियोंका उल्लेख मिलता है[2]। इख़वानुस्सफ़ाके सम्बन्धमें हम पहले ही कह आये हैं।

इनके अलावे भारतीय ज्योतिष और गणितशास्त्र तथा वैद्यक आदि-का भी प्रवेश अरब देशोंमें होने लगा था। कहा जाता है कि सन् ७७१ ई० में एक भारतीय पण्डित द्वारा ज्योतिषका एक ग्रन्थ बग़दादमें पहुँचा जिसका अनुवाद मुहम्मद इब्न इब्राहीम अल फज़ारीने अरबी भाषामें किया। यह 'सिद्धान्त'के नामसे प्रसिद्ध है और अरबीमें यह 'सिन्दहिन्द' कहलाता है। यह पुस्तक अधिक लोकप्रिय हुई। इसके अलावे और भी दो ज्योतिष-ग्रन्थ अरबीमें अनूदित हुए। उनमें एक आर्यभट्टका अनुवाद था जो अरबीमें अर्दबन्द है। पहली पुस्तक 'सिन्दहिन्द' का प्रचार बहुत कालतक रहा। ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीतक इस पुस्तककी टीका-टिप्पणी तथा उसके सम्बन्धमें विचार होता रहा। ज्योतिषके अलावे भारतीय संख्याओंको भी अरबोंने अपनाया और अरबसे उसका प्रचार संसारके अन्य देशोंमें हुआ। बाहरवाले बहुत दिनों तक उसे अरबी समझते रहे और उसका नाम भी उन्होंने अरबी अङ्क दिया लेकिन अरब उसे 'हिन्दसा' कहते हैं। दशमलव भी भारतीय मस्तिष्ककी ही उपज है जिसका प्रवेश अरबमें हुआ। इस प्रकारसे यह सहज ही देखा जा सकता है कि भारतीय साहित्य, ज्योतिष, गणित आदिने बहुत पहलेसे ही अरबों-को प्रभावित करना शुरू कर दिया था।

१. किताबुल हिन्द, पृ० ७६ (लन्दन); अ. भा. सं० पृ० १३१ पर उद्धृत।

२. अ. भा. सं. पृ० १३५।

भारतीय प्रभावकी चर्चा कुछ विस्तारसे की गई है, इसका यह उद्देश्य नहीं है कि सूफ़ीमतके आविर्भावके मूलमें सम्पूर्णतया भारतीय चिन्ताधारा-को स्वीकार कर लिया जाय। लेकिन इसका मतलब यह अवश्य है कि सूफ़ीमतके आविर्भाव सम्बन्धी विभिन्न मतोंपर विचार करते समय भारतीय प्रभावको दृष्टिमें रखा जाय। यहाँपर एक और ऐसी चीज़ है जिसे ध्यानमें रखना उचित है और वह यह है कि बहुत समय ऐसा भी होता है कि समान परिस्थिति और समान कारणोंके फलस्वरूप दो धर्मोंके कुछ सिद्धान्तोंमें समानता दीख पड़ती है। एक ऐसा भी दल है जो किसी भी बाहरी प्रभावको स्वीकार नहीं करता और इसके आविर्भाव और विकास-को अपने आपमें स्वतन्त्र मानता है। लेकिन इस मतको स्वीकार करनेमें बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं क्योंकि सूफ़ीमतमें ऐसे बहुतसे विचारों और सिद्धान्तोंका समावेश है जो इस्लामकी प्रवृत्तिके बिल्कुल विपरीत हैं अतएव उनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावको माननेके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता। सूफ़ीमतमें इतनी तरहकी विचारधाराओंको एक साथ देखते हुए जो सब समय आपसमें मेल नहीं खातीं—इसे किसी एक ही विचारधारासे प्रभावित होना नहीं माना जा सकता। इसके आविर्भाव तथा विकासमें अन्य धर्म और मतों जैसे भारतीय वेदान्त, बौद्ध-धर्म, नास्टिकमत, नव-अफलातूनी तथा यूनानी दर्शनका प्रभाव रहा है। लेकिन यह प्रभाव नकलके रूपमें नहीं रहा बल्कि उन बाहरी विचार-धाराओंको सूफ़ीसाधकों एवं तत्त्व-चिन्तकोंने अपने ढंगसे अपनाया और सूफ़ीमतका विकास इस्लाम-धर्मको ध्यानमें रखते हुए ही हुआ।

---

७. सूफीमतका क्रमिक विकास

अध्ययनकी सुविधाको दृष्टिमें रखकर सूफीमतके विकासकी चार अवस्थाएँ मानी जा सकती हैं—(१) प्रारम्भिक अवस्था जिसमें फ़क़ीरी जीवन बितानेकी प्रवृत्ति मुख्य रूपसे क्रियाशील थी,(२) रहस्यवादी प्रवृत्तिका उदय तथा उसका उत्तरोत्तर विकास, सैद्धान्तिक और दार्शनिक चिन्ताकी प्रधानता, (३) सूफी-सम्प्रदायोंका सङ्घटित होना तथा जीवनके नाना क्षेत्रोंमें सूफीमतका प्रभाव दीख पड़ना और (४) ह्रासावस्था।

प्रथम और द्वितीय अध्यायमें हम कुछ विस्तारके साथ यह कह आये हैं कि प्रारम्भमें इस्लाम-धर्मके अनुयायियोंमें संन्यास और रहस्यवादी जीवनके प्रति कैसे मनोभाव थे और साधकोंकी जीवन-चर्या कैसी थी। हम यह देख चुके हैं कि उस काल (ईसाकी सातवीं शताब्दी) के साधक सांसारिक विषयोंसे अपनेको अलग रखते थे। वे शरीदीसे अपना समय काटते थे और बड़े ही विनम्र थे। वे परमात्मासे भय खाते थे। इस्लाम-धर्ममें अल्लाहका जो स्वरूप है उससे उनका भय खाना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि उस कालके साधकोंमें परमात्माकी दयालुता, प्रेम आदि गुणोंके प्रति दृष्टि नहीं जाती। परमात्माके दण्डका भय उनमें इतनी मात्रामें बढ़ गया था कि मुहम्मद साहबके साथ रहनेवालोंमें एक अबूदर्दा[1] कहा करते थे कि अगर मनुष्यको यह मालूम हो जाय कि आनेवाले जीवनमें उसपर क्या बीतनेवाला है तो वह खाना-पीना छोड़ दे। कहा जाता है, उस्मान बिनम.ज़ुनने एक बार मुहम्मद साहबसे कहा कि उनका हृदय उन्हें साधनामें लगनेको प्रेरित कर रहा है। उनकी इच्छा है कि वे पहाड़ोंमें चले जायँ और संन्यास-जीवन बितावें और अपना धन, स्त्री सब कुछ छोड़कर संसारमें एक जगहसे दूसरी जगह

१. लि. हि. अ., पृ० २२५।

घूमते-फिरते रहें तथा मांस और सुगन्धित द्रव्योंका सेवन छोड़ दें[1]। इससे पता चलता है कि उस कालमें लोग किस प्रकारसे संन्यास-जीवन बिताना चाहते थे। वैसे एक हदीसमें यह कहा गया है कि इस्लाममें संन्यासके लिए स्थान नहीं लेकिन मासिन्योंने इस हदीसकी प्रामाणिकता-में सन्देह प्रकट करते हुए बतलाया है कि बादमें सूफियोंका विरोध करने-के लिए इस हदीसका आविष्कार कर लिया गया था। उन्होंने इस हदीसको हिजरी सन्‌की तीसरी शताब्दीका माना है[2]। चाहे जो हो, इतना अवश्य पता चलता है कि उस कालमें ऐसे लोग थे जो संसार-त्यागी थे और परमात्माके लिए सब-कुछका त्याग किये हुए थे और उनके लिए पैगम्बरके साथियोंमें भी सम्मानका भाव था[3]। संन्यासकी इस प्रवृत्तिको तत्कालीन राजनीतिक और धार्मिक अवस्थासे पूरा प्रोत्साहन मिला। उस कालमें अधार्मिकताका राज्य था। शासन-व्यवस्था उच्छृंखल थी और शासकोंमें अत्याचार-प्रियताका बोलबाला था। ख़ून-ख़राबी और गृह-कलह जोरोंमें चल रहे थे। यह उमैय्या ख़लीफ़ोंका काल था। कहा जाता है कि संन्यासकी लहर जो समस्त मुस्लिम देशोंमें फैल गयी उसके दो केन्द्र बसरा और कूफ़ा थे, विशेष रूपसे खुरासान इससे अधिक प्रभावित था। ईसाकी आठवीं शताब्दीमें खुरासान राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनोंका मुख्य केन्द्र बन गया। उमैय्या ख़लीफ़ोंको हराकर अब्बासी ख़लीफ़ोंके हाथमें जो सत्ता आयी उस षड्यन्त्रका सूत्रपात खुरासानमें ही हुआ। बल्खके राजकुमार इब्राहीम बिनअधम यहींके थे। बल्खके शक़ीक़ इब्राहीमके ही शिष्य थे। शक़ीक़की मृत्यु सन् ८१० ई० में हुई।

उस कालके प्रमुख साधकोंमें कई नाम लिये जाते हैं जिन्हें सूफ़ी साधक अपनी परम्परामें मानते हैं। उनके नाम यों हैं—इब्राहीम बिन-

---

१. सू. सेन्ट. आ., पृ० १०।

२. इन्सा. इ., (खण्ड ८) पृ० ६८२।

३. इब्न खल्दून: सू. सेन्ट. आ. पृ० ८-९।

अधम (सन् ७७७ ई० के लगभग), दाऊद अत-ताइ (सन् ७८१ ई०–७८२ ई०), फुजैल बिन ईयाज (सन् ८०३ ई० के लगभग), राबिया अल-अदाविया (जिसकी मृत्यु सन् ८०२ ई० में हुई)। उस कालमें साधक वैयक्तिक रूपसे अपनी साधनामें लगे रहते थे और उनका कोई सङ्घटित सम्प्रदाय नहीं था। यह बात जरूर थी कि इस प्रकारके साधक प्रायः मिला-जुला करते थे तथा कुरानका अध्ययन और आध्यात्मिक विषयोंकी चर्चा किया करते थे। लेकिन समान दृष्टिकोणवाले साधकोंके भी छोटे-छोटे दल धीरे-धीरे बनने शुरू हो गये थे। इस समयके साधकोंमें दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ दीख पड़ती हैं। एक तो वे लोग थे जिनका केन्द्र बसरा था और जो बाह्याचारपर जोर न देकर इसे अन्तरकी वस्तु मानते थे। दूसरे सीरियावाले थे जिनका झुकाव बाह्याचारकी ओर ही अधिक था। लुई मासिञोने इन दोनों स्थानोंके साधकों तथा प्रकृतिकी चर्चा की है और मुख्य-मुख्य साधकोंके नाम बतलाये हैं। बसरावालोंकी चर्चा करते हुए मासिञोने बतलाया[1] है कि उनकी दृष्टि आलोचनात्मक थी। वे तर्कसङ्गत सिद्धान्तोंको माननेके पक्षमें थे। बसराके साथ जिन साधकों-का नाम लिया जाता है उनमें कुछके नाम यों हैं। हसनबसरी (सन् ७२८ ई०), मालिक बिनदीनार, फ़ज़ल रक़्क़ाशी, रबाहबिन अमरक़ैसी, सालिह मर्री तथा अब्दुलवाहिद बिनज़ैद (सन् ७९३ ई०)। कूफ़ावाले आदर्शवादी और सनातन-पन्थी थे। यहाँके साधकोंमें प्रमुख थे रबीबिन ख़ैथम (६८६ ई०), अबू इसराइल मुलै (सन् ७५७ ई०), जाबिर बिन हैयान, कुलैब सैदावी, मन्सूर बिन अमर, अबुल अताहिया तथा अब्दक। मासिञोके अनुसार इनमें पिछले तीन इस्लामी साम्राज्यकी राजधानी बगदादमें चले आये। सन् ८६४ ई० के बादसे बगदाद इस्लामी रहस्यवादियोंका केन्द्र बन गया।

हसनबसरीको सूफी अपने सम्प्रदायका मानते हैं। यद्यपि हसनके जीवनमें संन्यासकी ही प्रधानता रही है फिर भी उसमें आध्यात्मिकता

---

1. इन्सा. इ. (खण्ड ८), पृ० १८२।

तथा रहस्यवादी भाव भी हैं। उसका कहना था कि विनम्रता और दीनता साधनाके ही वास्तविक उपकरण हैं, वेशभूषा और भोजन तो गौण हैं। ईसाकी सातवीं शताब्दीमें सूफी साधक परम्परागत धर्मकी पाबन्दी और उसके नियम-कानूनोंको मानकर ही चलते थे। उस समय सूफीमत नकारात्मक ही विशेष था। उसके सिद्धान्तोंका उस समयतक समुचित विकास नहीं हो पाया था। 'रिजा' शब्दका प्रयोग उनकी उस समयकी अवस्थाको सूचित करनेके लिए उपयुक्त है। 'रिजा' का अर्थ जो कुछ मिले उसीसे सन्तोषकर ऐकान्तिक जीवन बिताना है। इस समयतक वे न साधनाके मानसिक पक्षकी ओर ही अधिक अग्रसर हो पाये थे और न पूरा-पूरा फकीरों जैसा जीवन बितानेतक ही सीमित थे। पैगम्बरके कुछ विशेष वचनों और उपदेशोंको वे अत्यधिक महत्त्व देते थे और उन्हें छोड़कर दूसरोंकी ओर ध्यान नहीं देते थे। धर्मके सूक्ष्म तत्त्व-विवेचनकी ओर अधिक ध्यान न देकर धर्मके व्यावहारिक रूपपर ही विशेष जोर दे रहे थे। वैसे धीरे-धीरे तत्त्व-चिन्तनकी ओर अग्रसर होनेकी प्रक्रिया उनमें क्रियाशील थी और वे धर्मके बाह्यविधानसे क्रमशः दूर हटते जाते थे। फिर भी अभी वे उस जगह नहीं पहुँचे थे जब कि खुल्लम-खुल्ला उन्होंने बाह्याचारोंको आडम्बर कहना शुरू कर दिया था और साधनाको सिर्फ अन्तरकी वस्तु मानना प्रारम्भ कर दिया था। यह तत्त्व-चिन्तनकी प्रवृत्ति भीतर ही भीतर काम कर रही थी लेकिन प्रकाशमें यह अब्बासी खलीफों-के शासनके प्रारम्भ होनेके लगभग एकसौ वर्ष बाद आयी। वैसे उनके पहलेके उमैय्या खलीफोंके कालसे ही यत्र-तत्र इसकी एक झाँकी मिल जाती है। ईसाकी आठवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें सूफी साधनाका मानसिक पक्ष प्रबल होता गया और सूफी साधकोंने परमसत्ताकी सर्व-व्यापकता तथा प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तुमें परमसत्ताके दर्शन करनेके सिद्धान्त-को अधिकसे अधिक अपनाया।

संन्यास अपने आपमें एक नीरस वस्तु तथा नकारात्मक है लेकिन जब इसमें आध्यात्मिक भावनाएँ क्रियाशील हो जाती हैं तब इसका रूप

बदल जाता है। सभी कष्ट उस समय आनन्दमें बदल जाते हैं। हृदय और मस्तिष्कका उस समय सुन्दर संयोग देखनेको मिलता है। तत्त्व-चिन्तन-की ओर दृष्टि जाती है। बगदादमें संन्यासका यह परिवर्तित रूप देखनेको मिलता है। बगदाद उस कालमें एक जबर्दस्त सांस्कृतिक केन्द्र था। अब्बासी खलीफोंके दरबारमें विद्वानों और अन्य सुधीजनोंका पूरा सम्मान था। बाहरके विद्वान् वहाँ आते थे और ईसाइयों, बौद्धों और मुसल-मानोंके बीच शास्त्रार्थ भी हुआ करते थे। इसका प्रभाव सूफी साधकोंपर पड़ना बिल्कुल स्वाभाविक था।

परम-सत्ताके साथ एकत्वका बोध सूफी-साधनाके क्रमिक विकासके फलस्वरूप घटित हुआ। खलीफा हारूँ अर्रशीदके समयसे लेकर खलीफा मुतवकिलतकका काल अर्थात् ईसाकी आठवीं शताब्दीके पिछले दस पन्द्रह वर्षोंसे लेकर नवीं शताब्दीके लगभग साठ वर्षोंतक पचहत्तर वर्षोंका काल सूफीमतके विकासकी एक नयी दिशाकी सूचना देता है। विशेष रूपसे खलीफा मामूनके समयसे सूफियोंमें दार्शनिक तत्त्वोंके विवेचनकी प्रवृत्ति अधिकसे अधिक दीख पड़ती है। उस कालके प्रमुख सूफी साधकोंमें यह प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट हो उठती है। उन साधकोंमें मारुफ अल-करखी, अबू सुलैमान अद्दारानी, ज़ुननून अल-मिस्री, बायज़ीद अल-बिस्तामी, मन्सूर अल-हल्लाज आदिके नाम सूफीमतकी विशिष्ट प्रवृत्तियोंके साथ जुड़े हुए हैं। इनके पहलेके साधक, फकीरों-सा सादा जीवन बिताते थे और उस प्रकारके जीवनको वे ईश्वरीय विधानके अनुरूप समझते थे। उनका कहना था कि साधकके प्रत्येक कार्य, प्रत्येक शब्दको परमात्माकी इच्छाके अनुकूल होना चाहिये। आलोच्य कालके सूफी साधकोंमें जिनमें कुछके नामोंका उल्लेख हम अभी कर चुके हैं फ़क़ीरी जीवन बितानेकी प्रवृत्ति तो पायी ही जाती है साथ-साथ अन्य प्रवृत्तियाँ भी दीख पड़ती हैं। इन साधकोंने परमसत्ताको प्रियतमके रूपमें देखा। उसके लिए उनके हृदयमें प्रेमकी व्याकुलता थी। उसका प्रेम पाना ही उनका अभीष्ट था। उसका प्रेम पानेकी उनकी विह्वलता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।

उनके लिए धार्मिक आचार-व्यवहारका कोई मतलब नहीं था अगर वह उसके पानेमें मददगार न हो। केवल बाह्याचारके अन्धभावसे पालन करनेका उनके लिए कोई भी अर्थ नहीं था। उनके लिए सम्पूर्ण धार्मिक कृत्योंका उद्देश्य उस प्रियतमका प्रेम पाना हो गया। प्रेमातिरेकसे ये साधक बेसुध हो जाया करते थे। इस प्रकारकी आत्मविस्मृतिकी अवस्था ध्यान, स्मरण आदिके द्वारा बहुत अभ्यासके बाद ही सम्भव है। उनके अनुसार ध्यान, स्मरण तथा अन्य क्रियाओं द्वारा अपने 'अहं' को भुलाकर ही परमसत्ताके साथ जो व्यवधान है उसे दूर किया जा सकता है। वह बड़ी ही दुर्लभ वस्तु है अतएव यह कोई आश्चर्य नहीं कि सभी साधकोंको इसकी प्राप्ति नहीं होती। इन साधकोंका यह विश्वास था कि यह अवस्था भगवत्कृपासे ही सम्भव हो सकती है और यह मनुष्यके बशकी बात नहीं है। इस प्रकारसे हम देखते हैं कि सूफी साधनाका विश्वास उत्तरोत्तर ईश्वरीय प्रेम-भक्तितक पहुँच गया और क्रमशः परमात्मा तथा उसकी निर्मित सृष्टिके बीचका व्यवधान धीरे धीरे हटता गया। पहले जहाँ इन साधकोंका आदर्श एकान्तिक जीवन, फ़क़ीरी, दीनता और विनम्रता था वहाँ अब परमात्माको प्रेम द्वारा पाना ही उनके जीवनका लक्ष्य बन गया। तौहीद (एकेश्वरवाद) का अर्थ उनके लिए अद्वैतवाद जैसा हो गया। इस प्रकारका होना बिलकुल स्वाभाविक है। ब्राउन[1]का कहना है कि परमात्माको केवल प्रियपात्र मानना तथा केवल उसीको ध्यानका विषय मानना, मनुष्यको उसीके द्वारा चालित यन्त्र मानना तथा केवल आध्यात्मिक जीवनको ही महत्त्व देना इस प्रकारके दृष्टिकोणमें और एकमात्र परमात्माको ही सत्य मानने एवं इस दृश्यमान जगत्को असार समझनेमें बहुत कमका अन्तर है और एकसे दूसरेतक पहुँचनेमें कोई बड़ी खाई नहीं है। पहले जो परमात्मा मनुष्यकी पहुँचके बहुत बाहरकी चीज था, अब वह 'अल-हक़्क़' से प्रकट होने लगा। इस कालके साधक प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तुमें परमसत्ताके दर्शन

1. लि. हि. प., पृ० ४२७-४२८।

पाने लगे तथा अपने 'अहं' को खोकर बेखुदीकी हालतमें परम प्रियतमका साक्षात्कार करने लगे।

सूफीमतमें जिस प्रकारकी उदारता है और जिस प्रेम और भाव-विह्वलताका समावेश इसमें है उससे इस्लामके कट्टर अनुयायियोंसे इसका विरोध होना निश्चित-सा था। उन लोगोंने सूफियोंके आचार, साधना-पद्धति, सिद्धान्त आदि सभीका विरोध किया है। पहले इन सूफी साधकों-को इस बातका ध्यान भी नहीं था कि कभी चलकर इस्लाम-धर्मके शासकोंके विरोधका उन्हें सामना करना पड़ेगा। वास्तवमें उनका सादा फ़कीरी जीवन, एकान्तमें परमात्माका ध्यान और स्मरण एक प्रकारसे सामाजिक कुरीतियोंके प्रति उनके अन्तरके विद्रोहका प्रतीक था। वे शासकोंके अत्याचारको देखकर भी उनका विरोध करना उचित नहीं मानते थे। उनके लिए कष्टसाधन आत्मशुद्धिके लिए आवश्यक था। अपने ही भीतरके कलुषका परिमार्जन उनके लिए प्रधान चिन्ताका विषय था। उनका इसमें पूर्ण विश्वास था कि अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा परमात्माको प्राप्त किया जा सकता है। उनका इस प्रकारका आच-रण उनके व्यक्तिगत जीवनतक ही सीमित था। उन्हें इस बातकी चिन्ता नहीं थी कि शासक चाहे जितना भी धर्मकी राहसे अलग हट जाय उसका विरोध किया जाय। अतएव शासककी ओरसे उनका विरोध वैसा नहीं दीख पड़ता। लेकिन मुल्लाओं और धर्मके व्याख्याताओंने उन्हें सहजमें ही नहीं छोड़ा। सूफियोंके प्रेम और बे.खुदीके सिद्धान्त इस्लामके धर्मानुयायियोंको खटकनेवाले थे। सूफी इस्लामके बाह्याचारों-को उतना महत्त्व नहीं देते थे और उनकी व्याख्या अपने ढंगसे करते थे। केवल बाह्याचारका यन्त्रवत् पालन सूफियोंकी दृष्टिमें बेकार था। वे अन्तरकी शुद्धि तथा हृदयसे धर्मके नियमोंको समझना और उनका पालन करना ही असली धर्मका पालन करना मानते थे। इसका फल यह हुआ है कि बहुतसे सूफी साधकोंको प्राण गँवा देने पड़े थे और कितनोंको निर्वासित होना पड़ा था। इस विरोधका रूप साहित्यमें

भी प्रकट हुआ। कुछ टर्की और फारसी कविताओंमें 'सूफी' शब्दका व्यवहार 'धर्मका ढोंग करनेवाले', 'चरित्रहीन', 'मनमानी राहपर चलनेवाले' आदि किया गया है।

सूफियोंका विरोध करनेवाले मुसलमानोंके विभिन्न सम्प्रदायोंमें सर्वप्रथम खारीजी थे और उनके बाद इमामी। इमामियोंके मतानुसार सूफी मुसलमानोंमें एक ऐसे सिद्धान्तका प्रचार करते थे जो उनकी तकिया (परम्परा) के विरुद्ध था। उनका यह भी आक्षेप था कि सूफी बारह इमामोंपर ईमान लानेके बदले रिज़ा (भगवत्कृपा) प्राप्त करनेकी बात कहते हैं। सुन्नियोंका विरोध इतना उग्र नहीं रहा। इनके दो दल अपने-अपने ढंगसे इसका विरोध करते रहे। विरोध करनेमें वे एक नहीं रहे। मध्यम-मार्गका अनुसरण करनेवाले सूफीमतको सुन्नियोंने कभी भी इस्लाम-धर्मका परिपन्थी नहीं माना। सुन्नियोंमें जो कट्टर दल हशवीया था उसने विरोधका अपना ढंग अख्तियार किया। मुतज़िलों और ज़ाहिरियोंका विरोध दूसरे किस्मका था। इब्न हनबलका कहना था कि सूफी बाह्य उपासना, नमाज़ आदिके बदले ध्यान और बे.खुदीको तरजीह देते हैं जो इस्लामके विरुद्ध है। उसका यह भी कहना था कि सूफी इस्लाम-धर्मके विरुद्ध आत्मा और परमात्माके बीच जिस सम्बन्धको स्थापित करना चाहते हैं वह मानों दो सांसारिक प्राणियोंकी मित्रता जैसी है। सनातन-पन्थी इस्लामके अनुसार आत्मा अपने किये हुए पाप और पुण्यके साथ क़यामतके दिन अल्लाहके दरबारमें हाज़िर किया जाता है और अल्लाह उसका इन्साफ करता है। सूफी जिसे इश्क कहते हैं वह इस्लाम-धर्मके विरुद्ध पड़ता है। मुतज़िलों और ज़ाहिरियोंका कहना है कि सूफी जिसे इश्क़ कहते हैं उसका मतलब यह होता है कि हम इस सिद्धान्तको मानें कि परमसत्ता प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तुमें व्याप्त है जब कि परमात्माकी अपनी अलग सत्ता है और प्रकृतिकी अन्यान्य वस्तुओंकी अलग। इसी प्रकारसे उनके अन्य सिद्धान्तोंसे वे अपना मतभेद प्रकट करते हैं। इस कालके सूफियोंने अपने आध्यात्मिक अनुभवों और सिद्धान्तोंको प्रकट करनेके

लिए बहुतसे शब्द ऐसे लिए हैं जिनका व्यवहार उस कालके धर्म-सम्बन्धी तत्त्वोंको प्रकट करनेके लिए किया जाता था। जैसे मारिफ़, फ़ना, तवक्कुल आदि। लेकिन इन शब्दोंकी व्याख्याको उन्होंने बराबर अस्पष्ट ही रखा।

इस्लाम-धर्मसे इस प्रकारका जो स्पष्ट विरोध दीख पड़ता है उसे दूर करनेकी चेष्टा सूफियोंने की है। इस्लामके साथ सूफीमतका सामञ्जस्य बैठानेके लिए उन्होंने कुरान शरीफकी व्याख्या रूपकोंकी भाषामें की है। कुरान शरीफकी व्याख्या कई प्रकारसे करना सम्भव है। सूफियों ने भिन्न-भिन्न प्रकारकी व्याख्याएँ कीं और इस तरहसे उनके भी अलग-अलग मत और सम्प्रदाय बन गये। सनातन-पन्थी इस्लामके साथ सूफीमतके विरोधको दूर करने तथा इन दोनोंमें सामञ्जस्य बैठानेका सबसे अधिक श्रेय ग़ज़ालीको है। सनातन-पन्थियोंके बीच सूफीमतके प्रति श्रद्धा और आदरका भाव ग़ज़ालीके ही कारण आया। ग़ज़ालीके कारण ही सनातन-पन्थियोंने इसको स्वीकार किया। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि प्रारम्भमें वैयक्तिक रूपसे ही साधनामें रत लोग पाये जाते थे लेकिन कालक्रमसे सूफी साधकोंमें कुछ लोगोंने काफी प्रसिद्धि पायी जिससे आकर्षित होकर कुछ लोग उनके पास इकट्ठे होने लगे। धीरे-धीरे प्रमुख सूफी साधकोंके साथ शिष्योंका दल रहने लगा और उनके सम्प्रदाय गठित होने लगे। इस प्रकारसे विभिन्न साधकों और सन्तोंकी अपनी-अपनी शिष्य-परम्परा चल निकली। शिष्योंको अपने गुरुसे उपासना आदिकी विधि सीखनी पड़ती थी। उस समय यह बात पूर्णरूपसे मान ली गयी कि बिना मुर्शिद (गुरु)के आध्यात्मिक जीवनके रहस्य नहीं मालूम हो सकते। सूफियोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें सिद्धान्तोंको लेकर छोटे-मोटे विभेद भी हैं। पहिरावा, ध्यान तथा पाठकी विधियोंमें उनमें फ़र्क़ हैं, लेकिन ये गौण ही हैं। आधारभूत मुख्य सिद्धान्तोंमें उनमें आपसमें कोई भेद नहीं है। मुर्शिद (गुरु) का स्थान उन सभीमें एक-सा है। सूफियोंके छोटे-मोटे सम्प्रदायोंको अगर छोड़ दें तो उन्हें हम दो मुख्य

श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं : (१) इल्हामिया, (२) इत्तिहादिया। इल्हामिया वे हैं जो यह मानते हैं कि वे उन भाग्यशालियोंमें हैं जो भगवत्प्रेरित हैं और इत्तिहादिया अल्लाहके साथ एकत्वका दावा करते हैं। वैसे सूफी लोग पक्का मुसलमान होनेका दावा करते हैं और अपनेको हजरत मुहम्मद-का असली उत्तराधिकारी मानते हैं। अली इब्न अबूतालिबको जो मुहम्मद साहबके पोष्य पुत्र एवं दामाद थे, सूफी लोग सूफीमतका प्रतिष्ठाता मानते हैं।

इस कालमें सूफी साधक और सन्त वैसे नहीं रह गये जैसा कि प्रारम्भमें उनका रूप देखनेको मिलता है। अब वे एकान्त-सेवन करनेवाले साधक नहीं रह गये थे और बाहरके लोगोंसे उनका सम्पर्क अधिक बढ़ने लगा था। इस कालमें सूफी-सिद्धान्तोंका परिचय देनेवाले तथा सूफी-मतका विवेचन करनेवाले कई ग्रन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थोंमें सबसे पुराने अबूनसर अल-सराज लिखित किताबुल लुमा तथा अबूतालिब अलमक्की लिखित कुतुल-कुलूब है। सराजका समय सन् ९८८ ई० के लगभग है और मक्कीका सन् ९९६ ई० के लगभग। इस कालमें यूनानी दर्शनका एक प्रकारसे इस्लामी दुनियापर आधिपत्य हो जाता है। अरबीमें दर्शन शास्त्रके बहुतसे ग्रन्थ अनूदित हुए। सूफी मतकी विवेचनाके लिए अब उपयुक्त शब्दोंका प्रयोग होने लगा। आत्मा और परमात्माके सम्बन्ध आदिको लेकर गम्भीर चिन्तन होने लगा। इस काल (ईसवी सन्‌की दसवीं शताब्दीके अन्ततक)में सूफीमतकी एक सुनिश्चित धारा बन गयी थी। जीवन-दर्शनकी दृष्टिसे अथवा विचारधाराकी दृष्टिसे उसकी एक सुस्पष्ट परिभाषा और रूपरेखा तैयार हो गयी थी।

ईसाकी दसवीं शताब्दीमें प्रमुख सूफी साधकोंका इस बातपर जोर रहा कि सनातन-पन्थी इस्लामके साथ सामञ्जस्य बनाये रखना उचित है। सह बिन अब्दुल्ला अल-तस्तरीने जिनका समय सन् ८९६ ई० के लगभग है, छः बातोंपर जोर दिया है[1]—कुरानमें पूर्ण आस्था, हजरत

1. लि. हि. अ., पृ० ३९३ पर उद्धृत।

मुहम्मदके जीवनके आदर्शको सामने रखना, धर्म-सम्मत भोजनको ग्रहण करना, हराम वस्तुओंका त्याग, दूसरों द्वारा कष्ट पहुँचाये जानेपर भी उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाना, नियमका निष्ठापूर्वक अविलम्ब पालन करना। सनातन-पन्थी इस्लामको ये सभी बातें अपने अनुकूल पड़ती हैं। सूफी यद्यपि इन सभी बातोंका पालन करते थे फिर भी सनातन-पन्थी इस्लामसे आधारभूत सिद्धान्तोंको लेकर उनका मतभेद था। सनातन-पन्थी इस्लाम-के अनुसार परमात्माका जो रूप समझा जाता है उससे अलग ही सूफियोंने माना। सूफियोंका 'अल-हक़्क़' सनातन-पन्थी इस्लामके परमात्मासे अलग है। सूफियोंका परमात्मा एकमात्र परमसत्य है। वह सनातन-पन्थियोंके परमात्मा जैसा दण्ड देनेवाला अथवा दया करके आनेवाले जन्ममें स्वर्ग-के सुखोंको देनेवाला परमात्मा नहीं है। चाहे जो हो, उस कालके सूफी साधक इस बातके लिए सचेष्ट थे कि वे शरिअतका भी पालन करें और अपने हक़ीक़तके सिद्धान्तके साथ उसका मेल बैठावें। सब समय सूफियोंने सूफीमतके उच्च आदर्शोंके साथ अपनी जीवनचर्याका मेल बनाये रखा हो ऐसी बात नहीं है। उनमें भी कितने प्रकारके लोग हुए जो मनमानी करनेवाले थे और दुर्गुणोंसे भरे हुए थे। सन् १०४५ ई० में कुशैरीका सुप्रसिद्ध 'रिसाल फी-इल्म अल-तसव्वुफ़' प्रकाशमें आया। उसमें पिछले कई विचारकों और साधकोंके विचार कुशैरीने उद्धृत किये हैं। अल-सर्राज और अल-सुल्मीके विचारोंके उद्धरण भी 'रिसाल'में पाये जाते हैं। सूफी-सिद्धान्तोंकी रहस्यवादी धाराको उसने एक स्पष्ट रूप दिया था। 'रिसाल' में इस बातको दिखानेकी चेष्टा की गयी है कि सूफीमत और सनातन-पन्थी इस्लाममें विरोध नहीं है। कुशैरीने उसमें अपने समकालीन सूफी साधकों-को स्मरण दिलाया है कि किस प्रकार वे पुराने सूफी साधकोंके उच्च आदर्शसे नीचे गिर गये हैं। जहाँ उन पुराने सूफी साधकोंका जीवन दूसरोंको प्रेरणा देता था और लोगोंके लिए आदर्शस्वरूप था वहाँ उसके समयके सूफी उन आदर्शोंको जैसे भूल गये हैं। इस प्रकारसे एक ऐसी स्थितिका हमें परिचय मिलता है कि यद्यपि सूफियोंमें बुराइयाँ आ गयी थीं फिर भी

सूफी साधक उनके प्रति उदासीन नहीं थे और अपने जीवनमें पुनः आदर्शकी प्रतिष्ठा करना चाहते थे। कहा जाता है कि रिसालके प्रकाशित होनेके पचास वर्षोंके बाद ग़ज़ालीने बग़दादके निज़ामिया कालेजके अध्यापक पदसे इस्तीफा दे दिया और सब कुछ छोड़कर सूफी हो गया।

सम्भवतः ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें ग़ज़ालीके प्रयाससे सूफ़ीमतको एक क्रमबद्ध दार्शनिक प्रणालीका रूप मिला। ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें भिन्न-भिन्न दरवेशोंके सम्प्रदायका आविर्भाव हुआ। ये दरवेश कम या बेशी सूफी ही थे लेकिन उनमें सभी सचमुचमें सूफी ही हों ऐसी बात नहीं है। उनमें ऐसे भी बहुत थे जो ढोंगी थे और भावा-विष्टावस्था, प्रेमातिरेककी बातें बिना किसी आधारके, बिना समझे-बूझे किया करते थे। इस समयतक आते-आते सनातन-पन्थी इस्लाम स्वयं इन सूफी सम्प्रदायोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। औलिया और उनके चमत्कार, सन्तोंकी समाधिका दर्शन आदि सनातन-पन्थी कट्टर मुसलमानों द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया, वैसे उसके विरोधी भी कुछ लोग थे। दरवेशोंके अदवी सम्प्रदायके संस्थापक अल-हक्कारी थे और इसकी स्थापना सन् ११६३ ई० में हुई। अब्दुल क़ादिर अल-जीलीने सन् ११६३ ई० में क़ादिरी सम्प्रदायकी स्थापना की। रिफाई सम्प्रदायके संस्थापक सईद अहमद रिफाईकी मृत्यु सन् ११८२ ई० में हुई। शहाबुद्दीन सुहरवर्दीने (मृत्युकाल सन् १२०५ ई०) सुहरवर्दी सम्प्रदायकी स्थापना की। इसी प्रकारसे कुबरावी, शाज़िली और मौलवी आदि सम्प्रदाय सङ्घटित हुए। मौलवी सम्प्रदायकी स्थापना करनेवाले जलालुद्दीन रूमी थे जो सुप्रसिद्ध सूफी और फ़ारसीके कवि थे। इनकी मृत्यु सन् १२७३ ई० में हुई। इसके बाद अनेकों दरवेशोंके सम्प्रदाय बने।

ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके बादसे सूफ़ीमतका विकास दर्शनशास्त्र तथा साहित्यकी दृष्टिसे उसके विकासकी पिछली शताब्दियोंको बहुत पीछे

छोड़ जाता है। इसके विकासका अन्तिम युग इसी शताब्दीसे प्रारम्भ होता है और इस कालको सूफीमतका स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इब्नुल अरबीकी मृत्यु सन् १२४० ई० में हुई। उसका वहदतुल वुजुदका सिद्धान्त सूफीमत तथा इस्लामी दर्शनमें एक महत्त्वका स्थान रखता है। इब्नुल अरबी बहुत बड़ा विचारक हुआ है और सूफीमत के विकास में उसका एक महत्त्वका स्थान है। उसके सिद्धान्त अद्वैतवादी हैं। वास्तवमें वह बहुदेववादी नहीं था फिर भी उसकी कटु आलोचना हुई है। लेकिन आगेकी विचारधारापर उसका प्रभाव बराबर पड़ता रहा है। इसके बाद ही जीलीने इसी सिद्धान्तको आधार मानकर उसमें कुछ परिवर्तन किये। जीलीका सिद्धान्त आज तक इस्लाम-धर्मके रहस्यवादियों द्वारा मान्य है। इस कालका फारसी साहित्य सूफियोंके सिद्धान्तसे अत्यधिक प्रभावित है। अरबी साहित्यमें तो कम लेकिन फारसी साहित्यमें बड़े-बड़े सूफी-कवि हुए। परमात्मा सम्बन्धी प्रेम, भावाविष्टावस्था आदिके बदले कवियोंने प्रतीकात्मक शैलीका सहारा लेकर शराब, साकी आदिका प्रयोग किया जब कि शराब सनातन-पन्थी इस्लामकी दृष्टिमें हराम है। इस तरहके सूफी-कवियोंमें अरबीमें उमर इब्नुल फ़रीद (सन् ११८१ ई०—सन् १२३५ ई०) का नाम आता है। शुस्तरी भी इसी तरहके कवियोंमें है जिसने अरबी भाषामें लिखा। जहाँ तक इस प्रकारके साहित्यका प्रश्न है फ़ारसीके सामने अरबी साहित्यका कोई स्थान नहीं। ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीसे लेकर आजतक यह रहस्यवादी प्रवृत्ति फारसी कविताको अनुप्राणित करती रही है। वर्तमान कालमें उर्दू साहित्यमें इसीका बोलबाला है। मलायाके साहित्यमें भी यह प्रभाव काम करता रहा है। वर्तमान अरबी साहित्यने एक प्रकारसे इसे त्याग ही दिया है। फ़ारसी-साहित्य इस दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। फारसीके तीन सूफी कवि फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी और शेखसादीके साथ सूफी-साहित्यके स्वर्णयुगका प्रारम्भ कहा जा सकता है। इन तीनोंने साहित्य तथा इस्लामी चिन्ताधाराको बहुत अधिक प्रभावित किया है। और इनके बाद शबि-

स्तरी, हाफिज और जामीके नाम आते हैं। अभी आगे चलकर हम प्रारम्भिक कालके सूफी साधकोंकी कुछ विशेष भावसे चर्चा करेंगे क्योंकि उन्हींकी जीवनचर्या और वाणियोंको लेकर सूफीमतके प्रादुर्भाव और विकासको समझनेकी चेष्टा की जाती है। अतएव संक्षेपमें हम उनके कार्य-कलाप तथा कथनोंकी चर्चा करेंगे। इसी प्रकारसे अन्य दार्शनिकों एवं सूफी कवियोंके बारेमें भी कुछ जान लेना आवश्यक होगा। उससे सूफीमतके प्रादुर्भाव, विकास तथा चरमोत्कर्षको समझनेमें काफी सहायता मिलेगी।

इब्न अल-फरीद, इब्न अरबी और रूमी सूफी सिद्धान्तके प्रतिपादन अथवा कलात्मक कृतिमें चरमतक पहुँच गये थे। बहुतसे सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुए और उत्तरोत्तर उनकी संख्या भी बढ़ती गयी। सूफियोंका सम्मान नवाबों और बादशाहोंके दरबारमें बहुत बढ़ गया। बादशाहों और सुलतानोंने सूफीमतको प्रश्रय भी दिया लेकिन इन सारी बातोंके होते हुए भी कालक्रमसे सूफीमतकी शक्ति क्षीण होती गयी। इसके बहुतसे अनुयायियोंमें अनाचारकी वृद्धि होती गई और वह इसके पतनका कारण बनी। उच्च आदर्श, आध्यात्मिक प्रेम तथा श्रेष्ठ साधनाका स्थान करामात दिखानेवालों और अत्यधिक आडम्बर फैलानेवाले ढोंगियोंने ले लिया। जनतामें उच्च सिद्धान्तोंके स्थानपर करामात, अन्धविश्वास आदिका प्राधान्य हो गया। जो जितना अधिक ठग सकता था, लोगोंको भरमा सकता था, वह उतना ही अधिक प्रसिद्धि लाभ कर रहा था। भिन्न-भिन्न देशोंकी परिस्थितियोंके अनुसार इसका पतन धीमा या उग्र रहा। एक समय ऐसा आया कि धार्मिक कृत्यों तथा अन्य आचारोंके अलावे नैतिकताका उनमें इतना ह्रास हुआ कि सूफी कहे जानेवाले व्यक्ति जनताकी निगाहसे एकदम गिर गये। किसी प्रकारके धार्मिक अथवा शासनके बन्धन मानना उन्होंने अस्वीकार कर दिया, फलस्वरूप शासकोंकी भी वक्र-दृष्टि उनपर पड़ी। सूफी कहे जानेवाले लोगोंने अज्ञानको ही महत्त्व देना शुरू किया। जादू, टोना, मन्त्र-तन्त्रकी ही प्रधा-

नता उस समय हो गयी। सन् ईसवीकी अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते सूफीमतमें केवल यही चीज रह गई। यह उसके भीतर की कमजोरी थी। बाहर भी समाज बदल रहा था। विज्ञान, शिक्षा आदि की उत्तरोत्तर उन्नति होती गयी। लोगोंका दृष्टिकोण अब वैज्ञानिक हो चला। पहले जो कुछ सहज भावसे मान लिया जाता था उसे लोगोंने सन्देहकी दृष्टिसे देखना शुरू किया। तर्कसङ्गत बातें ही स्वीकार की जाने लगीं। नये-नये विचारोंका प्रभाव सर्वत्र दीख पड़ने लगा। पुरानी मान्यताओंको छोड़कर लोगोंने नयी मान्यताओंको ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया। आर्थिक जगतमें नयी हलचल पैदा हुई और पुराने आर्थिक-सम्बन्धोंके प्रति लोगोंमें एक विद्रोहका भाव पैदा हुआ। इन सभी कारणोंसे समाजका पुराना ढाँचा बदल रहा था। यह सबसे बड़ा कारण था कि लोगोंने सूफियोंकी बातोंकी ओर ध्यान देना छोड़ दिया। लोगोंमें इसके प्रति केवल उदासीनताका ही भाव नहीं था बल्कि लोगोंने उसका जबर्दस्त विरोध भी करना शुरू किया। इस प्रकारसे सूफीमतकी शक्तिका ह्रास हुआ और आजकी दुनियाँमें उसकी शक्ति नगण्य जैसी है।

---

८. प्रारम्भिक कालके कुछ सूफी साधक

प्रारम्भिक कालके सूफी साधकोंकी जीवन-चर्या तथा दृष्टि-भंगीके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ कहनेका अवसर हमें मिलता रहा है और उनपर पिछले पृष्ठोंपर कुछ प्रकाश डालनेकी हमने चेष्टा की है। यहाँपर उनके जीवन-वृत्त और उनकी वाणियोंके सम्बन्धमें कुछ अधिक कहना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रारम्भिक कालके सूफी-साधकोंकी जीवन-चर्या और उनके कथनोंके बारेमें जानकारी रखना सूफीमतको समझनेके लिए आवश्यक है। सूफीमतके विकासमें अन्य प्रभावोंके अलावा उन साधकोंकी अनुभूतियाँ सहायक सिद्ध हुई हैं। किसी भी दर्शनके आरम्भ और विकासमें तत्त्व-चिन्तनसे पहले व्यक्तियोंकी अनुभूतियाँ आधार होती हैं। सूफी साधकोंके रहन-सहन, उनके कार्य-कलाप तथा उनके प्रकट किये हुए विचारोंको ही आधार मानकर सूफी-सिद्धान्तोंको स्थिर करनेकी चेष्टा की गयी है। सन् ईसवीकी नवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें मारूफ अल-करखीने सूफीमतकी परिभाषा करते हुए कहा है—"परमात्मा विषयक सत्यासत्यका ज्ञान और सांसारिक वस्तुओंका परित्याग" ही सूफीमतका सार है। इसी प्रकारसे सन् ८५९ ई० के लगभग ज़ुन-नून अल-मिस्रीने सूफियोंके बारेमें कहा है कि सभी वस्तुओंका त्याग कर वे एकमात्र परमात्माको ही जानते हैं और इसलिए परमात्मा भी उन्हें जानते हैं। अल नूरी (लगभग सन् ९०७ ई०) ने सूफीमतके बारेमें कहा है कि सांसारिक वस्तुओंसे शत्रुता और परमात्मासे प्रेम करना ही सूफी धर्म है। सूफीमतकी उस समयकी जितनी भी परिभाषाएँ हैं उनका आधार तत्कालीन साधकोंका फकीरी जीवन था। उस कालके सूफी साधकोंने पूर्ण रूपसे सांसारिक वस्तुओंके त्याग, गरीबी और एकान्त-सेवनपर जोर दिया है। उन्होंने कष्ट-साधनको पूरा महत्त्व दिया है। उस कालमें दीनता और

और विनम्रताके साथ ऐकान्तिक जीवन बिताना अपने आपमें महत्त्वका समझा जाता था क्योंकि उन साधकोंकी धारणा थी कि इसके द्वारा परमात्माको पाया जा सकता है और उसका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है। उस समयके साधक सभी सांसारिक वस्तुओंका त्याग कर शारीरिक कष्टका स्वागत करते थे जिसमें उन्हें परमात्माको पानेकी इच्छा के सिवाय और दूसरी कोई इच्छा न रह जाय। अबू बक्र जक्काक् नामक सूफी-साधकके बारेमें कहा जाता है कि किसी अरबके घरमें उसने आतिथ्य ग्रहण किया था, वहां पर उसने एक सुन्दर लड़की देखी। वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ। लेकिन उसके बाद ही उसे चेत हुआ और उसने उन आँखोंको जिनसे उसने लड़कीको देखा था, यह कहते हुए निकालकर फेंक दिया कि "मैंने तुम्हारे (आँखों) द्वारा ही परमात्माको देखा है।" अबू बक्र जक्काक्की मृत्यु सन् ९०२ ई० में काहिरामें हुई थी। उस समयके साधकोंके बारेमें इस तरहकी बहुत-सी घटनाओंका पता चलता है। उस समयके साधक गरीबीसे जीवन व्यतीत करनेका मतलब केवल सांसारिक वस्तुओंका त्याग ही नहीं समझते थे बल्कि उनका मतलब यह भी था कि साधक सांसारिक सुख और दुःख दोनोंसे ही उदासीन रहे और सब्रकी जिन्दगी बिताते हुए अपनेको परमात्माकी इच्छापर छोड़ दे।

सूफी-साधकोंके जीवन-वृत्तान्त और उनके विचारोंकी जानकारी करानेका श्रेय मुख्य रूपसे फारसीके सूफी कवि फरीदुद्दीन अत्तारको है। उसकी 'तजकिरातुल औलिया' (सन्तोंके संस्मरण) सूफी साधकोंके सम्बन्धमें फारसीमें लिखी हुई सबसे पुरानी पुस्तक है। अत्तारका जन्म सन् ११२० ई० में हुआ था। पहले वह इत्रफरोशका काम करता था लेकिन बादमें एक चिन्तनशील व्यक्ति बन गया। सूफी साधकोंकी जीवनी और विचारोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उसके पहलेकी दो पुस्तकें हैं जिनका उपयोग अत्तारने किया है। उनमेंसे एक अबू नयूम अल-इसफहानीकी लिखी हुई 'हिल्या अल-औलिया' है जो सन् १०३८ ई० के लगभगकी

है और दूसरी पुस्तक अबू अल-कासिम अल-कुशैरीकी 'रिशाल' है। यह सन् १०४५ ई० में प्रकाशित हुई। ये दोनों पुस्तकें अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती हैं लेकिन सन्तोंके बारेमें बहुत-सी किम्वदन्तियाँ फैल जाती हैं और उनके जीवन-वृत्तके साथ उनका समावेश हो जाता है। इन-साधकोंके सम्बन्धमें भी कम या बेशी ऐसा ही हुआ है। फिर भी विभिन्न लेखकोंकी रचनाओं और किम्वदन्तियोंकी छान-बीन करनेपर कुछ-न-कुछ तथ्य जाना जा सकता है।

प्रारम्भिक कालके सूफियोंमें कई-एक नाम आते हैं जिनका स्थान मुस्लिम साधकोंमें ऊँचा है। लेकिन उन सबके बारेमें कहना स्थानाभावके कारण सम्भव नहीं और साथ ही इस अध्ययनका अभिप्राय भी नहीं है। उनमेंसे कुछ के ही बारेमें हम यहाँ कह पायेंगे और वह हमारे अध्ययनकी दृष्टिसे पर्याप्त होगा। कुछ प्रमुख साधकोंके जीवन और उनकी वाणियोंसे अन्य साधकोंके सम्बन्धमें अनुमान लगा लेना कठिन नहीं होगा।

हसन अल-बसरीका नाम सभी सूफी लेते हैं। अति प्राचीन मुस्लिम साधकोंमेंसे वह एक है और प्रायः सभी सूफी उसे अपनी परम्परा में मानते हैं, यद्यपि उसके जीवनमें संन्यासका ही स्थान अधिक था, रहस्यवादी प्रवृत्तिका कम। उसका जन्म सन् ६४३ ई० में हुआ और मृत्यु ११ अक्टूबर सन् ७२८ ई०[1] को। उसको लोग अबू अली कहा करते थे। कुछ लोगोंका कहना है कि उसे अबू मुहम्मद या अबू सईद कहकर लोग पुकारते थे। उसका जन्म मदीनेमें हुआ था। कहा जाता है कि उसकी माँ हजरत मुहम्मदकी पत्नी आयशाकी परिचारिका थी। हसनने कष्टमय जीवनको वरण कर लिया था। वह वास्तवमें धनी था और मणिमाणिक्यका व्यवसाय करनेवाला जौहरी था। कहते हैं कि चौथे खलीफा हजरत अलीसे उसने संन्यासकी दीक्षा ली थी। वह त्यागी, गुणवान और भगवत्प्रेमी था। साथ-साथ वह बहुत अच्छा कानूनदाँ और

---

१. इ. इस्लि पृ० २८७।

और काव्यकलामें कुशल था। उसके भाषणोंका लोगोंपर बहुत प्रभाव पड़ता था। अत्तारने उसके बारेमें लिखा है कि वह बिल्कुल एकान्तमें रहता था और किसीसे भी उसकी कोई चाहना नहीं थी। उसने यह भी लिखा है कि किसीने भी उसे हँसते हुए नहीं देखा था। अपने समकालीनोंमें उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसके शिष्योंमें सूफी भी थे और सनातन-पन्थी कट्टर मुसलमान भी। यद्यपि वह परमात्माको सर्वातीत मानता था फिर भी उसका कहना था कि आत्मशुद्धि के द्वारा उसे पाया जा सकता है। सांसारिक बन्धनोंके मायाजालको काटनेपर ही मनुष्य परमात्माको पानेकी आशा रख सकता है। जिसने सभी इच्छाओंका त्याग कर दिया है और इस क्षणभङ्गुर संसारसे मुँह मोड़ लिया है उसे परमात्मा स्वयं ग्रहण करेंगे। पाप कर्ममें रत रहनेवालेको परमात्मा दण्ड देता है। इस भयके कारण वह लोगोंको शिक्षा देता था कि अपने गुनाहोंके लिए वे पश्चात्ताप करें। कहा जाता है कि हसनने जब किसीसे सुना कि जो व्यक्ति एक हजार वर्षोंतक नरकवास करेगा अन्तमें वही बच पायेगा तो वह रोने लगा और बोला, काश वह स्वयं वह व्यक्ति होता। बाल्यकालमें उसने कोई एक पाप-कर्म किया था। उसे वह भूल न जाय और फिर उस कर्मको कर न बैठे इस बातको बराबर स्मरण रखनेके लिए वह नया वस्त्र धारण करते समय उसे उस पर लिख रखता और लिखनेके समय ऐसा क्रन्दन करता कि बेहोश हो जाता।

उसने बहुत बार कहा है कि इस संसार के प्रलोभनोंमें फँसकर उस संसारको न बिगाड़ो। उसके मतसे बुद्धिमान वही है जो इस संसारको अपना शत्रु समझता है और कोई भी ऐसा काम नहीं करता जिससे उस संसारको पानेमें उसे कोई बाधा हो। वह परमात्माको ही सब कुछ समझता है। उसका कहना था कि सच्चा वैराग्य वही वैराग्य है जो परमात्माके लिए हो। स्वर्ग पानेकी आशासे जो वैराग्य किया जाता है वह वैराग्य नहीं है। अपने साथ रहनेवाले एक फ़क़ीर सैयद ज़ुबैरसे उसने कहा था कि संसारमें तीन चीजोंसे बचना चाहिये—(१) भूलकर भी बादशाहोंसे

सम्पर्क न रखे, (२) किसी भी स्त्रीके साथ एकान्त में न रहे और (३) किसीकी बातोंपर कान न दे। जो कुछ भी हसनने कहा है उसमें अधिकांशमें फ़क़ीरी जीवनपर जोर दिया गया है और आत्मशुद्धिके द्वारा परमात्माकी कृपा प्राप्त करनेकी बात कही गयी है। उसने बार-बार दुहराया है कि नश्वर जगत्की वस्तुओंके मोहको त्यागो क्योंकि बिना उनसे छुटकारा पाये दूसरे संसारको पाना सम्भव नहीं हो सकता। वास्तवमें उसके बहुत बादके सूफी साधकोंमें रहस्यवादी प्रवृत्तिकी जैसी प्रधानता देखी जाती है वैसी हसनमें नहीं, फिर भी उसके कुछ प्रवचनोंमें रहस्यवादी प्रवृत्तिकी भी झलक मिल जाती है। अत्तारने हसन बसरीके एक प्रवचनका उद्धरण दिया है जिसमें कहा गया है—"जब स्वर्गमें वास करनेवाले प्रथम-प्रथम अपनी आँखें खोलते हैं तो सात लाख वर्षोंतक भावाविष्टावस्थामें रहते हैं क्योंकि अपनी परम-विभूतिके साथ परमात्मा अपनेको उनके सामने प्रकट करते हैं...।" इस प्रकारसे परमात्मातक पहुँचने, उससे साक्षात्कार होनेकी बात भी हसनके प्रवचनोंमें पायी जाती है।

उसकी निम्नलिखित कुछ वाणियाँ उद्धृतकी जाती हैं—

"संसारमें इन्द्रियोंको कठिन श्रृङ्खलामें बाँध रखना जितना आवश्यक है उतना किसी पशुको भी बन्धनमें रखना आवश्यक नहीं है।"[१]

"अपने इन हृदयोंको (परमात्माके स्मरण और चिन्तन द्वारा) धो डालो क्योंकि उनमें जल्दी जंग लग जाता है; और अपनी अन्तरात्माओंपर अङ्कुश रखो क्योंकि उनमें तीव्र इच्छाएँ उठती हैं और अगर तुमने उनपर अङ्कुश नहीं रखा तो वे तुम्हें पतनकी ओर खींच ले जायँगी।"[२]

"अनासक्तिका एक बिन्दु सहस्रों वर्षकी नमाज और रोजासे श्रेष्ठ है।"[३]

"जिसने ईश्वरको पहचाना है उसने उनके प्रति प्रेमकी स्थापना की

१. ता. मा. (द्वितीय भाग), पृ० ११।
२. लि. हि. अ., पृ० २२७।
३. ता. मा. (द्वितीय भाग), पृ० १२।

है और जिसने संसारको पहचाना है उसने ईश्वरसे शत्रुता की है।"[1] "मनुष्यकी अपेक्षा बकरी जैसा जीव भी सावधान रहता है जो चरवाहेका शब्द सुनकर चरना छोड़कर मैदानसे उसकी ओर दौड़ आती है लेकिन मनुष्य ईश्वरका आह्वान सुनकर उनकी ओर नहीं जाता और अपने भोगसुखसे विरत नहीं होता।"[2]

उस कालका दूसरा साधक बल्खका इब्राहीम बिन अधम था। उसकी मृत्यु सन् ७७७ ई० में हुई। उसने भी फ़क़ीरी जीवन, एकान्तवास और सांसारिक वस्तुओंके त्यागपर जोर दिया है। परमात्माके ऊपर अपनेको सम्पूर्ण रूपसे छोड़ देना ही उसके उपदेशोंका सार है। अत्तारने उसके एक प्रवचनको उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है,—"हे ख़ुदा, तुम जानते हो कि अपना प्रेम प्रदान कर जिस प्रकारसे तुमने मुझे गौरवान्वित किया है उसकी तुलनामें आठों स्वर्ग मच्छरके एक पंखसे अधिक मूल्य नहीं रखते।" कहा जाता है कि इब्राहीम बल्खके राजा थे और उनका जन्म मक्कामें हुआ था। उनके राज्य-त्यागकी कितनी कहानियाँ प्रचलित हैं। तज़किरातुल औलियामें अत्तारने इब्राहीमके जीवन-सम्बन्धी बहुत-सी कहानियाँ इकट्ठी की हैं। एक समय आधी रातको जब वे पलंग पर सोये हुए थे तब ऊपरकी छत हिली। उन्होंने पूछा—"कौन है?" जवाब आया कि "कोई शत्रु नहीं है, ऊँट भूल गया है उसे ही खोज रहा हूँ।" इब्राहीमने कहा कि अट्टालिकाकी छतपर ऊँट खोजनेकी बात तो बड़ी विचित्र है। इसपर उसे जवाब मिला—"हे निर्बोध, तुम स्वर्ण-सिंहासनपर बैठकर, मूल्यवान् वस्त्र धारणकर ईश्वरका अन्वेषण कर रहे हो यह तो अट्टालिकापर ऊँट खोजनेसे भी अधिक आश्चर्यजनक है।" इसी प्रकारसे एक दिन वे दरबारमें बैठे हुए पार्षदों सहित राजकार्य सम्बन्धी विवेचनामें लगे हुए थे उसी समय एक तेजस्वी व्यक्ति भीतर घुस आया। उससे इब्राहीमने पूछा

१. ता. मा. (द्वितीय भाग) पृ० ११।
२. वहीं, पृ० १०।

कि उसे क्या चाहिये। उसने बतलाया कि वह सरायमें आया हुआ है। इब्राहीमने कहा कि यह सराय नहीं है, वासस्थान है। उस व्यक्तिके पूछने पर इब्राहीमने बतलाया कि उसके पहले उसके पिता तथा पिताके पहले पितामह, पितामहके पहले प्रपितामह आदि वहाँ रह चुके हैं। इसपर उस व्यक्तिने कहा एकके बाद एक इसमें आकर वास करते रहे हैं तो इसे सरायके सिवाय और क्या कहा जा सकता है? इब्राहीम-के पूछनेपर उस व्यक्तिने बतलाया कि वह खिज़्र है। खिज़्र परमात्माके सन्देशवाहक एक पैगम्बरका नाम है। इसी प्रकारसे अन्य कहानियाँ कही गयी हैं। उसका जीवन-वृत्त गौतम बुद्धकी कहानीसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। एक दिन वह शिकार खेलने गया और एक लोमड़ीके पीछे अपना घोड़ा डाल दिया। इस तरहसे जब वह जा रहा था तो उसे सुनाई पड़ा जैसे कोई कह रहा है—"ऐ इब्राहीम, क्या इसीके लिए मैंने तुम्हें बनाया था।" यह सुनकर भयके मारे वह घोड़ेसे गिर पड़ा। ऐसा तीन बार हुआ। अन्तमें उसे लगा जैसे सामनेकी ओरसे कोई कह रहा है—"वास्तवमें तुम इसके लिए नहीं बनाये गये थे और न ऐसा करते हुए तुम मरोगे ही।" इसके बाद उसने एक गड़रियेसे उसका कम्बल लिया और अपना घोड़ा देकर उसका मूल्य चुकाया और मक्केका रास्ता लिया।

राज्य त्याग करनेके बाद निशापुरके निकट एक गुफामें उन्होंने नौ वर्ष साधनामें बिताये। भूख लगनेपर जङ्गलसे लकड़ियाँ चुनते और सिरपर ढोकर निशापुर ले जाते और बेचते। उससे जो कुछ भी प्राप्त होता उसका आधा गरीबोंको दे देते और आधेसे अपनी भूख मिटाते। इस गुफामें रहते उन्हें नाना विपत्तियोंका शिकार होना पड़ा। एक दिन बर्फकी चट्टानके नीचे दबे पड़े रहे और एक दिन एक भयङ्कर अजगरके मुँहमें पड़े थे और भगवानने उनकी रक्षा की। इस तरहसे भ्रमण और तपस्या करते वे चौदह वर्षोंके बाद मक्का पहुँचे। उनकी ख्याति तबतक चारों ओर फैल चुकी थी। कोई उन्हें पहचान न ले इसलिए व्यापारियोंके दलके साथ उन्होंने मक्कामें प्रवेश किया। मक्काके

प्रतिष्ठित साधकोंने उनके स्वागतकी तैयारी कर रखी थी। उन लोगोंने इब्राहीमकी खोज लेनेके लिए एक नौकर भेजा। दैवात् इब्राहीमसे उसकी भेंट हो गयी लेकिन वह उन्हें पहचानता नहीं था। उसने उनसे इब्राहीम-के बारेमें पूछा। उन्होंने कहा कि उस पाखण्डीसे उन मक्काके साधकोंको मिलनेकी क्या जरूरत है? नौकरने उनकी खूब मरम्मत की। उसने कहा—"इब्राहीम जैसे महान् साधक को तुम पाखण्डी कहते हो तो वास्तवमें तुम्हीं पाखण्डी हो।" उन्होंने कहा—"तुम ठीक ही कहते हो, मैं पाखण्डी हूँ।" इसके बाद उन्होंने ईश्वरको धन्यवाद दिया कि उसने उसे ठीक ही फल दिया है।

इब्राहीमके राज्य-त्याग और फ़क़ीरी जीवन ग्रहण करनेके बारेमें अत्तारने अन्य कई घटनाओंके साथ इस घटनाका भी ज़िक्र किया है। इब्राहीमसे किसीने पूछा कि बल्खके राज्यका उसने क्यों परित्याग कर दिया। इब्राहीमने जवाब दिया कि एक दिन वह राज-सिंहासनपर बैठा हुआ था। उसे एक आइना भेंटमें मिला। उसने उसमें देखा और उसे लगा कि उसका गन्तव्य स्थान कब्र है और वहाँपर उसे कोई दोस्त भी मिलनेवाला नहीं है जिसके साथ हँसी-खुशीसे दिन कटें। इसके बाद उसे यह भी लगा कि उसे एक लम्बा सफ़र तय करना है जिसके लिए उसने कोई तैयारी नहीं की है। उसने एक न्यायी जजको देखा और अपनेको बिना किसी बचावके पाया। इससे उसके हृदयसे राज्यके प्रति उसका मोह बिल्कुल चला गया।[१]

इब्राहीमने सांसारिक प्रलोभनोंके त्यागपर बहुत जोर दिया है। उसके उपदेशोंमें रहस्यवादी प्रवृत्तिका उतना समावेश नहीं है जितना कि संन्यास-भावनाका। गरीबीको वह परमात्माका दिया हुआ प्रसाद मानता था। उसने सांसारिक सुख, शक्ति और ऐश्वर्यके बदले दुःख, विनय और गरीबीको वरण करनेकी सलाह दी है। अल-हुज्वीरीने लिखा[२]

१. लि. हि. प. पृ० ४२५
२. कश्फ़, पृ० ६८

है कि इब्राहीमने बतलाया है कि जीवनमें दो बार उसकी मनोकामना पूरी हुई है। एक बार वह एक जहाजपर यात्रा कर रहा था। उसके कपड़े बहुत गन्दे थे और उसे कोई पहचानता नहीं था। लोग उसका अपमान करते थे। एक शरारती मसखरा तो बार-बार आकर उसके सिरके केश खींचकर उसका मजाक उड़ा जाता था। उस समय इब्राहीम को परम सुख प्राप्त होता था। दूसरी बार जाड़ेके दिनोंमें वर्षासे भीगता हुआ वह एक गाँवमें पहुँचा और एक मस्जिदमें आश्रय लेना चाहा। लेकिन वहाँ उसे आश्रय नहीं मिला। वह और दो-तीन स्थानोंमें आश्रय खोजता हुआ गया, फिर भी कोई उसे आश्रय देनेवाला नहीं मिला। अन्तमें वह एक स्नानागारके चूल्हेके पास जा बैठा, जिसके धूएँ से उसका चेहरा और सारे कपड़े काले हो गये। उस समय भी उसे परम सन्तुष्टि हुई थी।

वह संसारको क्षणभङ्गुर और मिथ्या मानता था। संसार मनुष्यको भरमानेवाला है। उसका कहना था[1] कि सन्त वही हो सकता है जो इस संसार या आनेवाले संसारकी किसी भी वस्तुके लिए लुब्ध न हो। उसे सम्पूर्ण रूपसे परमात्माकी उपासनामें लग जाना चाहिये और एकान्त भावसे परमात्माकी ओर उन्मुख होना चाहिये। संसारको मिथ्या समझनेपर वह बराबर जोर देता रहा। एक बार वह मरुभूमिसे होकर कहीं जा रहा था। जाते-जाते किसी सैनिकसे उसकी भेंट हुई। सैनिकने किसी आबाद शहरका रास्ता उससे पूछा। इब्राहीम उसे एक क़ब्रिस्तानमें ले गया और बोला—'यही मनुष्योंका निवास-स्थान है'। क्रोधित होकर सैनिकने उसके सिरपर जोरोंसे प्रहार किया जिससे उसका सिर फट गया। इब्राहीमने परमात्मासे उसके लिये दुआएँ माँगीं। सैनिक बहुत ही लज्जित हुआ और उससे माफी माँगने लगा। इब्राहीमने उससे कहा—'इसके लिए तुम चिन्ता न करो क्योंकि जिस सिरसे खून बह रहा है उसे मैं बल्खकी राजगद्दीपर छोड़ आया हूँ। संसारमें रहते हुए भी संसारका त्याग करने-

1. कश्फ०, पृ० २१७।

वालेके लिए इन सब बातोंका कोई महत्व नहीं रह जाता।'[1]

परमात्माकी अनन्य-भक्ति तथा संसारके प्रति उसकी विरक्ति कितनी अधिक थी इसका पता निम्नलिखित कहानीसे चलता है। जब इब्राहीम राज्य त्यागकर फ़क़ीरी जीवन बिताता हुआ इधर-उधर घूम रहा था तो कहीं उसकी एक नौजवानसे भेंट हुई। वह नौजवान उसका पुत्र था। उसे देखकर उसके मनमें मोह उत्पन्न हुआ लेकिन वह फिर सँभल गया। कहा जाता है कि उसने परमात्मासे प्रार्थना की कि "हे खुदावन्द, तुम्हारे प्रेमके लिये मैंने संसारका त्याग किया और तुम्हारे ध्यानमें लगे रहनेके लिए मैंने अपने बच्चोंको अनाथ बनाया। अब अगर इस प्रेमको पानेके लिए तुम्हारी यही शर्त हो कि मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायँ तो भी तुम्हारे सिवाय मैं किसीकी ओर मददके लिये नहीं देखूँगा।"

उस समयके सूफी साधकोंमें राबिया अल-अदावियाका नाम सुप्रसिद्ध है। राबियाका बहुत ही अधिक सम्मान था। उसकी इतनी अधिक प्रसिद्धि थी कि बहुत-से सूफी साधकोंने अपने ग्रन्थोंमें सिर्फ़ 'राबिया' कहकर ही उसका उल्लेख किया है। उन्होंने उसका पूरा नाम देनेकी आवश्यकता नहीं समझी। राबियाका पूरा नाम राबिया अल-अदाविया अल-बसरी था। उसका जन्म-स्थान बसरा था इसलिए उसे राबिया अल-बसरिया भी कहते हैं। उसका जन्म सन् ७१७ ई० के लगभग बसरामें हुआ था। अपने जीवनका अधिक समय उसने बसरेमें ही काटा था। अत्तारने 'तज़किरातुल औलिया'में उसके जीवनके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उससे पता चलता है कि एक बहुत ही गरीब परिवारमें उसका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि उसके जन्मके समय अद्‌भुत घटनाएँ घटी थीं। जिस रातको उसका जन्म हुआ घरमें दीपक जलानेके लिए तेल भी नहीं था। उसकी माँने उसके पितासे किसी पड़ोसीके यहाँसे तेल माँगकर लानेके लिए कहा। लेकिन सिवाय परमात्माके वह और किसीसे कुछ याचना करना नहीं चाहता था। इसलिए जैसे गया

---

१. गोल्डज़िहर, ज. रा. ए. सो., पृ० १३३-१३४।

था वैसे ही लौट आया। जब वह दुःखी होकर सो गया तो सपनेमें उसने हज़रत मुहम्मदको देखा जिन्होंने उसे सान्त्वना दी कि वह दुःखी न हो, उसकी लड़की बहुत बड़ी सन्त[1] होगी। राबियासे बड़ी और उसकी तीन बहनें थीं। जब वह कुछ बड़ी हुई तो उसके माता-पिताकी मृत्यु हो गयी और एक दुर्भिक्षके समय उसकी अन्य तीन बहनें इधर-उधर हो गयीं। वह बिलकुल अनाथ और अकेली रह गयी। किसी दुष्टने छः सिक्केमें उसे किसी आदमीके हाथ बेंच दिया। राबिया दिनभर उपवास करती और अपने मालिकका काम पूरा करती और रातभर परमात्मामें ध्यान लगाये पैरोंपर खड़ी रहती। एक दिन रातको उसके मालिक की नींद खुल गयी। अपने घरकी खिड़कीसे उसने राबियाको देखा। राबिया उस समय माथा झुकाये हुए प्रार्थना कर रही थी—"हे खुदावन्द, तुम तो मेरे दिलकी बात जानते हो कि मैं बराबर तुम्हारी सेवामें लगी रहना चाहती हूँ लेकिन तुमने तो मुझे एक दूसरेका गुलाम बना रखा है।" इस तरहसे जब वह प्रार्थनामें निरत थी तो बिना किसी सहारेके एक दीपक उसके सिरके ऊपर लटक रहा था जिससे सारा घर आलोकमय हो रहा था। दूसरे दिन उसने राबियाको बुलाया और बड़ी नरमीसे पेश आया और दासतासे उसे मुक्ति दे दी। उसने वहाँसे चले जानेकी इजाजत माँगी। मालिकसे इजाजत मिलनेपर वह मरुभूमिमें चली गयी और एकान्तमें अपने लिए उसने एक तंग कोठरी ठीक कर ली। इसके बाद वह बराबर प्रार्थनामें निरत रहती।[2]

वह गरीबीसे रहती थी। उसकी वृद्धावस्थामें भी एक चटाई, एक छोटी दरी और मिट्टीके एक घड़े के सिवाय उसके घरमें कुछ नहीं था। उसे सांसारिक वस्तुओंका मोह नहीं था। उस कालके अन्य सूफी साधकोंके समान राबियाने भी फ़क़ीरी जीवनपर जोर दिया है। गुनाहोंके लिए पश्चात्तापकी भावनाको वह परमात्माकी देन समझती थी। परमात्माके

---

१. रा. मि., पृ० ५।
२. वही, पृ० ७।

प्रति उसका प्रेम परमात्माको पानेके लिए ही था। उसे न स्वर्गके पानेकी अभिलाषा थी और न नरकमें जानेका भय था। उसकी भक्ति इसलिए नहीं थी कि वह स्वर्ग की अधिकारिणी बन सके और न इसलिए वह उसकी जरूरत समझती थी कि उसे नरकका भय सताता था। उसका कहना था कि अगर स्वर्गकी आशा नहीं रहती और नरकका भय नहीं रहता तो क्या परमात्मासे प्रेम नहीं किया जाता? कुछ सूफी साधकोंके साथ एक बार वह एक हाथमें मशाल और दूसरेमें पानी लेकर तेजीसे जा रही थी। उन साधकोंने इसका मतलब पूछा। राबियाने बतलाया कि वह मशालसे स्वर्गको जलाकर भस्म कर देना चाहती है और नरकाग्निको पानी उँड़ेलकर बुझा देना चाहती है जिसमें परमात्मा और उसके चाहने-वालोंके बीचकी बाधा मिट जाय। उसके चाहनेवालोंके लिए ऐसी कोई वस्तु न रह जाय जिसे पानेकी आशासे वे उससे प्रेम करें और न कोई ऐसी ही वस्तु रह जाय जिसके भयसे त्राण पानेके लिए वे उसकी चाहना करें।

राबिया उन प्रथम मुस्लिम साधकोंमें थी जिन्हें वास्तवमें रहस्यवादी कहा जा सकता है। परमात्माके प्रति उसका प्रेम इतना अधिक था कि उसे दूसरी किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी। उसका कहना था कि प्रेमके द्वारा ही परमात्माको पाना सम्भव है। उस प्रेमकी आँचमें मनुष्यके सारे कलुष जलकर भस्म हो जाते हैं और परमप्रियतमका पाना सहज हो जाता है। इस्लाम-धर्मके कर्मकाण्डकी राखमें राबियाके प्रेमकी नित्य जलती हुई लौने उस अन्धकार युगमें मुसलमानोंके हृदयपर अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया[1]। परमात्माका प्रेम पानेके लिए और उसके अनन्त सौन्दर्यके दर्शन प्राप्त करनेके लिए वह सबकुछ छोड़नेको तैयार थी। उसकी प्रार्थना थी—"हे परमात्मा, इस संसारमें हमारे लिये जो कुछ भी तुमने निर्दिष्ट कर रखा है उसे अपने शत्रुओंको देना और परलोकका जो कुछ है उसे अपने उपासकोंको देना। मेरे लिए

---

१. निकोल्सनः से. पो. (भूमिका, पृ० २७)।

तो तुम ही यथेष्ट हो, मैं और कुछ नहीं चाहती ।" उसकी यह भी प्रार्थना थी—"हे खुदा, अगर मैं नरक-यातनाके भयसे तुम्हारी उपासना करूँ तो मुझे नरकाग्निमें ही जलाते रहना और अगर स्वर्ग पानेकी अभिलाषासे उपासना करूँ तो उससे मुझे वञ्चित कर देना लेकिन अगर तुम्हारे ही लिए तुम्हारी उपासना करूँ तो अपने अनन्त सौन्दर्यके दर्शनसे मुझे वञ्चित न रखना[1] ।" उस परम प्रियतमका प्रेम पाये बिना और बिना उसके मिलनके प्रेमीकी प्रेम-यातनाओंका अवसान नहीं होगा और न उसे शान्ति ही मिलती है। उसका सारा जीवन गरीबी, परमात्माका ध्यान और स्मरण और सबसे बढ़कर प्रेमकी आँचमें तपते हुए बीता। उसका समस्त जीवन प्रेममय था। उस प्रेमके सामने संसारकी अत्यन्त लोभनीय वस्तु भी उसके लिए तुच्छ थी। एक बार हसनने उससे पूछा कि क्या विवाह करनेकी उसकी इच्छा है ? उसने पूछा—"शरीर सम्बन्धी विवाह ? हमारा शरीर ही कहाँ है ? शरीर तो मैंने ईश्वरको उत्सर्ग कर दिया है, शरीर तो उन्हींकी आज्ञाके अधीन है और उन्हींके कार्यमें लगा हुआ है।" इसी प्रकारसे एक बार उसकी एक परिचारिकाने वसन्त ऋतुमें एक सुन्दर प्रातःकालके प्राकृतिक सौन्दर्यको लक्ष्यकर उससे कहा—'बाहर आकर परमात्माकी सुन्दर कृतिको देखो।' राबिया अपनी तंग कोठरीमें उपासनामें लगी हुई थी। उसने कहा—'तुम्हीं भीतर आकर उन वस्तुओंके बनानेवालेको देखो।' उससे एक बार पूछा गया कि क्या वह परमात्मासे प्रेम करती है ? उसने स्वीकार किया कि "करती है।" लेकिन जब उससे पूछा गया कि तब तुम शैतानसे अवश्य घृणा करती होओगी। उसने जवाब दिया कि परमात्माके प्रेमने उसके हृदयमें शैतानसे घृणा करनेके लिए स्थान ही नहीं छोड़ा है। इसके बाद उसने बताया कि एक बार स्पनेमें उसने पैग़म्बर हज़रत मुहम्मदको देखा। पैग़म्बरने पूछा—"राबिया, क्या तू मुझसे प्रेम करती है ?" राबियाने उत्तर दिया—"हे अल्लाहके रसूल, कौन ऐसा है जो तुमसे

1 अ. मि. नि. मि. इ., पृ ०२२४ ।

प्रेम नहीं करता ? लेकिन परमात्माके प्रेमने इस प्रकारसे मेरे ऊपर अधिकार जमा लिया है कि उसके सिवाय और किसीसे प्रेम या घृणा करनेका स्थान मेरे हृदयमें रह ही नहीं गया है[1] ।" राबियाने किसीसे शिक्षा नहीं ग्रहण की थी। अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ ही वह लोगोंको बताती थी। बादमें चलकर सूफी-सिद्धान्तकी विवेचना करनेवालोंके लिए उसके कथन आधारस्वरूप रहे हैं।

राबिया बराबर क्रन्दन करती रहती। उससे लोगोंने पूछा कि उसे कौनसी पीड़ा है ? उसने बताया कि उसे रोग है और वह रोग हृदयके भीतर है। संसारमें उसकी कोई चिकित्सा करनेवाला नहीं है। उसके रोग की दवा उसका (परमात्माका) साक्षात्कार है। राबिया उच्च कोटिकी साधिका थी और अनेक साधक उसके दर्शनके लिए आते थे। एक बार जब वह बीमार थी तब हसन अल-बसरी और बल्खका सूफी साधक शक़ीक़ उससे मिलने गये। हसनने कहा कि सच्चा ईमान लानेवाला वही है जो परमात्मा द्वारा विशुद्ध किया जाना धैर्यपूर्वक सह लेता है। शक़ीक़ने कहा कि जिसे इस विशुद्धीकिरणमें आनन्द नहीं आता है वह सच्चा ईमान लानेवाला नहीं है। राबियाने इसपर कहा कि वास्तवमें वह सच्चा ईमान लानेवाला नहीं है जो परमात्माके चिन्तनमें उस विशुद्धिकरण को न भूल जाय। विशुद्धिकरणसे इन साधकोंका मतलब नानाप्रकारके कष्ट और यातनाओंसे था। ऊपरके प्रसङ्गसे इन तीनों साधकोंके दृष्टिकोणपर प्रकाश पड़ता है। यही कारण था कि वह साधकोंकी श्रद्धाका पात्र थी। हसन जो स्वयं एक बड़ा साधक था और सब लोग जिससे श्रद्धा करते थे, उसका राबियाके सम्बन्धमें कैसा ख्याल था वह निम्नलिखित घटनासे स्पष्ट हो जाता है। एक बार हसन अपने नियमके मुताबिक प्रत्येक सप्ताहकी नाईं धर्मोपदेश करने आये। उस दिन उस सभामें राबिया नहीं थी इसलिए हसन मौन रहे। इसपर किसी व्यक्तिने कहा कि इतने ज्ञानी और सम्भ्रान्त व्यक्ति धर्मोपदेश सुननेके लिये इकट्ठे हुए हैं अगर एक बुढ़िया

---

1. रा. मि., पृ० ९९।

नहीं आयी तो उससे क्या हर्ज है ? हसनने कहा कि जो शरबत हाथीके बड़े उदरके लिए तैयार किया गया है उसे मैं चींटीके मुँहमें नहीं दे सकता ।

अनन्य भक्ति और प्रेम तथा परमात्माके हाथोंमें सम्पूर्ण रूपसे अपने आपको सौंप देना राबियाकी अपनी विशेषता थी जिसने उसके बादके होनेवाले साधकोंको अत्यधिक प्रभावित किया ।

उन सुप्रसिद्ध सूफियोंमें जून-नून, मिस्र देशका रहनेवाला था । उसकी मृत्यु सन् ८६० ई० के लगभग हुई । वह एक बहुत बड़ा सूफी साधक और विचारक था । उसने सूफी-सिद्धान्तों की बड़ी सुन्दर विवेचना की है । वह पहला व्यक्ति है जिसने 'सूफी-मार्ग'का विशद विवेचन किया है । आत्माके परमात्मातक पहुँचनेकी यात्राका उसने पूर्णरूपसे वर्णन किया है । मारीफ (आध्यात्मिक ज्ञान) के सिद्धान्तका प्रतिष्ठाता वही है । सूफीमतमें तौहीद (परमात्माके साथ एकत्व प्राप्त करना) के सिद्धान्तकी पूरी छान-बीन उसने की है । सम्भवतः वही पहला व्यक्ति था जिसने आध्यात्मिक प्रेमके लिए प्रतीकोंका प्रयोग किया है । शराब पिलानेवाले साकी और प्यालेके रूपकका प्रयोग आध्यात्मिक प्रेमके सिलसिलेमें उसीने किया है । जामीका कहना है कि वह इस (सूफी) सम्प्रदाय का प्रमुख है, उसीसे सब सम्बन्धित हैं[1] ।

उसका जन्म सन् ७९६ ई० में इखमीममें हुआ था । अल-हारीसने कैरोके सअदूनको उसका आध्यात्मिक गुरु कहा है लेकिन ब्राउनने उसे मालिकका शिष्य माना है । उसका पूरा नाम अबुल फ़ैज़ जून-नून बिन इब्राहिम अल-मिस्री था । उसके बारेमें जहाँतक पता चलता है उससे लगता है कि वह एक बहुत बड़ा विद्वान था । यद्यपि वह मानता था कि क़ुरान किसीका बनाया हुआ नहीं है फिर भी अपने स्वतन्त्र विचारों-के लिए उसे कष्ट झेलने पड़े । जीवित कालमें वह मिस्र देशवालों द्वारा अपमानित ही होता रहा । मिस्रवाले उसे 'ज़िन्दीक' कहते थे ।

---

१. लि. हि. प., पृ० २९८ ।

अपनी मृत्युके बाद ही मिस्रमें वह आदरका स्थान पा सका। खलीफ़ा मुतवक्किल उसे आदरकी दृष्टिसे देखता था। लेकिन एक समय इस्लाम-धर्मका विरोधी होनेके सन्देहमें वह बग़दाद लाया गया और जेलमें डाल दिया गया। कुछ दिनोंके बाद वह फिर खलीफ़ाके सामने लाया गया। खलीफ़ाने उसकी युक्तियों और प्रवचनोंका अर्थ पूछा। जून-नूनने बड़े सुन्दर ढंगसे उनकी व्याख्या की। उसने सबको अपनी वाकपटुतासे मुग्ध कर लिया। खलीफ़ाने उसे मुक्त कर दिया और पूर्ववत् उसका सम्मान करने लगा। वहाँसे वह मिस्र लौट आया और सन् ८६० ई० में गीज़ामें उसकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि जब लोग उसके शवको ले जा रहे थे तो उस समय धूप खूब तेज थी अतएव हवामें उड़कर पक्षियोंने उसके ऊपर छाया की। उसके चमत्कारोंकी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं।

उसके बहुत शिष्य थे। वह बराबर इस बातपर ज़ोर देता था कि आत्म-शुद्धि, सांसारिक प्रलोभनोंका त्याग तथा पापोंके लिए पश्चात्ताप करना साधकके लिए आवश्यक है। साधारण आदमी अपने पापोंके लिए पश्चात्ताप करते हैं जब कि साधक अपनी असावधानी (ग़फ़लत) के लिए पश्चात्ताप करते हैं। अल-हारीसने लिखा है कि जून-नूनने पश्चात्ताप तीन प्रकारके माने हैं। प्रथम साधारण कोटिका पश्चात्ताप है जिसमें साधक अपने पापोंके लिए शर्मिंदा होता है और अपने किये हुए कर्मोंके लिए पश्चात्ताप करता है और उनसे छुटकारा पानेकी चेष्टा करता है। इसे सूफी 'तौबा' करना कहते हैं और 'सूफी मार्ग' का प्रथम सोपान मानते हैं। साधनामें अग्रसर हुए साधकोंकी दूसरी कोटि है। वे साधारण कोटिको बहुत पहले ही पार किये हुए रहते हैं। उनका पश्चात्ताप असावधानी और विच्युतिके लिए होता है। निर्दिष्ट कर्मसे किसी कारणवश अगर साधक विरत होता है तो उसके लिए पश्चात्ताप करता है। तीसरी कोटि परम ज्ञानियों (अरिफ़ों) की है। उनके पश्चात्तापका मतलब सांसारिक प्रत्येक वस्तुसे मुख मोड़ना होता है। उनके लिए परमात्मा ही सब कुछ होता है।

जून-नूनके व्यक्तित्वका पता बहुत कुछ उसके बारेमें जो फैली हुई कहानियाँ हैं उनसे चलता है। सब समय उन कहानियोंको प्रामाणिक ही माना जा सकता है ऐसी बात नहीं है फिर भी उन कहानियोंसे किसी-न-किसी रूपमें उसके जीवनकी घटनाओंका आभास तो अवश्य ही पाया जा सकता है। कुछ तो उनमें वास्तविक हैं और कुछ बादमें उसकी विशिष्टताओंको ध्यानमें रखते हुए गढ़ ली गयी हैं। जून-नूनने बहुत अधिक भ्रमण किया था और उस भ्रमण-कालमें नाना प्रकारके साधकों तथा अन्य लोगोंसे मिला था। उसने अपने भ्रमणमें बहुत तरहकी चीजें देखी थीं जिनका असर उसपर पड़ा था। आत्म-संयम और संन्यासका बहुत ज्ञान उसे इन्हीं भ्रमणोंमें हुआ था। कहा जाता है कि एक बार उसने एक फ़क़ीरको एक पेड़से लटकते हुए देखा। शरीरको लक्ष्यकर वह अपने आप कहता जा रहा था—"जबतक तुम सब प्रकारसे धर्मके रास्तेपर चलनेके लिए तैयार नहीं होओगे तबतक तुम्हें इसी प्रकारसे लटकते हुए भूखा मरनेके लिए छोड़ दूँगा।" जून-नूनने पूछा—"शरीरने कौनसा कुसूर किया है?" फ़क़ीरने बताया—"यह सांसारिक वस्तुओंके मोहमें फँसा हुआ था और उस मोहमें फँसनेसे सभी प्रकारकी बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं।" इसी प्रकारकी एक और घटना उसके सामने आयी। उसने एक ऐसे आदमीको देखा जिसने अपना एक पैर काट डाला था। पैर काटनेका कारण यह था कि अपनी तंग गुफासे उसने एक स्त्रीको देखा और उसके मनमें काम-वासना जाग्रत हुई। वह उसके लिए एक पैर भी बढ़ा चुका था। उसी समय उसे यह आवाज सुनाई पड़ी—"परमात्माकी सेवामें इतने दिनों लगे रहनेपर भी इस समय शैतानके चक्करमें पड़नेसे तुम्हें शर्म नहीं मालूम होती।" अतएव जिस पैरको उसने बढ़ाया था उसे काट डाला[1]।

जून-नून परमात्माको ही सृष्टिका आदि कारण मानता है। वह मानता था कि परमात्मा अज्ञेय और अनन्त है फिर भी उसके साथ व्यक्तिगत

---

१. अ. मि. नि. मि. इ. पृ० १९३।

सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। वह सर्वातीत होते हुए भी परम-दयालु है और हमारे पापोंके लिए हमें क्षमा प्रदान करता है। उसे जाना जा सकता है लेकिन इसके लिए अपनी सभी बुराइयोंको दूरकर अपनेको पूर्णरूपसे परमात्माकी इच्छापर छोड़ देना पड़ेगा। दूसरे सूफियोंकी तरह वह भी मानता था कि नफ़्स (आत्माकी निचली कोटि) सभी बुराइयोंकी जड़ है। शुद्ध आत्मा नफ़्सपर विजय प्राप्त कर ही फिर अपनी पूर्वावस्था-को प्राप्त कर सकता है। वह यह मानता था कि आत्मा इस शरीरमें आनेके पहले परमात्माके निकट वास करता था। उसका कहना था कि परम-ज्ञानकी प्राप्ति विशुद्ध प्रेमके द्वारा ही सम्भव है। राबियाकी तरह वह भी किसी फल-प्राप्तिकी आशासे परमात्मासे प्रेम करना ठीक नहीं मानता था और न यही ठीक मानता था कि किसी भयसे बचनेके लिए उससे प्रेम किया जाय। उससे प्रेमका कारण उसका प्रेम है और उस प्रेमका फल भी प्रेम ही है।

उसके जीवनकी कितनी घटनाओंसे उसकी दृष्टिभंगीका पता चलता है। एक बार वह अपने कुछ शिष्योंके साथ नील नदीमें नौका-विहार कर रहा था। दूरसे एक दूसरी नौका भी उन्हीं लोगोंकी ओर आती हुई दीख पड़ी। वे लोग राग-रंगमें लगे हुए थे और शराब आदिका दौर चल रहा था। जून-नूनके शिष्योंको यह बहुत बुरा लगा और उन लोगोंने जून-नूनसे प्रार्थना की कि वे परमात्मासे विनय करें कि वे उस नौकाको डुबा दें। जून-नूनने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर प्रार्थना की—"हे प्रभो, तुमने अनुग्रह करके जैसे आनन्दकी जिन्दगी इन लोगोंको इस संसारमें बख्शी है वैसी ही आनन्दमयी जिन्दगी उन्हें दूसरी दुनियामें भी बख्शो।"[1] इस प्रकारसे जून-नूनके हृदयमें सबके लिए दया और प्रेमका भाव था, यद्यपि मिस्रवाले उन्हें 'काफ़िर' आदि नामसे याद किया करते थे। मृत्युके बाद मिस्रवालोंके मनमें उनके प्रति जितनी श्रद्धाका भाव देखा जाता है सम्भवतः यही कारण है कि बादमें जून-नूनके महत्वको बढ़ानेके लिए

१. कश्फ़०, पृ० १०१।

नाना प्रकारकी कहानियाँ गढ़ ली गयी हैं। वे कहानियाँ सत्य हों या असत्य, उनसे इतना पता तो अवश्य चल जाता है कि वे एक महान् साधक थे और लोगोंमें उनके प्रति श्रद्धाका भाव था। कहा जाता है कि उनकी मृत्युकी रात्रिको मिस्रके सत्तर व्यक्तियोंने स्वप्नमें पैगम्बर हजरत मुहम्मदको यह कहते हुए देखा कि वे "जून-नूनसे मिलने आये हैं जो परमात्माका सखा है।" उनकी मृत्युके बाद उनके ललाटपर लिखा हुआ पाया गया कि "यह परमात्माका प्रियपात्र है जो परमात्माके प्रेममें मरा और परमात्मा द्वारा ही उसके प्राणोंका अन्त हुआ[१]।" जून-नून-के अनुसार परमात्माके वचन हैं कि "जब मैं अपने दाससे प्रेम करता हूँ तब प्रभु होनेके नाते मैं उसका कान हो जाता हूँ और मेरे ही द्वारा वह श्रवण करता है; मैं उसकी आँख हो जाता हूँ मेरे ही द्वारा वह दर्शन करता है; मैं उसकी रसना हो जाता हूँ वह मेरे ही द्वारा वाणी उच्चरित करता है; मैं उसका हाथ हो जाता हूँ और वह मेरे ही द्वारा ग्रहण करता है[२]।"

जून-नूनकी कुछ वाणियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं जिनसे उसके विचारोंका पता चल जाता है—

"परमात्माका स्मरण ही हमारे प्राणोंका आहार है, उनका गुणानुवाद हमारे प्राणोंका जल है, उनसे लज्जा पाना ही हमारे प्राणोंका परिच्छद है।"

"जो प्रेमी संसार और सांसारिक लोगोंके संसर्गसे दूर रहता है और साधुओंकी सङ्गतिमें रहता है वही प्रकृत प्रेमी है। ईश्वरपरायण साधुओंके प्रति प्रीतिस्थापन करना और ईश्वरके प्रति प्रीतिस्थापन करना दोनों समान हैं।"

उससे पूछा गया, सङ्गति किसकी करनी चाहिये ? उसने बतलाया, "जिसमें 'तुम' और 'मैं' न हो।"

---

१. वही, पृ० १०० ।

२. ता. मा., (द्वितीय भाग), पृ० ३४ ।

अबूयजीद अल-बिस्तामी उसी कालके सूफी साधकोंमें था। उसका पूरा नाम अबूयजीद तैफूर बिन ईसा अल-बिस्तामी था। वह बायजीद बिस्तामीके नामसे मशहूर है। जुन्नैदका कहना है[1] कि अबूयजीदका साधकोंमें वही स्थान है जो जिब्राइलका देवदूतोंमें है। कहा जाता है कि उसमें परमात्माके साक्षात्कार करनेकी इच्छा अत्यन्त उग्र थी। उसके मतसे परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है और वही एकमात्र सत्य है। अतः अन्य सभी वस्तुओंका त्यागकर उसी परम सत्यको पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। परमात्माको पानेकी इच्छाका उत्पन्न होना भी वह परमात्माकी प्रेरणासे मानता है। अपनेसे पहलेके सूफियोंसे वह इस बातमें भिन्न था कि मनुष्यके चाहनेके पहले परमात्मा उसे चाहते हैं। उसने कहा है—"बहुत दिनोंतक आत्मालोचना की लेकिन जब गूढ़ भावसे मैंने देखा तो मालूम हुआ कि प्रभुत्व और दासत्व ईश्वरसे ही सम्भव हुए हैं। बहुत दिनोंतक परमात्माका आह्वान किया, जब निगूढ़ दृष्टि की तब देखा कि वे ही आह्वानकारी हैं, मैं ही आहूत हूँ।" परमात्माके अनन्य ऐश्वर्यका स्मरणकर साधकमें विनम्रता और दीनताका भाव होना आवश्यक है। वह मानता था कि यद्यपि परमात्माकी प्रेरणासे ही साधक उसे पानेकी इच्छा करता है तथा उससे प्रेम करता है फिर भी सूफी मार्गपर चलकर ही वह मंजिले-मकसूदतक पहुँच सकता है। सब कुछ को छोड़कर, सभी प्रकारका त्याग करके ही परमात्मा को पाया जा सकता है। परमात्माको पानेकी इच्छाका भाव भी अगर साधकमें बना हुआ है तो भी उसकी साधना पूरी नहीं हुई। सम्पूर्ण इच्छाओंके अवसानके बाद ही उसकी प्राप्ति होती है। अत्तारने लिखा है कि एक बार अबूयजीदने कहा था कि वह परमात्माका साहचर्य प्राप्त करनेवाली अवस्थामें पहुँच चुका था। उस समय एक आवाज आयी कि "तुम जो कुछ चाहते हो उसे माँगो।" यजीदने कहा—"तुम्हें ही पानेकी हमारी इच्छा है।" यजीदने सुना—"ऐ बायजीद, तुम्हारे भीतर इच्छाका एक कण भी रह जायगा,

1. कश्फ०, पृ० १०६।

तबतक यह असम्भव है। अपनेको पूर्ण रूपसे खोकर ही मुझे पाओगे।"

उसने भी प्रेमको खूब महत्त्व दिया है। उसने कहा है कि "दुनिया-से शत्रुता कर जब मैं परमात्माकी शरणमें गया तो उसके प्रेमने मेरे ऊपर इतना अधिकार जमाया कि मैं अपना ही दुश्मन हो गया।" इस प्रेमसे ही मारीफ़(ईश्वरीय ज्ञान) प्राप्त होता है। कहा जाता है कि यहिया बिन मुआध-ने अबूयजीदके पास लिखा कि "उस आदमीके बारेमें आपकी क्या राय है जो प्रेमके समुद्रका एक बूँद पीकर मस्तमौला बन जाता है?" बाय-जीदने लिखा कि "आप उसके बारेमें क्या कहेंगे जो अगर संसारके सभी समुद्र प्रेमकी शराबसे भर दिये जायँ उन्हें पी जाय और फिर भी अपनी प्यास बुझानेके लिए और अधिकके लिए चिल्लाता रहे।" फिर भी प्रेमको वह साधक और परमात्माके बीच परदा जैसा मानता है "क्योंकि प्रेमके अस्तित्वमें ही द्वैत निहित है।" वह उसीको अमीर मानता है जिसकी अपनी कोई इच्छा न हो और परमात्माकी इच्छा ही उसकी इच्छा हो।

ज्ञानकी साधनाको वह अत्यन्त कठिन मानता है। उसका कहना है कि आरिफ (ज्ञानी) वह व्यक्ति नहीं है जिसने कुरानको रट डाला है और बादमें चलकर अगर उसे भूल जाय तो फिर अज्ञानी बन जाता है। वास्तविक ज्ञानी वही है जो सीधे परमात्मासे ही शिक्षा ग्रहण करता है। उसकी विद्या पढ़ी-पढ़ाई या रटी-रटाई नहीं होती। वह उसे जीवन भर नहीं भूलता और उसके याद रखनेके लिए उसको किसी पुस्तककी जरूरत नहीं होती। एक जगह बायजीदने ज्ञानकी साधनाकी कठिनाईका परिचय कराते हुए कहा है कि "मैं तीस वर्ष आध्यात्मिक संघर्ष में रत रहा और मैंने पाया कि ज्ञान और ज्ञानके हासिल करने जैसी कठिन कोई वस्तु नहीं है।"[1] फ़ना (आत्माका विलयन) और बक़ा (परमात्मामें

१. कश्फ०, पृ० १८७।

२. वही, पृ० १०७।

३. वही, पृ० १७।

स्थिति) के सिद्धान्तोंका विकास करनेवाला वही था ।

एक जगह उसने कहा है—"साँप जिस प्रकारसे केंचुल छोड़ता है उसी प्रकारसे मैंने अपने 'अहं' को छोड़कर अपनी ओर देखा और पाया कि मैं और वह एक ही हैं।" परमात्माकी ही एकमात्र वास्तविक सत्ता माननेके कारण उसने यह भी माना कि वही सबमें है और वही सब कुछ है । वह अलग किसी प्रकारकी सत्ता माननेके लिए तैयार नहीं था । वह मानता था कि सभी उसी 'एक' में जाकर मिल जाते हैं चूँकि वास्तवमें कोई वस्तु उससे भिन्न नहीं है । अबूयजीद पर्सियाका था । उसकी जीवन सम्बन्धी बहुत कम बातोंका पता चलता है । वह मातृभक्त था और माताकी कृपासे ही वह आध्यात्मिक साधनामें लगा । उसने अधिक लिखा भी नहीं है । सूफी-सिद्धान्तके विकासमें उसका बहुत बड़ा हाथ है । वह पर्सियाके बिस्ताम स्थानका रहनेवाला था इसीलिए वह अल-बिस्तामी कहलाता है । कास्पियन सागरके दक्षिणी-पश्चिमी कोनेपर बिस्ताम शहर है । उसके और तीन भाई थे और वे भी सूफी थे । यह भी पता चलता है कि उसने तत्कालीन सूफी-साहित्यका अध्ययन किया था और उस कालके सुप्रसिद्ध सूफियोंसे उसका परिचय था । अत्तार[1]के अनुसार एक सौ तेरह साधकोंके साथ रहकर उसने बहुत कुछ प्राप्त किया था । उन्हींमेंसे एक सादिक़ नामक साधक थे जिनके साथ वह रह चुका था । एक समय सादिक़ने बायज़ीदसे ताक़परसे कोई पुस्तक ले आनेके लिए कहा । बायज़ीदने पूछा—"कैसा ताक़ ?" सादिक़ने कहा कि बहुत कालसे तुम हमारे पास रहते रहे हो और यह आश्चर्य है कि तुमने पुस्तकका ताक़ नहीं देखा । उसने कहा—"प्रभो, उससे हमें क्या मतलब कि आपके सामने मैं मस्तक ऊँचा करूँ । मैं यहाँ कुछ देखते हुए घूमनेके लिए नहीं आया हूँ ।" सादिक़ने कहा—"तब तुम बिस्ताम चले जाओ । तुम्हारी साधना पूर्ण हो गयी है ।"

उसके प्रपितामह मागी (Magian) थे और उन्होंने ही इस्लाम-

1. ता. मा. (द्वि. खण्ड), पृ० ५४ ।

धर्म कुबूल किया था। लेकिन निकोल्सनने[1] बायजीदके पिताका नाम सुरुशान बतलाया है और उसे जरथुस्त्री धर्मका अनुयायी माना है। इस्लामके कट्टर अनुयायियोंके लिये उसकी बातें जब असह्य हो उठीं तो उन्होंने लगातार सात बार उसे बिस्तामसे भगाया। ऐसा कहा जाता है कि वह कहा करता था कि "मैं ही परम सत्य हूं, मैं ही परमात्मा हूं। मेरी ही पूजा होनी चाहिये।"[2] उसकी मृत्यु सन् ८७५ ई० में हुई।

उसकी कुछ वाणियाँ निम्नलिखित हैं—

"वास्तवमें परमात्मा मैं ही हूँ, मेरे सिवा और कोई परमात्मा नहीं, अतएव मेरी उपासना करो।"

"मैं ही शराबी हूँ, मैं ही शराब और मैं ही साक़ी।"

"मनुष्यके लिए इससे बढ़कर और कुछ नहीं है कि उसके पास कुछ नहीं है; न संन्यास, न धर्म, न कर्म। जब वह सब कुछ बिना है; तब वह सब कुछके साथ है।"

"मैंने देखा कि प्रेमी, प्रेमिका और प्रेम एक ही हैं क्योंकि एकत्वकी दुनियामें सभी एक हो सकते हैं।"

मारुफ अल-करखी का नाम उस काल के सूफियों में लिया जाता है जिसमें रहस्यवादी प्रवृत्तिके चिन्ह स्पष्ट रूपसे दीख पड़ते हैं। खलीफ़ा हारूँ अरशीदके समयमें वह बगदादके करख स्थानमें रहता था। वहींसे उसकी ख्याति चारों ओर फैली। वह ईसाई-धर्मका अनुयायी था और बादमें मुसलमान हो गया। अली बिन मूसा अल-रीजाने उसे इस्लाम-धर्ममें दीक्षित किया। कहते हैं कि उसके माता-पिता उसके बाद मुसलमान हुए[3]। मेसोपोटामियाके एक प्रमुख शहर वासितमें उसका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि परमात्माके प्रेममें वह डूबा रहता था। उसका कहना था कि मनुष्यकी शिक्षासे प्रेम नहीं होता वह परमात्माकी कृपा

१. लि. हि. अ., पृ० ३९१।

२. लि. हि. प., पृ० ४२७ तथा लि. हि. अ., पृ० ३९१।

३. ता. मा. (तृ० खण्ड), पृ० २२।

और प्रसन्नतासे ही सम्भव हो पाता है। मारूफ लोगोंको यह बराबर याद दिलाया करता था कि परमात्मासे भय करके चलो क्योंकि वे सबको देख रहे हैं। परमात्माके दास वे हैं जिनका ध्यान परमात्मामें लगा रहता है और जो परमात्माके संग वास करते हैं और उनके सभी कार्य उसीको लेकर चलते हैं। मारूफकी मृत्यु सन् ८१५ ई० में हुई। ईसाई, यहूदी और मुसलमान सभी समान रूपसे उसका आदर करते थे। सूफी साधक सारी अल-सक़तीने कहा है कि "मैंने मारूफ अल-करखीको स्वप्न द्वारा देखा था कि वह परमात्माके सिंहासनके पास मूर्च्छित पड़ा हुआ था। परमात्मासे जैसे यह ध्वनि निकली कि 'यह कौन व्यक्ति है।' देवदूतोंने कहा—'हे परमात्मा, आपको तो सब कुछ ज्ञात है।' इसपर परमात्माका आदेश सुनाई पड़ा—'यह व्यक्ति मारूफ है। प्रेमसे विह्वल होकर पड़ा हुआ है और बिना मेरे दर्शनके यह चैतन्य लाभ नहीं करेगा'।"[1]

अबू सुलैमान अब्दुल रहमान बिन अतिय्या अल-दारानीका नाम भी उन प्रारम्भिक कालके प्रमुख सूफियोंमें लिया जाता है। अबू सुलैमान भी वासितका रहनेवाला था। उसने मारिफत (परम ज्ञान) के सिद्धान्तपर पूरा प्रकाश डाला है और उसके विकासमें उसका भी नाम लिया जाता है। यह अत्यन्त कोमल हृदयका था। यह अत्यन्त धैर्यवान था। क्षुधा-जनित कष्टको सहनेकी उसमें अद्भुत क्षमता थी। कष्ट सहनेकी उसकी शक्ति भी अपूर्व थी। अबू सुलैमानने कहा है कि "एक दिन जाड़ेकी रात्रिमें मैं मस्जिदमें था। ठण्डसे मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा था। प्रार्थनाके समय एक हाथ कपड़ेके भीतर मैंने छिपा लिया था जिससे अत्यन्त आराम मिल रहा था। बादमें निद्रितावस्थामें मैंने जैसे यह सुना, 'अबू सुलैमान, जो हाथ तुम्हारा बाहर था उसे जो कुछ भी देना था दे दिया और दूसरा हाथ भी यदि बाहर करते तो उसका प्राप्य भी दिया जाता।' तबसे मैंने प्रतिज्ञा की कि चाहे जाड़ा हो या गर्मी, दोनों हाथ बाहर किये बिना प्रार्थना नहीं करूँगा।" उसकी मृत्यु सन् ८३० ई० में हुई। वह बादमें सीरिया चला गया था

1. वही, पृ० २६।

और दमिश्कके निकट दारयामें रहने लगा था इसीलिए वह अल-दारानी कहलाता है।

उसने बड़े सुन्दर ढंगसे अपने भावोंको व्यक्त किया है। उसकी वाणियोंके कुछ नमूने निम्नलिखित हैं—

जब ज्ञानीके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं तब उसकी दैहिक आँखें बन्द हो जाती हैं। वह उसको (परमात्मा) छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं देखता।

इस संसारके विषय-सुखकी लालसासे वही बच सकता है जिसके हृदयमें एक ज्योति है और जो उसे दूसरी दुनियाँकी ओर उन्मुख किए हुए रहती है।

प्रत्येक वस्तुके लिए एक-एक अलङ्कार है, हृदयका अलङ्कार सहज प्रेमार्द्र भाव है।

ईसाकी नवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हुसैन बिन मन्सूर अल-हल्लाज एक बहुत बड़ा सूफी-साधक हो चुका है। उसका जीवन अनेक घटनाओंसे भरा हुआ है। उसके विचारों तथा वाणियों और क्रियाकलापोंने तत्कालीन मुस्लिम जगत्में एक हलचल पैदा कर दी थी। अपने विचारोंके लिए उसे अपमान, नाना प्रकारकी यातनाएँ, कारावास और अन्तमें मृत्युदण्ड भोगना पड़ा। अपनी मृत्युके बाद वह और भी अधिक लोकप्रिय हुआ। बादके सूफियोंमें वह सम्मान और श्रद्धाका पात्र माना गया। अनेकों सूफियोंके लिए उसका जीवन और उसके क्रियाकलाप आदर्शस्वरूप थे। फारसीके रहस्यवादी कवियोंको उसने अत्यधिक अनुप्राणित किया। अपने समसामयिकों तथा आगे आनेवाली पीढ़ियोंके लिये वह समान भावसे एक पहेली बना रहा। यही कारण है कि उसका विरोध हुआ और उसे तरह-तरहके गन्दे नामोंसे विभूषित किया गया और साथ ही उसके बहुत बड़े प्रशंसक भी हुए और एक बड़ी तायदादमें उसके अनुयायी भी हुए। सूफियोंमें भी उसे लेकर काफी मतभेद है। कितने ऐसे हैं जो उसे सन्त और महान् साधक मानते हैं और कितने

ऐसे हैं जो उसे अज्ञानी, नासमझ, ज़िन्दीक, काफ़िर मानते हैं। हुज-वीरी[1]ने बतलाया है कि कुछ प्रमुख सूफी साधक उसे बहुत बड़ा सूफी मानते हैं और कुछ अन्य उसी कोटिके सूफी साधक उसे बिलकुल निकृष्ट मानते हैं। उसे उच्चकोटिका साधक माननेवालोंमें हुजवीरीने कुछके नाम गिनाये हैं—अमर बिन उस्मान अल-मक्की, अबू याक़ूब नह्र जूरी, अबू-याक़ूब अक़्ता, अली बिन सह्ल इस्फ़हानी, इब्न अता, मुहम्मद बिन खफ़ीफ़, अबुल कासिम नसराबादी। हुजवीरीने अपने समसामयिक सूफी साधकोंके कुछ नाम गिनाये हैं जो मन्सूरको बहुत बड़ा मानते हैं—शेख अबू सईद बिन अबीलखैर, शेख अबुल कासिम गुरगानी तथा शेख अबुल अब्बास शक़ानी। कुछ ऐसे भी सूफी साधक हैं जो उसके बारेमें कोई राय नहीं प्रकट करते। वे न उसे भला कहते हैं और न बुरा कहते हैं। इन साधकोंमें जुन्नैद, शिबली जुरैरी और हुसरी थे[2]। शिबलीने मन्सूरके सम्बन्धमें कहा है कि "हल्लाज और मैं एक ही बातपर ईमान लाते हैं, लेकिन मेरे पागलपनने मुझे बचा लिया जब कि उसकी बुद्धिमत्ताने उसका विनाश कर दिया[3]।"

मंसूरकी यातनाओं और प्राणदण्डके मूलमें राजनीतिक कारण कम महत्त्व नहीं रखते। शासन-तन्त्रके विरुद्ध कुछ करनेमें उसे तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती थी। राज्य और शासन सम्बन्धी मामलोंमें दखल देनेसे वह बाज नहीं आता था। वह अत्यन्त निर्भीक और दुस्साहसी व्यक्ति था। समान रूपसे वह मुल्लाओं और राजकोपका भाजन बना। उसके विरोधियोंका कहना है कि वह अवतारवादको मानता था और अपने आपको ईश्वरका अवतार मानता था। बादशाहोंके सामने वह अपनेको शिया कहता और साधारण लोगोंके सामने सूफी होनेकी घोषणा करता था। उसको जब प्राणदण्डकी आज्ञा मिली

१. कश्फ०, पृ० १५० ।

२. वही, पृ० १५० ।

३. वही, पृ० १५१ ।

तब उसपर यह अभियोग लगाया गया कि वह 'अनल हक़' (मैं ही ब्रह्म हूँ) की घोषणा करता है। वह आठ वर्षोंतक कारावासमें रहनेके बाद सन् ९२२ ई० में शूलीपर चढ़ा दिया गया। कहा जाता है कि पहले उसे एक हजार कोड़े लगाये गये, इसके बाद उसके हाथ-पाँव काटे गये और फिर उसे शूलीपर चढ़ा दिया गया। अन्तमें उसका सिर काटा गया और उसे जला दिया गया। यह ख़लीफ़ा मुक़्तदिरका काल था। अरीबने मन्सूरके बारेमें जो कुछ लिखा है उससे पता चल जाता है कि उसके सम्बन्धमें लोगोंकी कैसी धारणा थी। अरीबका कहना है कि सबसे वह एक ही बात नहीं कहता था। जैसा मौका देखता था और जिसमें अपना फ़ायदा देखता था वही उस समय कहता। सुन्नियोंसे कहता कि वह सुन्नी है और शिया लोगोंके समक्ष अपनेको शिया बतलाता और मुतज़िलोंके सामने मुतज़िला। अरीबने यह भी बतलाया है कि हकीमी, कीमियागरी और जादू विद्याका वह जानकार था। वह अपनेको ईश्वरका अवतार मानता और अल्लाह तथा उसके पैग़म्बरके सम्बन्धमें बुरी-भली बातोंका प्रचार करता। अपने अनुयायियोंमें वह किसीको नूह कहता, किसीको मूसा और किसीको मुहम्मद। उनसे वह कहता कि उनकी आत्माको उसने उनमें प्रवेश कराया है।[1] हल्लाजने भावाविष्टावस्थामें जो कुछ कहा है तथा उसने जिस शैलीमें अपने विचार प्रकट किये हैं उनसे उसके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी धारणाएँ बन सकती हैं। लुई मासिन्योने हल्लाजके सम्बन्धमें बहुत सामग्री इकट्ठी की है और उसके मतपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। हल्लाजके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'किताबुत तवासीन' का सम्पादन और भाष्य लुई मासिन्योने सन् १९१३ में प्रकाशित कराया। हल्लाजके समझनेमें लुई मासिन्योका काम अत्यन्त महत्त्वका है। हल्लाजके सम्पूर्ण ग्रन्थों और भ्रमण-वृत्तान्तों तथा वाणियोंका पता अगर चल जाता तो बादके सूफीमतके विकासको समझनेमें काफी सहायता मिलती। परवर्तीकालके सूफीमतकी बहुत-सी चीजें जो अस्पष्ट रह जाती हैं और

१. लि. हि. प., पृ० ४३० ।

जिनका ठीक-ठीक समझना कठिन हो जाता है वे उनके द्वारा समझी जा सकती हैं।

उसका पूरा नाम अबुलमुगीस अल-हुसैन बिन मंसूर अल-हल्लाज था। उसका जन्म सन् ८५८ ई० में हुआ था। फिहरिस्तके[1] अनुसार वह पर्सियाका रहनेवाला था, लेकिन इस बातका ठीक पता नहीं चलता कि निशापूर, मर्व, तालीक़ान, रै अथवा कूहिस्तानमें कहाँका निवासी था। इब्नुल जवज़ी[2] के अनुसार अल-हल्लाजका पितामह फारसके बैदा स्थानका था और मागी धर्मका अनुयायी था। वासित या तुस्तरमें उसका पालनपोषण हुआ और बादमें वह बग़दाद आया। वह धुनिया था। 'अल-हल्लाज' शब्दका अर्थ धुनिया है। बहुत लोगोंका कहना है कि वासितमें उसने एक धुनियाको आश्चर्यजनक ढंगसे सहायता पहुँचायी थी और उसीने उसका नाम 'अल-हल्लाज' दिया। शिबलीका कहना है कि उसके नामके साथ 'अल-हल्लाज' शब्दका जो प्रयोग किया जाता है वह एक रूपकमात्र है। वह इसलिए 'अल-हल्लाज' नहीं कहलाता कि वास्तवमें वह धुनिया था बल्कि इसलिए कि वह मनुष्यके गुप्तसे गुप्त मनके भावको जान जाता था और जिस प्रकारसे धुनिया रुईसे बिनौलोंको धुनकर निकाल देता है उसी प्रकारसे वह हृदयोंसे उनके भावोंके सारतत्त्वको बाहर निकाल सकता था। चाहे जो हो, जब वह बग़दाद आया तो अनेक सूफी-साधकोंके सम्पर्कमें आया। तस्तरी, जुनैद, अमर मक्की आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं जिनके निकट सम्पर्कमें वह आया लेकिन बादमें वह उनसे अलग हो गया। वह अमर मक्कीसे अलग होकर जब जुनैदका शिष्यत्व ग्रहण करने आया तो जुनैदने उसकी बड़ी भर्त्सना की।

कहा जाता है कि प्रारम्भमें वह इमामअली अर्रिज़ाका पक्षपाती था और उसके लिए वह प्रचार करता था। अली अर्रिज़ा शिया लोगोंके

---

१. लि. हि. प., पृ० ४२८।

२. वही, पृ० ४३४।

'बारह इमामोंवाले सम्प्रदाय' का आठवाँ इमाम था। उसने बहुत भ्रमण किया था। खुरासान, अहवाज, ट्रान्सौक्सियाना, भारतवर्ष, फ़ारस, तुर्किस्तान आदिमें घूमता रहा। मक्काकी तीन बार यात्रा करनेके बाद वह बग़दादमें स्थायी रूपसे रहने लगा। उसके साथ शिष्योंका एक बहुत बड़ा दल भी रहने लगा। उसके लिखे हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं। फ़िह-रिस्त[1] में ऐसे ४४ ग्रन्थों और निबन्धोंके शीर्षक दिये हुए हैं।

वह बहुत बड़ा साधक था। दिन रात मिलाकर चार सौ बार प्रार्थनामें झुकनेका नियम उसने अपने लिए बना रखा था। किसीने पूछा कि इतना बड़ा साधक होनेपर भी वह इतना कष्ट क्यों उठाता है। उसने बतलाया कि कष्ट और आनन्द तो साधारण लोगोंकी स्थितिका ज्ञान कराते हैं लेकिन जिसने गुणोंको ही मिटा दिया है उनके लिए सुख ही क्या और दुःख ही क्या ? उसने उस आदमीको चेतावनी दी कि वह शैथिल्यको परिपक्वता और सांसारिक मोहको परमात्माकी खोज न समझ ले[2]। वह परमात्माका प्रेमानुरागी था और उसके प्रेममें विह्वल बना हुआ रहता था। परमात्माके वियोगकी आँचमें वह बराबर तपता रहता। उसने बड़ी कठोर साधना की थी। वह बड़ा ज्ञानी था। उसका पाण्डित्य अद्भुत था। उसके ग्रन्थोंको देखनेसे ही उसके पाण्डित्य-का पता चलता है।

उसके चमत्कारकी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि भारतवर्षमें वह बहुत दिनोंतक आकर रहा था और जादू विद्या सीखी थी। कहते हैं कि एक बार खलीफा मुक्तदिरके मृत तोतेको जिला दिया था। मन्त्र द्वारा हवामें हाथ फैलानेसे कस्तूरी अथवा सिक्कोंसे हाथ भर जाता था और वह सब लोगोंमें उन्हें बाँट देता। वह अपना शरीर फैलाकर समस्त कमरेको भर दे सकता था। कारागारसे वह दो-तीन दिनोंके लिए अदृश्य हो गया था। अपने चमत्कारके बलसे बन्दियोंको मुक्त कर दिया था।

---

१. लि. हि. प., पृष्ठ ४२९।

२. कश्फ०, पृ० ३०३।

इस प्रकारकी नाना कहानियाँ उसके बारेमें कही जाती हैं। उस युगमें सर्वत्र इस तरहकी बातें देखी जाती हैं। उस कालमें लोगोंको इन बातोंपर पूरा विश्वास था। मुल्लाओंने इन सभी बातोंको लेकर उसका विरोध किया और इसका फल यह हुआ कि अन्तमें अल-हल्लाजकी बड़ी बुरी तरहसे मृत्यु हुई।

कारावाससे लेकर उसकी मृत्युतककी कहानी बड़ी रोमाञ्चकारी और हृदयद्रावक है। आठ वर्षोंतक उसे जेलके भीतर रखा गया और उसके बाद उसे बाहर निकाला गया। ब्राउनके अनुसार प्रारम्भसे जब कि वह जेलमें गया और अन्ततक जब कि उसे सूली दी गयी वह आठ वर्ष, सात महीने और आठ दिन जेलमें रहा।[1] अत्तारने तजकिरातुल औलियामें मन्सूरके सूलीपर चढ़ाने और उसकी मृत्युका वर्णन दिया है। अत्तारके अनुसार जेलसे बाहर लाकर उसे तीन सौ कोड़े लगाये गये और प्रत्येक प्रहारके साथ वह कह उठता 'हुसेन भय न करना' और किसी भी तरहसे उसने 'अनल हक़' कहना नहीं छोड़ा। इसके बाद सूलीपर चढ़ानेके लिए वह ले जाया गया जिसे देखनेके लिए एक लाख लोग इकट्ठा थे। वह चारों ओर देखता हुआ 'हक़-हक़ अनल हक़' कहता रहा। इसी बीचमें एक फ़क़ीरने उससे पूछा—'प्रेम क्या है।' वह बोला—'आज देखोगे, कल देखोगे, परसों देखोगे।' अर्थात् आज उसका वध करेंगे, कल जलायेंगे और परसों उसकी निशानी भी नहीं रह जायगी। वह बराबर शान्त बना रहा और यन्त्रणा या पीड़ाका कोई भी लक्षण उसके चेहरेपर नहीं दिखाई पड़ा। सूलीपर चढ़ते समय अनेक निष्ठुरोंने उसके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा की लेकिन वह एक शब्द भी नहीं बोला। जब उसके हाथमें छेद किया गया तो भी उसके चेहरेपर मुस्कान थी। अपनी बाँहोंमें उसने रक्त लगा दिया। लोगोंने पूछा—'बाँहोंमें रक्त तुमने क्यों लगाया?' उसने बतलाया—'वज़ू किया है।' लोगोंने फिर पूछा—'यह वज़ू कैसा?' उसने कहा—'यह प्रेमका वज़ू है। रक्त छोड़कर विशुद्ध वज़ू नहीं होता।'

1. लि. हि. प., पृ० ४३२।

इसके बाद उसकी दोनों आँखें निकाल ली गयीं। लोगोंमें हलचल मच गयी। बहुत लोग रो पड़े और कितने निष्ठुरोंने उसे पत्थरोंसे मारा। जब उसकी जिह्वा काटनेकी तैयारी होने लगी तब उसने कहा कि वे थोड़ा धैर्य धारण करें, उसे कुछ कहना है। ऊपरकी ओर मुँह उठाकर वह बोला, "हे परमात्मा, इन्होंने मुझे इतनी यन्त्रणा दी है लेकिन इन लोगों-को वञ्चित न करना, उस सम्पदसे इन्हें निराश न करना। यद्यपि इन लोगोंने हमारे हाथ पाँव काट डाले हैं, फिर भी तुम्हारे रास्तेमें ही इन्होंने काटे हैं। सूलीपर ये मेरा सर काटेंगे लेकिन सूलीके ऊपर तुम्हारे दर्शनकी अवस्थामें ही ये काटेंगे।" इसके बाद उसकी नाक और कान काट डाले गये। इसी बीच एक पाषाण-हृदया वृद्धा नारीने उसे देखकर कहा—"पत्थर मारो, इस आत्माभिमानी पापात्माके ऊपर जोरोंसे प्रहार करो।" उस समय हुसेनने क़ुरानकी दो आयतें पढ़ीं। इसके बाद उसकी जीभ काट डाली गयी। सन्ध्या हो गयी थी, उसी समय खलीफाका हुक्म आया कि 'उसका सर काट डालो।' उसके बाद वह जला दिया गया।[१]

कहा जाता है कि २६ मार्च, सन् ९२२ ई०, दिन मङ्गलवारको मन्सूरको प्राणदण्ड दिया गया। उसकी राखको टाइग्रिस नदीमें बहा दिया गया। उसके बाद टाइग्रिसमें खूब जोरोंकी बाढ़ आयी। उसके शिष्योंका कहना था कि उसकी राख नदीमें डाली गयी है इसीलिए बाढ़ आयी है। मृत्युके पहले उसने अपने शिष्योंको ढाढ़स बँधाते हुए कहा था कि फिर वह तीस दिनोंमें इस पृथ्वीपर लौट आयगा। इसी विश्वासके कारण उसकी मृत्युके तीन वर्षों बाद उसके तीन शिष्योंका सिर धड़से उड़ा दिया गया। उसके कितने शिष्योंको इसका विश्वास नहीं था कि उसकी मृत्यु हुई अथवा उसे सूलीपर चढ़ाया गया। उनमेंसे कुछका कहना था कि उन लोगोंने उसे गदहेपर सवार जाते हुए देखा था और उसे यह कहते हुए सुना था कि एक पशुने उसका रूप धारण किया था जिसे वह सजा दी गयी थी।

---

१. ता. माला, पृ० ९२-९३।

सूफीमतको एक दार्शनिक रूप देनेवाला तथा सनातन-पन्थी इस्लाम-के साथ उसका सामञ्जस्य बैठानेवाला अबू हमीद मुहम्मद अल-ग़ज़ाली था। ग़ज़ालीका नाम सूफी-साधकोंमें उतना नहीं लिया जा सकता जितना इस्लामके दार्शनिकों और विचारकोंमें। वह एक बहुत बड़ा दार्शनिक, बहुत बड़ा तार्किक और विचारक था। इस्लाम-धर्मके अनुयायियोंमें उसके जैसा धर्मशास्त्रका पण्डित शायद ही कोई हुआ। अल-अशाअरीके बाद उसीने सनातन-पन्थी इस्लामको एक निश्चित और सुस्पष्ट रूप दिया। सुन्नियोंके धार्मिक विश्वासोंको अन्तिम रूप देनेवाला वही था। मुसलमानोंमें उसके लिए एक गहरी श्रद्धाका भाव है। उसे वे 'हुज्जतुल-इस्लाम' की उपाधिसे विभूषित करते हैं। 'हुज्जतुल इस्लाम'का अर्थ है इस्लामका संरक्षक। मुसलमानोंका कहना है कि हजरत मुहम्मदके बाद अगर कोई पैगम्बर होता तो वह व्यक्ति ग़ज़ाली ही हो सकता था। ग़ज़ाली अकेले एक ऐसा व्यक्ति हुआ जो बौद्धिकताकी दृष्टिसे इस्लाम-धर्ममें अद्वितीय था। उसका बहुत ही गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा।

अबू हमीद अल-ग़ज़ालीका जन्म सन् १०५८ ई० में खुरासान प्रान्त-के तूस स्थानमें हुआ। उसकी मृत्यु सन् ११११ ई० में हुई। उसका पिता ऊनका सूत कातता था और उसे बाजारमें बेचता। अपनी मृत्युके समय वह अपने दो पुत्र ग़ज़ाली और अहमदको अपने एक सूफी मित्रके हाथों सिपुर्द कर गया। उसने दोनों भाइयोंको पढ़ाया लिखाया। ग़ज़ालीके पिताने जो रुपया उन लोगोंके लिए छोड़ा था वह समाप्त हो गया। इसके बाद वे लोग धर्म सम्बन्धी अन्य विषयोंका अध्ययन करनेके लिए दूसरी जगह चले गये जिसमें कि अर्थोपार्जनमें उन्हें सहायता मिले। इसके बाद और अधिक अध्ययन करनेके लिए ग़ज़ाली निशापूर चला गया। अपने अध्यापककी मृत्युके बाद अल-ग़ज़ाली सल्जूक बादशाह मलिक शाहके दरबारमें चला गया और निजामुल मुल्कके सामने जाकर उपस्थित हुआ। वह प्रतिभाशाली व्यक्ति था। शास्त्रालोचनामें उसकी प्रखर बुद्धिका परिचय मिलता था। बड़े-बड़े धर्मशास्त्रके जानकारोंसे वहाँ-

पर उसे परिचय प्राप्त हुआ और धर्मके तत्त्वोंकी विवेचना करनेका मौक़ा मिला। निज़ामुल मुल्क उसके प्रति आकृष्ट हुए।

प्रारम्भमें वह सूफ़ीमतसे उतना प्रभावित नहीं जान पड़ता। सनातन-पन्थी इस्लाममें हीं उसकी आस्था थी लेकिन किसी भी चीज़को तर्ककी कसौटीपर बिना कसे सहज ही मान लेनेके लिए वह तैयार नहीं था। आँख मूँदकर बिना समझे-बूझे वह किसी चीज़को स्वीकार नहीं करता था। सूफ़ीमतकी ओर वह आकृष्ट हुआ और बादमें फिर सनातन-पन्थी इस्लाम, तत्त्व-विवेचन आदिका भक्त हो गया। सन् १०९१ ई० में बग़दादके निज़ामिया कालेजमें वह अध्यापक नियुक्त हुआ। लेकिन सूखा ज्ञान और कोरा तर्क उसके मनको शान्ति नहीं पहुँचा सके। दार्शनिक तत्त्वोंकी उसने खूब छानबीन की लेकिन उसे लगा जैसे जिस चीज़की खोजमें वह है उसे दर्शनसे नहीं मिल सकती। उसका स्वास्थ्य नष्ट हो गया। उसका शरीर, मन सब जैसे जर्जर हो गये और फिर वह सूफ़ी साधनाकी ओर झुका। परमात्माका भय उसके मनमें सदैव बना रहता था और वह किसी तरहसे भी इस बातको भूल नहीं पाता कि आनेवाले जीवनमें उसे क्या भुगतना पड़ेगा। उसके कर्मोंके लिए पर-मात्मा उसे क्या दण्ड देगा। उसने संसारका त्याग किया। संसारके सुखोंकी ओरसे मुँह मोड़ लिया। दर्शन, तत्त्व-विवेचन अब उसकी दृष्टिमें बौद्धिक विलास मात्र रह गये। उनसे उसने पीछा छुड़ाया और दर-वेश बनकर चारों ओर रमता फिरा। इस प्रकारके जीवनसे उसने शान्ति पायी। उसने बहुत कुछ देखा, सुना; बहुत कुछ अनुभव किया। इस प्रकारसे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भ्रमण करते हुए बारह वर्षोंके बाद वह बग़दाद आया। इसी बीच सीरियामें दो वर्षोंतक उसने एकान्त सेवन भी किया था और हज भी किया था। बग़दाद लौटकर वह अध्यापन करने लगा और धर्मोपदेश करने लगा। लेकिन कुछ ही दिनोंके बाद सब कुछका परित्यागकर वह अपने शहरमें चला आया और उसके अन्तिम दिन वहींपर बीते।

उसने स्वयं ही लिखा है कि नाना प्रकारके दार्शनिकों, साधकों और विचारकोंसे वह मिला और उनके दृष्टिकोणोंको समझनेकी कोशिश की। ग़ज़ाली लिखता है—

"उसी समयसे जब कि मेरी उम्र बीस वर्षकी भी नहीं थी (अब पचास वर्षसे ऊपरका हो गया हूँ)...मैंने प्रत्येक धार्मिक विश्वासों और मान्यताओंकी छानबीन करनी नहीं छोड़ी। कोई भी ऐसा बातिनी नहीं था जिससे मैं मिला और जिससे मैंने उसके गूढ़ तत्त्वोंको समझनेकी इच्छा न प्रकट की हो; कोई भी ऐसा ज़ाहिरी नहीं जिससे मैंने उसकी आक्षरिकताके[1] सार-तत्त्वको जाननेकी इच्छा न प्रकट की हो; कोई भी ऐसा मुतकल्लिम[2] नहीं जिसके तर्क और शास्त्रीय ज्ञानके उद्देश्यको समझनेकी चेष्टा न की हो, कोई भी सूफी नहीं जिसके मतके रहस्योद्घाटनके लिए न ललचाया होऊँ; कोई भी फ़क़ीर नहीं जिसकी फ़क़ीरीके मूलको जाननेकी चेष्टा न की हो; कोई भी नास्तिक ज़िन्दीक नहीं जिसकी साहसपूर्ण नास्तिकता और ज़िन्दीकीके कारणोंको जाननेके लिए हाथ-पाँव न मारे हों। ऐसी ही थी मेरे हृदयकी युवावस्थाके प्रारम्भिक कालसे ही न बुझनेवाली ज्ञान-पिपासा। यह अन्तःप्रेरणा और सहजवृत्ति परमात्माकी दी हुई थी इसमें मेरे चाहने या न चाहनेका प्रश्न ही नहीं उठता।"

ऐसी उसकी मानसिक स्थिति थी और ऐसी उत्कट उसकी ज्ञान-पिपासा थी। सत्य क्या है? जो हम देखते हैं क्या वही सत्य है? अथवा यह संसार छलनामय है जिसे हम सत्य समझ बैठे हैं। इस प्रकारके विचार उसके मनमें उदय होते और उसे बेचैन कर देते। उस व्याकुलतामें जैसे सब कुछसे उसका विश्वास उठ गया हो। लेकिन उसने स्वयं ही बतलाया है कि परमात्माने उसपर कृपा की और उसके हृदयके भीतर श्रद्धा, विश्वास और प्रकाशका उदय हुआ। इसके बादसे उसने अपनी सारी

---

१. अर्थात् अक्षरशः पालन करनेका आग्रह।

२. तार्किक धर्मशास्त्रवेत्ता।

बुद्धि इसमें लगा दी कि वास्तवमें सत्य क्या है ? सब जगहसे भटकता, ठोकरें खाता, वह इस निश्चयपर पहुँचा कि सिवाय सूफी साधनाके उसे न सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न हृदयको शान्ति मिल सकती है। उसने यह भी अच्छी तरहसे देख लिया कि सूफियोंके तत्त्व और आध्यात्मिक मार्गकी उत्तरोत्तर ऊपर जानेवाली मंजिलोंको किताबी ज्ञानसे नहीं समझा जा सकता। वह साधनाके द्वारा ही प्राप्त होनेकी वस्तु है। उस सत्यका आभास सूखे ज्ञान और बौद्धिकताके द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता है। यह कुछ दूरतक सूफी साधनाकी 'अवस्थाओं' द्वारा सम्भव हो सकता है। भावाविष्टावस्था, उल्लास आदिकी हालतमें, हो सकता है कि उस सत्यका, उस परमज्ञानका आभास मिल सके। गज़ालीके लिए अब यह बिल्कुल सम्भव नहीं रह गया कि वह सांसारिक विषयोंमें अपनेको लगाये रह सके। अतएव उसने सब कुछका त्यागकर केवल परमात्माके लिए ही जीनेका निश्चय कर लिया। उसके दार्शनिक विचारोंकी चर्चा करना कुछ आवश्यक नहीं प्रतीत होता। उसके प्रभाव और उसके स्थानको समझनेमें उसका यह संक्षिप्त परिचय पर्याप्त होगा।

---

९. सूफी सिद्धान्त

सूफीमतके विकासकी चर्चा करते समय हमने यह देखा है कि किस प्रकारसे कुरानमें वर्णित परमात्माके स्वरूपको स्वीकार करते हुए सूफी संन्यास जीवन बिताते थे और किस प्रकारसे धीरे-धीरे उनमें रहस्यवादी प्रवृत्ति और तत्त्व-चिन्तनका प्रवेश हुआ। हम यह भी देख चुके हैं कि बादमें चलकर कितने तत्त्व-चिन्तकों और दार्शनिकोंने सूफी सिद्धान्तोंकी विवेचना की और सूफी-दर्शनको एक रूप दिया। उन तत्त्व-चिन्तकोंने परमात्मा, आत्मा, सृष्टि-तत्त्व आदि सभीका विवेचन किया और अपने मतका निरूपण किया। अतएव हम यहाँपर उन मतोंकी चर्चा करना चाहेंगे जिससे हम यह समझ सकें कि सूफीमतमें परमात्माका स्वरूप क्या है? सृष्टि क्या है तथा उसका प्रयोजन क्या है? सूफियोंका चरम लक्ष्य क्या है, आदि।

हमें स्पष्ट रूपसे प्रारम्भमें ही यह जान लेना चाहिये कि उपर्युक्त प्रश्नोंको लेकर सूफियोंके बीच नाना प्रकारके मत प्रचलित हैं फिर भी कुछ ऐसे आधारभूत सिद्धान्त हैं जिन्हें प्रायः सभी सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं। इन दार्शनिक तत्त्वोंके विवेचनमें भिन्न-भिन्न मतोंका होना कुछ अस्वाभाविक नहीं है। संसारके विभिन्न धर्मोंमें इस तरहके मत-मतान्तर देखे जाते हैं। सूफी साधकोंने इन प्रश्नोंपर विचार किया है और विचार करते समय प्रमुख रूपसे उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति उन्हें प्रभावित करती रही है लेकिन साथ ही उन्होंने सनातन-पन्थी इस्लामके सिद्धान्तोंको भी अपनी दृष्टिमें रखा है। अपने सिद्धान्तों और मतोंके औचित्यको कुरानके वचनों तथा हदीसोंसे वे सिद्ध करते रहे हैं और जहाँपर उन्हें इसमें कठिनाईका अनुभव हुआ उन्होंने कुरानकी व्याख्या अपने ढंगसे की (कुरान की व्याख्या विभिन्न प्रकारसे की जा सकती है)। अपने मतकी पुष्टिके लिए

अपने मनसे हदीसोंकी सृष्टि करनेमें भी वे नहीं चूके ! अतएव यहाँपर परमात्मा, आत्मा तथा सृष्टि-सम्बन्धी सनातन-पन्थी इस्लामके दृष्टिकोणको जान लेना आवश्यक है।

सनातन-पन्थी इस्लामके अनुसार परमात्मा एक है और उसके जैसा दूसरा नहीं। काल और स्थानकी परिधिमें वह नहीं बाँधा जा सकता। वह अपने आपमें पूर्ण है, उसे किसीकी अपेक्षा नहीं। उसके ज़ात और सिफ़त अपरिवर्त्तनशील हैं। वह सर्वशक्तिमान है। वह सब कुछका जाननेवाला है। वह क्षमाशील है। उससे बाहर न किसी प्रकारका ज्ञान है और न किसी प्रकारकी सत्ता। जो कुछ भी हम देखते हैं और जिस किसी भी वस्तुका अस्तित्व है वह उसीके ऊपर निर्भर करता है। वह सर्वज्ञ है। मनुष्यके ज्ञानकी सीमाके बाहर है। उसके ज्ञान, कर्म और स्वभाव मनुष्यके ज्ञान, कर्म और स्वभावसे भिन्न हैं। उसका देखना, सुनना हमारे जैसा नहीं है। उसके न्यायमें कोई दखल नहीं दे सकता। उसका न्याय उसीका न्याय है। सृष्टिकर्ता वही है। अच्छे या बुरेका बनानेवाला वही है। वह अवतार नहीं लेता। उसकी सृष्टि तथा उसके बीच और कोई नहीं है। कुछ लोग परमात्माके पैग़म्बर अवश्य हैं। उनका काम उसके आदेशोंको मनुष्यतक पहुँचाना है। परमात्मा और मनुष्यके बीचके व्यवधानपर क़ुरानमें अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। उसकी बनायी हुई सृष्टि और उसके कार्योंको देखकर ही मनुष्य उसके रहस्योंको समझनेमें समर्थ हो सकता है। जो लोग उसे समझना चाहते हैं, जो उसे जानना चाहते हैं वे प्रकृतिके विभिन्न व्यापारोंको देखकर उसे जान सकते हैं। क़ुरानमें कहा गया[1] है, "आसमान और पृथ्वीके निर्मित होनेमें, रात-दिनके परिवर्तनमें, समुद्रमें मनुष्यके लिए उपयोगी सामग्री ढोनेवाले जहाजोंमें, आसमानसे पड़नेवाली वृष्टिमें जिसे परमात्मा धरतीपर भेजता है, जिससे मृत पृथ्वीमें प्राणका संचार[2] तथा विभिन्न प्रकारके पशुओंका अस्तित्व सम्भव हो पाता

१. सूरा २ : १६४।

२. सूरा १६ : ६५।

है, उसी प्रकारसे हवाके नियन्त्रणमें तथा आसमान और जमीनपर उपयोगी कार्यसम्पादन करनेवाले बादलोंमें खोजनेवाले उसका पता पा सकते हैं"। पहाड़ों और पेड़ोंपर रहनेवाली मधुमक्खियाँ (सूरा १६ : ६८), खजूर और अंगूर (सूरा १६ : ६७), हवामें उड़नेवाले पक्षी (१६ : ७९) सभी उसका पता देते हैं।

वह "परमात्मा आकाश और पृथ्वीकी ज्योति है। आलेमें रखे हुए दीपककी नाईं उसका प्रकाश है। वह दीपक एक शीशेके भीतर है और वह शीशा मानो एक चमकता हुआ सितारा है।.....परमात्मा जिसे चाहता है अपनी ज्योतिकी ओर अग्रसर करता है। अल्लाह सब कुछका जाननेवाला है और मनुष्योंसे वह रूपकोंकी भाषामें बोलता है" (सूरा २४ : ३५)। परमात्माने कृपापूर्वक ऐसे घर निर्मित होने दिये हैं जहाँ वह दीपक पाया जाता है। वहाँ मनुष्य सुबह-शाम गुणानुवाद करे, उसे स्मरण करे। धनकी लिप्सा ऐसे मनुष्योंको, परमात्माकी याद तथा जकातसे इधर-उधर भटकानेमें समर्थ नहीं होती क्योंकि उसे उस दिनका भय बना रहता है जिस दिन हृदय धड़कते रहेंगे और आँखोंकी पुतलियाँ उलटी हुई रहेंगी (सूरा २४ : ३६, ३७)। और परमात्मा उनके भले कर्मोंके लिए अच्छा फल देगा और उसकी कृपासे उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी क्योंकि परमात्मा जिससे खुश होगा उसके लिए सारी व्यवस्था करेगा। और जो अविश्वासी हैं उनके किये हुए कर्म मानो मरुभूमिकी मृगतृष्णा जैसे हैं जिसकी ओर प्यासा पानी समझकर बढ़ता है और पास आनेपर पाता है कि वह कुछ नहीं है और वहाँ वह परमात्माको पाता है जो उसके किये हुएका फल देता है क्योंकि लेखा जोखा लेनेमें उसे देर नहीं लगती (सूरा २४ : ३८, ३९)। "क्या तुमने नहीं देखा है कि समस्त पृथ्वी और आकाश उसका गुणगान करते हैं तथा पंख पसारते ही पक्षी उसका गुणानुवाद करने लगते हैं ? परमात्मा प्रत्येककी प्रार्थना और गुणानुवादको जानता है ; अल्लाहको पता है कि वे क्या करते हैं। आसमान और जमीनका साम्राज्य परमात्माका है और परमात्मामें ही लौटना है"

(सूरा २४ : ४१, ४२)।

अतएव हम देखते हैं कि क़ुरानका अल्लाह समस्त संसारके ऊपर दृष्टि रखता है और लोगोंके किये हुए भले और बुरे कर्मोंसे परिचित रहता है। वह अपने न्यायासनपर बैठकर बुरे कर्म करनेवालोंको दण्ड देता है तथा शुभ कर्म करनेवालोंकी रक्षा करता है और उन्हें पुरस्कृत करता है। उसका दूसरा रूप भी हमारे सामने आता है वह अल-हक़्क़ (सत्य) है, शाश्वत है और अविनश्वर है तथा आकाश-पृथ्वीका आलोक है जब कि अन्य वस्तुएँ क्षणस्थायी हैं और नश्वर हैं। वह अपने जैसा आप है और निर्वैयक्तिक है। सनातन-पन्थी इस्लामके अनुसार मनुष्य और अल्लाहके बीचका सम्बन्ध निरङ्कुश स्वामी और दासका है[1]।

परमात्मा, आत्मा, सृष्टि आदिके सम्बन्धमें सूफियोंने काफी छानबीन की है लेकिन उनमें दो मुख्य वर्ग हो गये हैं जो कम या बेशी अधिकांश सूफ़ी-सम्प्रदायके मतोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें एक वर्ग 'वहदतुल वुजूद' के सिद्धान्तको मानता है और दूसरा वर्ग 'वहदतुश्शुहूद' के सिद्धान्तको ग्रहण करता है। इनकी चर्चा करनेके पहले हम यहाँपर परमात्मा सम्बन्धी कुछ बातोंपर प्रकाश डालना चाहेंगे जो प्रायः सभी सूफी सम्प्रदायोंमें स्वीकार की जाती हैं।

परमात्माके सम्बन्धमें सूफ़ी भी सनातन-पन्थी मुसलमानोंके जैसा 'एकेश्वरवाद' में विश्वास करते हैं लेकिन दोनों अपने-अपने ढंगसे इसको मानते हैं। सनातन-पन्थी इस्लामके अनुसार परमात्मा अपने जैसा आप है, उसके जैसा और कुछ भी नहीं। ज़ात (सत्ता), सिफ़त (गुण) और कर्ममें परमात्मा अद्वितीय है। उसकी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती। सृष्टिके सभी पदार्थोंसे वह भिन्न है। लेकिन सूफियोंके लिए 'एकेश्वरवाद' का अर्थ दूसरा है। यह मानते हुए भी कि परमात्मा एक और अद्वितीय तथा निरपेक्ष है, सूफी यह कहते हैं कि इस दृश्यमान जगत्में परिव्याप्त एकमात्र वही सत्य है। उसीकी एकमात्र सत्ता है जो पहले थी या भविष्य-

---

1. गा. प. (पृ० ८७)।

में रहेगी है। अतएव ऐसा माननेका यह मतलब हो जाता है कि अगर परमात्माको छोड़कर और किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है तो यह निखिल विश्व परमात्माके साथ एक है तथा प्रतीयमान जितनी भी सत्ताएँ हैं वे उसीमें अन्तर्निहित हैं। जामीने एक जगह कहा है[1]—

"वह अद्वितीय पदार्थ जो निरपेक्ष है, अगोचर है, अपरिमित है और जो 'नानात्व' से परे है वही अल-हक़्क़ (परम सत्य) है। दूसरी तरफ अपने नानात्व और अनेकत्वमें जब वह सभी गोचर वस्तुओंमें अपने आपको प्रकट करता है तब यह सम्पूर्ण रची हुई सृष्टि वही है। अतएव यह सृष्टि उस परम सत्यकी दृश्यमान बाह्य अभिव्यक्ति है और वह परम सत्य इस सृष्टिका आभ्यन्तर अदृश्य सत्य है। यह सृष्टि गोचर होनेके पहले उसी परम सत्यके सदृश थी और गोचर होनेके बाद उस परम सत्यका इस सृष्टिके साथ सादृश्य है।"

वह परम सत्यके अलावे परम कल्याण (शिव) है और चूँकि वह परम कल्याण है इसलिए वह परम सौन्दर्य है। सौन्दर्य, कल्याणका ही एक रूप है। सम्पूर्ण सृष्टि उसीके प्रकाशसे प्रकाशित है। जिस प्रकारसे सूर्यकी रश्मियाँ सूर्यसे निकलती हैं फिर भी सूर्य ज्योंका त्यों बना रहता है उसी प्रकार परमात्मा और सृष्टिका सम्बन्ध है और उससे परमात्माका एकत्व खंडित नहीं होता। यह इन्द्रिय गोचर जगत् अग्निके गोलाकार चक्करकी तरह है जो एक ही अग्नि-स्फुलिंगके चारों ओर जोरसे घुमानेसे बनता है। कितने ऐसे भी सूफी हैं जो कहते हैं कि सृष्टि दर्पणके समान है जिसमें परमात्माके गुण प्रतिबिम्बित होते हैं। जामीकी एक कवितामें कहा गया है[2]—"तुम परम सत्ता हो, और सभी कुछ मरीचिका मात्र है क्योंकि तुम्हारी सृष्टिमें सभी वस्तुएँ एक हैं। सम्पूर्ण सृष्टिको मुग्ध करनेवाला तुम्हारा सौन्दर्य अपनी पूर्णताको प्रकाशित करनेके लिए हजारों दर्पणोंमें प्रतिभासित होता है लेकिन वह (सौन्दर्य) एक ही है।"

---

१. मि. इ., पृ० ८१-८२।

२. लि. हि. प., पृ० ४४१।

इस प्रकारसे सूफियोंके इस सिद्धान्तके माननेका मतलब यह हो जाता है कि अगर परमात्माको छोड़कर और किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है तो यह निखिल विश्व परमात्माके साथ एक है और निखिल विश्वके साथ मनुष्य भी परमात्माके साथ एक है चाहे सूर्यकी रश्मिसे उस (मनुष्य) की तुलना कर लें अथवा परमात्माके गुणोंको प्रतिविम्बित करनेवाला उसे दर्पण मान लें। तब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि जब परमात्मा ही सब कुछ है तब उसे अपनेको प्रकट करनेकी जरूरत क्यों पड़ी तथा वह 'एक' अनेक कैसे हो गया ?

हम यह देख चुके हैं परमात्मा निरपेक्ष और अनन्त है तथा यह सृष्टि नाशवान और क्षणभङ्गुर है। लेकिन कभी ऐसा भी होगा कि परमात्मा अकेला होगा और उसका सौन्दर्य और ऐश्वर्य आलोकित हो रहा होगा। उस समय उस सौन्दर्यको देखकर मत्त होनेवाला कोई दूसरा नहीं होगा। उस परम सौन्दर्यका उपभोग करनेवाला अन्य कोई नहीं होगा। उस सौन्दर्य और उस विभूतिको देखकर आत्मविभोर होनेवाला कोई नहीं होगा। उस समय उस परम सौन्दर्यको अपने आपको प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई होगी। सौन्दर्य अपने आपको प्रकट करनेकी इच्छा लिये हुए रहता है। वह अपने आपको बिना प्रकट किये हुए रह नहीं पाता। अपने आप को प्रकट करनेकी यह बेचैनी नाना रूपोंमें नाना प्रकारसे प्रकाश पाती है। अतएव उस अनन्त सौन्दर्य और अनन्त विभूतिको आत्म-प्रकाश करनेकी जब उत्कट अभिलाषा हुई तब इस दृश्यमान जगत्का आविर्भाव हुआ। यह जगत् उस सौन्दर्यको अंशतः प्रकट करनेवाला है। इसके समर्थनमें एक हदीसका हवाला दिया जाता है—"कुन्तो कनज़न् मख़फीयन् फाह-बबतो अन ओरिफ़ो फ़ख़लक़्तुल ख़ल्क" अर्थात् मैं एक छिपा हुआ खजाना था, फिर मैंने इच्छा की कि लोग मुझे जानें। इसलिये मैंने सृष्टि-की रचना की। सूफी इसे ही सृष्टिका कारण मानते हैं।

उस निरपेक्ष, परमसत्ताको जो परम सौन्दर्य और परम कल्याण भी है, अपनेको प्रकट करनेके लिए इस अ-सत् क्षणभङ्गुर जगत्की सृष्टि करनी

पड़ी। विरोधी तत्त्वोंकी वर्तमानतासे उन तत्त्वोंका परिचय सहज हो जाता है। अन्धकारका होना प्रकाशका ज्ञान कराता है अतएव उस परमसत्ता-का ज्ञान इस अ-सत् सृष्टिके द्वारा होना सम्भव है। यह सृष्टि जिसकी वास्तविक सत्ता नहीं है उस परमात्माको जो परमसत्ता है, समझनेमें सहायक सिद्ध होती है। मङ्गलका ज्ञान अमङ्गलके द्वारा, सुन्दरका ज्ञान अ-सुन्दरके द्वारा, अच्छाईका ज्ञान बुराईके द्वारा सहज प्राप्य है। उस परम-सत्ता, परम सौन्दर्य और परम कल्याणका ज्ञान इस सृष्टिसे सम्भव हो पाता है। लेकिन इसका एक दूसरा भी पहलू है और वह यह कि यह संसार नाशवान है और सचमुचकी इसकी सत्ता नहीं है तथा जिसे हम बुराई, पाप और अमङ्गल तथा अ-सुन्दर समझते हैं वह वास्तवमें भ्रम है चूँकि जिस प्रकारसे परम सौन्दर्य और परम कल्याणकी वास्तविकता है उस प्रकारसे इनकी नहीं है। ये नकारात्मक हैं। वस्तुतः ये हैं नहीं। यह दृश्यमान् जगत् जो अवास्तविक है, अ-सत्के दर्पणमें प्रतिबिम्बित होनेवाला उस परमसत्ताका प्रतिबिम्ब है। इसको और स्पष्ट रूपसे यों समझा जा सकता है कि सूर्यका प्रकाश जलमें पड़ता है और जलमें उसके पड़नेवाले प्रतिबिम्बसे हम सूर्यको देख सकते हैं। यह प्रतिबिम्ब वास्तवमें सूर्यके कारण ही है अगर सूर्य नहीं है तो वह प्रतिबिम्ब भी नहीं है। उस प्रति-बिम्बको अपने अस्तित्वके लिये सूर्यपर निर्भर करना पड़ता है लेकिन सूर्य-का अस्तित्व प्रतिबिम्बके कारण नहीं है। वह प्रतिबिम्ब हजारोंबार बन-बिगड़ सकता है उससे सूर्यका कुछ आता-जाता नहीं, सूर्य ज्यों-का-त्यों बना रहता है उस प्रतिबिम्बके बनने-बिगड़नेसे उसमें कोई कमी-बेशी नहीं होती। जल इस प्रकारसे सूर्यके दर्पणकी तरह है जो सूर्यको प्रतिबिम्बित करता है। यहाँ स्पष्ट रूपसे तीन चीजें हैं—एक तो सूर्य है और दूसरा जल है जो उस सूर्यको प्रतिबिम्बित करनेवाला है और तीसरा प्रतिबिम्ब है। सूर्यकी नाईं वह परम-सत्ता है जिसे हम परमात्मा कहते हैं। उसे प्रति-बिम्बित करनेवाला जलकी नाईं अ-सत् है जो सत्ताका नकारात्मक रूप है और सूर्यके प्रतिबिम्बकी नाईं यह दृश्यमान जगत् है जो परमात्माका

प्रतिबिम्ब है। यह दृश्यमान जगत् परमात्माकी सत्तापर ही निर्भर करता है इसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है।

इस दृश्यमान जगत् और मनुष्यके सम्बन्धमें सूफियोंका कहना है कि अ-सत्के दर्पणमें प्रतिबिम्बित होनेवाली परमात्माकी प्रतिच्छवि जैसा यह दृश्यमान जगत् है और मनुष्य उस प्रतिच्छविकी आँख जैसा है। परमात्मा अपनी प्रतिच्छविमें प्रकट होता है तथा मनुष्यमें भी अपने आपको प्रकट करता है। इस प्रकारसे एक तो यह सृष्टि है जो परमात्माकी प्रतिच्छवि है दूसरे जिस प्रकारसे आँखकी पुतलीमें सम्पूर्ण प्रतिच्छवि उतर आती है उसी प्रकारसे मनुष्य जो उस प्रतिच्छविकी आँख जैसा है उस परमात्माकी और प्रतिच्छविको अपने आपमें बसाये हुए है। अतएव एक ओर तो परमात्मा अपनी प्रतिच्छवि अर्थात् दृश्यमान जगत्में अपने आपको प्रकट करता है और दूसरी ओर मनुष्यमें भी जो परमात्माकी प्रतिच्छविकी आँख जैसा है।

अब हम देखते हैं कि मनुष्य एक ओर तो इस सृष्टिका अङ्ग है और दूसरी ओर परमात्माको भी अपने भीतर ग्रहण किये हुए है अतएव उसमें दोनों चीज हम पाते हैं। उसमें सत् और अ-सत् दोनों विद्यमान हैं। परमात्माके अङ्गस्वरूप उसमें शाश्वत सत्ताका भी अस्तित्व है और क्षणभङ्गुर सृष्टिका अङ्ग होनेसे अ-सत्का भी अस्तित्व है। इस सृष्टिमें वह विशिष्ट स्थान रखता है, उसमें अच्छाई भी है, बुराई भी। इस मनुष्यमें जो कुछ भी अच्छाई है, जो कुछ भी सत्य है वह परमात्माका है, उसके अलावे इन तत्त्वोंके विपरीत अन्य कोई वस्तु जो उसमें है वह अ-सत् है, क्षणभङ्गुर है और कल्याण तथा मङ्गलके नकारात्मक रूपमें उसमें विद्यमान है।

इस प्रकारसे हम देखते हैं कि 'परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है'—इस सिद्धान्तको माननेके फलस्वरूप सूफी यह भी मानने लगे कि वह संसारके सब पदार्थोंमें विद्यमान है। उनके अनुसार सभी दृश्य या अदृश्य वस्तुओंका उद्गम वही है और उससे उनकी अलग सत्ता नहीं है। अच्छे या बुरेमें कोई अन्तर नहीं, क्योंकि सबका पर्यवसान उसी 'एक' में होता

है और मनुष्योंके कर्मोंका विधायक वही है। मनुष्यमें इच्छा-शक्तिका प्रेरक वही है अतएव मनुष्य अपने कर्तव्य-कर्ममें स्वतन्त्र नहीं है। उस परम ज्योतिकी एक रश्मिकी तरह वह है। मनुष्यके भीतर जो ईश्वरीय अंश है और जो उस विशुद्ध सत्ताकी एक चिनगारी जैसा है वह जाने या अनजाने इस बातकी सतत चेष्टामें लगा रहता है कि वह अपने उसी उद्गम स्थलपर लौटकर उसके साथ एक हो जाय लेकिन जबतक उसका वह अ-सत् तत्त्व (शरीर) बना रहता है वह इसमें कृतकार्य नहीं होता[1]। इस शरीरसे पूर्व जो आत्माकी सत्ता थी वह मानो इसमें कैद की हुई है इसलिए सूफी साधक मृत्युका स्वागत करते हैं। उनका कहना है कि मृत्युके द्वारा वे परमात्माके पास फिर पहुँच सकते हैं लेकिन वे यह भी कहते हैं कि परमात्मकी कृपा हुए बिना परमात्माके साथ मिलन सम्भव नहीं। अतएव साधककी सबसे बड़ी साधना यह होती है कि वह अपने इस अ-सत् तत्त्व तथा सत्य प्रतीत होनेवाले 'अहं'के ऊपर विजय प्राप्त करे। यह 'अहं' सबसे अधिक भ्रममें डालनेवाला है और सब दुःखोंका मूल है, अतएव इसपर विजय प्राप्त करना है और इसके लिए इस ज्ञानकी उपलब्धि आवश्यक है कि सचमुचमें परमात्माके सिवा जो कुछ है वह नाशवान है, भ्रम है, अ-सत् है और कल्याणका नकारात्मक स्वरूप है। उसे ही सत्य समझ लेना और इसी भ्रममें अपनेको भुलाए रखना दुःखका कारण है। इसीलिए सूफी साधकोंका कहना है कि इस ज्ञानकी प्राप्तिके लिए तथा परमात्माकी कृपादृष्टिके लिए साधकको निरन्तर परमात्मासे दुआ माँगते रहना चाहिये। सूफीका मुख्य कर्तव्य उनकी दृष्टिमें, यह है कि वह वहदानिया (परमात्माके 'एकत्व' का ध्यान), जिक्र (परमात्माका स्मरण) और तरीका (सूफी मार्गपर अग्रसर होना) में लगा रहे, क्योंकि इन्हींके द्वारा अन्तमें परमात्माके साथ एकमेक होना सम्भवपर है[2]।

---

१. हि. ओ. पो. खण्ड १, पृ० २०।
२. हि. इ., पृ० ६०९।

परमात्मा सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्तोंमें 'वहदतुल वुजूद' है। इस सिद्धान्तका विशिष्ट स्थान रहा है। इस सिद्धान्तने सम्पूर्ण सूफी चिन्ता-धाराको प्रभावित किया है। इस सिद्धान्तके प्रवर्तक मुहिउद्दीन इब्नुल अरबी थे। इनका जन्म स्पेनमें हुआ था और थे बहुत बड़े सूफी साधकों तथा विचारकोंमें थे। उन्होंने अपने आध्यात्मिक अनुभवोंके आधारपर इस सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा की थी और क़ुरान तथा हदीसोंके सहारे इसकी सङ्गति इस्लामके साथ बैठायी थी। यही कारण था कि इस सिद्धान्तका प्रभाव इस्लामी दुनिया और विशेष रूपसे विभिन्न सूफी-सम्प्रदायोंपर व्यापक रहा। इसके बादका कोई भी सिद्धान्त इससे अछूता नहीं रहा। अन्तमें इब्नुल अरबी दमिश्कमें बस गये जहाँ उनकी मृत्यु सन् १२४० ई० के लगभग हुई। जहाँ भी वे गये (उन्होंने काफी भ्रमण किया था) उनका सम्मान लोगोंने किया। वे 'शेखे-अकबर' (सबसे बड़ा शेख) कहे जाते हैं और इसीसे उनके महत्त्वका पता चलता है।

वहदतुल वुजूदके अनुसार वास्तविक सत्ता 'एक' है। उस सत्ताके सिवा अन्य किसी सत्ताका अस्तित्व नहीं और वह एकमात्र सत्ता—परमात्मा है। यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् उसी परम सत्ताकी अभिव्यक्ति है अतएव परमात्मा और जगत्में साम्य है। यह समानता जात और सिफतकी है। यह संसार उसके सिफत (गुणों) की तजल्ली (अभिव्यक्ति) मात्र है[1]। इस प्रकारसे इब्नुल अरबीके मतानुसार परमात्माही एकमात्र सत्ता है और अन्य सभी पदार्थ उसकी अभिव्यक्ति मात्र; 'हमावुस्त' अर्थात् 'सब कुछ वही है' का सिद्धान्त इसीपर आधारित है। इसके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टिका एक ही उद्‌गम है और उसीमें वह लय हो जाती है। इसको स्पष्ट करनेके लिए कहा जाता है कि परमात्माकी सत्ता ही अपनी अभिव्यक्तिमें जादूगरके रुपयेकी नाईं सृष्टिकी सत्ता हो जाती है।

इब्नुल अरबीका कहना[2] है कि शाश्वत और दृश्यमान वस्तुएँ ये

१. सु. क. लॉ., पृ० ५८।
२. मि. इ., पृ० १५५।

दोनों 'एक' के ही पूरक जैसे हैं और उनमें परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जीव, सृष्टिकर्त्ताकी बाह्य अभिव्यक्ति है। मनुष्य, परमात्माका चेतन अंश सिर्फ है जो इस सृष्टिमें प्रकट दीख पड़ता है। और चूँकि मनुष्यकी ज्ञान-परिधि सीमित है इसलिए सभी वस्तुएँ एक ही साथ उसके चिन्तन-क्षेत्रमें नहीं आ पातीं अतएव वह उस चैतन्यके एक अंशको ही प्रकट कर सकता है। वह सत्य तो है लेकिन वही एकमात्र सत्य नहीं है।

परमात्मा और इस दृश्यमान जगत्की अनुरूपताको एक स्थायी अनुभवके रूपमें वह नहीं स्वीकार करता। उसका कहना है कि उस वास्तविक सत्ताको कोई परमेश्वर कह ले, चाहे उसे जगत् कह ले अथवा दोनोंके अन्तर दिखानेमें अपनी असमर्थता प्रकट कर ले लेकिन वह है एक ही। वह परमात्माको सर्वगत अथवा सर्वातीत भी कहनेके लिए तैयार नहीं चूँकि वैसा कहनेका अर्थ उसकी दृष्टिमें द्वैत-भावनाका आरोप है। उसका कहना है कि दोनोंमें कुछ भी कहनेसे उसकी असीमता खण्डित होती है। अतएव उसके 'एकत्व'को दोनोंसे प्रकट किया जाना चाहिये। अल्लाह ही अस्ल है और संसार उसका ज़िल्ल (छाया) है और छाया तो वास्तविककी ही अभिव्यक्ति है इसीलिए संसार उसके अनुरूप है[1]।

इब्नुल अरबीके परमात्मा सम्बन्धी सिद्धान्तको विश्वात्मवाद (Pantheism) समझ लिया जाता है लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं[2] क्योंकि उसका सिद्धान्त कुछ इस प्रकारसे है। मनुष्य अथवा यह संसार परमात्माके मस्तिष्कसे उत्पन्न हुआ है। मनुष्य उसके ज्ञानसे उत्पन्न होकर इस संसारमें आता है और यहाँके अनुभवको प्राप्तकर फिर उसीमें लौट जाता है। अतएव यद्यपि सत्ता एक ही है लेकिन पदार्थोंका अस्तित्व उसके मस्तिष्कमें है जैसे कि किसी निर्माताके मस्तिष्कमें योजनाओं और रूपोंका अस्तित्व रहता है और जब वे उसके मस्तिष्कमें

---

१. मु. क. तौ., पृ० ६२-६३।
२. स्ट. त., पृ० ८।

वर्तमान हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि योजनाएँ तथा रूप ही निर्माता हैं। यह संसार परमात्माके मस्तिष्कमें वर्तमान था। बिना सोचे समझे इसकी सृष्टि नहीं हुई है। परमात्माका ज्ञान और परमात्माकी सत्ता दोनों ही अनादि हैं। अतएव 'हमाउस्त'के सिद्धान्तको विश्वात्मवाद (Pantheism) समझना ठीक नहीं।

इसी चीजको और भी स्पष्ट करते हुऐ ख्वाजा खाँने कहा है कि परमात्मा अपने ही ज्ञानके आलोकमें प्रकट होता है। जिस प्रकारसे एक अँधेरे अजायबघरमें गैसकी रोशनी जला दी जाय तो उस अजायबघरकी प्रत्येक वस्तु एक साथ ही आलोकित हो उठती है उसी तरहसे जब सत्ता ज्ञानसे आलोकित हो उठी तो यह संसार धीरे-धीरे विकसित होता हुआ दृश्यमान हुआ। इस ज्ञानके अभावको उस सत्ताकी कमी नहीं कहा जा सकता बल्कि एक तरहसे वह (ज्ञान) अपने आपमें ही जज़्ब हुआ रहता है और कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता और जब वही अपनेसे अपनेको स्वतन्त्र कर देता है तब उसके गुण प्रकट होते हैं[1]। अरबीने कहा है—अना अना वा अन्ता अन्ता (मैं, मैं ही हूँ और तू, तू ही है)। वह अभिव्यक्त होता है लेकिन वही पदार्थोंकी जात (सत्ता) नहीं है। वह शै (पदार्थ) नहीं है, वह वही है[2]।

इन्सानुल कामिलके प्रणेता शेख करीमे जीली शुहूदिया शाखाके प्रवर्त्तक थे। जीलीका जन्म सन् १३६५-६६ ई० में हुआ था और मृत्यु सन् १४०६ ई० से सन् १४१७ ई० के बीच किसी समय हुई थी। यह दूसरी प्रमुख शाखा है जिसने परमात्माके सम्बन्धमें अपने मत प्रकट किये हैं। ये वहदतुश शुहूदके सिद्धान्तको मानते हैं। इनका कहना है कि परमात्माका स्वरूप (जात) इतना महान् है कि उसके सामने सृष्टिके अन्य पदार्थ नहींके बराबर हैं। उनके मतानुसार यह जात (स्वरूप) ही दृश्यमान है और सिफ़त (गुण) बराबर अव्यक्त रहती है जैसे उपकारीमें छिपे हुए उपकार

१. स्ट. त., पृ० १२।

२. वही, पृ० १८।

नामके गुणको कोई देख नहीं सकता और उपकारी ही प्रकट रहता है[1]।
शुहूदिया परमार्थ और अपरमार्थ दो सत्ता मानते हैं। एक परमात्माकी सत्ता है, दूसरी जीवकी, परन्तु जीवकी सत्ता शून्य जैसी है, उसे अपने अस्तित्वके लिए परमार्थ सत्ताकी अपेक्षा है। जब गुण (सिफ़त) अभिव्यक्त (ज़ाहिर) होते हैं तब उनको नाम दिये जाते हैं अतएव ये नाम दर्पणके सदृश हैं जो परम सत्ताके सभी रहस्योंको प्रकट करते हैं। जीलीका कहना है—उसकी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण सत्ताओंमें अन्तर्निहित है और वह सृष्टिके प्रत्येक अणुपरमाणुमें अपनी पूर्णताको अभिव्यक्त करता है। वह खण्डोंमें विभक्त नहीं है। सृष्टिके सम्पूर्ण पदार्थ उसकी पूर्णताके कारण हैं और उसके दिये हुए नामसे ही नामवाले हैं।......सृष्टि बरफ़के समान है और तेज-स्वरूप परमात्मा जलके समान है जो बरफ़का मूल है। उस जमी हुई वस्तुका नामकरण बरफ़ हुआ है पर जल ही उसका असली नाम है[2]।

सृष्टि परमात्माके गुणोंमें उसकी (परमात्माकी) अभिव्यक्तिमात्र है। यह जगत्-प्रपञ्च उसकी गुणावलीका समाहार है। परमात्मा अपनी सत्ता-को अपने गुणोंमें अभिव्यक्त करता है इसका मतलब यह है कि वह स्वयं अपने स्वरूपके ज्ञानकी उपलब्धि कर रहा है। वास्तवमें मनुष्य परमात्मा-के नाम और गुणमें विश्वास करता है अतएव मनुष्यके विश्वासोंमें ही वह अभिव्यक्त होता है। यह विश्वास ज्ञान और चिन्ताके सहारे ही टिका हुआ है। इसलिए वह ज्ञानके सहारे ही मनुष्यके निकट अभिव्यक्त होता है।

परमात्माकी अभिव्यक्ति और सृष्टि-प्रक्रियाके सम्बन्धमें सूफियोंमें तन-ज़्ज़ुलका सिद्धान्त प्रचलित है। इसके द्वारा उन्होंने यह बतलानेकी चेष्टा-की है कि किस प्रकारसे वह परमसत्ता अपनेको अभिव्यक्त करती है,

---

१. स्ट. त., पृ० ९।

२. इन्सानुल कामिल, जिल्द १, पृ० २८ (सूफि०, पृ० १४३ पर उद्धृत)।

उसकी जात (सत्ता) और सिफ़त (गुण) तथा सृष्टिकर्त्ता (रब) और सृष्टि (अब्द) में कौन-सा सम्बन्ध है। इसमें तीन अवस्थाएँ बतलायी जाती हैं।

प्रथम अवस्थामें वह परमसत्ता (अल-वुजूदुल मुतलक़) केवल सत्ता (अल-जात) मात्र है। उस अवस्थामें वह निर्गुण, निरपेक्ष रहती है। वह सम्पूर्ण रूपसे अनभिव्यक्त, निर्विशेष और सम्बन्धविहीन रहती है। इस अवस्थाके दो रूप हैं—(१) अल-अमा, (२) अहदियत। इसमें 'अल-अमा' आभ्यन्तर रूप है और 'अहदियत' बाह्य रूप। 'अल-अमा' से मतलब 'घनान्धकार' से है। होनेवाली सृष्टिके बीजमात्र रूपमें परमात्मा इस अवस्थामें रहता है। इसका समर्थन एक हदीससे होता है। अबीदरने पैग़म्बरसे पूछा कि सृष्टिके पूर्व परमात्मा कहाँ था। मुहम्मदने जवाब दिया कि वह 'अल-अमा' की अवस्थामें था जिसके न ऊपर ही हवा है और न उसके नीचे ही[1]। दूसरा 'अहदियत' बाह्यरूप है। इसमें परमात्मा अपने आपको सर्वातीत सत्ताके रूपमें जानता है। इसमें परमात्माको सब कुछसे परे अपने 'एकत्व' का ज्ञान रहता है[2]।

प्रथम अवस्थाके बादकी नीचेकी दूसरी अवस्था 'वहदत' कहलाती है। इसी अवस्थाको 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' कहते हैं। कहा जाता है कि इस अवस्थामें जात (सत्ता) से भिन्नत्व नहीं होता और न एक दूसरेसे ही भिन्नता होती है। इस प्रकारसे यह सृष्टि बीज रूपमें परमात्माके ज्ञानमें वर्तमान रहती है। इस अवस्थाके भी दो रूप हैं। आभ्यन्तर रूप 'हूवीय्यत' कहलाता है और बाह्यरूप 'अनीय्यत'। हूवीय्यतसे मतलब 'तत्-त्व' है। इसमें शुद्धसत्ता 'अनेक' विरोधी रूपमें ही अपने 'एकत्व' को जानती है। और 'अनीय्यत' जो बाह्यरूप है उसमें विशुद्ध सत्ताको 'एक' की 'अनेक'में अभिव्यक्तिका बोध होता है। इस अवस्थामें उसे 'अनेकत्व' के मूलमें 'एक' के रहनेका ज्ञान होता है। 'वहदत' की अवस्थामें 'तत्-त्व' उस 'एक'से बाहर नहीं है। और न इस 'तत्-त्व'का बोध करानेवाला

---

१. सूफी०, पृ० ५४ तथा स्ट. त., पृ० ५१।
२. स्ट. इ. मि., पृ० ९४–९५।

उससे कोई बाहर है। इस अवस्थामें जैसे वह 'एक' अन्तर्दर्शन करता रहता है और जब इस अवस्थाके बाह्यरूप 'अनीय्यत' (अहं-ता) में वह जैसे सृष्टिको ध्यानमें रखकर अपनी ओर सङ्केत करता रहता है। इस द्वितीय अवस्थामें भी परमात्माका अनभिव्यक्त रूप ही रहता है लेकिन इसमें जैसे उसे अपने आपका ज्ञान रहता है। वह इस अवस्थामें अनभिव्यक्त रहते हुए भी आत्मज्ञ है। 'तत्-त्व' में वह 'अनेक'का विरोधी 'एक' है और 'अहं-ता'में 'अनेक' का आश्रय 'एक' है। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट समझ रखना चाहिये कि इस प्रकारसे दो रूपोंके कहनेमें द्वैत नहीं है। गुल्शनेराजमें कहा गया[1] है कि उस सृष्टिके कारणस्वरूप परम सत्यमें 'वह', 'मैं' और 'तू' एक ही वस्तु हैं, उसका 'एकत्व' विभेदोंसे परे है।

तृतीय अवस्था 'वाहिदीयत' है। वह परमात्माके नामरूप-विशिष्ट जगत्-प्रपञ्चमें अभिव्यक्त होनेकी अवस्था है। इस अवस्थामें अनेकत्वमें एकत्वकी अभिव्यक्ति होती है। परमात्माका ज्ञान सभी पदार्थोंमें परिव्याप्त हो जाता है। अब स्थूल जगत् प्रकाशित होता है। सूक्ष्मावस्थाके बाद सत्ताका स्थूल रूप उद्भासित होता है। जीवन प्रकट होता है।

इस प्रकारसे प्रथम विशुद्धस्वरूप मात्र परमसत्ता थी। उस समय परमात्मा निरपेक्ष, सम्बन्धविहीन, निर्गुण अनभिव्यक्त रहता है यह 'अहदियत' की अवस्था है। इसके बाद वह आत्मज्ञ होता है और सत्ता, प्रकाश और शक्तिका उसे भान होता है यह 'वहदत' की अवस्था है। और तृतीय अवस्था वाहीदीयतमें सत्ता, जीवनमें; प्रकाश, अहंमें तथा शक्ति, इरादा (इच्छा) में परिणत हो जाते हैं। इसके बाद देखने, सुनने और बोलनेकी शक्तिका आविर्भाव होता है।

जब सत्ताके विभिन्न गुण जीवन, ज्ञान, शक्ति, इरादा, सुनना, देखना और बोलना आदि प्रकट होते हैं तब वह लाहूत (देवत्व) के नामसे अभिहित होता है और जब उसके गुण क्रियात्मक रूप धारण करते हैं जैसे सृष्टि करना, जीवनदान करना, मारना तब उसे जबरूत (शक्ति)

---

१. सूफी०, पृ० ५६।

कहते हैं। जब ये क्रियाशील गुण विभिन्न लोकोंमें प्रकट हुए तब उन्हींके अनुरूप उनका नामकरण भी हुआ। जैसे जब ये देवलोकमें प्रकट हुए तब वे 'आलमे मल्कूत' कहलाये और सदृशरूपोंमें प्रकट होनेके कारण वे 'आलमे-मिसाल' कहलाये तथा भौतिक जगत्में अभिव्यक्त होनेपर 'आलमे-नासूत'[१]।

सूफियोंके 'पाँच जगतों' की थोड़ी सी और चर्चा कर लेना अपेक्षित होगा। इन्हें सूफी 'अवालिमे-खम्स' कहते हैं। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिये कि ये पाँच जगत् (अवालिमे-खम्स) पाँच स्थान विशेष नहीं हैं बल्कि तनज्जुल (अवतरण) में अस्तित्वकी पाँच स्थितियाँ हैं। इन जगतोंके प्रकार तथा उनकी संख्या और प्रकृति आदि-को लेकर नाना प्रकारके मत दिखाई पड़ते हैं इसलिए ठीक एक ही प्रकारका वर्णन उनका नहीं मिलता।

एक हदीसमें कहा गया है—'अठारह हजार जगतोंमें तुम्हारा जगत् एक है।' सूफियोंने पाँच जगतोंकी कल्पना सम्भवतः इसी आधारपर की है। गिब्बने पाँच जगतोंके सम्बन्धमें जो लिखा है उसका सारांश इस प्रकार है—'समस्त ब्रह्माण्डको परिव्याप्त किये हुए आल्मे-नासूत है जो सभी पदार्थोंका उद्गम है। उसके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जा सकता और उसे पञ्च जगतोंमें नहीं गिनते। ये पाँच जगत् अस्तित्वकी विभिन्न पाँच स्थितियोंके अनुरूप हैं। स्थितियों और जगतोंके नाम निम्नलिखित हैं—

स्थिति	जगत्
(१) हजरते-गैबे-मुतलक (सम्पूर्ण अदृश्यावस्था) अथवा हजरते अमा (अन्धकाराच्छन्नावस्था)	(१) आलमे-अयाने-साबित (अप-रिवर्तित जगत्)
(२) गैबे-मुजाफ (सापेक्षया अदृश्य)	(२) आलमे-जबरूत (ज्ञान-विज्ञान और आत्माओंका जगत्)

१. सूफी०, पृ० ५७।
२. ओ. पो., पृ० ५४–५६।

(३) आलमे-मिसाल(सादृश्यावस्था) (३) आलमे-मलकूत (देवलोक) और कभी-कभी इसे आलमे-बरज़ख (बीचका जगत्) भी कहते हैं चूँकि यह चौथेकी प्रायः सीमापर है।

(४) आलमे-शहादत (दृश्यमान जगत्) (४) आलमे-मुल्क (भौतिक जगत्)

(५) आलमे-इन्सान (मानव जगत्) यह समस्त ब्रह्माण्डको अपने भीतर छिपाये हुए है।

इस दृश्यमान भौतिक जगत्‌के द्वारा देवलोक अभिव्यक्त होता है जब कि स्वयं देवलोक द्वारा आलमे-जबरूतकी अभिव्यक्ति होती है। आलमे-अयाने-साबितकी अभिव्यक्ति आलमे-जबरूत द्वारा होती है और आलमे-अयाने-साबित (अपरिवर्त्तित जगत्) परमात्माके नामों और गुणोंको प्रकट करनेवाला है। नामों और गुणोंवाला जगत् , परमात्माके एकत्वको अभिव्यक्त करता है। इसमें आलमे-मिसाल, भावाविष्टावस्था भी है जिसमें आत्मा उस परम सौन्दर्यको देखता हुआ बेसुध रहता है। यह स्वप्नावस्था नहीं। वह सोता नहीं है फिर भी जागते रहनेपर भी इस संसारके लिए 'नहीं' के जैसा रहता है।

सृष्टिके द्वारा अपनेको अभिव्यक्त करनेकी इच्छा जब परमात्माको हुई तब परमात्माने अपनी ही ज्योतिसे एक ज्योतिका निर्माण किया। यह ज्योति 'नूरे-मुहम्मद' या 'नूरे-अहमद' कही जाती है। इस ज्योतिको देखकर परमात्मा उसपर मुग्ध हो गया। इसी ज्योतिके लिए परमात्माने सृष्टिकी रचना की। यह ज्योति ही सृष्टिका आदि-कारण है। इस ज्योतिके द्वारा ही परमात्माने ब्रह्माण्डका निर्माण किया।

इस ज्योतिसे सृष्टिकी रचनाका क्रम भी बतलाया गया है। जब परमात्माने प्रेमभरी दृष्टिसे इस ज्योतिकी ओर देखा तब शर्मके कारण उसे पसीना आ गया। उस पसीनेके सूक्ष्म तत्त्वसे परमात्माने प्रथम

आत्माकी रचना की और बादमें इसी प्रकारसे निम्नसे निम्न स्तरके विभिन्न आत्माओंकी रचना की।

दूसरी बार परमात्माने जब फिर उस ज्योतिकी ओर देखा तो फिर उसे पसीना आया और उससे परमात्माने शरीर धारण करनेवाली दुनियाकी सृष्टि की। और जो प्रथम वस्तु निर्मित हुई वह 'अर्श' है। यह 'अर्श' परमात्माका सिंहासन है और इस अर्शके नीचे परमात्माने 'कुर्सी'की सृष्टि की। इस 'कुर्सी'पर परमात्माके पैर रहते हैं और यह अर्शके नीचे है[1]। इस 'अर्श' और 'कुर्सी'की कल्पना जरा कठिन है। इसकी कुछ कल्पना इस बातसे हो सकती है कि सूर्यके विशाल आकारकी तुलनामें मनुष्यका शरीर सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। अब सूर्य जिस आकाशमें है तथा उसके चारों ओर जो आकाश फैला हुआ है उसकी तुलनामें उसका अस्तित्व नहींके बराबर है। इस प्रकारसे आगे बढ़ते हुए 'कुर्सी' तक अगर पहुँचा जाय, जिस 'कुर्सी'में ये सभी वस्तुएँ आ जाती हैं तो यह एकके बाद दूसरेकी तुलना कल्पनातीत हो उठती है। और इस 'कुर्सी'की तुलना परमात्माके 'अर्श'के साथ करना कठिन है चूँकि 'कुर्सी' तुलनामें अत्यन्त छोटी साबित होगी। गज़ालीने[2] आत्माके स्वरूप (हक़ीक़ते-रूहे-इन्सानी) का निरूपण करते हुए उपर्युक्त विवेचना उपस्थित की है जिससे इस सृष्टि-क्रमकी विचित्रताका कुछ अनुभव किया जा सकता है।

'अर्श' तथा उसकी ज्योतिके नीचे परमात्माने एक हरे रंगकी पटियाका निर्माण किया तथा पन्ना (emerald) जैसे हरे रंगकी कलम बनायी और उसे उजले रंगकी ज्योतिकी स्याहीसे भर दी और कलमसे कहा कि 'लिख' और कलमने उस पटियापर क़यामतके दिनतक जो कुछ होगा उसे लिख दिया और सारी पटिया भर गयी।

'कुर्सी'के नीचे थोड़ा दाहिनी ओर झुककर उसने उजले मोतीके जैसा एक लोकका निर्माण किया जिसमें कमलका गाछ है। इससे ऊपर-

---

१. ओ. पो., पृ० ३४–३५।
२. स्ट. त., पृ० १६७।

वाले लोकमें जाना सम्भव नहीं। उजले मोतीवाला लोक जिब्राइलका आवास-स्थान है। इसी स्थानपर तूबा वृक्षकी जड़ है।

यह तूबा वृक्ष आठ स्वर्गोंके आठ बागोंमें फैला हुआ है। इसकी शाखाएँ प्रत्येक स्वर्गमें स्थित बागमें फैली हुई हैं और उन स्वर्गोंमें रहनेवाले व्यक्तियोंमें प्रत्येकके वास-स्थानपर उसकी डाली गयी हुई है। 'तूबा' का अर्थ नैसर्गिक आनन्द है। ये आठ स्वर्ग एक दूसरेके भीतर हैं और विभिन्न स्तरोंमें ऊपरकी ओर उठते गये हैं। इनमें सबसे ऊँचा और सबसे भीतरी स्वर्ग 'जन्नते-अदन' है और इसी 'जन्नते-अदन' में स्वर्गीय विभूतिकी एक झलक पायी जा सकती है। इस विभूतिका प्रत्यक्ष करना सभीके भाग्यमें नहीं जुटता। साधक अपनी साधनामें अग्रसर होता हुआ परमात्माकी कृपा द्वारा ही इस विभूतिके दर्शन करनेमें समर्थ हो पाता है। इन स्वर्गोंमें वैसे ही लोग वास करते हैं जो भगवत्कृपा प्राप्त किये हुए रहते हैं। इन पुण्यात्माओंके लिए स्वर्गमें बड़े-बड़े प्रासाद बने हुए हैं और उनमें सुन्दर बाग हैं। इन स्वर्गोंमें नदियाँ बहती रहती हैं। उनमें तीन मुख्य हैं। जिनके नाम कवसर, तन्सीम और सल्सबील हैं। इन नदियोंका उद्गम-स्थल सबसे ऊँचे स्वर्ग 'जन्नते-अदन' में है और वे सबसे नीचेवाले स्वर्गतक बहती चली जाती हैं। यहाँके निवासी हूरें, गिल्में हैं। ये हूरें स्वर्गीय शोभावाली हैं और सभी प्रकारके गुणोंसे विभूषित हैं। ये पुण्यात्माओंकी दुलहिनें हैं और गिल्मे सर्वदा एक जैसे बने रहनेवाले नौजवान हैं जो इन पुण्यात्माओंकी सेवामें लगे रहते हैं। स्वर्गकी देख-रेख करनेवाला एक देवदूत है जो रिजवाँ कहलाता है। इन स्वर्गोंके नाम इस प्रकारसे गिनाये गये हैं। सबसे ऊँचा चमकीले मोतीवाला स्वर्ग (१) जन्नतुल अदन है और उसके बाद नीचेकी ओरके स्वर्ग क्रमशः निम्नलिखित हैं—(२) विशुद्ध कस्तूरीवाला स्वर्ग, जन्नतुल करार, (३) लाल सुवर्णवाला स्वर्ग-कानन, जन्नतुल फिरदौस, (४) उजली चाँदीवाला आनन्द-कानन, जन्नतुल-नईम, (५) पीले मूँगेवाला शाश्वत-कानन, जन्नतुल-खुल्द, (६) हरे पत्थरवाला आवास-कानन, जन्नतुल-मेव, (७) लाल

रुबीवाला शान्ति-प्रासाद, दारुस्सलाम तथा (८) उजले मोतीवाला विभूति-प्रासाद, दारुल-जलाल हैं। इस क्रममें बहुतोंने कुछ हेरफेर भी किये हैं।

आठों स्वर्गोंके नीचे छः समुद्र हैं और उनके नीचे सात आसमान। ये सात आसमान एक दूसरेके ऊपर चँदोवेकी तरह फैले हुए हैं और कोहक़ाफ (क़ाफ पर्वत) की आठ श्रेणियोंमें जो सात श्रेणियाँ बाहर निकली हुई हैं उन्हींपर वे आसमान टिके हुए हैं। यह कोहक़ाफ समस्त पृथ्वीको चारों ओरसे घेरे हुए है। सबसे निचले आसमानके नीचे पानीका एक समुद्र है और इसी समुद्रमें सूर्य, चाँद तथा सितारे तैरते फिरते हैं। यह समुद्र हवापर टिका हुआ है लेकिन उसकी एक बूँद भी नीचे नहीं गिरती। इस हवावाले समुद्रके बीच एक और दूसरा पानीका समुद्र है जो आसमान और पृथ्वीके बीचोबीच है। इसी पानीवाले समुद्रसे वर्षा नीचे आती है जिसकी प्रत्येक बूँदके साथ एक देवदूत नीचे आता है और उस बूँदको यथास्थान रख देता है। ये देवदूत प्रकाशसे निर्मित अशरीरी हैं अतएव उनमें आपसमें टकरानेका प्रश्न ही नहीं उठता।

यह समस्त पृथ्वी आठ पर्वतमालाओंसे घिरी हुई है। क़ाफ पर्वतकी इन आठ श्रेणियोंकी आठ गोलाइयाँ बन गयी हैं जिनसे यह पृथ्वी जो चिपटी है, घिरी हुई है। जो सबसे बाहरवाला पर्वत है उसके चारों ओर एक बड़ा सर्प लिपटा हुआ है। इन पर्वत-श्रेणियोंमें एक-एकके बाद एक-एक समुद्र है। एक पर्वत-श्रेणीके बाद एक समुद्र है और इस प्रकारसे समुद्रोंकी संख्या सात है जिनसे पृथ्वी घिरी हुई है और वे स्वयं पहाड़ोंसे घिरे हुए हैं। सबसे भीतरवाला पर्वत सबसे भीतरवाले समुद्रसे घिरा हुआ है। इस समुद्रका नाम 'बहरे-मुहीत' है। प्रत्येक पहाड़ और प्रत्येक समुद्र-की चौड़ाई कुछ ऐसी है कि उसे पार करनेमें पाँच सौ वर्षोंकी यात्रा तय करनी पड़ती है। इस पृथ्वीका बहुत ही कम हिस्सा आबाद है। और पहाड़ों तथा समुद्रोंके गैर-आबाद इलाकोंमें जिन्न तथा परियोंका निवास है।

यह पृथ्वी जिसपर मनुष्य वास करता है, सबसे ऊपरवाली पृथ्वी है।

इसके नीचे और छः पृथ्वियाँ हैं। ये सभी पहले समुद्रमें जहाजकी तरह तैरती फिरती थीं। परमात्माने एक देवदूतको इन्हें पकड़कर अपने कन्धेपर स्थिर करनेके लिए कहा। उस देवदूतके नीचे परमात्माने एक बड़ी-सी चट्टान रख दी और उस चट्टानके नीचे एक बहुत बड़ा साँड़। इस साँड़के नीचे एक बड़ी मछली और उस मछलीके नीचे एक महासागर। इस महासागरके नीचे नरकके सात स्तर हैं और उन स्तरोंके नीचे एक भयङ्कर तूफान और उसके नीचे एक अन्धकार और उसके भी नीचे एक पर्दा (हिजाब) और उसके नीचे मनुष्यकी बुद्धिकी पहुँच नहीं है[1]।

सृष्टिक्रमके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मत हैं। उन सभीका जिक्र करना यहाँ सम्भव नहीं है अतएव ऊपर जिस मतकी चर्चा की गयी है उसके अलावा सृष्टिक्रमके सम्बन्धमें जीलीके मतकी चर्चा करके ही हमें सन्तोष करना पड़ेगा। इन दोनों मतोंसे इसके सम्बन्धमें एक धारणा बनायी जा सकती है और कम या बेशी थोड़ेसे हेर-फेरके साथ सूफियोंमें ये मत मान्य हैं।

इस सृष्टिके निर्माणके पहले अव्यक्त परमात्मा अपने आपमें ही था और सभी तत्त्व उसीमें वर्त्तमान थे। अव्यक्त परमात्मा अल-अमाकी अवस्थामें था और वह सम्बन्ध-विहीन था। यही 'हक़ीक़तुल हक़ायक' (परमात्माका सम्पूर्ण ज्ञान) है और यह सभी सम्बन्धोंसे परे है। यह 'हक़ीक़तुल-हक़ायक' और 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' एक ही हैं। एक हदीसमें इसे अल-याक़ूततुल बैज़ा (सफ़ेद याक़ूत) भी कहा गया है। परमात्मा इसी अवस्थामें था जब कि यह सृष्टि निर्मित नहीं हुई थी। परमात्माको सृष्टि-रचनाकी इच्छा हुई तब उसने 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' पर अपनी पूर्ण दृष्टि डाली। परमात्माकी इस पूर्ण अभिव्यक्तिको बर्दाश्त कर लेना उसकी शक्तिके भी बाहर है यद्यपि वही (हक़ीक़तुल मुहम्मदिया) सृष्टिका उद्गम है। इस-लिए परमात्माकी दृष्टि पड़ते ही वह गलकर जल हो गया। अब परमात्मा-

---

१. गिब्ब : हिस्ट्री आफ ओटोमन पोएट्री (पृ० ३४-३९) के आधारपर।

ने उसके ऊपर ऐश्वर्यपूर्ण दृष्टि डाली। इस दृष्टिके पड़नेसे उसमें तरङ्ग तथा फेन पैदा हुए। इस फेनसे परमात्माने सात पृथ्वियाँ तथा उसके निवासी बनाये। उस जलसे जो बाष्प उड़ा उससे परमात्माने सात आसमान और प्रत्येकमें रहनेवाले देवदूतोंकी सृष्टि की। तब परमात्माने उस जलको सात समुद्रोंमें परिणत कर दिया जो संसारके चतुर्दिक फैले हुए हैं और इसी प्रकारसे सृष्टि बनी[1]।

'आदि-कारण' (परमात्मा) ने अपने ही अनुरूप आदिभूतकी रचना की। यह प्रथम अभिव्यक्ति विशुद्ध ज्ञान है और इसे 'अक़्ले अव्वल' अथवा 'अक़्ले कुल' (विश्व-ज्ञान) कहते हैं। इस विश्व-ज्ञानके तीन पहलू हैं। प्रथम, 'हक़्क' जिसके द्वारा वह 'आदि-कारण' को जाननेमें समर्थ होता है। दूसरा, 'नफ़्स' इसके फलस्वरूप वह अपने आपको जानता है और तीसरा 'मुहताज' जिससे वह जानता है कि उसे परमात्माका सहारा है, उसे उसीपर निर्भर करना है। कहा जाता है कि एक वस्तुसे एक ही वस्तु अभिव्यक्त होती है इसलिए इन तीनोंसे क्रमशः फिर तीन चीजें निकलीं। 'हक़्क'से 'द्वितीय ज्ञान' और 'नफ़्स'से 'नफ़्से कुल' अथवा 'नफ़्से अव्वल' (विश्वात्मा) और 'मुहताज'से 'विश्व-शरीर' (जिस्मे-कुल्ल)। इसी प्रकारसे यह क्रम चलता है और अन्तमें 'दसवाँ ज्ञान', 'नवाँ आत्मा' और चन्द्रलोकतक पहुँच जाता है।

सप्तग्रहोंके सम्बन्धमें निम्नलिखित बातें कही जाती हैं।

(१) चन्द्रलोक, परमात्माने इसे 'अल-रूह'से बनाया। इसका रंग चाँदीसे भी उजला है। परमात्माने इसे आदमका वास-स्थान बनाया।

(२) बुध, यह धूसरवर्णका है और देवदूतोंका निवासस्थान है।

(३) शुक्र, यह आलमुल-मिसालका लोक है और पीले रंगका है। इसमें नाना प्रकारके देवदूत हैं जिन्हें नाना प्रकारके काम सौंपे गये हैं।

(४) सूर्य, इसका निर्माण कल्बसे हुआ। इसमें इद्रीस, यीशू, सोलोमन आदि मसीहों और पैग़म्बरोंका वास है। इसके अधिपति देवदूत

१. स्ट. इ. मि., पृ० १२१-१२२।

इस्राफील हैं।

(५) मङ्गल, इसके अधिपति मृत्युके देवदूत अजरायल हैं। यह गाढ़े रक्त-वर्णका है।

(६) बृहस्पति, यह नीलवर्णका है। यहाँके देवदूतोंका प्रधान माइकेल है। यहाँके देवदूत मङ्गलकारी और करुणामय हैं। इनमें कुछ पशुकी आकृतिवाले हैं, कुछ चिड़ियोंकी आकृतिवाले और कुछ मनुष्योंके जैसे हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जो आधा आग और आधा बर्फके बने हुए हैं।

(७) शनि, यह सर्वप्रथम बना था और इसका रंग कृष्णवर्ण है। मुहम्मदकी ज्योतिसे इसका निर्माण हुआ था। इन सातोंके बाद एक आठवाँ लोक है और वह स्थिर तारागणोंका लोक है और सबसे बाहरवाला नवाँ लोक फलकुल-अफलाकका है। इसे चर्ले-आजम भी कहते हैं। यहाँ न तारे हैं, न किसी प्रकारके चिन्ह। इन नौ लोकोंमें प्रत्येकको ज्ञान, आत्मा और शरीर है।

अतएव सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर मानवके आविर्भावका क्रम कुछ इस प्रकारसे समझा जा सकता है। परमात्माने जब सृष्टिकी इच्छा की तब अपनी ज्योतिसे 'नूरुल मुहम्मदिया'का निर्माण किया। यह आदिभूत है। इस आदिभूतके साथ परमात्माका साक्षात् सम्बन्ध है। यही 'विश्व-ज्ञान' है और यही जगत्का आदिरूप है। आदिभूतसे मौलिक तत्त्व, स्वर्ग, चार तत्त्व, आकाश, तारा आदिका आविर्भाव हुआ। चार तत्त्व (अग्नि, हवा, जल और पृथ्वी) सबसे पहले आविर्भूत होनेवाले पदार्थ हैं। दृश्यमान् जगत्में सर्वप्रथम रूपग्रहण करनेवाले ये ही चार तत्त्व थे। इनमें सबसे ऊपर अग्नि है, उसके बाद हवा, उसके बाद जल और तब पृथ्वी। ये जैसे एक वृत्तके भीतर दूसरे वृत्तकी नाईं एक दूसरेके ऊपर क्रमसे हैं। इनके भिन्न गुण हैं और उनके कुछ ऐसे भी गुण हैं जो दूसरे तत्त्वके समान हैं और इन्हीं समान गुणोंके कारण एकसे दूसरे रूपमें परिवर्तित होते रहते हैं। जैसे अग्नि सूखी और गर्म है, हवा गर्म और नम, पानी नम और ठण्डा तथा पृथ्वी ठण्डी और सूखी। इस प्रकारसे सारा चक्कर

पूरा हो जाता है। अग्नि और हवामें समान गुण 'गर्मी'का है अतएव इस समान गुणके कारण एकका दूसरे रूपमें परिवर्तन होता है। इसी प्रकारसे अन्य तत्त्वोंमें भी है। यह परिवर्तन सप्तग्रहोंके प्रभावसे होता है। इससे धातु, उद्भिद् और जीव-जन्तुका उद्‌भव होता है। इसीलिए सप्त-ग्रहोंको 'पितृसप्तक' (अबा-ए-सबा) कहते हैं और चार तत्त्वोंको 'मातृ-चतुष्टय' (उम्महते-अरबा) कहते हैं। सबके अन्तमें मानवका उद्‌भव होता है। जीव-जन्तुकी चरम परिणति मानवमें जाकर समाप्त हो जाती है।

जीव जगत्‌में अन्यतम मानव है और मानवोंमें भी उच्चतम और अन्यतम 'पूर्ण-मानव' (इन्सानुल कामिल) है। सभी प्राणी जाने या अन-जाने इस पूर्ण-मानवके स्तरतक पहुँचनेके लिए सचेष्ट रहते हैं चूँकि यहीं पहुँचकर वे 'प्रथम ज्ञान' में प्रवेश कर जाते हैं। और यहीं पहुँच कर आत्मा उस परम-ऐश्वर्यके अन्तरमें प्रवेश कर सकती है। वहींसे नीचेकी ओर उसकी यात्रा शुरू हुई थी और फिर वहीं पहुँचकर वह समाप्त हो जाती है। यह यात्रा 'दौराने-वुजुद' कहलाती है।

नीचेकी ओरकी इस यात्राको तरीके-मब्द अर्थात् बाहरकी ओर यात्रा कहते हैं। ज्योति-किरण, ज्ञान, आत्मा, लोकों और तत्त्वोंसे होती हुई पृथ्वीतक पहुँचती है। इसके बाद ऊपरकी ओर यात्रा शुरू होती है और यह तरीके-मआद अर्थात् गृहाभिमुख यात्रा कहलाती है। यह यात्रा धातु, उद्भिद्, जीव-जन्तुसे मानवतक पहुँचती है। मानवकी यात्रा ऊपरकी ओर 'पूर्ण-मानव'के स्तरतक पहुँचती है।

'पूर्ण-मानव' (इन्सानुल-कामिल) के सिद्धान्तको स्पष्टतया समझनेके लिए यह आवश्यक है कि परमात्माके स्वरूप, सृष्टि और मनुष्यके सम्बन्ध-को अच्छी तरहसे समझ लिया जाय। परमात्मा और सृष्टि तथा मनुष्यके सम्बन्धकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं फिर भी उसकी थोड़ी-सी और चर्चा कर लेना हम आवश्यक समझते हैं। सूफी परमात्माके एकत्वपर जोर देते हैं, यह हम पहले ही देख चुके हैं। वे परमात्माको अल-हक्क (परमसत्य) कहते हैं। प्रतीयमान जो विभिन्न रूप दीख पड़ते हैं वे उस

सत्यकी अभिव्यक्ति और दिक् (aspect) मात्र हैं। यह दृश्यमान जगत् उस सत्यका बाह्य प्रकाशमात्र है। उसे 'एक' भी जो कहा जाता है वह वास्तवमें उसके स्वरूपका निर्देश करने भरके लिए ही, चूँकि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, भाषाके द्वारा उसको समझाया नहीं जा सकता इसलिए 'एक' कहकर किसी प्रकारसे उसे समझानेकी चेष्टा की जाती है। हम जिसे 'एक' कहते हैं, 'पूर्ण' कहते हैं वह 'एक' से भी परे है, 'पूर्ण' से भी परे है। उसके सम्बन्धमें किसी सत्ता, किसी सम्बन्ध, किसी जात, किसी गुणादिकी कल्पना नहीं की जा सकती। उसके सम्बन्धमें न यही कहा जा सकता है कि वह विद्यमान है। उसको किसी परिभाषाकी परिधिमें नहीं बाँधा जा सकता। नाम और गुणके अनेकत्वसे वह परे है। उसके नाम और गुण उसीमें निहित हैं, 'वह' 'वह' है; वे (नाम, गुण, पदार्थादि) 'वह' नहीं हैं। नाम और गुणोंके द्वारा हम उसे समझनेकी चेष्टा करते हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इनका अस्तित्व है। ये नाम और गुण अन्का पक्षी (काल्पनिक पक्षी जिसका वास्तवमें अस्तित्व नहीं, केवल नामसे ही जाना जाता है) की तरह हैं।

विभिन्न नामोंसे जैसे दयालु, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, आदि-अन्त-हीन कहकर पुकारनेका मतलब यह है कि इन भिन्न-भिन्न गुणोंके जरिये हम उसे याद करते हैं। ये सभी गुण और नाम उसके 'एकत्व' में निहित रहते हैं वैसे वह इन नामों और गुणोंसे परे है, लेकिन जब वह परम सत्ता, विशुद्ध स्वरूप परमात्मा, क्रमशः अपनी अभिव्यक्तिमें अवतरित होता है तब ये नाम और गुण प्रकट होते हैं।

यह विश्व उन गुणावलियोंका समूह है। जिस सृष्टिको हम दृश्यमान और अवास्तविक कहते हैं वह वास्तवमें उस सत्यको प्रकट करनेवाला बाह्य आकार है। यह अवतरण क्रमशः नाना स्तरों और रूपोंको पार करता हुआ भौतिक जगत्में प्रकट होता है। इस क्रम द्वारा गुण और सत्ता-का अन्तर दीख पड़ता है और ये दोनों एक दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं

लेकिन वास्तवमें वे दोनों एक ही हैं। बरफ़ और जलका उदाहरण इसको स्पष्ट कर देता है। रूपमें फ़रक होते हुए भी वे दोनों एक ही हैं। अतएव यह तथाकथित जो दीख पड़नेवाला विश्व है वह असत्य नहीं बल्कि उसी एकमात्र सत्यकी अपने-आपमें अभिव्यक्ति है। इस प्रकारसे जो निरपेक्ष सत्ता है उसमें यह 'नानात्व' उसके अवतरणके साथ प्रकट होता है, लेकिन यह नानात्व उसीमें अन्तर्निहित है। इस प्रकारसे जो परम सत्ता निरपेक्ष थी, 'एकत्व' से परे थी, काल, स्थान, गुण, नामसे परे थी, वह धीरे-धीरे अपनी इच्छासे एक स्तरसे दूसरे स्तरमें अवतरित होती हुई अपने आपको नाना नामों और गुणोंसे विभूषित करती हुई प्रकृतिके असंख्य रूपोंमें प्रकट होती है। लेकिन यह अनेकत्व, ये असंख्य रूप, नाम और गुण परिवर्तनशील हैं, वही 'एक' एक रह जाता है।

वह 'एक' अनेकत्वमें बराबर नहीं रहता, वह फिर अपने पूर्वरूपमें लौटता है। यह 'अनेकत्व' फिर अनेकों स्तरोंको पार करता हुआ ऊपरकी ओर जाता है और अपने उस पूर्वरूपको फिरसे प्राप्त करनेके लिए सक्रिय रहता है। जिस प्रकारसे जल जमकर बर्फ़का रूप धारण करता है लेकिन वह उसी रूपमें नहीं रहता, वह फिर जलका रूप धारण करता है। इसी प्रकारसे 'अनेक' फिर 'एक' हो जाता है।

'अनेक' फिर 'एक' में कैसे लौट जाता है इसे समझनेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य, आत्मा आदिके सम्बन्धमें सूफियोंके दृष्टिकोणको समझाया जाय। सूफियोंका कहना है कि सृष्टिके विभिन्न पदार्थ भगवान्‌के एक या अन्य गुणोंको अभिव्यक्त करते हैं लेकिन मनुष्य उसके समस्त गुणोंको अभिव्यक्त करता है। मनुष्य इस ब्रह्माण्डरूपी बृहत् जगत्‌को अपने भीतर छिपाये हुए है। वह परमात्माकी विशिष्ट सृष्टि है। उसके भीतर ही जैसे परमात्मा अपने समस्त गुणों और विशिष्टताओंको प्रत्यक्ष करता है।

शेख़ अब्दुल्लाका कहना है कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड उन सभी वस्तुओं-का योग है जिसमें प्रत्येक वस्तु परमात्माके नामको अलग-अलग अभि-

व्यक्त करती है लेकिन इनमें उस परमात्माकी पूर्णताको अभिव्यक्त करनेकी सामर्थ्य नहीं है और चूँकि उनसे सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाती थी इसलिए परमात्माने मनुष्यकी सृष्टि की जो उस (परमात्मा) की प्रतिच्छविके आत्मा जैसा है। इस तरहसे मनुष्यमें नामों और गुणोंका सम्मिलन हो जाता है[1]। इस प्रकारसे मनुष्य उन सम्पूर्ण गुणोंको जो अलग-अलग ब्रह्माण्डमें अभिव्यक्त हो रहे हैं, उनको अपनेमें ग्रहण करता है और उन सम्पूर्ण गुणोंके समाहारको अभिव्यक्त करता है। अतएव वह मानव रूपमें क्षुद्र जगत् (आलमे सुग्र) कहलाता है जो बाह्य समस्त बृहत् जगत् (आलमे-कुब्र) को अपनेमें धारण किये हुए है। परमात्माके सभी गुण मनुष्यके हृदयमें प्रतिबिम्बित होते हैं इसलिए मनुष्यके हृदयको जाननेसे परमात्माको जाना जा सकता है।

इन्सानुल-कामिल (पूर्ण-मानव) का सिद्धान्त सूफीमतमें बहुत पहलेसे ही था लेकिन इब्नुल अरबीने सम्भवतः पहले पहल इस शब्दका प्रयोग किया[2]। इब्नुल अरबीकी मृत्यु सन् १२४० ई० के लगभग हुई। उसके एक सौ वर्षसे भी अधिक बीतनेके बाद अब्दुल करीम इब्न इब्राहीम अल-जीलीने 'इन्सानुल कामिल' नामक पुस्तकका प्रणयन किया। उसका जन्म सन् १३६५–६६ ई० में हुआ और सम्भवतः सन् १४०६ ई० में उसकी मृत्यु हुई[3]।

सृष्टिमें मनुष्य, परमात्माकी अन्यतम अभिव्यक्ति है। मनुष्य जीवधारियोंमें सर्वोच्च स्थान ग्रहण किये हुए है लेकिन मनुष्यका चरमोत्कर्ष 'पूर्ण-मानव' है। पूर्ण-मानवमें परमात्माके समग्र गुण प्रकाश पाते हैं। वह मनुष्य तथा परमात्माके बीचकी कड़ी है। परमात्मा उसीमें अपने आपको पूर्ण रूपसे प्रकाशित करते हैं और इस प्रकारसे अपने आपको जानते हैं।

पूर्ण-मानव साधनाके द्वारा सूफीमार्गकी सभी मंजिलोंको पार करता

---

१. इ. ए. प., पृ० १३७।

२. स्ट, इ. मि., पृ० ७७।

३. वहीं, पृ० ८१।

हुआ एक स्तरसे दूसरे स्तरपर ऊपरकी ओर चढ़ता हुआ ऐसी अवस्थाको प्राप्त होता है कि वह परमात्माके साथ 'एकत्व'का बोध करता है। वह परमात्माके अनुग्रहसे जगत्‌की समस्त वस्तुओंका ज्ञान तो प्राप्त किये हुए रहता ही है साथ ही वह परमात्माका साक्षात् दर्शन करनेमें भी समर्थ होता है। अतएव एक ही साथ वह प्रकृति और परमात्मा दोनोंकी शक्तियोंको आइनेकी तरहसे प्रत्यक्ष कराता है।

पूर्ण-मानव वह व्यक्ति है जो परमात्माके साथ 'एकत्व' की पूर्ण अनुभूति प्राप्त किये हुए है। उसका निर्माण परमात्माके अनुरूप ही हुआ है। इब्नुल अरबीने[1] पूर्ण-मानवकी चर्चा करते हुए बतलाया है कि जब परमात्माकी इच्छा हुई कि उसके गुण प्रकट हों तब उसने मानवरूप क्षुद्र जगत् (पूर्ण-मानव) की सृष्टि की जिसमें कि उसके द्वारा परमात्माका 'बोध' (सिर्र) स्वयं उसके निकट अभिव्यक्त हो। आदमसे मुहम्मदतक होनेवाले सभी पैगम्बर, औलिया, सन्त सभी 'पूर्ण-मानव' की कोटिमें आते हैं। इसका मतलब यह है कि सन्त और औलिया ऐसे व्यक्ति हैं जिनका आत्मा परमात्माके आलोकमें लय हो गया है, तथा जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया है और जो अदृश्य और अज्ञात वस्तुओंको निकटसे देख पाते हैं और जानते हैं।

जीलीके[2] अनुसार पूर्ण-मानव सकल वस्तुओंकी सृष्टिका कारण आदि-भूत है। वही परमात्माकी प्रथम चिन्ता है जो क्रमशः भौतिक जगत्‌की ओर अवतरण करता है और फिर उससे मुक्ति पानेकी चेष्टा करता है और अन्तमें अपने मूलस्थानको प्राप्त करता है। वह विश्व-ब्रह्माण्डका रक्षक है। वह क़ुत्ब है जो पृथ्वीके केन्द्र और मेरुदण्डस्वरूप है जिसके चारों ओर यह पृथ्वी घूमती है। वही सृष्टिका कारण है जिसके द्वारा परमात्मा अपने आपको देखता है, चूँकि परमात्माके नाम और गुण समग्र रूपमें पूर्ण-मानवमें ही प्रत्यक्ष होते हैं। वह परमात्माकी साक्षात्

१. स्ट. इ. मि. पृ० ७७ (पाद टिप्पणी)।
२. वही, पृ० ८६।

प्रतिच्छवि है अतएव ईश्वर रूप तत्-त्व और मानव-रूप 'अहं-त्व' दोनों रूपोंका वह समन्वय है। जीलीका कहना है कि "अगर तुम कहो कि वह (परमात्मा) एक है तो तुम ठीक कहते हो अथवा अगर तुम कहो कि वह दो है तो वास्तवमें वह दो है। और अगर तुम कहो कि वह तीन है तो तुम ठीक कहते हो क्योंकि यही मानवका स्वरूप है[1]।" जीलीके कहनेका मतलब यह है कि अगर उसे विशुद्धस्वरूप 'एक' कहा जाय तो वह एक है। अगर 'दो' कहा जाय तो भी ठीक है क्योंकि एक विशुद्ध स्वरूप परमात्मा है और दूसरा जगत् है और अगर 'तीन' कहा जाय तो भी ठीक है क्योंकि विशुद्धस्वरूप परमात्मा, पूर्ण-मानव और जगत् वह 'तीन' है।

पूर्ण-मानव परमात्माकी प्रतिच्छवि है और दूसरी ओर इस जड़ प्रकृतिका चरमोत्कर्ष है। इस प्रकारसे परमात्माकी जातके दोनों पहलुओं; सृष्टि और स्रष्टाके ऐक्यको वह अपनेमें प्रकट करता है और भिन्न भिन्न वस्तुओंमें एक ही ज्ञानकी क्रियाशीलताको अभिव्यक्त करता है। "सृष्टिके व्यक्तिरूपोंमें वह सबसे ऊपर है। वह मनुष्यके रूपमें ईश्वरीय गुण और स्वरूपको प्रकाशित करनेवाला है। उसका हृदय 'अलअर्श' (परमात्माका सिंहासन) से, मन 'अल-कलम'से; आत्मा सुरक्षित पटिया (अल-लवहुल महफूज) से लगा हुआ है। समस्त तत्त्वोंसे ऊपर उसकी प्रकृति है और अन्य भूतोंसे अधिक रूप ग्रहण करनेकी क्षमता उसमें है। वह अपने सद्-विचारोंसे युक्त देवदूतोंसे ऊपर है, अपने सन्देहोंके साथ जिन्नों और दुष्टात्माओंसे ऊपर है, अपनी पशु-वृत्तिके साथ पशुओंसे ऊपर है। सभी रूपोंके विरोधी-रूपोंको वह अपनेमें प्रकट कर सकता है[2]।" वह मानव-रूपमें ईश्वर है। वह अपने निजत्व (हुविय्या) को छोड़कर और किसी प्रकारके अस्तित्वको नहीं जानता। वह अपनी सत्ताको ही सभी पदार्थोंकी उत्पत्तिका कारण जानता है और 'अनेकत्व'को वह अपनी ही सत्तामें प्रत्यक्ष

---

१. स्ट. इ. मि. पृ० ८६।

२. वही, पृ० १०६।

कहा है कि 'पहली चीज जो परमात्माने बनायी वह पैग़म्बरका आलोक है।' एक दूसरी हदीसमें कहा गया है कि "मैं परमात्माकी ज्योति हूँ और मेरी ज्योतिसे अन्य सभी चीजें हुई हैं।" एक और हदीस है जिसमें कहा गया है कि "जब आदम अभी पानी और मिट्टीके ही बीच थे उस समय मैं 'पैग़म्बर' था।" जीलीने एक जगह कहा है कि "परमात्माने आदमको अपनी प्रतिच्छवि बनाया। इसमें न कहीं सन्देह है और न इससे कहीं विरोध है लेकिन आदम रङ्गमञ्चों (मजाहिर) में से एक है जहाँ मैंने अपनेको प्रकट किया। मेरे बाह्याकारका खलीफा वह नियुक्त किया गया[1]।" हकीकतुल मुहम्मदियाका वर्णन करते हुए जीलीने कहा है कि उसका एक नाम 'अमरुल्लाह' (परमात्माका वचन) है और वह सबसे श्रेष्ठ और सबसे ऊँचा है। उससे बढ़कर ऊँचा स्थान किसीको प्राप्त नहीं। उससे बढ़कर कोई भी देवदूत नहीं। वह सभी देवदूतोंके ऊपर और श्रेष्ठ है। परमात्माने उसे सृष्टिका केन्द्रबिन्दु बनाया है जिसके चतुर्दिक् वह घूम रही है। उसके और देवदूतोंके बीच वही सम्बन्ध है जो जलकी बूँदोंका समुद्रके साथ है।......वह नाना रूप और आकार धारण करता है और विभिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। उसका आदि नाम मुहम्मद है। इसी प्रकारसे अबुल कासिम, अब्दुल्ला, शम्सुद्दीन उसीके नाम हैं। जीलीने उसे अपने शेख शरफुद्दीन इस्माईल अल-जबर्ती के रूपमें देखा लेकिन वह यह नहीं जान सका कि वह पैग़म्बर हैं।[2]

परमात्माने अपने नाम 'अल बदीयुल कादिर' (शक्तिमान निर्माता) की ज्योतिसे मुहम्मदके रूपमें 'अल सूरतुल मुहम्मदिया' की रचना की और अपने नाम 'अल मन्नानुल काहिर' (परम दाता) के आलोकमें उसकी ओर देखा और तब अपने नाम 'अल-लतीफुल ग़फिर (क्षमाशील) के आलोकमें उसके सामने परमात्माने अपने आपको प्रकट किया। इस आलोकसे वह दो भागोंमें विभक्त हो गया। उसके दाहिनी ओरका

1. स्ट. इ. मि., पृ० ११३।

2. वही, पृ० ८७, १०५ तथा सूफि०, पृ० ६०।

जो आधा हिस्सा था उससे परमात्माने स्वर्गका निर्माण किया और वामार्धसे नरकका[1]।

परमात्माने मुहम्मदकी ज्योतिसे समस्त जगत्‌का निर्माण किया और मुहम्मदके हृदयसे देवदूत इस्राफीलकी सृष्टि की। यह इस्राफील सभी देवदूतोंमें शक्तिशाली है और सबसे अधिक परमात्माके निकटस्थ है।[2] अपने नाम 'अल-कामिल' (पूर्ण) की ज्योतिसे परमात्माने मुहम्मदकी विवेक-शक्तिका निर्माण किया और मुहम्मदकी विवेक-शक्तिकी ज्योतिसे अजरायलका निर्माण किया जो मृत्युका देवदूत है। इसी प्रकारसे अपनी 'ज़ात' से परमात्माने मुहम्मदके आत्माका निर्माण किया। परमात्माकी 'ज़ात' में सभी विरोधी तत्त्व विद्यमान हैं अतएव मुहम्मद-के आत्माके उस अंशसे जो सौन्दर्य, प्रकाश और पथ-प्रदर्शनके गुणोंवाला है उन गुणोंसे विभूषित देवदूतोंकी सृष्टि हुई और अन्य अंशसे जो ऐश्वर्य, अन्धकार और गुमराह करनेवाले गुणोंसे विभूषित है, इब्लीस और उसके अनुयायियोंकी सृष्टि हुई। मुहम्मदका स्थान आठवाँ स्वर्ग है जहाँ दूसरेकी पहुँच नहीं। यह 'अल-मकाम अल-महमूद' कहलाता है। परमात्माने मुहम्मदके लिए ही यह स्थान सुरक्षित रखा है।

'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' ही इस सृष्टिका उद्‌गम है। उसीसे पैग़म्बर, सन्त सभी हुए हैं। निरपेक्ष परम सत्ताके पूर्ण प्रकाशको वही पाता है उसीके द्वारा वह अन्य 'पूर्ण-मानवों' तक पहुँचता है जो इस पृथ्वीपर उसके प्रतिनिधि जैसे हैं। इससे यह सहज ही समझा जा सकता है कि यद्यपि परमात्माकी सत्तासे ही सृष्टिके सभी पदार्थ सत्तावान हैं लेकिन वह 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' को ही सर्वप्रथम प्राप्त होती है और मुहम्मदकी सत्ताका विस्तार ही यह समस्त जगत् है। अतएव वह सर्वोच्च 'पूर्ण-मानव' (मुहम्मद) सृष्टिके आदिमें था, वह सृष्टिका आदिकारण और अन्तिम पैग़म्बर है फिर भी सृष्टिके प्रारम्भसे होनेवाले सभी पैग़म्बरोंका

---

१. स्ट. इ. मि., पृ० १३५।

२. वही, पृ० ११५।

उत्पत्ति-स्थान है, उसीकी उपासना तथा ध्यान द्वारा परमात्माकी उपासना तथा ध्यान सम्पन्न होते हैं। यह 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' बहुत कुछ सगुण ब्रह्मकी तरह है। फिर भी यहाँ स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि वह पूर्ण-मानव 'हक़्क़' (सत्य) तो है लेकिन 'अल-हक़्क़' (परम-सत्य) नहीं। 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया'के सम्बन्धमें यहाँ जो कुछ कहा गया है वह अधिकांशमें जीली[1]का मत है।

अभी तक हम परमात्मा, सृष्टि तथा मनुष्यके सम्बन्धपर विचार करते रहे हैं और बहुत कुछ इस बातको समझनेकी चेष्टा करते रहे हैं कि इनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है तथा इस सृष्टि-प्रपञ्च और मनुष्यके आविर्भाव-का रहस्य क्या है। हमने देखा है कि वह निरपेक्ष, परमसत्ता किस प्रकार-से 'अवतरित' होती है और किस प्रकारसे यह समस्त जगत् उसकी अभि-व्यक्ति है। हमने यह भी देखा है कि मनुष्य परमात्माकी प्रतिच्छवि है और उस मानवरूप सूक्ष्म जगत्में यह विश्व ब्रह्माण्डरूप बृहत् जगत् वर्त-मान है। मनुष्यके सम्बन्धमें विचार करते समय हमने यह भी लक्ष्य किया है कि जाने या अनजाने समस्त जीवधारी इसके लिए सचेष्ट रहते हैं कि वे फिर अपने उद्गम-स्थल—परमात्मा—को लौट जायँ।

सूफियोंका कहना कि परमात्माको जाननेके लिए अपने आपको जानना जरूरी है। 'परमात्मामें लौट जाने'के लिए जिस साधनाकी जरूरत है उसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने आपको, अपने शरीर और आत्माको जाने। एक हदीसमें कहा गया है कि 'मेरी पृथ्वी और मेरा आकाश मुझे ग्रहण नहीं किये हुए हैं लेकिन मुझपर ईमान लानेवाले दासके हृदयमें मैं विराजमान हूँ।' परमात्माकी सत्ता सृष्टिके अणु-परमाणु-में विराजमान है लेकिन मनुष्य अपनी अपूर्णताके कारण उसे देख नहीं पाता। उसके 'एकत्व'का जानना इसलिए कठिन हो जाता है कि सृष्टिके सभी पदार्थ, समस्त जागतिक प्रपञ्च अपने आपमें पर्दा बन जाते हैं और उस 'एकत्व'का बोध उन्हें नहीं हो पाता। मनुष्य अपने आपमें अपने

1. वही, पृ० ११५-१३२।

स्वार्थों और चिन्ताओंको लेकर डूबा रहता है, उसे अन्य कुछ देखनेकी फुरसत नहीं रहती। यही कारण है कि मोहके वशीभूत हुआ उसका हृदय उसके और परमात्माके बीचकी एक ओट बन जाती है। रूमीने मसनवीमें कहा है कि पैग़म्बरसे परमात्माने कहा कि वह ऊँच-नीच, आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग कहीं भी नहीं रहता लेकिन इतना निश्चित है कि वह खजानेकी तरहसे ईमान लानेवालेके हृदयमें स्थित है। इसलिए अगर उसे खोजना हो तो वैसे हृदयोंमें उसे खोजना होगा। वह परम-सौन्दर्य उसी हृदयमें वास करता है अतएव उसे बाहर नहीं खोजना है। अतएव आत्मा और परमात्माके सम्बन्धमें विचार करते समय सूफियोंके आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्तको जान लेना आवश्यक है।

सूफी, आत्माके दो भेद करते हैं—(१) नफ़्स और (२) रूह। नफ़्स निम्नकोटिका है और वह सभी प्रकारकी कुप्रवृत्तियोंका स्थान है। रूह सद्वृत्तियोंका उद्गम-स्थल है। नफ़्स भावावेगसे परिचालित होता है। और रूह विवेक द्वारा। इन दोनोंका सङ्घर्ष निरन्तर चलता रहता है और ये आत्माको विपरीत दिशाओंमें खींचते रहते हैं। सूफियोंके मतानुसार उच्चतर आत्मा शरीरके पहलेसे वर्तमान रहता है और परमात्मा ही आत्मा-विशेषको मनुष्य-शरीरमें भेजता है। इस उच्चतर आत्माके भी तीन विभाग किये गये हैं—(१) क़ल्ब अथवा दिल, (२) रूह अथवा जान, (३) सिर्र अथवा अन्तःकरण। यह सिर्र ही सबसे भीतरका हिस्सा है जहाँ सूफी साधक परमात्माका दर्शन किया करता है। यहाँ किसी प्रकारके कलुष प्रवेश नहीं कर सकते। यही मानो परमात्माका वासस्थान है जहाँ वह मनुष्यको जान पाता है और मनुष्य वहीं परमात्माका ज्ञान प्राप्त करता है[1]। उमर बिन-उस्मान अल्-मक्की नामक सूफी साधक, जिसकी मृत्यु सन् ९०९ ई० के लगभग हुई, आत्माके सम्बन्धमें लिखता है—"शरीरके निर्माणके सात हजार वर्ष पहले परमात्माने क़ल्ब अथवा दिलकी सृष्टि की और उसे अपने निकट रख छोड़ा। क़ल्ब

1. कि. लु., पृ० २३१।

अथवा दिलके निर्माणके सात हजार वर्ष पहले परमात्माने रूह अथवा जानकी सृष्टि की और उसे परमात्माका साहचर्य (उन्स) प्राप्त हुआ और रूहके भी सात हजार वर्ष पहले उसने सिर्र (अन्तःकरण)का निर्माण किया और उसे वस्ल (एकमेक) की स्थिति प्राप्त हुई और अन्तःकरणपर प्रत्येक दिन तीन सौ साठ बार अपने सौन्दर्यका रहस्य प्रकट होने दिया और उसपर तीन सौ साठ बार दयादृष्टि फेरी और रूह अथवा जानको प्रेम-तत्त्वसे परिचित कराया तथा क़ल्बपर तीन सौ साठ बार साहचर्यके भेद प्रकट किये। इसका फल यह हुआ कि वे इस दृश्यमान जगत्को ही देखनेमें लग गये और अपनेसे बढ़कर किसीको नहीं माना और इस प्रकारसे उनमें अहङ्कार और दम्भके भाव भर गये।...इसके बाद परमात्माने सिर्रको रूहमें, रूहको क़ल्बमें और क़ल्बको शरीरमें बन्दकर दिया। इसके बाद उनके साथ अक़्लका भी मेल कर दिया और पैग़म्बरोंको भेजा तथा आदेश दिये और तब उनमेंसे प्रत्येक अपनी प्रारम्भिक अवस्थाको प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगा। परमात्माने उन्हें प्रार्थना करनेका आदेश दिया। इनमें शरीर तो प्रार्थनामें निरत हुआ और दिल प्रेमका अधिकारी बना। रूहको उसका सान्निध्य प्राप्त हुआ और अन्तःकरणको उसके साथ एकत्व प्राप्त करनेमें ही शान्तिका अनुभव हुआ[1]।"

सूफियोंके मतानुसार यह आत्मा इस संसारमें आनेके पहले परमात्मासे अभिन्न था। वह इस संसारमें रहते समय अपने निर्माताके पाससे निर्वासित रहता है और जितने कालतक वह मनुष्य शरीरमें रहता है वह उसका निर्वासनकाल है[2]। यह आत्मा अपार्थिव है और वास्तवमें यह जगत् उसका वासस्थान नहीं है। यह उस आध्यात्मिक जगत्से कुछ कारणवश इस जगत्में आता है और इस जगत्में वास करनेके लिए इस जगत्के अनुरूप उसे शरीर धारण करना पड़ता है फिर भी इसका खिंचाव अपने वास्तविक वासस्थानकी ओर रहता है। लेकिन इस शरीर तथा जड़

---

१. कश्फ०, पृ० ३०९।
२. डि. इ., पृ० ६०९।

जगत्के नाना प्रलोभन कुछ इस प्रकारसे उसपर प्रभाव डाले हुए रहते हैं कि उसके लिए अपने उद्गमस्थल और अपने वास्तविक जगत्का ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

यह आत्मा पहले-पहल तो पवित्र ही निर्मित हुआ था लेकिन नफ़्स उसे नीचेकी ओर ले जानेकी चेष्टा करता है। नफ़्सके कारण ही आत्मा कलुषित होता है और उसमें बुराइयाँ आती हैं। वह आत्माको नरककी ओर ले जाता है। परमात्माने नफ़्सको इसलिए बनाया कि वह आत्माको बराबर आघात देता रहे जिसमें कि आत्मा परमात्माको भूलने न पावे। रूह आत्माको ऊपरकी ओर ले जाती है। परमात्मा सम्बन्धी वृत्तियोंका यह वासस्थान है। अतएव साधक रूहके द्वारा नफ़्सपर नियन्त्रण कर सकता है। साधनाके द्वारा आत्मामें लगे हुए कलुषको दूर किया जा सकता है और उसे पूर्वावस्था प्राप्त हो सकती है क्योंकि आत्मा वास्तवमें पवित्र और स्वच्छ है। अबू तालिबका कहना है कि साधक दिलको पवित्र करके परमात्माकी विभूतियोंका ध्यान करता हुआ क्रमशः उस अवस्थामें पहुँच सकता है कि परमात्माके स्मरणके सिवा उसकी आत्मामें और कुछ भी नहीं रह जाता[1]। वह ज़िक्र (स्मरण) और मुराक़बत (ध्यान) के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

आत्मा, क़ल्ब, रूह, नफ़्स आदिके सम्बन्धमें भी कई प्रकारके मत हैं। क़ल्ब, मनुष्यकी बौद्धिक क्रियाओंका आधार है। यह अन्तरतमके अत्यन्त गोपन और सच्चे भावोंकी उद्भावना करनेवाला है[2]। यह बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा दृश्यमान जगत्में अभिव्यक्त होनेवाले परमात्माविषयक ज्ञानको ग्रहण करता है और उन्हें अन्तरमें प्रकाश करता है। अन्तरकी सूक्ष्म इन्द्रियोंको उनसे अवगत कराता है। इसका बुद्धिसे योग है। बुद्धिके द्वारा परमात्माको नहीं जाना जा सकता लेकिन क़ल्ब कुछ ऐसा है जो सभी पदार्थोंका सार-तत्त्व जान सकता है और जब ज्ञान और ईमान

१. अ. मि. नि. मि. इ., पृ० २०२।
२. रे. ला. ए. इ., पृ० २२१।

(विश्वास) का प्रकाश उसपर पड़ता है तो अध्यात्म जगत्‌के सम्पूर्ण रहस्योंका ज्ञान वह प्राप्त कर सकता है। साधारणतः क़ल्बपर पर्दा पड़ा हुआ रहता है और पापोंसे वह दूषित बना रहता है। वह इन्द्रियोंका शिकार बना हुआ कभी तर्कसे एक ओरको खींचता है और कभी वासनाओंसे दूसरी ओर। यह भौतिक स्थूल जगत् तथा आध्यात्मिक जगत्‌के बीचमें स्थित है। विश्वब्रह्माण्डके दो भाग हैं। एक दृश्यमान पार्थिव जड़ जगत् है जो आदिभूतसे उत्पन्न हुआ है। इसे आलमे-ख़ल्क कहते हैं। दूसरा अदृश्य, आध्यात्मिक जगत् है जो परमात्माकी आज्ञासे एक निमेषमें सृष्ट हुआ। परमात्माने आदेश दिया—"कुन" (हो जाओ) और यह हो गया। इसे आलमे-अम्र कहते हैं। क़ल्ब इन दोनोंके बीच स्थित है। वास्तवमें यह रूह और नफ़्सके मध्यमें है। प्रकाश और अन्धकारके सन्धि-स्थलपर स्थित यह मानो एक युद्धक्षेत्र बना हुआ रहता है जिसमें सद्वृत्तियों और कुप्रवृत्तियोंका सङ्घर्ष होता रहता है। एक ओर तो वह परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए खुला रहता है तो दूसरी ओर इन्द्रियजनित माया-मरीचिकाका प्रवेश होने देता है। दर्पणकी नाईं यह परमात्माके नामोंको प्रतिबिम्बित करता है। इब्नुल अरबीका कहना है कि परमात्माके जिस नाम (इस्म) का साक्षात् यह करता है उसीके जैसा यह रूप ग्रहण करता है जैसे मोम तरह-तरहकी आकृतियोंमें परिवर्तित हो जाता है[1]। यह क़ल्ब, रक्त-मांसके बने हुए हृत्पिण्डसे भिन्न है फिर भी इस शरीरमें हृदयके साथ यह एक रहस्यमय ढङ्गसे जुड़ा हुआ है।

इब्नुल फरीदने रूहको अमर कहा है तथा बतलाया है कि उसमें बुराई नहीं आ सकती और अदृश्य जगत्‌में उसका स्थान है[2]। परमात्माका प्रेम रूहका ही विषय है, नफ़्सका नहीं। परमात्माके प्रेमका आश्रय-स्थल रूह है। जीलीने रूह तथा रूहुल-क़ुद्स दो विभाजन किये हैं। रूह (आत्मा) को जीलीने देवदूत माना है, हक़ीक़तुल-मुहम्मदिया कहा है

१. स्ट. इ. मि., पृ० १५९।
२. वही. पृ० २०३।

और उसे .कुल्ब कहा है। जीलीके अनुसार परमात्माने अपनी ज्योतिसे रूह (आत्मा) की सृष्टि की और फिर उससे जगत्‌का निर्माण किया। रूहुल कुद्स (पवित्र आत्मा) ही मानव शरीरमें सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक इन्द्रिय है। मनुष्यके शरीरमें रूहुल-कुद्सके प्रवेशके सम्बन्धमें जीलीका कहना है कि जब परमात्मा अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहता है तो वह मनुष्यके भीतर 'फ़ना' की अवस्था ला देता है। उस अवस्थामें मनुष्यके भीतरसे मानवीय ज्योति और जीव-जगत्‌के विशेषत्वका अव-सान हो जाता है और तब परमात्मा एक आध्यात्मिक द्रव्यको उस स्थानपर मनुष्यके भीतर प्रविष्ट कराता है। यह द्रव्य परमात्मासे अलग नहीं है और मनुष्यसे संयुक्त भी नहीं है। इसीमें परमात्मा अपने-आपको अभिव्यक्त करता है। परमात्माकी अभिव्यक्ति परमात्माके सिवा कहीं नहीं होती। यही द्रव्य रूहुल-कुद्स है[1]। इस पवित्र आत्माको जीलीने अनित्य और परमात्मा द्वारा सृष्ट माना है। रूह और रूहुल-कुद्स ये दोनों परमात्माकी ही आत्मा जैसे हैं और परमात्माके सम्बन्धसे ये नित्य हैं और मनुष्यके सम्बन्धसे अनित्य।[2]

हुजवीरीने रूह (आत्मा) को एक सूक्ष्म द्रव्य-विशेष माना है। यह गुण नहीं है। यह सूक्ष्म द्रव्य-विशेष (जिस्मी लतीफ) है अतएव इसे देखा जा सकता है लेकिन वैसे यह नहीं देखा जा सकता। यह केवल चश्मेदिल (हृदयके नेत्र) से देखा जा सकता है। हुजवीरीने इसे अनित्य माना है और वह इसे परमात्मा द्वारा निर्मित मानता है। उसका कहना है कि शरीरके पहले यह वर्त्तमान था। परमात्मा शरीर और रूह (आत्मा) को मिलानेवाला है[3]। ये दोनों अलग दो पदार्थ हैं जो परमात्मा द्वारा निर्मित हैं। शरीरका निर्माण जब हो जाता है तब परमात्मा उसमें रूह फूँक देता है।

---

१. स्ट. इ. मि., पृ० १२८।

२. स्ट. इ. मि., पृ० १०८-१०९।

३. कश्फ०, पृ० २६३-२६४।

हम यह देख चुके हैं कि सूफी नफ़्सको मनुष्यके भीतरकी समस्त बुराइयोंकी जड़ समझते हैं। उनके मतसे यह नफ़्स सब समय नीचेकी ओर ही ले जानेवाला है। यह बराबर मनुष्यको पतनकी ओर प्रवृत्त करता रहता है। नफ़्स (जड़ आत्मा) को जानना और उसपर विजय प्राप्त करना सूफीके लिए आवश्यक है, क्योंकि बिना इसके परमात्मासे मिलन सम्भव नहीं। सूफी साधकोंने इससे बचनेके लिए बराबर सावधान किया है। अबू सुलैमान दारानीने कहा है कि नफ़्स (जड़ आत्मा) बड़ा धोखेबाज है और जो परमात्माके रास्तेपर चलनेवाले हैं उन्हें बाधा पहुँचाता है। इसका दमन सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। पैग़म्बरने मुजाहदत अल्-नफ़्स (अपने जड़ आत्माके विरुद्ध सङ्घर्ष) को और सङ्घर्षोंसे ऊँचा स्थान दिया है। ज़ून-नून, अबू यज़ीद बिस्तामी, मुहम्मद बिन अली अल-तिरमिधी, ज़ुनैद आदि बड़े-बड़े सूफी साधकोंने नफ़्सको जानने, उससे सङ्घर्ष करने और उसके दमन करनेपर ज़ोर दिया है। ज़ुनैदने तो यहाँतक कहा है कि नफ़्सके द्वारा परिचालित होनेवाला व्यक्ति काफ़िर है। वह इस्लामके विरुद्ध आचरण करनेवाला है[1]।

वैसे 'नफ़्स' शब्दका अर्थ अपने आपमें बुराइयोंका द्योतक नहीं है। इसका अर्थ 'किसी वस्तुका तत्त्व और वास्तविकता' है, लेकिन लोगोंने भिन्न-भिन्न अर्थोंमें इसका व्यवहार किया है। साधारणतः सूफी इसे जड़ आत्मा कहते हैं जो बुरे मार्गपर ले जानेवाला है। जीली, इब्लीसको नफ़्ससे उत्पन्न हुआ मानता है और इसे ही सभी बुराइयोंकी उत्पत्तिका कारण मानता है। इस नफ़्सको सूफी एक पदार्थ, एक द्रव्य-विशेष मानते हैं। सूफी साधकोंकी कहानियोंसे पता चलता है कि उन्होंने इस नफ़्सको नाना रूपोंमें, नाना जीवोंकी आकृति धारण करते हुए देखा है।

एक दरवेशका कहना है कि उसने अपने नफ़्सको एक चूहेके रूपमें देखा, जिसने पूछनेपर दरवेशको बतलाया कि जो सतर्क नहीं रहते उनका तो वह विनाश करनेवाला है क्योंकि वह बराबर बुराइयोंकी ओर ही

---

1. वही, पृ० २०० ।

अनुप्रेरित किया करता है। इसके साथ ही उसने यह भी बतलाया कि जो परमात्मासे प्रेम करनेवाले हैं उनका तो वह मुक्तिदाता है क्योंकि बुराइयोंसे युक्त वह उनके साथ अगर नहीं रहता तो वे अपनी पवित्रताके गर्व और अहङ्कारसे भर जाते। शेख अबुल कासिम गुरगानीने उसे साँपके रूपमें देखा था। गुरगानी अपने समयके क़ुत्ब थे। शेख अबुल अब्बास क़स्सानीने उसे एक पीले कुत्तेके रूपमें देखा था। नसाके मुहम्मद बिन उल्यानके गलेसे वह लोमड़ीके रूपमें निकला। मर्वके शेख अबू-अली सियाहने इसको अपने ही जैसे रूपवाला देखा। किसीने जैसे उसके बाल शेखके हाथोंमें पकड़ा दिये और शेखने उसे पेड़में बाँधा। जब वह उसे नष्ट करने जा रहा था तब नफ़्सने कहा कि वह लश्करे ख़ुदायम अर्थात् परमात्माकी सेना है, उसे विनष्ट नहीं किया जा सकता।[1]

सूफी साधकोंकी कहानियोंसे नफ़्सके सम्बन्धमें उनके दृष्टिकोणका पता चल जाता है। एक तो यह कि वास्तवमें नफ़्स एक द्रव्य-विशेष है जो नाना रूप धारण करता है तथा यह गुण नहीं है और दूसरा यह कि यह बुराइयोंकी जड़ है। तीसरे इसका विनाश नहीं किया जा सकता, भले ही इसकी बुराइयोंको दूर करनेकी चेष्टा की जा सकती है। चौथे इसके अस्तित्वकी आवश्यकता है जिसमें कि साधक बराबर सावधान रहे और अपने आध्यात्मिक मार्गपर अविचल रहे।

नफ़्सपर विजय पानेके लिए सूफी-साधक विभिन्न उपायोंका अवलम्बन करते हैं। इनमें कुछ बाह्य हैं जिनका सम्बन्ध शरीरसे है और कुछ ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध अन्तरसे है। इसके दमनके लिए सूफी-साधक मौन, उपवास, एकान्त-सेवन आदिका आश्रय लेते हैं।

कितने ऐसे साधक हैं जो नफ़्सके दमनके लिए उपवास करते हैं। कहा जाता है कि उपवाससे नफ़्सपर नियन्त्रण किया जा सकता है और इसके अभ्याससे धीरे-धीरे नफ़्स पवित्र और शुद्ध होता है। सह्ल बिन-

1. वही० पृ० २०५–२०६।

अब्दुला तस्तरीने समस्त जीवनमें बहुत ही कम खाया था[1]। पन्द्रह दिनपर वह एक बार भोजन करता था। इस प्रकारसे नफ़्सपर नियन्त्रण करनेको सूफी 'अल मौतुल अबयाज़' अर्थात् उजली मौत कहते हैं। पुराने कपड़ोंका धारण करना तथा सुन्दर वस्त्रोंका परित्याग और इस प्रकारसे गरीबकी तरह जीवन बितानेको 'अल-मौतुल अख्ज़र' अर्थात् हरित मृत्यु कहते हैं। और तीसरे प्रकारकी एक मृत्यु है जिसे 'अल-मौतुल अस्वाद' अर्थात् काली मौत कहते हैं। इसमें साधक जानबूझकर खतरा मोल लेता है। सत्यके लिए सभी प्रकारकी यन्त्रणाएँ सहता है और कष्टोंका स्वागत करता है[2]।

नफ़्सके शुद्धिकरणकी प्रक्रियाको ध्यानमें रखकर उसकी कोटियाँ बतायी गयी हैं जैसे[3]—

नफ़्से-अम्मारा (भ्रष्ट आत्मा)
नफ़्से-लव्वामा (दूषित करनेवाला आत्मा)
नफ़्से-मुल्हम (अनुप्राणित आत्मा)
नफ़्से-राजिय्या (सन्तुष्ट आत्मा)
नफ़्से-मरज़िय्या (तुष्ट करनेवाला आत्मा)
नफ़्से-साफिय्याव क़ामिल (विशुद्ध और पूर्ण आत्मा)

इस प्रकारसे सूफियोंने नाना भाँतिसे आत्माके सम्बन्धमें विचार किया है। आत्मामें ऐसी शक्ति है कि वह इस भौतिक जगत्से परे होकर परमात्माके साथ साक्षात्कार कर सकता है, उसके साथ एकमेक हो सकता है। इस भौतिक जगत्से आध्यात्मिक जगत्में पहुँच जाना सच्चे साधकके लिए बिलकुल सहज है। उसपर परमात्माकी बराबर दया बनी रहती है और उसीके सहारे बिना किसी अभ्यासके इस स्थूल जगत्के बन्धनोंको छिन्न-भिन्नकर वह उस जगत्में पहुँच जाता है। इसके लिए काफी

---

१. वही, पृ० २०१।
२. सूफि०, पृ० ७७।
३. वही, पृ० ७७-७८।

साधनाकी आवश्यकता होती है। विभिन्न उपायोंसे साधक इस शक्तिको प्राप्त करता है। क्रमशः वह अग्रसर होता है और उसके सामनेके पर्दे धीरे-धीरे हटते जाते हैं और वह परमात्माकी विभूतियोंके दर्शन कर पाता है। साधकका लक्ष्य इससे भी आगे बढ़नेका होता है। वह उस अवस्था-को प्राप्त होना चाहता है जिसमें वह परमात्माके साथ 'एकमेक' हो सके। अतएव आत्माके रहस्योंको जानना और उसपर नियन्त्रण करना सूफी-साधनाका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

---

१०. सूफियोंका चरम लक्ष्य

सूफियोंका चरम लक्ष्य परमात्माके साथ 'एकमेक' होना है। 'अल-हक़्क़' के साथ पुनः 'एकत्व' प्राप्त करना सूफी-साधनाका चरम लक्ष्य है। सूफी साधक जब देखता है और उसे जब यह अनुभूति होती है कि समस्त क्रियाओं और अस्तित्वोंका एकमात्र कारण परमात्माकी शक्ति है तथा यह समस्त दृश्यमान जगत् उसकी अभिव्यक्ति मात्र है तब वह उस रहस्यको जानना चाहता है। वह जानता है कि उस रहस्यका भेदन तर्क और बुद्धिका विषय नहीं है, उसे जाननेके लिए मनुष्यको साधना द्वारा अपने आपको तैयार करना पड़ता है कि यह उस ज्योतिकी एक किरणको अपने हृदयमें ग्रहण करे और उसके आलोकमें 'अल-हक़्क़'को देख सके। वह जानता है कि यह असत् जगत् दर्पणकी नाईं उसके गुणों और नामोंको प्रतिबिम्बित करता है तथा मनुष्य अपने भीतर इस समस्त ब्रह्माण्डको छिपाये हुए परमात्माके सभी गुणोंको प्रतिबिम्बित कर रहा है। लेकिन मनुष्य इतना ज्ञान प्राप्त कर ही सन्तोष नहीं कर लेता। इस रहस्यको जानना ही वह अपना लक्ष्य नहीं मानता बल्कि उससे भी आगे बढ़कर वह उस परम सत्यके साथ एकमेक हो जाना चाहता है जो सब कुछका उद्गम, सब कुछका परिचालक है तथा जिसकी सत्ता ही एकमात्र सत्ता है तथा जो एकमात्र शक्ति है। सूफियोंके चरम लक्ष्य तथा फ़ना और बक़ा आदिके सम्बन्धमें आगे चलकर हम विस्तृत रूपसे कहना चाहेंगे। उसके पहले 'भावाविष्टावस्था' को समझनेकी चेष्टा करेंगे क्योंकि सूफी साधनामें इसका बहुत महत्त्व है।

सूफियोंकी उस अवस्थाका वर्णन करना अत्यन्त असम्भव है जिसमें वे परमात्माके साथ 'एकमेक' हो जाते हैं। इस अवस्थाको प्राप्त करना सबके लिए सम्भव नहीं है। कुछ ही ऐसे व्यक्ति हैं जैसे पैगम्बर तथा उच्च

श्रेणीके सन्त जो परमात्माके अनुग्रहसे उस अवस्थाको प्राप्त होते हैं। उनके जीवनमें कभी-कभी ही ऐसे क्षण आते हैं जब वे समस्त इन्द्रिय-गत विषयोंसे परे हो जाते हैं और उस आध्यात्मिक जगत्को प्रत्यक्ष करते हैं। उस जगत्में काल और स्थान नामकी कोई वस्तु नहीं। वहाँ वे उस परम-सत्यको प्रत्यक्ष कर पाते हैं जो सब पदार्थोंका उद्गम-स्थल है और जो उन पदार्थोंमें अभिव्यक्त होनेवाला एकमात्र सत्य है। उन्हीं महान् आत्माओंके अनुभव और कथनोंके आधारपर सूफियोंके 'एकमेक' होनेकी अवस्था तथा आध्यात्मिक जगत्के अन्य रहस्योंको समझनेकी चेष्टा की जाती है। अपने आपमें यह अनुभूति कुछ ऐसी है कि उसे इस जगत्में बोली जानेवाली भाषाके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसीलिए उन्हें समझानेके लिए सङ्केतों और प्रतीकोंका सहारा लेना पड़ता है। उस अवस्थाको प्राप्त किये हुए साधक भी यह बतलानेमें अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं कि वह क्या है।

कुछ ऐसे साधक हुए हैं जिन्होंने इस अवस्थाकी प्राप्तिके बाद इस अवस्थाको समझानेकी चेष्टा की है अथवा ऐसा भी हुआ है कि उस अवस्थामें रहते हुए उनके मुँहसे अनायास कुछ वाणियाँ निकल गयी हैं जिनसे उस अवस्थाका कुछ अनुमान किया जा सकता है। मन्सूर बिन हल्लाजने सम्भवतः इसी अवस्थामें रहते हुए 'अनलहक़' अर्थात् 'मैं परमात्मा हूँ' कहा था। यह कथन इस्लामके विरुद्ध है। बहुत लोगोंने इसकी व्याख्या की है और कुछ लोगोंने सनातन-पन्थी इस्लामके सिद्धान्तोंके साथ उससे सामञ्जस्य बैठानेकी चेष्टा की है। सामञ्जस्य बैठाने-के लिए तीन प्रकारकी दलीलें उपस्थित की जाती हैं। प्रथमतः यह कहा जाता है कि उसका आचरण परम-सत्यके विरुद्ध नहीं था लेकिन शरी-अतके विरुद्ध अवश्य था। हल्लाजने परमात्मा सम्बन्धी इस गूढ़ रहस्यको उन लोगोंके निकट प्रकट किया जो उसके अधिकारी नहीं थे। दूसरी दलील यह दी जाती है कि उसने जो कुछ कहा वह भावाविष्टावस्थामें कहा था। उससे गलती यह हुई कि उसने यह समझा कि परमात्माकी

ज़ात (सत्ता) के साथ वह एकत्व प्राप्त किये हुए है जब कि उसका एकत्व परमात्माकी कुछ सिफ़तों (गुणों) के ही साथ था। तीसरी बात यह कही जाती है कि उसने जो यह कहा कि परमात्मा और उसके बनाये हुए जीवोंमें कोई वैसी विभिन्नता या अन्तर नहीं है तो उसका सिर्फ़ यही मतलब था कि परमात्माके 'एकत्व'में सभी प्राणी अन्तर्हित हैं। दृश्यमान जगत्से जो बिल्कुल परे हो जाता है वह अपनी वास्तविक अवस्थामें वास करता है और यह अवस्था ही परमात्मा है। "उसमें न 'मैं' का स्थान है न 'हम लोगों' का और न 'तू' का ही। उसमें 'मैं', 'हम' और 'तू' एक ही वस्तु हैं। अतएव 'अनलहक़' कहनेवाला हल्लाज नहीं था वरन् स्वयं परमात्मा था जो 'अहं'की चेतनासे परे हो जानेवाले हल्लाजके मुँहसे इसका उच्चारण करता था[1]।"

लुई मासिग्नोने हल्लाजपर जो प्रकाश डाला है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसके कथन इस्लाम-विरोधी नहीं थे। चाहे जो हो, हल्लाजने जिस प्रकारसे 'अनलहक़' का नारा बुलन्द किया उसे मान लेनेका मतलब यह था कि मनुष्य परमात्माके साथ एकाकार हो जाता है। यह इस्लामके एकेश्वरवादके सिद्धान्तके विरुद्ध है। लेकिन बादके इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि किस प्रकारसे देवत्वकी प्राप्तिकी भावना और एकमेक होनेकी भावनामें अभेद माना जाने लगा और परमात्माकी सर्वव्यापकताका सिद्धान्त प्रचलित हो गया।

सूफी साधकोंका यह विश्वास है कि भावाविष्टावस्था (वज्द) ही एक ऐसा ज़रिया है जिससे आत्मा,परमात्माका साक्षात्कार कर सकता है और उससे एकत्व लाभ कर सकता है। भावाविष्टावस्थाके सिलसिलेमें सूफियोंने फ़ना (लय प्राप्त होना), वज्द (भाव), समाँ, ज़ौक़ (स्वाद) शर्ब (पीना), ग़ैबत (अहंसे बेखबर होना), जज़्बात तथा हाल आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। एकमात्र सत्य, परमात्माके ध्यानादिसे मनके भीतर एक आलोडन पैदा होता है और धीरे-धीरे वह अपने 'अहं' को

---

१. मि. इ., पृ० १५१-१५२।

खो बैठता है। साधककी चेष्टाकी यह अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था-की प्राप्तिके बाद उसे अपनी ओरसे करनेके लिए कुछ नहीं रह जाता।

जिस व्यक्तिको यह अवस्था प्राप्त होती है उसके लिए इस अनुभवको प्रकट करना असम्भव है। उस अवस्थाकी प्राप्तिका मतलब है कि साधक-के सभी मानवीय गुणों और व्यापारोंका उस अवस्थामें अन्त हो जाता है। परमात्माका प्रेम उसे पूर्ण रूपसे आत्मसात् कर लेता है। उस अवस्थाका वर्णन फिर कैसे किया जा सकता है? चूँकि जब मनुष्य फिर अपनी प्रकृत अवस्थामें लौट आता है तब उसके मन, हृदयपर भौतिक जगत्की वस्तुओंका अधिकार हो जाता है। इसीलिए अमर बिन उस्मान अल-मक्कीका कहना था कि भावाविष्टावस्थाकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती चूँकि यह परमात्मा और उसपर सच्चा ईमान लानेवालोंके बीचका रहस्य है।[1] सादीने भावाविष्टावस्थाको सहज भावसे समझानेके लिए एक जगह कहा है कि एक दरवेशसे उसके अन्य साथियोंने व्यंग्य करते हुए पूछा कि उस आनन्दकी फुलवारीसे लौटकर वह कौनसा उपहार ले आया है। दरवेशने जवाब दिया कि उस गुलाबकी झाड़ी (परमात्मा-का दर्शन) के पास पहुँचकर उसकी इच्छा हुई कि बहुतसे गुलाबके फूल तोड़कर ले चलूँ जिसमें कि अपने साथियोंको उपहार दे सकूँ लेकिन जब वह वहाँ था तब गुलाबकी झाड़ीकी खुशबूसे इतना मस्त हो गया कि उसकी पोशाककी खूँट (जिसमें वह फूलोंको बाँधना चाहता था) उसके हाथोंसे छूट गयी। जिसने परमात्माको जान लिया है उसकी जिह्वामें शक्ति नहीं रह जाती कि वह कुछ कह सके[2]।

भावाविष्टावस्थाके द्वारा साधक उस स्तर तक पहुँच जाता है जहाँ वह परम सत्यका साक्षात्कार करता है और जहाँ वह परमात्माके साथ एकमेक हो जाता है। साधनाके इस स्तर तक पहुँचनेमें स्त्री-पुरुषका भेद कोई अर्थ नहीं रखता। पुरुष भी इस स्तर तक पहुँच सकते हैं और

---

१. कश्फ०, पृ० १३८।

२. दर०, पृ० ३५९।

की भी। साधनाके क्षेत्रमें भावाविष्टावस्थाको प्रधानता तो अवश्य दी गई है लेकिन उसे आगेका मार्ग प्रशस्त करनेका साधनमात्र माना गया है। साधकके लिए इसकी अनुभूति आवश्यक तो मानी गयी है लेकिन इससे परे जानेकी बात भी कही गयी है। वास्तवमें सूफी साधक भावावेश और निर्वेदमें अन्तर दिखलाते हुए निर्वेदको तरजीह देते हैं। भावावेश, मानसिक आलोड़न और मदहोशीको वे निम्नकोटिका मानते हैं और इन्हें अनुभव-शून्यताका चिन्ह मानते हैं। भावावेशके बाद जो शान्ति आती है, जो स्थैर्य आता है वही उनके लिए अभीप्सित है। इन दोनों अवस्थाओंके लिए क्रमशः 'वज्द' और 'वुजूद' शब्दका प्रयोग वे करते हैं। 'वुजूद'के लिए 'वज्द'जरूरी है। जहाँ 'वज्द' (भावावेश) की समाप्ति होती है वहाँसे 'वुजूद'का प्रारम्भ होता है। 'वज्द' हृदयकी वह अवस्था है जो उस समय आती है जब साधक इस बातकी प्राणपणसे चेष्टा करता है कि उसके हृदयसे समस्त जागतिक प्रपंचका अवसान हो जाय, संसार सम्बन्धी कोई भी वासना न रह जाय। साधक बार-बार अपनी समस्त शक्तिका उपयोग परमात्माका ध्यान करनेमें लगाता है। उसके चिन्तन और मननके सिवा और कुछ भी उसके हृदयमें नहीं रह जाता। और इस प्रकारसे वह जब समस्त मन-प्राणसे उसकी आकांक्षा करता है तब मानो उसके हृदयका दरवाजा खुल जाता है और उसमें हर्षातिरेक और आनन्दका प्रवेश होता है। यह भावोल्लासकी अवस्था बड़ी कठिनाईसे आती है। भावोल्लास (वज्द) के बाद (स्थिति वुजूद) की जो अवस्था आती है उसे सूफी साधक परमात्माकी देन मानते हैं। बहुतोंने भावोल्लासकी अवस्थाको श्रेष्ठ माना है और बहुतोंने स्थिति (वुजूद) की अवस्था को। साधारणतः वुजूदको ही सब लोग श्रेष्ठ मानते हैं। इसके बादकी अवस्थाका उल्लेख भी किया गया है। कहा जाता है कि वज्दका वुजूद साधकको अस्तित्व-शून्य बना देता है और इसके बादकी जो अवस्था है उसे 'मौजूद'का वुजूद कहते हैं[1]। 'मौजूद'के वुजूदसे तात्पर्य 'परमात्माकी

1. क. मा., पृ० ८३। थ्यो. आ. मि. पृ० १६९ पर उद्धृत।

सत्तामें स्थिति' है। इसको स्पष्ट रूपसे यों समझ सकते हैं कि साधक परमात्माके चिन्तन, मनन और उसके साक्षात्कारके लिए उत्कट प्रेमका अनुभव करता है जब कि उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहती रहती है, बार-बार उसके नामकी रट लगाए हुए रहता है और जब उसमें उन्मादके लक्षण प्रतीत होने लगते हैं तब वह सांसारिक व्यापारों और विषयोंसे परे हो जाता है और उसके हृदयमें आनन्द और उल्लासका उदय होता है। इस अवस्थाको 'वज्द' कहते हैं। इसके बाद अगर उसकी साधना पूर्ण है तो वह 'वुजूद' (स्थिति) की अवस्थाको प्राप्त होता है अन्यथा फिर उसकी चेतना लौट आती है और वह संसारका प्राणी बन जाता है। वज्दके वुजूदके बाद वह परमात्माकी सत्तामें स्थित हो जाता है और अब उसका कोई अपना अलग अस्तित्व नहीं रह जाता।

सूफी साधक और कवि इब्नुल फरीद[1]ने साधनाके क्षेत्रमें तीन तरहकी अनुभूतियोंका जिक्र किया है। प्राकृत (नार्मल), अ-प्राकृत (एब-नार्मल) और अति-प्राकृत (सुपर नार्मल)। साधारण व्यक्तियोंके बहुविध और परिवर्तनशील अनुभवको 'प्राकृत' कहा जा सकता है। इसमें साधक नाना प्रकारकी चिन्ताओं और अनुभूतियोंका शिकार होता है। 'अ-प्राकृत' अनुभूति वह है जिसमें 'प्राकृत' अनुभूतियोंका अवसान और भावो-ल्लासका आधिपत्य हो जाता है और 'अति-प्राकृत' अनुभूति इसके बाद की चीज है। उस समय सभी अनुभूतियोंका पर्यवसान 'एकत्व' में हो जाता है। साधकको परमात्माके साथ 'एकत्व' का बोध होता है। परमा-त्माकी सत्तामें उसकी स्थिति होती है। प्रथम अवस्थामें साधक अपने और परमात्माके बीचके अन्तरको समझता रहता है। परमात्मासे भिन्न अपनी अलग सत्ताका उसे भान रहता है। दूसरी अवस्थामें इस भिन्नत्व का तिरोभाव हो जाता है। उसे अपनी और परमात्माकी सत्ताका ज्ञान नहीं रह जाता। यह भावोल्लासकी अवस्था कभी समाप्त भी हो जाती

1. आ. प. सू., पृ० १९–२०।

है और कभी-कभी बनी भी रहती है और उसके बाद तीसरी अवस्था आ जाती है। इस तीसरी अवस्थामें उसे अलौकिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह अपनेको परमात्मासे भिन्न नहीं समझता, जैसे वह उसीमें वास कर रहा है। लेकिन उस अवस्थामें उसे यह ज्ञान भी बना रहता है कि वह परमात्माकी सृष्टि है और उसके साथ एकत्वका बोध करते हुए भी उसे अपनी अलग सत्ताका ज्ञान रहता है।

सिद्धान्ततः यह माना जाता है कि भावाविष्टावस्था अपनेआप आ जाती है उसके लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती फिर भी कुछ ऐसी शर्तें हैं जिनके पूरा होनेपर इस अवस्थाकी प्राप्ति सहज मानी जाती है। परमात्मा की विभूतिके दर्शन तथा उसकी सर्वशक्तिमत्ताके ज्ञानकी अनुभूति जब हृदयमें होती है तब यह अवस्था आती है। अबू हमजा एक सूफी साधक थे। वे बगदादकी गलियोंसे होकर गुजर रहे थे। उस समय वे परमात्माके सान्निध्यका स्मरण कर रहे थे। थोड़ी ही देरमें वे भावाविष्टावस्थाको प्राप्त हो गए और चलते-चलते मरुभूमिमें पहुँच गए। वहाँ पहुँचनेपर उन्हें पता चला कि वे कहाँ आ गए। इस प्रकारकी अवस्था कभी-कभी हफ्तों रह जाती है।

प्रश्न यह है कि परमात्माको प्रत्यक्ष कैसे किया जा सकता है ? उसकी विभूतिके दर्शन करना कैसे सम्भव हो सकता है ? क़ुरानमें जिस परमात्माके लिए कहा गया है कि वह पृथ्वी और आकाशका प्रकाश है उसे मनुष्य आँखोंसे कैसे देख सकता है ? सूफियोंका कहना है कि उसे इन आँखोंसे प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता, वह हृदयकी अन्तर्दृष्टिसे प्रत्यक्ष होता है। कहा गया है कि अदृश्य संसारमें जो छिपा हुआ है उसे यक़ीदा (विश्वास) के आलोकमें प्रत्यक्ष करना ही 'अन्तर्दृष्टि' है और यह स्वयंभूत विश्वास जिससे हृदय परमात्माको प्रत्यक्ष कर पाता है वह परमात्माकी ज्योतिकी एक रश्मि है। परमात्मा ही इसे हृदयमें पहुँचानेवाला है। अगर ऐसा नहीं होता तो उसे प्रत्यक्ष करना सम्भव नहीं था। केवल इतना ही नहीं बल्कि जो प्रकाश साधकके हृदयको आलोकित करता है

वह उसे फ़िरासत (दूर दृष्टि) की अलौकिक शक्ति भी प्रदान करता है। इस शक्तिके सम्बन्धमें सूफ़ी साधकोंमें मतभेद है। कुछका कहना है कि आत्मा अनादि है और फ़िरासतकी यह दिव्य शक्ति आत्माके साथ ही भगवान्‌ने प्रदान की है। सनातन-पन्थी सूफ़ी इसको नहीं मानते। उनका कहना है कि फ़िरासतकी शक्ति ज्ञान और निरीक्षणकी शक्तिके फलस्वरूप प्राप्त होती है। यह परमात्माके द्वारा निर्मित है जिसे वह अपने कृपापात्रोंको अनुग्रह-पूर्वक प्रदान करता है। सच्चा ईमान लानेवाला अल्लाहकी ज्योतिके सहारे देखता है।

दूरदृष्टिकी शक्तिका क्या रूप है इसका कुछ अनुमान सूफ़ी-साधकोंके जीवन-वृत्तोंसे लगाया जा सकता है। शिब्लीकी कहानीसे उसकी इस शक्तिका पता चलता है। अबू अब्दुल्ला अल-राजीका कहना है कि इब्न अल-अनबारीने उसे एक ऊनी फ्राक दिया। उसने शिब्लीके माथेपर एक टोपी देखी जो वहीं थे। उसे लगा जैसे वह टोपी उस फ्राकके साथ खूब जँचेगी। उसके मनमें हुआ कि वह टोपी उसे मिल जाती। शिब्ली जब चलनेको हुए तब अपनी आदतके अनुसार उन्होंने उसकी ओर देखा जिसका मतलब था कि उसे उनके साथ जाना होगा। जब वह शिब्लीके साथ उनके घर पहुँचा तब शिब्लीने फ्राक और टोपी दोनोंको लेकर आगमें जला दी।

चरम लक्ष्यकी चर्चा करते समय सूफ़ियोंके मनमें स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि 'एकमेक' होनेका अर्थ क्या है? परमात्मामें पूर्ण लय हो जाना 'एकमेक' होना है अथवा वह स्थिति जिसे परमात्मामें वास करना कहते हैं। इसे लेकर सूफ़ियोंमें पूरा मतभेद है। उनमें बहुत ऐसे हैं जो प्रथम अवस्था, जिसे 'फ़ना' कहते हैं, को ही चरम लक्ष्य और साधककी अन्तिम मंजिल मानते हैं और बहुत ऐसे हैं जो दूसरी अवस्था जिसे 'बक़ा' कहते हैं, को ही चरम लक्ष्य मानते हैं। कहा जाता है कि 'फ़ना' की अवस्थामें साधक जागतिक प्रपञ्चोंसे परे होकर अपने अस्तित्वको लय कर देता है। बहुत दिनों तक इसे ही सूफ़ी अपना लक्ष्य मानते रहे

लेकिन धीरे-धीरे सूफी सनातन-पन्थी इस्लामके प्रभावसे उसे ही अन्तिम अवस्था माननेमें संकोच बोध करने लगे। उन्होंने इसे ही अन्तिम अवस्था नहीं माना। उनके अनुसार वास्तविक अस्तित्वका प्रारम्भ 'फ़ना'के बादसे होता है। 'अहं'को मिटाकर साधकको 'फ़ना' की प्राप्ति होती है और उसके बाद ही 'बक़ा'की अवस्था आती है जिसमें वह परमात्माके साथ एकमेक होकर रहने लगता है।

'फ़ना'की कई प्रकारसे व्याख्या की गई है। 'फ़ना'की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'सूफी-मार्ग'पर अग्रसर होते हुए साधक जब सारे कलुष और सारी इच्छाओंसे परे हो जाता है तो उसका आत्मा, परमात्मामें लीन हो जाता है और इसीको 'फ़ना' कहते हैं। उस समय 'अहं'की चेतना नहीं रह जाती और इसलिए अपने परायेका भाव मिट जाता है। उस समय साधकको न सुखकी चिन्ता रहती है और न दुःखकी। वह उन सारी वस्तुओंसे अलग हो जाता है जिनसे सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है। साधककी सारी वासनाओं, सारी आकांक्षाओंका अवसान हो जाता है। वह परमात्माको लेकर ही मस्तमौला बना रहता है। उसके व्यक्तिगत जीवनकी कोई सार्थकता नहीं रह जाती। इसे ही सूफी 'मह्व' कहते हैं। अतएव यह सहज ही समझा जा सकता है कि जो व्यक्ति 'फ़ना'की अवस्थाको प्राप्त हो गया वह मजहबके नियम-कानूनोंका पालन कैसे कर सकेगा। उसके लिए कहा जाता है कि परमात्मा उसकी चिन्ता करता है। बायजीद आदि सन्तोंके बारेमें कहा जाता है कि वे बराबर भावा-विष्टावस्थामें बने रहते थे। केवल प्रार्थनाके समय उनकी चेतना लौटती थी नहीं तो बराबर उनकी वही अवस्था बनी रहती थी। 'फ़ना'की व्याख्या करते हुए निकोल्सन[1]ने कहा है कि 'फ़ना' आत्माकी वह ऊर्ध्व-गति है जब कि उसकी सारी आकांक्षाएँ, सभी स्वार्थ, सांसारिक माया-मोह नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकारसे जब वह स्व-चिन्तनसे विरत हो जाता है तब वह स्वयं परम प्रियतमकी चिन्ताका विषय हो जाता है।

---

१. आ. प. सू., पृ० १८।

प्रेमी और प्रेमाराध्यका ऐक्य स्थापित हो जाता है।

कालाबाधी, कुशैरी आदिने 'फ़ना' के सम्बन्धमें कुछ इस प्रकारके मन्तव्य प्रकट किये हैं। जिस क्षणमें आत्मा अनन्त सौन्दर्यको प्रत्यक्ष करता है उसमें उसे अपने अस्तित्वका ज्ञान दूर हो जाता है। इन्द्रियगत विषयोंसे वह परे हो जाता है तथा प्राणी-जगत् सम्बन्धी उसके समस्त ज्ञान खो जाते हैं। स्वात्म-ज्ञानका तिरोहित होना 'फ़ना' कहलाता है[1]। सूफ़ी जब यह कहते हैं कि आत्मा, परमात्मामें विलीन हो जाता है तब उनका मतलब यह नहीं होता कि वह कुछ नहीं रह जाता, बल्कि उससे यह समझा जाता है कि वह सर्वव्यापक सत्तामें विलीन होकर उसका अंग बन जाता है। गोल्डजिहर[2]ने बतलाया है कि सूफियोंके अनुसार आत्मा-विशेषका नाश नहीं होता, बल्कि वह परमात्माके साथ एकमेक हो जाता है। सर्वव्यापक सत्तारूपी अतल महासागरमें एक बूँदकी तरहसे वह विलीन हो जाता है। उसकी स्वतन्त्र-सत्ता नहीं रह जाती। इस प्रकारसे हम देखते हैं कि 'फ़ना' के भिन्न-भिन्न स्तर, पहलू और अर्थ हैं जैसे—(१) सभी वासनाओं और आकांक्षाओंका विनाशको प्राप्त होना और इसके द्वारा आत्माका नैतिक रूपान्तर होना, (२) परमात्माके गुणोंके चिन्तन द्वारा सभी दीख पड़नेवाली वस्तुओं, सभी चिन्ताओं, सभी कर्मों और सभी वासनाओंका मनसे मिट जाना, (३) समस्त चैतन्य शक्तिका निष्क्रिय होना, (४) फ़नाकी अन्तिम अवस्थाको प्राप्त होना जिसमें फ़नाकी प्राप्तिका ज्ञान भी चला जाता है। इसीको 'फ़ना अल-फ़ना' कहते हैं।

'फ़ना' की व्याख्या कुछ इसी प्रकारसे की गयी है, लेकिन बादमें अबू सईद अल-सर्राजने उसके बादकी भी स्थितिपर प्रकाश डाला है। अल-सर्राजने 'फ़ना' को चरम-लक्ष्य नहीं माना है, बल्कि उसने 'बक़ा' को चरम-लक्ष्य माना है, जिस अवस्थामें आत्मा, परमात्मामें वास करने

१. स्ट. अ. मि. नि. मि. इ., पृ० २१५।
२. ज. रा. ए. सो. (१९०४), पृ० १३७।

लगता—उसके साथ एकमेक होकर रहता है। 'फ़ना' की अन्तिम अवस्था 'बक़ा' का प्रारम्भ है।

इस्लामके धार्मिक सिद्धान्तोंमें पूर्ण रूपसे आस्था रखनेवाले सूफी साधक अल-सर्राजके इस विचारसे सहमति रखते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि वास्तवमें 'फ़ना' की स्थिति ही सूफी-साधककी चरम परिणति है और उसके बादकी स्थिति (बक़ा) की बात जो बादमें कही जाने लगी और उसपर जो ज़ोर दिया जाने लगा उसके पीछे एक विशेष मनोवृत्ति काम कर रही थी और वह मनोवृत्ति अपनेको इस्लाम-धर्मका पूर्ण रूपसे अनुयायी साबित करनेका सूफियोंका आग्रह मात्र थी। कुछ दूरतक यह बात सही भी हो सकती है। सूफीमतका आविर्भाव इस्लामके अन्तर्गत ही हुआ है और इस्लाम-धर्म यह मानता है कि आत्माकी सत्ता किसी भी अवस्थामें बनी रहती है, और उस आत्माका नाश नहीं होता[1]। अतएव सूफियोंका झुकाव इस तरफ होना कुछ अस्वाभाविक नहीं था।

हुजवीरीने 'फ़ना' और 'बक़ा' की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि 'फ़ना' वास्तवमें किसी वस्तुकी अपूर्णताका ज्ञान और उसे पानेकी इच्छासे विरत होना है। 'फ़ना' की अवस्थामें न प्रेमके लिए स्थान है और न घृणाके लिए और 'बक़ा'की अवस्थामें न संयोगका ज्ञान रह जाता है और न वियोगका। हुजवीरीने इसे ग़लत माना है कि 'फ़ना'की अवस्थामें व्यक्तिके अस्तित्व—उसके स्वरूप और गुण—का विनाश हो जाता है। इसी प्रकारसे बक़ा (स्थिति) की अवस्थामें यह मानना ग़लत है कि मनुष्यमें परमात्माकी स्थिति होती है चूँकि इसका मतलब यह हो जायगा कि परमात्मा मनुष्य रूपमें अवतरित होता है और मनुष्यके समस्त गुणोंका अधिकारी हो जाता है। अतएव फ़ना (लय होना, विनष्टि) और बक़ा (स्थिति) मनुष्यके अपने ही गुण हैं। फ़नाका मतलब एक गुणका नाश होना जो उसके स्थानपर दूसरे गुण (बक़ा)के आनेसे होता है। अगर

---

१. आ. प. सू., पृ० १५।

फ़ना और बक़ाको एक दूसरेसे बिल्कुल स्वतन्त्र मानें तो फ़नाका अर्थ दूसरी सभी वस्तुओंकी स्मृतिका लुप्त होना है और बक़ाका अर्थ परमात्मा-के स्मरणमें स्थिति है। जिसकी इच्छाओंका सम्पूर्ण रूपसे निरसन हो जाता है वह परमात्माकी इच्छाओंसे चालित होता है। जिस प्रकार अग्निमें जब लोहा पड़ जाता है तो अग्नि उसे अपने जैसा बना लेती है और अग्निके गुण लोहामें आ जाते हैं लेकिन लोहाका स्वरूप विनष्ट नहीं होता[1]। अतएव फ़ना और बक़ाकी अवस्थाका मतलब यह हो जाता है कि मनुष्यके गुण, स्वभाव और कर्म तथा उसकी सम्पूर्ण इच्छाओंका जब तिरोभाव होता है तब वह सम्पूर्ण रूपसे परमात्माकी इच्छासे परि-चालित होता है।

अली बिन उस्मान अल-हुज्वीरीने फ़ना और बक़ाकी व्याख्याओंपर विचार करते हुए बतलाया है कि वे सभी एक ही भावको प्रकट करते हैं केवल कहनेका ढंग भिन्न है। हुज्वीरीका कहना है कि जब मनुष्यका हृदय परमात्माकी शक्ति और विभूतिके आलोकसे प्रकाशित हो उठता है तब उस परम-ऐश्वर्यको अभिभूत करनेवाला आलोक उसके मनसे इस लोक अथवा उस लोकके अस्तित्वका ज्ञान दूर कर देता है। सूफ़ी 'अहवाल' और 'मुकामात' व्यर्थ प्रतीत होने लगते हैं। तर्क और भाव-प्रवणता दोनोंके लिए ही जैसे वह मृतक-सा हो जाता है। यहाँतक कि 'फ़ना'का 'फ़ना' हो जाता है जिसमें 'फ़ना' प्राप्तिका ज्ञान भी तिरोहित हो जाता है। और 'फ़नाका फ़ना' में उसकी जिह्वापर केवल परमात्माका नाम रहता है। वह विनम्र और दीन हो जाता है[2]।

जीलीने एक जगह कहा है कि जब मनुष्य परमात्माके नामके दर्पणमें देखता है तब वह ठीक समझ लेता है कि परमात्माके सिवा और कुछ नहीं है। और उस क्षण उसे इसका ज्ञान हो जाता है कि उसका सुनना, देखना, बोलना वास्तवमें परमात्माका सुनना, देखना और

---

१. कश्फ़०, पृ० २४३-२४५।

२. कश्फ़०, पृ० २४६।

बोलता है। उस समय वह अनुभव करता है कि परमात्माका जीवन ही वास्तवमें उसका जीवन है और परमात्माका ज्ञान ही उसका ज्ञान, परमात्माकी इच्छा ही उसकी इच्छा है, परमात्माकी शक्ति ही उसकी शक्ति और वह जान जाता है कि परमात्माके गुणोंसे ही सभी पदार्थ गुण वाले हुए हैं[1]।

लेकिन इस प्रकारका परिवर्त्तन साधकमें कैसे आता है और क्यों आता है? इसकी व्याख्या कठिन है। इस सम्बन्धमें ध्यान रखनेकी बात यह है कि मुसलमान यह नहीं मानते कि परमात्माकी जात (सत्ता) साधकमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन ले आ देती है। इसे वे 'हुलूल' कहते हैं। वे यह भी नहीं मानते कि मनुष्यके और परमात्माके स्वभावमें सादृश्य हो जाता है। इसे वे 'इत्तिहाद' कहते हैं। परमात्माके साथ मिलनकी पूर्णावस्थामें साधककी सत्ता बनी रहती है या नहीं? अधिकांश सूफी इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं होंगे कि परमात्मामें रहते हुए भी एक पृथक् चेतन सत्ता बनी रह सकती है। वे मानते हैं कि जैसे वर्षाकी बूँदें जब समुद्रमें पड़ती हैं तो वे विनष्ट नहीं होतीं लेकिन उनका अपना एक अलग अस्तित्व नहीं होता। अ-शरीरी आत्माका उस सर्वव्यापी सत्तासे उसी प्रकारका अभेद है।

हुजवीरीने कहा है कि जो लोग यह समझते हैं कि 'फ़ना' का अर्थ सत्ता और इस मनुष्य शरीरका नष्ट होना है वे भूल करते हैं। उसी प्रकारसे यह भी समझना गलत है कि 'बक़ा' की स्थितिमें परमात्मा मनुष्यमें वास करने लगता है। 'फ़ना' का वास्तविक मतलब यह है कि त्रुटियोंके प्रति मनुष्य सचेतन हो जाता है और उसकी चाहनासे विरत हो जाता है। जो कोई भी अपनी इच्छासे, जो क्षणस्थायी है, परे हो जाता है वह परमात्माकी नित्य इच्छाका अंग बन जाता है। यह बिल्कुल नामुमकिन है कि परमात्माके गुण मनुष्यके गुण बन जायँ अथवा परमात्माके गुण मनुष्यमें आ जायँ।

---

१. स्ट. इ. मि., पृ० ९३।

अल-सर्राजने भी इसी प्रकारसे कहा है कि कुछ लोग अन्न और जल त्यागकर यह आशा करते हैं कि मनुष्यका शरीर जब कमजोर हो जाता है तो उसमें परमात्माके गुण आ जाते हैं। उसका कहना है कि इस सिद्धान्तको माननेवाले लोग नासमझ हैं। वे जीव और उसके स्वभावगत धर्ममें फ़रक़ नहीं कर पाते। मनुष्य-धर्म मनुष्यसे उसी प्रकार दूर नहीं हो सकता जैसे काली वस्तुसे कालापन अथवा ऊजली वस्तुसे ऊजलापन। लेकिन परम-सत्यका शक्तिशाली अपूर्व प्रकाश उसमें परिवर्तन ला देता है। अतएव अल-सर्राजका कहना है कि जो 'फ़ना'के सिद्धान्तको माननेवाले हैं उनका मतलब यह होता है कि मनुष्य अपने कर्मोंका त्यागकर भगवान्का चिन्तन करता है कि वही इन सब कर्मोंका कारण-स्वरूप है और अपने भक्तके लिए वही सब कुछ करता है। अल-सर्राजने परमात्माकी ज़ात (सत्ता) और परमात्माके गुणों (सिफ़त) को भिन्न माना है। अपने गुणोंसे परे होकर साधक परमात्माके गुणोंमें प्रवेश पा जाता है इसे वह (अल-सर्राज) भूल समझता है। अपने गुणोंसे परे होकर परमात्माके गुणोंमें प्रविष्ट होनेका मतलब उसने बतलाया है कि मनुष्य अपनी इच्छा-शक्तिसे परे होकर परमात्माकी इच्छा-शक्तिमें प्रविष्ट होता है क्योंकि साधक जानता है कि परमात्मा ही उसकी इच्छा-शक्तिका कारण है। ऐसा समझकर वह भगवान्के प्रति अनुरक्त होता है। अल-सर्राजने बतलाया है कि साधकके हृदयमें परमात्मा नहीं प्रवेश करता बल्कि परमात्माके प्रति साधकका विश्वास, परमात्माके 'एकत्व'के प्रति उसकी आस्था तथा परमात्माके स्मरणके प्रति श्रद्धाका ही उसके हृदयमें प्रवेश होता है[1]।

निफारीने 'फ़ना' और 'फ़ानी'के बदले 'वाक़फ़त' और 'वाक़िफ़' का व्यवहार किया है। 'वाक़फ़त'से उसका मतलब सभी साधनाओंका अन्त है और 'वाक़िफ़'से मतलब उस साधकसे है जो सब क्रियाओं और साधनाओंसे परे हो जाता है। 'वाक़फ़त' प्रकाशमान है और वह 'भिन्नत्व' के भावको जो अन्धकार जैसा है दूर करता है। यह सभी दृश्यमान

---

१. मि. इ., पृ० १५७–१५८।

वस्तुओंको असली और शाश्वत प्रकाशमें लानेवाला है—'अतएव वाकिफ़ काल और स्थानकी परिधिको अतिक्रमण कर जाता है। अब वह प्रत्येक घरमें प्रवेश करता है लेकिन उसका अँटाव उसमें नहीं होता, प्रत्येक कूप-का जल पीता है लेकिन उसकी प्यास नहीं बुझती और तब वह मेरे (परमात्माके) पास पहुँचता है, और मैं ही उसका घर हो जाता हूँ और वह मुझमें ही वास करने लगता है।' इसका मतलब यह है कि परमात्माके सभी गुणों (सिफ़तों) को वह समझने लगता है और सभी प्रकारकी अनुभूतियोंका वह ज्ञाता हो जाता है। वह केवल नामोच्चारणसे ही सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि जिसका नाम उच्चरित होता है उसीकी खोजमें लग जाता है। वह परमात्माकी ज़ात (सत्ता) का ध्यान करने लगता है और उसमें अपने रूपका साहश्य पाता है। वह अब प्रार्थना नहीं करता। प्रार्थना तो मनुष्यकी परमात्माके प्रति होती है लेकिन वाक़फ़तमें मनुष्य कहाँ? वहाँ तो परमात्माके सिवाय कुछ नहीं रहता। (यहाँ साधक और साध्यका अभेद हो जाता है)। और 'वाक़फ़त'से भी 'वाकिफ़' जब परे हो जाता है तो वह स्वयं प्रकाश-रूप हो जाता है। उस समय परमात्माका ज्ञान ही उसका ज्ञान है। और परमात्माका गुणानुवाद जब वह करता है तब उस गुणानुवादका उद्गम परमात्मा ही है। वह अपने आपको देखता है जैसा कि वह प्रारम्भमें था[1]।

कुछ सूफी-साधक मानते हैं कि यह अवस्था मृत्युके बादकी है लेकिन अधिकांश ऐसे हैं जो इसी जीवनमें उस अवस्थाके प्राप्त होनेकी बात कहते हैं। यहाँ ऐसे दो प्रकारके साधकोंका प्रसंग हम दे रहे हैं जिससे 'फ़ना' और 'बक़ा'के सम्बन्धमें सूफियोंके दृष्टिकोणका पता चल जाता है। कहते हैं कि 'फ़ना'की अवस्थामें इन्द्रिय-जनित ज्ञान लुप्त हो जाता है। सारी अल-सक़ती जो हिजरी सन् की तीसरी शताब्दीका एक सुप्रसिद्ध सूफी साधक था उसने बतलाया है कि उस अवस्थामें किसी आदमीपर तलवार-का वार किया जाय तो उसे वह नहीं मालूम होगा। अबुल खैर अल-

1. मि. इ., पृ० १५६।

अकताके पैरमें एक ऐसा घाव हो गया था जो सड़ गया था। डाक्टरने बतलाया कि पाँव काटना पड़ेगा लेकिन ये इसके लिए राजी नहीं होते थे। उनके शिष्योंके कहनेपर डाक्टरोंने प्रार्थना करते समय पाँव काट डाला। प्रार्थनाके बाद ही उन्हें मालूम हुआ कि क्या हुआ है। 'नफहात अल-उन्स'में जामीने शहाबुद्दीन सुहरवर्दीके एक शिष्यके बारेमें लिखा है कि 'फ़ना'की मंजिलमें परमात्माके 'एकत्व'का ध्यान करता हुआ वह 'हाल'की अवस्था (भावाविष्ट)में था। एक दिन वह रोने लगा और रो-रोकर अपना दुःख प्रकट करने लगा। शेखने उससे पूछा कि उसे कौन-सी तकलीफ है? उसने बतलाया कि 'अनेकत्व'की बाधाके कारण वह उस 'एक' के दर्शनसे वञ्चित हो गया है। वह नामंजूर कर दिया गया है और अपनी पूर्वावस्था (यहाँ उल्लास) को पा नहीं रहा है। शेखने उसे बतलाया यह 'बक़ा' के पहलेकी अवस्था है और उसकी यह वर्तमान अवस्था पहलेकी अवस्थासे ऊँची और उत्कृष्ट है।

ऊपर जिस अवस्थाकी प्राप्तिकी बात कही गयी है उसमें उस अवस्थाका एक चित्र है जब कि साधक बहुत साधनाके बाद भावाविष्टावस्थाको प्राप्त होता है। फिर परमात्माके 'एकत्व' का ध्यान करते हुए वह 'उल्लास' की अवस्थामें रहता है और संसारसे उसका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। फिर आगेकी ओर वह बढ़ता है जब उसके 'उल्लास' और भावाविष्टावस्थाका अनस्थैर्य कम हो जाता है और उसमें शान्ति आती जाती है और वह 'बक़ा' की अवस्थाकी ओर अग्रसर होता रहता है। 'फ़ना' की अवस्थाको पारकर वह 'बक़ा' तक पहुँचता है। फ़नाकी अवस्थाके सभी लक्षणोंका धीरे-धीरे अवसान हो जाता है। इसी 'फ़ना' की अवस्थाका तिरोभाव हो गया है और दूसरी अवस्था अभी आनेको बाकी है तो उपर्युक्त साधकको लगा कि उसकी साधना पूरी सफल नहीं हुई और परमात्माने उसे स्वीकार नहीं किया चूँकि बिना परमात्माके अनुग्रहके कुछ भी सम्भव नहीं।

इब्नुल फरीद तथा अबू सईद इब्न अबील खैरने उस साधकके

बारेमें बतलाया है जो 'बक़ा' (स्थिति) की अवस्थाको प्राप्त हो चुका है। उनका कहना है 'फ़ना' का पूरक 'बक़ा' है। एक ओर तो साधकका अस्तित्व, उसका आत्मभाव तिरोहित होता है और दूसरी ओर वास्तविक और सर्वव्यापी सत्ताके साथ उसका एकात्मभाव स्थापित होता है। स्वात्मकी मृत्युकी पूर्णाहुति परमात्मामें शाश्वत जीवनकी प्राप्तिके साथ होती है। जहाँ उसका अवास्तविक क्षणस्थायी जीवन समाप्त होता है वहाँ उसे वास्तविक जीवन प्राप्त होता है। यहाँ जीवनकी समाप्तिका अर्थ 'अहं' भावका तिरोहित होना है। इस शाश्वत जीवनमें उसके सभी पिछले गुण फिरसे प्राप्त हो जाते हैं और वे खरे, विशुद्ध और दिव्य होकर प्राप्त होते हैं। इस प्रकारका साधक जो इस बक़ा की अवस्था प्राप्त कर चुका है अब केवल 'एक' के चिन्तनमें उल्लाससे पूर्ण उन्मत्त बना हुआ नहीं रहता और न मनुष्यसे विच्छिन्न होकर संसार-त्यागी हो जाता है। अबू सईदका कहना है कि सच्चा सन्त संसारके मनुष्योंके बीच आता-जाता है। उनके साथ भोजन करता है, उनके साथ शयन करता है। बाजारमें जाकर खरीद-बिक्री करता है, विवाह करता है तथा सामाजिक कृत्योंमें हाथ बटाता है लेकिन एक मिनटके लिए भी परमात्माको नहीं भूलता[1]।

अतएव हम देखते हैं कि सूफियोंका चरम लक्ष्य परमात्माके साथ एकमेक होना है और इसे चरम लक्ष्य माननेके पीछे कुरानका एक प्रसङ्ग है जिसकी चर्चा सूफी बार-बार करते हैं और उसकी व्याख्या उनकी अपनी है। कहा जाता है कि सृष्टि करनेके पहले परमात्माने उन सभी अशरीरी आत्माओंको अपने सामने बुला भेजा जिनको पृथ्वीपर वास करना था और उनसे कहा कि "क्या मैं तुम्हारा प्रभु नहीं हूँ।" प्रत्येक आत्माने उत्तर दिया 'हाँ' और इसे ही सूफी बार-बार स्मरण करते हैं कि उसी परम सत्यकी खोज और उसके पास पहुँचना आत्माका लक्ष्य है चूँकि वहीं पहुँचकर वह शान्ति पायेगा। आत्माकी परमात्माकी ओर

1. स्ट. इ. मि., पृ० ५५।

यात्राके जो अनुभव हैं तथा 'एकमेक' होनेकी अवस्थाकी जो अनुभूति है उसका वर्णन सूफी-साधक भावाविष्टावस्थामें करते हैं। वहाँ जिस परम सौन्दर्यका वे दर्शन करते हैं तथा मार्गमें जो कुछ वे अनुभव करते हैं बाय जीद अल-बिस्तामीके निम्नलिखित वर्णनसे उसका कुछ अनुभव किया जा सकता है। बिस्तामीने लिखा है—"जब मैं सोया हुआ था तो मुझे लगा जैसे परमात्माकी खोजमें ऊपर आसमानमें पहुँच गया हूँ। उस परम ऐश्वर्यशालीके साथ मिलनकी आकांक्षा मेरे मनमें थी जिसमें कि बराबरके लिए मैं उसमें वास कर सकूँ। और मेरी इसमें परीक्षा ली गयी। परमात्माने सब प्रकारके प्रलोभन मुझे दिये औरसमूचे आसमान-का राज्य मुझे देना चाहा, लेकिन मैंने उससे आँखें फिरा लीं चूँकि मैं जानता था कि वह मेरी परीक्षा ले रहा है और अपने प्रभुकी खातिर मैंने उसकी ओर दृष्टि नहीं डाली और मैं बोला—'हे मेरे प्रियतम, मुझे जो कुछ दिया जा रहा है उससे भिन्न वस्तुकी मुझे चाहना है।' तब मैं दूसरे आसमान पर गया और वहाँ पंखयुक्त देवदूतोंको देखा जो सूर्यकी तरह चमक रहे थे और जो पृथ्वीपर प्रत्येक दिन सन्तोंको देखनेके लिए लाखों बार जाते हैं। जब मैं सातवें आसमानपर पहुँचा तब एकने मुझसे कहा—'ऐ अबू यजीद, ठहरो, ठहरो, क्योंकि तुम अपने लक्ष्यपर पहुँच चुके हो।' लेकिन मैंने ध्यान नहीं दिया और अपनी यात्रा जारी रखी। और जब परमात्माने मेरी सचाई देखी कि मैं सचमुचमें उसकी खोजमें हूँ, उसने मुझे पक्षी बना दिया और मैं उड़ने लगा। राज्यपर राज्य आते गये, पर्दे पर पर्दे, मैदानके बाद मैदान, समुद्रके बाद समुद्र, हिजाब (पर्दा) के बाद हिजाब, अन्तमें परमात्माकी कुर्सीका देवदूत एक ज्योति-स्तम्भ लिये हुए मिला और मुझसे कहा—'इसे लो' और मैंने ले लिया और समस्त आसमान और उसमें रहनेवाले सभी कुछ मेरे आध्या-त्मिक ज्ञान (मारिफत) की छायामें शरण खोजने लगे और मेरी उत्कट अभिलाषाकी ज्योतिमें ज्योति खोजने लगे और परमात्माको खोजनेकी मेरी एकान्त वासनाकी तुलनामें सभी देवदूत मच्छरोंकी तरह प्रतीत हुए।

और मैंने उड़ना जारी रखा और परमात्माकी कुर्सी (जिसपर परमात्माका पैर रहता है) के पास पहुँचा। वहाँ बहुतसे देवदूत मिले जिनकी आँखें आसमानके तारोंके समान थीं और प्रत्येक आँखसे प्रकाश निकल रहा था और वे प्रकाश दीपक बन जाते थे और प्रत्येक दीपकसे आवाज निकलती थी 'परमात्माको धन्यवाद', 'परमात्माके सिवा और कोई नहीं'। फिर मैं उड़ा और प्रकाशके एक समुद्रके पास पहुँचा जिसमें लहरें एक दूसरेसे टकरा रही थीं जिनके सामने सूर्य भी काला दिखाई पड़ता था। उस समुद्रमें प्रकाशके जहाज थे जिनके सामने उस समुद्रकी लहरें धुँधली दिखाई पड़ रही थीं। इस प्रकारसे मैं एक समुद्रके बाद दूसरे समुद्रको पार करता रहा और अन्तमें उस सबसे बड़े समुद्रके पास पहुँचा जहाँ परमात्माका अर्श (सिंहासन) है। मैं तैर कर वहाँ गया। परमात्माकी खोजमें लगे हुए मेरे आत्माकी तुलनामें सभी कुछ छोटा दिखाई पड़ रहा था। समस्त स्वर्ग, पृथ्वी, उनमें वास करनेवाले प्राणी सभी सरसोंसे भी छोटे दिखाई पड़ रहे थे।" इसके बाद बायजीदने बतलाया है कि किस प्रकारसे परमात्माने अनुग्रहपूर्वक उसे अपने पास स्थान दिया और किस तरहसे उसे अपना लिया। उसके बाद ही उसे लगा जैसे वह पिघल रहा हो और परमात्माने अपने साहचर्य (उन्सियत) के प्यालेमें अपने अनुग्रहके झरनेसे पीनेके लिए दिया और वह इस प्रकारसे परिवर्तित हो गया जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस (परमात्मा) ने अपने पास उसे खींच लिया और वह उसके इतना निकट हो गया जितना आत्मा भी शरीरके निकट नहीं रहता। इस प्रकार रहते-रहते वह ऐसी अवस्थामें पहुँच गया जैसा कि आत्मा सृष्टिके पहले था और जब परमात्मा निरपेक्ष था[१]।

अब प्रश्न यह है कि इस चरम लक्ष्यकी प्राप्ति कैसे हो? इसे यों भी कह सकते हैं कि उस परमात्माको कैसे पाया जाय? वह इन्द्रियोंसे जाना नहीं जा सकता चूँकि वह भौतिक-जगतसे परे है। बुद्धिसे भी उसे नहीं

१. स्ट. अ, मि. नि. मि. इ., पृ० २४०—२४२।

जाना जा सकता क्योंकि वह तर्कसे परे है, सीमाके बाहर तर्ककी गति नहीं। अगर ग्रन्थोंको पढ़कर उसे पाना चाहें तो असम्भव है क्योंकि पुस्तकी-विद्या हमारी अहंभावनाको केवल उत्तेजना दे सकती है लेकिन वह चीज नहीं दे सकती जिससे परमात्माको जाना जा सके। वाग्जालके द्वारा सत्य ढक जाता है।

सूफी कहते हैं कि परमात्माको वही जान सकता है जो अपने आपको जान लेता है। सूफी-साधकका कहना है कि परमात्माका साम्राज्य हृदयके भीतर है उसे ही जानना है उसे जाने बिना परमात्माको नहीं जाना जा सकता। अपने आपको जाननेका मतलब आत्माको जानना है। हम पहले ही देख चुके हैं कि मनुष्यमें दोनों वस्तुएँ वर्तमान हैं—अ-सत् और वास्तविक सत्ता। परमात्माकी सत्ता उसके भीतर जैसे एक चिनगारीकी तरह अपना आलोक बिखेर रही है। उसमें पाप-पुण्य, सत्य-मिथ्या सभी वर्तमान हैं। वह समस्त ब्रह्माण्डको उसकी अच्छाइयाँ-बुराइयाँ, उसके प्रकाश-अन्धकार सबको अपने भीतर ग्रहण किये हुए है। अब उसके भीतरकी वास्तविक सत्ता, अ-सत्के पर्देको हटाकर परम-सत्तामें मिल जानेके लिए बराबर सचेष्ट रहती है। उसके मार्गकी बाधा अ-सत्का पर्दा है। अतएव उस परम-सत्ताको प्रत्यक्ष करनेके लिए इस अ-सत्पर विजय प्राप्त करनी होगी। जो हृदय दर्पणकी नाईं उस परमात्माको प्रतिबिम्बित कर रहा है और जिसपर अज्ञानकी धूलि पड़ी हुई है उसे स्वच्छ करना पड़ेगा।

इसके लिए हमें जानना होगा कि जिसे हम आत्मा कहते हैं अथवा जो कुछ भी वास्तविक वस्तु हमारे भीतर है वह वास्तवमें हमारा नहीं परमात्माका है और उसके अलावे जिसे हम अपना समझकर चिपटे हुए हैं वह वास्तवमें असत्य है, माया है, भ्रम है। अतएव अ-सत्पर विजय प्राप्त करनेके लिए आत्मापर विजय प्राप्त करना होगा क्योंकि उसीके कारण हम अपने चारों ओर एक माया-जाल फैलाये हुए हैं और उसे ही सत्य माने बैठे हैं। अतएव आत्मापर विजय प्राप्त कर तथा उसके सच्चे ज्ञानकी उपलब्धि कर हम अपने चरम लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं और

इस आत्मापर सूफियोंके मतानुसार प्रेमके द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है।

प्रायः सभी धर्मोंमें परमात्माके प्रति प्रेमको बड़ा स्थान दिया गया है, परमात्माको पानेके जितने साधन और मार्ग बताये गये हैं उनमें प्रेमको बहुत बड़ा स्थान दिया गया है। प्रेमके द्वारा मनुष्यके हृदयमें श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होते हैं। रहस्यवादी इसी प्रेमको लेकर आगे बढ़ते हैं। इसीके बलपर परमात्माको पानेकी आशा रखते हैं। उनका विश्वास है कि इस प्रेमके द्वारा सब कुछ सम्भव हो सकता है। अबू तालिबने कहा है कि प्रेमसे परमात्मा सम्बन्धी रहस्योंका भेदन तथा उसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

प्रेम एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति है जो साधकको आध्यात्मिक मार्गपर लगा देती है। यह एक ऐसी वासना है जो समस्त वासनाओंको हृदयसे दूर कर देती है। अबू यजीदने कहा है कि 'संसारसे शत्रुताकर मैं परमात्माके पास भागा लेकिन उसके प्रेमने इस प्रकारसे मेरे ऊपर काबू कर लिया कि मैं अपना स्वयं दुश्मन बन गया।' अन्य सूफी साधकोंने भी प्रेम-के स्वरूप और उसके सम्बन्धमें कहा है। उनके कुछ कथनोंको हम यहाँ दे रहे हैं। इनसे सूफियोंके दृष्टिकोणका पता चल जाता है। सूफी-साधक अल-शिबलीका कहना है कि 'प्रेम हृदयमें अग्निके समान है जो परमात्माकी इच्छाके सिवाय अन्य सभी वस्तुओंको जलाकर भस्मीभूत कर देता है'। अल-हुजवीरीने कहा है कि 'परमात्माके प्रेमीके पास इच्छा नामकी कोई वस्तु नहीं रह जाती कि अच्छी या बुरी किसी चीजकी वह चाहना करे, क्योंकि जो परमात्माका प्रेमी है उसके लिए परमात्माके सिवा कोई भी वस्तु अभीप्सित नहीं होती।' इसी प्रकारसे परमात्माके प्रति मनुष्यके प्रेमके सम्बन्धमें एक जगह और हुजवीरीने कहा है कि 'परमात्माके प्रति मनुष्यका प्रेम एक ऐसा गुण है जो परमात्मापर ईमान लानेवाले पुण्यात्माके हृदयमें श्रद्धा और आलोकके रूपमें अपने-आपको प्रकट करता है। अतएव वह अपने प्रियतमको सन्तुष्ट करना चाहता है और उसके साक्षात्कारके लिए

बेचैन और अधीर हो उठता है और उसके बिना उसे चैन नहीं मिलता, सर्वदा उसकी याद उसे बनी रहती है तथा उसे छोड़कर वह सबको भुला देता है[1]।'

जुनैदने इस प्रेमकी परिभाषा करते हुए बतलाया है कि इस प्रेमका अर्थ यह है कि प्रियतमके गुण प्रेमीमें आ जाते हैं। प्रेमीके अपने निज-के गुण दूर हो जाते हैं और उनके स्थानपर प्रियतमके गुण आ जाते हैं अर्थात् प्रेमीकी 'अहं' भावना दूर हो जाती है और वह प्रियतममय हो जाता है।

अपनी समस्त कामनाओंके साथ अपनेको समर्पण कर देनेमें ही प्रेमी सुख पाता है। किसी भी वस्तुको अपने प्रियतमपर न्योछावर कर देनेमें उसे हिचक नहीं होती। वह समझता है कि अपने समस्तको देकर वह उसे पा सकता है। अबू अब्दला अल-कुरशीने, जिसकी मृत्यु लगभग ९४१ ई० के हुई, कहा है कि 'सच्चे प्रेमका मतलब है कि तुम जिस परम-प्रियतमसे प्रेम करते हो उसे सब कुछ, जो तुम्हारे पास है, दे दो जिसमें कि तुम्हारा अपना कहनेको कुछ भी न रह जाय।' इसका मतलब केवल इतना ही नहीं है कि प्रेमीको अपनी सांसारिक वस्तुओं और कामनाओं-का ही परित्याग करना पड़ता है बल्कि उसे पूर्ण रूपसे अपनेको उस परम-प्रियतमको समर्पण कर देना पड़ता है। बिना ऐसा किये, बिना अपने 'अहं'को नष्ट किये उस अलौकिक प्रेमका वह अधिकारी नहीं हो सकता।

प्रियतमका पाना कब और कैसे सम्भव हो सकता है इसका एक सुन्दर वर्णन जल्लालुद्दीन रूमीने मसनवीमें दिया है।

प्रियतमके दरवाजेको किसीने बाहरसे खटखटाया। भीतरसे आवाज आई "कौन है?" उसने जवाब दिया "मैं हूं।" भीतरसे आवाज आई "इस घरमें तेरे और मेरे, दोनोंके लिए स्थान नहीं है।" प्रेमी चला गया। उसने एकान्त-सेवन किया, प्रार्थनामें निरत रहा, उपवास किया।

१. कश्फ०, पृ० ३०७-३०८।

एक वर्षके बाद वह फिर लौटा। उसने पुनः दरवाजा खटखटाया। आवाज आयी "कौन है?" प्रेमीने उत्तर दिया "तू है" और तब दरवाजा खुल गया। अतएव जबतक मनुष्य इस "मैं" और "तू" के बन्धनसे अपनेको मुक्त नहीं करता तबतक उस परम प्रियतमका पाना सम्भव नहीं है। यह प्रेमकी गली अतिसङ्कीर्ण है। इसमें एक साथ दो प्रवेश नहीं पा सकते। जबतक 'अहं' बना हुआ है तबतक उसका पाना कठिन है और जब वह मिल जाता है तब फिर 'अहं' नहीं रह जाता।

हमेशासे रहस्यवादी साधक परमात्माकी प्राप्तिका साधन प्रेम करना मानते आये हैं। परमात्माको वे परम प्रियतम मानते हैं। वे मानते हैं कि वह परम सौन्दर्य है और उसकी विभूति अनन्त है। साधकको जब उसकी विभूतिका, उसके सौन्दर्यका ज्ञान होता है तब वह उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता। प्रेमके द्वारा उसे उसके उन्स (साहचर्य) का अनुभव होता है, उससे वह अभिन्न हो जाता है। उसके हृदयमें प्रियतमके प्रेमके सिवा कुछ नहीं रह जाता। उसका सारा अस्तित्व प्रेमके ऊपर निर्भर करता है, प्रेम ही उसका एकमात्र आधार रहता है। परमात्माका अनन्त सौन्दर्य स्वभावतः साधकको अपनी ओर आकृष्ट करता है। सौन्दर्यके प्रति आकर्षण मनुष्यका प्रकृत गुण है। सुन्दर वस्तुओंके देखनेसे उसे आनन्दकी प्राप्ति होती है। अतएव परमात्माका अनन्त सौन्दर्य एवं तज्जनित प्रेम जब भक्तके हृदयको अभिभूत कर देते हैं तो फिर अन्य वासनाओं और कामनाओंके लिए उसमें स्थान नहीं रह जाता।

अल-हुजवीरीने परमात्माके प्रेमी और उसके साधारण उपासकके अन्तरको बतलाया है। हुजवीरीका कहना है कि जब किसी मनुष्यके हृदयमें परमात्मा अपनी विभूतिको प्रकट करता है तब उसका जलाल (ऐश्वर्य) ही प्रधान रहता है और उस (मनुष्य) में भयका संचार होता है लेकिन जब परमात्माका जमाल (सौन्दर्य) प्रधान हो जाता है तब वह (मनुष्य) अपनत्व का अनुभव करता है। जिनमें भयका संचार

होता है वे कष्ट पाते हैं और जो अपनत्वका अनुभव करते हैं उन्हें आनन्द प्राप्त होता है।''''''परमात्माका भक्त उसके अनुग्रहको देखकर उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता और जब वह प्रेम करने लगता है तब वह उस (परमात्मा) के साथ अन्तरङ्ग हो जाता है; क्योंकि प्रियतमके भयमें पार्थक्य है और अन्तरङ्गतामें एकत्व है[1]।

राबियाने इस प्रेमके दो भेद बतलाये हैं—सकाम और निष्काम। राबियाके बताये हुए इन दोनों भेदोंकी व्याख्या करते हुए अल-ग़ज़ालीने कहा है[2] कि सकाम प्रेमसे राबियाका मतलब उस प्रेमसे था जिसमें तात्कालिक सुख और आनन्दकी उपलब्धिके लिए परमात्मासे प्रेम किया जाय और उसका अनुग्रह प्राप्त किया जाय। दूसरे प्रकारके प्रेमसे राबियाका मतलब परमात्माके सौन्दर्य (जमाल) पर मुग्ध होना था। यही श्रेष्ठ प्रेम है। परमात्माके सौन्दर्यके जिसे दर्शन हो जाते हैं और जिसे उसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है और उसकी समस्त वासनाएँ तिरोहित हो जाती हैं तथा उसका हृदय उसके प्रकाशसे परिपूर्ण हो जाता है। इस ज्ञानको प्राप्त करना ही साधकोंका एकमात्र लक्ष्य होता है। इस प्रकारके ज्ञानीको अगर आगमें फेंक दिया जाय तो भी उसे उसका पता नहीं चलेगा क्योंकि वह तल्लीन रहता है। फिर अगर उसके सामने स्वर्गके सुखोंको रख दिया जाय तो वह उसकी ओर देखेगा भी नहीं क्योंकि उसका हृदय प्रकाशसे पूर्ण है और उसे जो कुछ प्राप्त हो गया है उसके बाद उसे प्राप्त करने को कुछ भी बाकी नहीं रह गया है। जो इन्द्रियजनित सुखोंपर ही लुब्ध है वह परमात्माके साक्षात्कार द्वारा प्राप्त आनन्दको कैसे समझ सकेगा? इसी बातपर जलालुद्दीन रूमीने जोर दिया है कि 'वही आदमी सब प्रकारसे स्वतन्त्र है जिसका परमात्माके प्रति इस प्रकारका अनन्य प्रेम है कि उसकी समस्त इच्छाएँ परमात्माकी इच्छाके साथ एक हो गयी हैं। इच्छाओंके

१. कश्फ०, पृ० ३०६-३०७।

२. रा. मि., पृ० १०४-१०५ पर उद्धृत।

इस एकत्वमें स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्यके द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं[1]।

यह प्रेम केवल प्रेमके लिए ही होता है। प्रेमीकी एकमात्र कामना होती है कि प्रियतमको अपने सामने देखता रहे, उसके सौन्दर्यपर मुग्ध होता रहे। एक ऐसे ही परमात्माके पागल प्रेमीने कुछ लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा था कि वह प्रियतमके पाससे आ रहा है और प्रियतमके पास जा भी रहा है। प्रियतमके साथ मिलन ही उसकी सबसे बड़ी काम्य वस्तु है। प्रियतमका स्मरण ही उसका आहार है और उसको पानेकी उत्कट अभिलाषाको पीकर ही वह जीता है। प्रियतमका पर्दा (हिजाब) ही उसका परिधान है। लोगोंने पूछा उसका चेहरा क्यों पीला पड़ा हुआ है ? उसने बतलाया, प्रियतमके विरहके कारण। लोगोंने तंग आकर कहा, कबतक इसी तरह से 'प्रियतम-प्रियतम' करते जाओगे ? उसने जवाब दिया, जब-तक प्रियतमके साथ उसका मिलन नहीं हो जाता। इस प्रकारसे इन सूफी-साधकोंके लिए उस परम प्रियतमका प्रेम ही सब कुछ है। वह निष्काम प्रेम है। उस प्रेममें प्रियतमके प्रेमके सिवा दूसरी कोई वस्तु काम्य नहीं। परमात्माके प्रति यह निष्काम प्रेम ही उनकी साधनाकी मुख्य वस्तु है। प्रेमके लिए ही प्रेम करना, सच्चा प्रेम है, इस प्रेममें किसी प्रकारके प्रतिदानकी भावना नहीं रहती।

सूफी यह मानते हैं कि जबतक भगवत्कृपा नहीं होती साधकके हृदयमें प्रेम नहीं होता। उसकी कृपासे ही वह प्रेम साधकके लिए सुलभ हो जाता है। साधक चाहे जितनी भी चेष्टा क्यों न करे यह अमूल्य वस्तु तबतक प्राप्त नहीं होती जबतक भगवानकी दया नहीं होती।[2] जिसपर भगवत्कृपा होगी उसे यह वस्तु प्राप्त होकर ही रहेगी, किसी भी प्रकारकी बाधा उसके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकती। इस प्रेमको शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता और न कोई इसे सूखे तर्क द्वारा ही समझ सकता है या दूसरोंको समझा सकता है। सन्देहकी दृष्टिसे इसकी

१. आ० प० सू०, पृष्ठ ५६।

२. कश्फ०, पृ० १७७।

छानबीन करनेवाला इसे नहीं समझ सकता। यह स्वयं-प्रकाशित है और जो उस प्रकाशको देखता है वही सच्चा ज्ञानी है। इसलिए सूफियोंको तर्क और बुद्धिके दाँव-पेंच पसन्द नहीं। वे उन लोगोंका मजाक उड़ाते हैं जो तर्क और बुद्धिके द्वारा इसे समझना चाहते हैं।

सूफियोंका विश्वास है कि परमात्मा प्रेम-स्वरूप है और वह उन मनुष्योंको इसका रहस्य नहीं बतलाता जो इस प्रेमके पानेके अधिकारी नहीं। जिसने अपने समस्त कलुषको धो नहीं डाला है और जिसने सांसारिक वस्तुओंके प्रलोभनका त्याग नहीं किया है उसे इस प्रेमके पानेका अधिकार नहीं। जो भगवान्से प्रेम करते हैं उनसे भगवान् भी प्रेम करता है। विशुद्ध आत्मा, परमात्माकी ही प्रतिच्छवि है अतएव उसे प्रेम करनेका अधिकार देकर परमात्मा मानो अपनेको ही अधिकार देता है। परमात्माके प्रति उसीके हृदयमें प्रेम होता है जिससे परमात्मा स्वयं प्रेम करता है। अपने प्रेमियोंके हृदयमें वह प्रेमको धरोहरकी तरह अपने ही लिए रख छोड़ता है। सूफी कहते हैं कि भगवान् ही प्रेम है और अपने ही आनन्दके लिए उसे मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न करता है। अतएव सूफी साधनाके प्रारम्भमें भी प्रेम रहता है और उसकी परिणति भी प्रेममें होती है। बायजीद बिस्तामीका कहना है कि "मैं समझता था कि मैं परमात्मासे प्रेम करता हूँ लेकिन गौर करनेपर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करनेके पहलेसे ही वह मुझसे प्रेम करता है।" इस प्रेमको पाकर प्रेमी और प्रियतम दोनों सन्तुष्ट होते हैं। प्रेमके द्वारा जब प्रेमीके सारे अन्तर्द्वन्द्वों, सभी वासनाओंका अन्त हो जाता है तब वह आगे बढ़ता है और उसे परमात्माके दर्शन होते हैं।

लेकिन परमात्मा और मनुष्यके इस प्रेम-सम्बन्धमें जो बात मनुष्यपर लागू होती है वह परमात्मापर नहीं। सूफियोंने परमात्माके प्रति मनुष्यके प्रेमके बारेमें तो बहुत कुछ कहा है लेकिन मनुष्यके प्रति परमात्माके प्रेमकी बात खूब ही कम कही है। फिर भी इतना स्पष्ट है मनुष्य-मनुष्यके बीच जो रागात्मक सम्बन्ध होता है वैसी चीज परमात्मा

और मनुष्यके प्रेम-सम्बन्धमें नहीं है। मनुष्यके प्रति परमात्माका प्रेम उसकी दयालुताके कारण है जबकि मनुष्यके लिए यह लाजिम है कि वह परमात्मासे प्रेम करे। अल-हुजवीरीने कहा है कि मनुष्यके प्रति परमात्माका प्रेम उसके अनुग्रह और दयालुता मात्र हैं। हुजवीरीका यह दृष्टिकोण सभी सूफियोंको मान्य है लेकिन विशेष रूपसे सनातन-पन्थी सूफी यही मानते हैं। अन्य ऐसे भी सूफी-साधक हैं जो परमात्मा और मनुष्यके प्रेममें कोई भेद नहीं मानते। हल्लाज[1] की कविताओंमें इसी प्रकारके भाव प्रकट किये गये हैं, 'जिस प्रकारसे शराबमें शुद्ध जल मिला हुआ रहता है उसी प्रकारसे तुम्हारे और मेरे प्राण मिले हुए हैं। कोई वस्तु अगर तुम्हें स्पर्श करती है तो उससे मेरा स्पर्श हो जाता है। हरएक हालतमें जो तू है वही मैं हूँ।' जामीकी कवितामें भी कहा गया है—'मैं वही हूँ जिसे मैं प्यार करता हूँ और जिससे मैं प्रेम करता हूँ वह मैं ही हूँ। एक ही शरीरमें वास करनेवाले हम दो प्राण हैं। अगर तुम मुझे देखते हो, तो तुम उसे देखते हो और अगर तुम उसे देखते हो तो तुम हम दोनों को देख रहे हो।'

सूफी परमात्माको प्रियतम कहते हैं। परमात्मा ही उनका प्रियपात्र माशूक है जिसके प्रेममें वे व्याकुल बने हुए रहते हैं। सांसारिक प्रेमको वे उस परम प्रियतमतक पहुँचनेका साधन मानते हैं। वे मानवीय प्रेमको आध्यात्मिक प्रेमतक पहुँचनेकी सीढ़ी मानते हैं। यौन-भावना स्वभावतया शक्तिशालिनी होती है। अतएव साधक इसके उद्दाम वेगको संयमित कर इसे आध्यात्मिक प्रेममें नियोजित करनेकी चेष्टा करता है। कहते हैं कि जबतक मनुष्य सांसारिक प्रेमको नहीं जान पाता उसके लिए आदर्श प्रेमतक पहुँचना सम्भव नहीं[2]। जामीकी एक कवितामें कहा गया है—'इस संसारमें तुम सैकड़ों उपाय कर सकते हो लेकिन एकमात्र प्रेम ही ऐसा है जो तुम्हारे 'अहं'से भी तुम्हारी रक्षा करेगा।

१. आ. प. सू., पृ० ३०।

२. म्यो. आ. मि., पृ० ११३।

सांसारिक प्रेमसे भी तुम मुख मत मोड़ो क्योंकि परमसत्यतक पहुँचनेमें वह तुम्हारा सहायक सिद्ध हो सकता है[1]।" लेकिन सांसारिक प्रेम अपने आपमें निष्फल और बेकार है। साधक सांसारिक सौन्दर्यका आनन्द तो अवश्य उठाता है लेकिन वह वहींतक नहीं रह जाता। अनन्त सौन्दर्य-का ज्ञान हो जानेपर मनुष्य उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता।

सूफियोंका कहना है कि जिस सौन्दर्यके दर्शन हमें इन्द्रियों द्वारा होते हैं, वह उसी अनन्त सौन्दर्यकी विभूति है। सूफियोंके अनुसार परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है। वह परमसत्य, अनन्त सौन्दर्य और परम मङ्गल (खैर-ए-महद्) है। उसीकी प्रतिच्छविके रूपमें यह समस्त जगत् और उसके प्राणी अभिव्यक्त हो रहे हैं। वास्तवमें जो कुछ सौन्दर्य है वह परमात्माका सौन्दर्य है अतएव जहां भी सौन्दर्यके हमें दर्शन होते हैं वहाँ हम परमात्मा-के सौन्दर्यको ही देख रहे हैं। उसके बिना सौन्दर्यकी कल्पना नहीं की जा सकती और सौन्दर्यसे प्रेम करना मनुष्यके लिए अस्वाभाविक नहीं है। प्रकृतिकी वस्तुओंमें मनुष्यका मन स्वभावतः ही रम जाता है।

जब मनुष्य प्रेम करने लगता है तब वह मानो उस अनन्त सौन्दर्य-का रसास्वादन करने लगता है चूँकि जहाँ भी हम सौन्दर्यके दर्शन करते हैं परमात्माका सौन्दर्य ही प्रकाशमान रहता है। जामीकी एक कवितामें कहा गया है—

'धन्य है वह संसारका मालिक जिसने प्रत्येक अणु-परमाणुको दर्पण-जैसा बनाया जिससे उसका सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता है। गुलाबोंसे प्रकट होनेवाले उस (परमात्मा)के सौन्दर्यने बुलबुलको प्रेमसे पागल बना दिया। उसी चिनगारीसे शमा प्रकाशमान होती है जिसपर लुब्ध होकर परवाना अपने आपको नष्ट कर डालता है। सूर्यमें उसके प्रकट हुए सौन्दर्यको देखकर लहरोंसे कमल अपना सिर उठाता है। लैलाके काकुल-को देखकर मजनूँका हृदय खिंच गया था क्योंकि उस (लैला)के सुन्दर चेहरेमें उस (परमात्मा)के सौन्दर्यकी कोई किरण फूट उठी

१. लि. हि. प., पृ० ४४२ पर उद्धृत।

थी। उस (परमात्माके सौन्दर्य) ने ही शीरींके होठोंमें वह मिठास भर दी थी जिसने परवेजके हृदय तथा फरहादके जीवनका आहरण कर लिया था। उसीका सौन्दर्य सब ओर प्रतिभासित हो रहा है तथा पृथ्वीकी सुन्दर वस्तुओंसे होकर इस प्रकार चमक रहा है मानों वह परदेसे छनकर आ रहा हो। यूसुफके कोटमें उसका ही चेहरा प्रकट हुआ था जिसने जुलेखाकी शान्ति नष्ट कर दी थी। जहाँपर भी तुम्हें हिजाब दीख जाय उसके पीछे वही छिपा हुआ है। जो हृदय प्रेमसे अभिभूत हो उठता है उसमें वह आकर्षण भर देता है। उससे प्रेम करके ही हृदय प्राणवान होता है। उसकी चाहमें ही आत्माकी विजय है। इस संसारमें सुन्दर वस्तुओंको प्यार करनेवाला (वास्तवमें) उसी (परमात्मा) से प्रेम करता है।'

कहा जाता है कि सीमित और मानवीय प्रेमका विस्तार क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सारे विश्व-ब्रह्माण्डको छा लेता है और वैसी अवस्था प्राप्त होनेपर साधक सर्वत्र आत्मा और परमात्माकी प्रेमलीलाके दर्शन करने लगता है। सौन्दर्यकी सीमित परिधि अन्तमें अनन्त सौन्दर्यतक पहुँच जाती है। सूफियोंका कहना है कि साधारणतः यह देखा जाता है कि सांसारिक प्रेममें प्रेम-पथका यात्री प्रियपात्रकी यादमें अपनेको खो देता है, उसके लिए संसारमें वही एकमात्र सत्य रह जाता है। लेकिन जब उसे यह ज्ञान होता है कि जिसके लिए वह पागल बना हुआ है उसका सौन्दर्य उस अनन्त सौन्दर्यका प्रतिबिम्ब मात्र है और जिस रूपपर वह लुभा हुआ है वह क्षणभङ्गुर है तब धीरे-धीरे उसका मोह कम हो जाता है और वह उस परम प्रियतमका प्रेम पानेके लिए आकुल हो उठता है। और चूँकि वह सांसारिक प्रेमके लिए पहलेसे ही संसारकी अन्य वस्तुओंका त्याग किये हुए रहता है अतएव उस आध्यात्मिक प्रेमके रास्तेपर चलनेमें उसे किसी कठिनाईका अनुभव नहीं होता।

सूफियोंमें एक और अद्भुत बात देखी जाती है और सूफी काव्यमें पग-पगपर उसका परिचय मिलता है। सूफी कहता है कि सांसारिक प्रेममें

स्त्री-पुरुषका प्रेम तो साधारण-सी बात है लेकिन 'अहं' पर विजय पानेके लिए सुन्दर युवाके प्रति प्रेम अधिक उपयुक्त है। इसके सम्बन्धमें जो दलील सूफी-साधक पेश करते हैं उसका सारांश यह है कि स्त्रीके प्रति जो प्रेम होता है उसमें स्वार्थ होता है और सुन्दर युवाके प्रति जो प्रेम होता है उसमें स्वार्थ नहीं होता, उसमें विकार नहीं होता। विकारहीन होनेके कारण यह स्वार्थपर, बुद्धिपर विजय पानेमें अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। पुरुषका युवाके प्रति प्रेम तथा उसके आधारभूत सिद्धान्त वास्तवमें ग्रीकों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं। ग्रीकोंसे ही यह इस्लाममें आया है। फारसीकी कवितामें इसका बाहुल्य है[1]।

सूफी साधक प्रेमके द्वारा सांसारिक माया-मोह त्यागनेकी बात कहता है लेकिन जैसा कि पहले भी हम देख चुके हैं वह संसारके प्राणियोंके प्रति सदय हो उठता है। साधकके हृदयमें जब इस प्रेमका उदय होता है तब सांसारिक वस्तुएँ उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं लेकिन संसारके जीवोंके लिए उसका हृदय दया और प्रेमसे परिपूर्ण रहता है। दूसरोंके कष्टका निवारण करनेके लिए वह सब प्रकारसे प्रयत्नशील रहता है और उसके लिए सभी प्रकारके कष्टोंका वह स्वागत करता है। एक छोटे-से प्राणीसे लेकर बड़ेतक उसकी दृष्टिमें अपना महत्त्व रखते हैं, चूँकि सर्वत्र सभी प्राणियोंमें वे परमात्माके दर्शन करते हैं। उन्हें सुख पहुँचाकर वे परम सुखी होते हैं। उनके लिए सब प्रकारका त्याग करनेके लिए वे प्रस्तुत रहते हैं। बायजीद बिस्तामीके सम्बन्धमें एक बड़ी मनोरञ्जक कहानी कही जाती है जिससे यह भली-भाँति समझा जा सकता है कि जीवोंके प्रति सूफियोंके मनमें कितनी दया है। एक बार हमादानमें बायजीदने कुछ इलायची खरीदी। जब वहाँसे बिस्तामके लिए रवाना होने लगा तो उसके पास कुछ इलाचियाँ बची हुई थीं। उन्हें उसने अपने चोगेमें रख लिया। हमादानसे कई सौ मीलकी यात्रा तयकर जब वह बिस्ताम पहुँचा तब उसे इलाचियोंकी बात याद आयी। लेकिन जब उसने अपने चोगेसे

१. हि. ओ. पो., पृ० ६४।

इलायची निकाली तो देखा कि उसमें कुछ चींटियाँ लगी हुई हैं। उसने सोचा कि उन बेचारियोंको वह उनके घरसे बहुत दूर ले आया है अतएव वह तुरत ही लौट पड़ा और हमादान चला गया। इसी प्रकारसे नूरी नामक एक सूफीकी प्रार्थनामें दूसरोंके कल्याणकी तीव्र भावना दीख पड़ती है। नूरीने एक बार प्रार्थना करते हुए कहा था—'हे खुदा, अपने अनन्त ज्ञान, शक्ति और इच्छासे अपने ही रचे हुए प्राणियोंको तुम नरकमें दण्ड देते हो, अगर तुम्हारी निष्ठुर इच्छा मनुष्योंसे नरकको भर देनेकी हो तो (उनके स्थानपर) मुझसे ही उसे भर दे सकते हो और उन मनुष्योंको स्वर्गमें भेज सकते हो।' इस प्रकारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे सूफियोंके लोक-कल्याणकी भावना, जीवोंपर दया आदिपर प्रकाश पड़ता है। बायजीदने कहा है[1] कि परमात्मा जिससे प्रेम करता है उसे तीन गुणोंसे विभूषित करता है—उसमें समुद्र-जैसी उदारता, सूर्यकी तरह पर-दुःख-कातरता और पृथ्वीके जैसी विनम्रता पायी जाती है।

सूफियोंके प्रेम-सम्बन्धी सिद्धान्तोंकी चर्चा करनेके बाद उनके ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्तोंकी चर्चा कर लेना भी समीचीन है। प्रेमके समान ज्ञानका भी महत्त्व सूफी-सिद्धान्तमें है। सूफी प्रेमके समान ज्ञान प्राप्त करनेपर भी अत्यधिक जोर देते हैं। उनका कहना है कि बिना ज्ञान प्राप्त किये मनुष्य कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होता। परमात्मा, सृष्टि, साधना आदि बिना ज्ञानके सम्भव नहीं। एक हदीसका हवाला दिया जाता है कि ज्ञानकी प्राप्तिके लिए चीनतक जाना चाहिये। ज्ञानकी प्राप्ति स्त्री-पुरुष सभीके लिए आवश्यक बताया गया है।

ज्ञान दो प्रकारके कहे गये हैं—इल्म (सांसारिक मानवीय ज्ञान) और मारिफ (आध्यात्मिक सच्चा ज्ञान) मारिफ और इल्म दो बिल्कुल भिन्न वस्तुएँ हैं। साधारण ज्ञानको इल्म कहते हैं और परमात्मा विषयक सूफियोंके रहस्यमय ज्ञानको मारिफ कहते हैं। इल्मकी प्राप्ति मनुष्यकी चेष्टासे तथा शिक्षककी सहायतासे सम्भव होती है। हुजवीरीका कहना है

१. मि० इ०, १११।

कि "परमात्माका ज्ञान 'इल्मे-मारिफत' है जिसके द्वारा परमात्माको उसके पैगम्बर और सन्त जान पाते हैं[1]।" ज़ून नूनने बतलाया है कि जो हम आँखोंसे देखते हैं वह सांसारिक ज्ञान है लेकिन जो हृदय जान पाता है वह सच्चा ज्ञान है[2]। 'इल्मे मारिफत' मस्तिष्ककी क्रियात्मक शक्तिका फल नहीं है बल्कि सम्पूर्ण रूपसे यह परमात्माकी इच्छा और अनुग्रहपर निर्भर करता है। 'मारिफ' वास्तवमें भगवत्कृपासे ही प्राप्त होता है जब-कि मनुष्य अपनी चेष्टाओंके द्वारा सांसारिक शिक्षकोंकी सहायतासे 'इल्म' हासिल कर सकता है। परमात्मा अनुग्रहपूर्वक आध्यात्मिक ज्ञान (मारिफ) उसे ही देता है जिसे उसने इसके योग्य बनाया है। परमात्मा-के अनुग्रहका यह वह प्रकाश है जो हृदयको प्रकाशमान कर देता है और मनुष्यकी सम्पूर्ण शक्तियों—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—को चकाचौंध करनेवाली अपनी किरणोंसे अभिभूत कर देता है। इस ज्ञानके द्वारा ही साधक परमात्माके दर्शन कर पाता है और इस प्रकारसे उसका साक्षात्कार करते हुए उसके साथ एकमेक हो जाता है।

निफारीने बतलाया[3] है कि परमात्माके खोजी तीन प्रकारके हैं। पहले तो वे हैं जिन्हें परमात्माका उपासक कहा जा सकता है। ये स्वर्गकी अभिलाषासे या चमत्कारोंकी शक्तिकी प्राप्तिके लिए उपासना करते हैं। दूसरे वे हैं जो धार्मिक तत्त्ववेत्ता और शास्त्रीय ज्ञानको प्राप्त करनेवाले पण्डित हैं। वे परमात्माके ऐश्वर्यसे ही परमात्माका परिचय प्राप्त करते हैं। ये विभूतियोंसे युक्त परमात्माको खोजते हैं लेकिन उसे नहीं पानेके कारण कहते हैं कि वह अज्ञेय है। वे कहते हैं कि 'हम लोग जानते हैं कि उसे हम लोग जान नहीं सकते और यही हमारा ज्ञान है।' और तीसरे आरिफ (ज्ञानी) हैं जो भावाविष्टावस्थामें परमात्माको प्रत्यक्ष करते हैं।

अतएव हम देखते हैं कि मारिफ परमात्माके एकत्वका बोध है।

1. कश्फ०, पृ० १६।
2. स्ट० अ० मि० नि० इ०, पृ० २०२।
3. मि० इ०, पृ० ७२।

इसके द्वारा मनुष्य समझ पाता है कि 'भिन्न' की प्रतीति होना मिथ्या है, एक भूलभुलैया है। यह ज्ञान जब मनुष्यको होता है तभी वह अपने-आपको जान पाता है और अपने-आपको जाननेका मतलब परमात्माको जानना है। वह अपने-आपमें सृष्टिका एक छोटा-सा संस्करण है और उस सृष्टिकी आँख है जिसमें परमात्मा अपने-आपको तथा अपने कार्योंको देखता है। यह सृष्टि, अ-सत्से प्रतिबिम्बित होनेवाली परमात्माकी गुणावलियों और नामावलियोंका समूह है अतएव मनुष्य जो इस सृष्टिका छोटा-सा संस्करण है और जो सम्पूर्ण सृष्टिको अपने भीतर छिपाये हुए है, उस परमात्माकी गुणावलियों और नामावलियोंको अपने भीतर ग्रहण किये हुए है। इस ज्ञानको प्राप्त नहीं करनेके कारण अज्ञानी जीवनभर भटकता रहता है। जबतक उसका हृदय अज्ञानके पर्देसे ढका हुआ है, वह अपनी वासनाओं और ऐन्द्रियिकताका गुलाम बना हुआ रहता है और परमात्माका चेहरा उसे नहीं दीख पड़ता। लेकिन जब परमात्माके आकर्षणका जादू उसपर काम करने लगता है तो उसके अन्तरसे इन्द्रियगत विषयोंका तिरोभाव होने लगता है और अन्तमें उसका हृदय विशुद्ध हो जाता है और वह परमात्माके साथ एकत्वका बोध करता है। इस एकत्व-का बोध उसके हृदयको आनन्दसे परिपूर्ण कर देता है। उसके सभी कष्टोंका अवसान हो जाता है। इसीलिए साधक अपनी समस्त शक्ति लगाकर इस ओर अग्रसर होनेके लिए सचेष्ट रहता है।

मारिफ (सच्चा ज्ञान) परमात्माके द्वारा ही शक्तिसम्पन्न होता है अन्यथा परमात्माको बिना परमात्माकी सहायताके नहीं जाना जा सकता। कहा जाता है कि जब परमात्माने बुद्धिका निर्माण किया तब उससे पूछा कि 'मैं कौन हूँ ?' बुद्धि मौन रह गयी। तब परमात्माने अपने एकत्वका प्रकाश उसपर डाला और उसने बतलाया कि 'तुम परमात्मा हो'[1]। अत-एव सूफी मारिफको प्रकाश मानते हैं जिसने ज्योतिस्वरूप परमात्मासे प्रकाश पाया है इसके द्वारा हृदय आलोकित हो उठता है और वह पर-

१. स्ट, अ. मि. मि. नि. इ., पृ. २०९।

मात्माके एकत्वको देखनेमें समर्थ होता है। यह ज्ञान परमात्माकी ज्योतिसे ही ज्योतिवाला है अतएव अन्तमें यह परमात्माकी ज्योतिमें ही जाकर मिल जाता है। इसीलिए इस ज्योतिको पानेके लिए सूफी-साधक परमात्मासे प्रार्थना करते हैं। क़ूत अल-क़ुलूबमें वर्णित एक सूफी प्रार्थना इस प्रकार है[1]—"हे परमात्मा, मेरे हृदयमें प्रकाश दो और मेरी क़ब्रमें प्रकाश दो, मेरे श्रवण, मेरी दृष्टि, मेरी भावना, मेरे शरीरमें प्रकाश दो, मेरे पीछे प्रकाश दो, मेरे ऊपर प्रकाश दो, मेरे नीचे प्रकाश दो। हे प्रभु, मेरे अन्तरकी ज्योतिको तीव्र कर दो और मुझे प्रकाश दो और उसे आलोकित कर दो। यही आलोक है जिनकी याचना पैगम्बरने की थी........."क्योंकि इस प्रकारकी ज्योतिका अधिकारी हमेशाके लिए उस ज्योति-स्वरूपकी दृष्टिमें बना रहेगा।

मुतजिला-सिद्धान्तको माननेवाले कहते हैं कि परमात्मा सम्बन्धी आध्यात्मिक ज्ञान (मारिफत) वास्तवमें मस्तिष्क और बुद्धिका व्यापार है, अतएव अक़्लमन्द आदमी ही इस ज्ञानको पानेमें समर्थ हो सकता है[2]। हुजवीरीने इस सिद्धान्तका खण्डन किया है और इस ज्ञानको हाली अर्थात् हृदयप्रसूत कहा है। वह ज्ञानको हृदयका विषय मानता है[3]। अबुल हसन नूरी का कहना है कि परमात्माको पानेका रास्ता परमात्माके सिवा और कोई नहीं बता सकता। अपनी बुद्धिके द्वारा मनुष्य उस परमात्माको जानना चाहता है लेकिन एक सीमातक पहुँचकर उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है और मनुष्यको अपनी असहायावस्थाका बोध होने लगता है। अपनी इस यन्त्रणाके समय वह परमात्मासे दयाकी भीख माँगता है। फिर परमात्माकी दयासे ही साधक उसे जान पाता है और उसके आत्माको शान्ति मिलती है। किसी प्रकारका मानवीय ज्ञान उसकी सहायता नहीं करता चूँकि वह ज्ञान परमात्माके गुणोंसे ही सम्बन्ध रखता है और

१. वही, पृ० २११।

२. कश्फ०, पृ. २६८।

३. वही पृ. २६७,

परमात्मा उन गुणोंको अपने ध्यानमें लगे हुए साधकोंपर प्रकट करता है। ज्ञानी (आरिफ) के लिए स्वतन्त्र जीवन, स्वतन्त्र चिन्तन नामकी कोई वस्तु नहीं रह जाती। जून नून मिस्रीका कहना है कि परमात्मा जिस प्रकारसे परिचालित करता है उसी प्रकारसे वे (ज्ञानी) परिचालित होते हैं। उसके मुखसे निकले हुए शब्द परमात्माके बोले हुए शब्द हैं और परमात्माकी ही दृष्टि-शक्तिसे वे देखते हैं।

परमात्माके साथ 'एकत्व' प्राप्त करना ही ज्ञानीका लक्ष्य होता है। जामीने[1] एकत्व-प्राप्तिकी व्याख्या करते हुए बतलाया है कि हृदयको एकाङ्गी बनाना अर्थात् अपने हृदयको पवित्र करना तथा परमात्माके सिवा अन्य वस्तुओंको अपने हृदयसे दूर हटाना ही 'एकत्व' है। फिर उस हृदयमें न आकांक्षाएँ हों, न कामनाएँ हों, न ज्ञान ही और न मारिफत ही। साधककी सभी इच्छाओं और आकांक्षाओंको उन सभी वस्तुओंसे मुक्त हो जाना चाहिये जिनकी इच्छा और आकांक्षा की जाती है और उसके बौद्धिक क्षेत्रसे ज्ञान और बुद्धि-विषयक सभी वस्तुओंको तिरोहित हो जाना चाहिये। परमात्मा ही उसके चिन्तनका एकमात्र विषय होना चाहिये और उसे अन्य किसी वस्तुका ज्ञान नहीं रह जाना चाहिये। कहा जाता है कि निफारीको यह देव-वाणी सुनायी पड़ी थी कि 'अगर तुम अपनेको एक सत्ता मानते हो और मुझे अपनी सत्ताका कारण नहीं समझते हो तो मैं अपने चेहरेको ढँक देता हूँ और तुझे अपना ही चेहरा नजर आता है। इसलिए इसे समझो कि तुम्हें क्या दिखायी पड़ता है और क्या छिपा हुआ है।'

सूफी-साधक मारिफ और धार्मिक विश्वासमें फरक करते हैं। उनका कहना है कि मारिफ अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाली वस्तु है जब कि धार्मिक विश्वास प्रकाशकी तरह है। जिस व्यक्तिको मारिफ (आध्यात्मिक ज्ञान) प्राप्त हो गया है वह परमात्माके साथ एकमेक होकर देखता

१. मि. इ., पृ० ७३।

२. वहीं, पृ० ८५।

है तथा परमात्मामें वास करता हुआ शान्ति पाता है और धर्म-प्रवण व्यक्ति उसकी ज्योतिके सहारे देखता है तथा परमात्माकी उपासनाको ही साध्य मानता है। ज्ञानी (आरिफ) यह मानता है कि परमात्मा न किसीको पुरस्कृत करता है और न किसीको दण्ड देता है। सत्य और असत्यकी कोई वास्तविकता नहीं है, वे मिथ्या हैं। ज्ञानी परमात्माके साथ सीधा सम्पर्क और आन्तरिक प्रकाशको ही अपने लिए क़ानून मानते हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह परिणाम निकाला जा सकता है कि नैतिक और धार्मिक नियम-क़ानून आरिफ (ज्ञानी) के लिए बेकार हैं तथा पोथियोंमें लिखे हुए क़ानून उनके लिए कुछ मतलब नहीं रखते। अबुल-हसन खुरक़ानीने कहा है—'मैं नहीं कहता कि स्वर्ग और नरकका अस्तित्व नहीं है लेकिन मेरा कहना है कि मेरे लिए वे कुछ नहीं हैं क्योंकि परमात्माने उन दोनोंको बनाया है और मैं जिस स्थानपर हूँ वहाँ किसी भी निर्मित वस्तुका स्थान नहीं है।'

ज्ञानी (आरिफ) के दृष्टिकोणको ध्यानमें रखते हुए कहा जा सकता है कि उनके लिए मज़हबकी भिन्नता कोई अर्थ नहीं रखती और उनकी दृष्टिमें सभी समान हैं। इब्न अल-अरबीके निम्नलिखित कथनसे इस कोटिके सूफ़ी-साधकोंके दृष्टिकोणपर पूरा प्रकाश पड़ता है। इब्नुल-अरबी-का कहना है—'जो सूर्यमें परमात्माको पूजते हैं वे सूर्यको देखते हैं, जीव-धारियोंमें उसकी पूजा करनेवाले एक जीवधारीको देखते हैं तथा निर्जीव पदार्थोंमें उसको पूजनेवाले निर्जीव पदार्थ देखते हैं और जो उसे अद्वितीय और अतुलनीय समझकर उसकी पूजा करते हैं वे उसके जैसा अन्य किसी वस्तुको नहीं देखते।' किसी एक मतके साथ एकान्तभावसे जड़ित मत होओ कि जिसमें उसे छोड़ अन्य सबमें अविश्वास करने लगो। इससे तुम बहुत-सी अच्छाइयोंको नहीं पा सकोगे। इतना ही नहीं बल्कि तुम सत्य-को भी नहीं समझ पाओगे। परमात्मा जो सर्व व्यापक और सर्वशक्तिमान है उसे किसी एक विशेष मतमें बाँधा नहीं जा सकता, क्योंकि परमात्माने कहा है (क़ुरान २, १०९) 'जहाँ भी तुम दृष्टि फेरो, परमात्माका चेहरा

नहीं है।' जिसमें जिसका विश्वास है उसीको बड़ा मानता है, उसका देवता उसीका बनाया हुआ है और उसे बड़ा मानकर वह अपनी ही बड़ाई करता है अतएव वह दूसरोंके विश्वासोंके प्रति सन्देह प्रकट करता है। अगर उसे विवेक होता तो वह ऐसा नहीं करता। उसकी नापसन्दगी उसके अज्ञानके कारण है। अगर वह जुन्नैदके कथनको जानता कि 'पानी जिस बर्तनमें जाता है वही रूप धारण कर लेता है तो वह दूसरोंके विश्वासमें दखल नहीं देता बल्कि विभिन्न मत-मतान्तरोंमें परमात्माके दर्शन करता।'[1]

सूफी-मार्गकी अन्तिम मंजिल प्रेम और मारिफ़ (ज्ञान) हैं, जिनके द्वारा साधक परमात्माके दर्शन करता है और अन्तमें उसके साथ एकमेक हो जाता है। जब साधक, साधना द्वारा अपने समस्त कलुष, समस्त वासनाओंको दूर करनेमें समर्थ होता है और अन्तमें अपने 'अहं'को भी भुला देता है तभी परम प्रियतमके साथ उसके मिलनका रास्ता साफ़ हो जाता है, उसकी सारी बाधाएँ, सारी रुकावटें दूर हो जाती हैं। फिर प्रेमके द्वारा जो प्रारम्भसे ही उसका सम्बल रहा है, वह उस परम प्रियतमको पाता है। साधक, परमात्माका सान्निध्य प्राप्त करनेपर प्रेम और मिलनके प्रकाशमें परमात्माके ऐश्वर्यको देखता है और इस संसारमें रहते हुए भी पर-जीवनके रहस्योंका भेदन करता है। प्रेम ही वह वस्तु है जिसके द्वारा वह प्रियतमके मिलनके मार्गपर अग्रसर होता है। प्रेमके द्वारा ही उसे मारिफ़ (ज्ञान) की प्राप्ति होती है, लेकिन ऐसा नहीं होता कि मारिफ़की प्राप्तिके साथ-ही-साथ प्रेम खतम हो जाय। प्रेम और ज्ञान अपने विशुद्ध रूपमें साथ बने रहते हैं, बल्कि ऐसा भी कहा जा सकता है कि एकके बिना दूसरा सम्भव नहीं। यह ज्ञान शुष्क ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान परम प्रियतमके मिलनमें सहायक होता है। अल-सर्राजका कहना है कि परमात्मासे सचमुच वही प्रेम कर सकता है जिसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाय

1. वही पृ० ८७-८८

२. अ० मि० नि० मि० इ०, पृ० २०९।

और जो उससे सचमुच प्रेम करता है वही वास्तवमें उसका ज्ञान प्राप्त किये हुए है ।

आध्यात्मिक जीवनको सूफी एक यात्रा (सफर) समझते हैं और परमात्माको पानेकी इच्छा रखनेवाले साधकको सालिक कहते हैं। साधक परमात्माका ज्ञान (मारिफ) प्राप्त करता हुआ क्रमशः अपने चरम-लक्ष्य (परमात्माके साथ एकमेक होना) तक पहुँचता है। इस साधनाके पथपर अग्रसर होनेको ही सूफी-मार्ग (तरीक़ा) कहते हैं। साधक अपनी बुराइयोंका त्याग करता हुआ, अपने आत्माके कलुषको मिटाता हुआ इस मार्गपर अग्रसर होता है तथा परमात्माका ज्ञान प्राप्त करता है। उस अवस्थामें पहुँचनेपर साधकके आत्माका लय हो जाता है जिसे सूफी 'फ़ना' कहते हैं। लेकिन यात्राका अन्त उसके बाद होता है। वह अन्त परमात्माके साथ एकमेक होना है। वह शान्तावस्था है जिसमें आत्मा मानो परमात्मामें वास करने लगता है। यह बक़ा (स्थिति) है।

सूफी मार्गकी कई मंजिलों, अवस्थाओं और मुक़ामोंकी बात कही जाती है। इन मंजिलों आदिके सम्बन्धमें सूफियोंमें मतैक्य नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकारसे उन्होंने सूफी-मार्गका वर्णन किया है। कितने सूफी-साधक परमात्मातक पहुँचनेकी चार मंजिलें और चार अवस्थाएँ मानते हैं। कितने ऐसे सूफी साधक हैं जो तीन ही मंजिल मानते हैं और कितने बारह मुक़ामात और अहवाल मानते हैं। लेकिन इस बातमें सभी एक-मत हैं कि प्रत्येक मंजिलकी विशिष्टताओं और गुणोंको प्राप्त किये बिना दूसरी मंज़िलपर जाना सम्भव नहीं। साधक इन मंजिलोंको अपनी साधनाके द्वारा तो तय करता ही है फिर भी जब तक भगवत्कृपा नहीं होती उसका मार्गपर अग्रसर होना सम्भव नहीं। अवारी फुल-मारीफमें कहा गया है कि मनुष्य और परमात्माके बीच जो व्यवधान है उसे दूर करनेके लिए सूफी-साधकको चार मंजिलें पार करना आवश्यक है। सबसे पहले मुरीद परमात्माको पानेकी उत्कट अभिलाषा द्वारा हृदयके

ऊपर पड़े हुए पर्देको दूर करनेकी चेष्टा करता है लेकिन परमात्माके लिए जिस प्रेमका वह अनुभव करता है उसे किसीपर प्रकट नहीं करता, सिवा वज्द (आविष्टावस्था) के जब कि वह एक प्रकारके आवेशमें रहता है। परमात्माके प्रति अपने प्रेमको प्रकट करना वह गुनाह समझता है। इसके बाद वह उस मंजिलपर पहुँचता है जब वह तफ़रीद (आन्तरिक असङ्गता) का अनुभव करता है। उस अवस्थामें वह प्रेमसे पागल बना रहता है। उसके लिए परमात्माके प्रेमके सिवा और किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व नहीं रह जाता। बाह्य व्यापारों (तजरीद) से उसका कोई भी मतलब नहीं रह जाता। उसकी तीसरी मंजिल उस समय शुरू होती है जब वह अपने हृदयके आइनेको परमात्माकी विभूतिके समक्ष रखता है और उसीके नशेसे छका हुआ मस्त-मौला बना रहता है। चौथी और अन्तिम मंजिलमें उसकी जिह्वा ज़िक्र (भगवान्‌के स्मरण) में तथा हृदय फ़िक्र (भगवानके ध्यान) में लगा हुआ रहता है। जिह्वा और हृदय जब इस प्रकारसे प्रवृत्त रहते हैं तब आत्मा मुशाहिदा (परमात्माकी विभूतिके दर्शन) में लगा रहता है। इस अवस्थामें साधक निर्विकार और अस्तित्व-ज्ञान-शून्य हो जाता है। उसे बोध होता है जैसे उसके अपने अस्तित्वका भी लोप हो गया है अर्थात् उसे अपनी स्वतन्त्र सत्ताका ज्ञान नहीं रहता।

सूफी-मार्गके पीछे सूफियोंका यह विश्वास काम करता है कि परमात्मा और मनुष्यके बीच एक बहुत बड़ा व्यवधान है। इस व्यवधानका स्पष्टीकरण एक हदीससे हो जाता है जिसमें कहा गया है कि परमात्मा सत्तर हजार प्रकाश और अन्धकारके पर्दों के पीछे है और अगर परमात्मा इन पर्दोंको हटा दे और उसके चेहरेको कोई देख ले तो वह उसीमें रम जाय। इनमें भीतरी पर्दे तो प्रकाश के हैं और दूसरे अन्धकारके। आत्मा, परमात्माकी ओर जब अग्रसर होता है तब उसे सात मंजिलें पार करनी होती हैं। प्रत्येक मंजिलमें दस हजार पर्दे दूर होते हैं। पहले अन्धकारवाले पर्दे दूर होते हैं उसके बाद प्रकाशवाले। इन पर्दोंके दूर होनेपर आत्मा अपने

समस्त इन्द्रियगत और भौतिक गुणोंसे परे होकर परमात्माके साथ साक्षात्कार करता है।

सम्भवतः इसीलिए कितने सूफी साधकोंने सूफी-मार्गकी सात मंजिलें बतलायी हैं जो निम्नलिखित हैं।

(१) उबूदिय्यत, इसमें साधक अपने हृदयको पवित्र करनेकी चेष्टामें लगता है जिसमें कि वह आगेकी ओर बढ़ सके। शरीअतके अनुसार वह परमात्माकी सेवामें अपनेको लगा देता है। (२) इश्क़, परमात्माका प्रेम उसके हृदयमें उत्पन्न होता है और साधक इस मंजिलमें फ़क़्र (गरीबी) को वरण करता है। (३) ज़ुहद, इसमें सांसारिक इच्छाओंका अवसान हो जाता है। (४) मारिफ़त, इसमें साधक परमात्माके गुण, स्वभाव, कर्मका ध्यान करता है। (५) वज्द (भावविष्टावस्था), परमात्माके 'एकत्व' का ध्यान करते करते साधकमें भावाविष्टावस्था उत्पन्न होती है। (६) हक़ीक़त, इसमें साधकको परमात्माके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होता है और वह परमात्मापर पूर्ण रूपसे निर्भर (तवक्कुल) करता है। (७) वस्ल, इसमें साधक जैसे परमात्माका साक्षात्कार करता रहता है। फ़ना और बक़ा के पहलेकी यह मंजिल है।

बहुत ऐसे सूफी-साधक हैं जिन्होंने सूफी-मार्गकी मंजिलोंका वर्णन करते हुए 'तौबा'को पहली मंजिल कहा है। 'तौबा' में आत्मा सांसारिक सुखोंका त्यागकर अपने लक्ष्यको समझते हुए आगेकी ओर बढ़ता है। उनके अनुसार इसके बादकी मंजिलें फ़क़्र (गरीबी), ज़ुह्द (विरति) और तवक्कुल (परमात्मापर निर्भर करना) हैं। इन मंजिलोंको पार करनेके बाद साधक रीज़ा (सन्तुष्टि) के 'मुक़ाम' पर पहुँचता है। सूफी-मार्गकी कई मंजिलें पारकर यह अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्थामें भक्तको सब प्रकारसे सन्तुष्टि रहती है, चाहे वह सुखमें रहे अथवा दुःखमें रहे। वह सबकुछको भगवान्का प्रसाद समझकर खुशीके साथ ग्रहण करता है। उसे अपनी अवस्थासे न कोई शिकायत रहती है और न कोई खास खुशी। भक्तकी इस मनोदशासे भगवान् भी सन्तुष्ट होते हैं। सन्तुष्टिकी

यह अवस्था एक बहुत बड़ी बात है। 'ज़िक्र अल-मौत' और भी आगेकी मंज़िल है। कितने सूफ़ी-साधकोंका कहना है कि यह मंज़िल साधककी प्रारम्भिक अवस्थाके लिए भी है और सूफ़ी-मार्गपर अत्यधिक अग्रसर होनेवाले साधकोंके लिए भी है। मृत्युका स्मरण साधकको प्रारम्भिक अवस्थामें पाप करनेसे बचाता है तथा अन्य सांसारिक प्रलोभनोंसे विमुख करनेमें सहायक होता है। जो उच्चकोटिका साधक है वह समझता है कि मृत्युके बाद ही वह परम प्रियतमका साक्षात्कार कर पायगा अतएव वह मृत्युकी कामना करता है। इस मार्गकी सबसे अन्तिम मंज़िल इन सूफ़ी साधकोंके अनुसार प्रेम और मारिफ़ (ज्ञान) हैं।

भारतीय सूफ़ी[1], सूफ़ी-मार्गकी चार मंज़िलें और उन मंज़िलोंकी चार अवस्थाएँ मानते हैं। उनमें पहली 'नासूत' है। 'नासूत' से उनका मतलब मनुष्यकी प्रकृत अवस्थासे है। इसमें साधकको 'शरीअत' के क़ायदे-क़ानूनों और पाबन्दियोंको मानना पड़ता है। इस अवस्थाको सूफ़ी आध्यात्मिक जगत्का सबसे निचला स्तर मानते हैं अतएव साधकके लिए यह आवश्यक माना गया है कि वह सम्यक् रूपसे इस मार्गके सम्बन्ध-की बातोंका पहले ज्ञान प्राप्त कर ले तब इस मार्गपर चले। दूसरी अवस्थाको वे 'मलकूत' कहते हैं। इसमें साधकको 'तरीक़ा' अर्थात् पवित्रताका सहारा लेना पड़ता है। 'मलकूत' में मनुष्यका चित्त भौतिक जगत्की तुच्छताओं और आवर्जनाओंसे ऊपर उठ जाता है और वह पवित्र हो जाता है। वह इसमें देवदूतोंके गुण प्राप्त करता है। तीसरी अवस्था 'जबरूत' की है जब साधक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है जिससे परमात्माके मिलनके मार्गकी बाधाएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं। यह मंज़िल 'मारिफ़' (ईश्वरीय ज्ञान) की है। राग-विरागसे अतीत होकर साधकको ज्ञानकी प्राप्ति होती है जिससे चौथी अवस्था 'लाहूत' के लिए वह प्रस्तुत होता है। इस अन्तिम मंज़िलको सूफ़ियोंने 'हक़ीक़' कहा है। 'हक़ीक़' से उनका मतलब परम सत्यसे है।

---

1. डि. इ., पृ० ६०९।

अल-हुजवीरी[1] के अनुसार सूफी मार्गकी तीन ही मंजिलें हैं। पहले को 'मुक़ामात' कहा है और उसका मतलब यही समझा जाता है कि साधक अपने मार्गपर कहाँतक अग्रसर हुआ है। इस मंजिलमें साधकको काफी कष्ट सहन करना पड़ता है और एकान्त भावसे अपनेको आनेवाली मंजिलके लिए तैयार करना पड़ता है। इसमें परमात्मा उसका सहायक होता है क्योंकि बिना उसकी कृपाके साधकके लिए थोड़ा भी आगे बढ़ना सम्भव नहीं। इसमें साधक अपने 'अहं' को खोकर उन गुणोंको प्राप्त करता है जिनके द्वारा वह अपनी आखिरी मंजिलतक पहुँचनेमें समर्थ सिद्ध होता है। दूसरी मंजिल 'अहवाल' की है। यह सूफियोंकी भावाविष्टावस्था अर्थात् उल्लास और भावातिरेककी अवस्था है। साधक पहली मंजिल पार कर इस मंजिलपर पहुँचता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि साधकको पहली मंजिलमें रहते हुए ही दूसरी मंजिलका अनुभव हो जाता है। यह पहली मंजिलसे भिन्न प्रकारकी है। यह दूसरी मंजिल बिल्कुल परमात्माकी कृपापर निर्भर करती है। इसमें साधकका एकदम हाथ नहीं रहता। साधकको आगे बढ़ानेके लिए उसपर अनुग्रह करके परमात्मा इसको पुरस्कारस्वरूप देता है। अन्तिम मंजिल 'तमकीन' की है जब साधक परम सत्यको पा जाता है। उसकी चरम-लक्ष्य-प्राप्तिकी यात्रा यहीं समाप्त हो जाती है। वह परमात्माके साथ एकमेक हो जाता है। वह पूर्णावस्थाको प्राप्त हो जाता है। अपने सारे अच्छे या बुरे गुणोंसे परे होकर वह परम प्रियतममें वास करने लगता है। प्रियतमके प्रेम और एकत्वके प्रकाशमें वह उसकी विभूतियोंके दर्शन करने लगता है और इस शरीरसे ही आनेवाले संसारके रहस्योंका भेदन करता है।

कुछ ऐसे भी सूफी साधक हैं जो सूफी मार्गकी चर्चा करते हुए 'तीन यात्राओं'का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार निम्नलिखित तीन यात्राएँ हैं[2]।

(१) सैर इल्'-ल्लाह अर्थात् परमात्माकी ओर यात्रा। इसमें

१. कश्फ०, पृ० ३७१।

२. सूफि०, पृ० ७५-७६।

साधक इस संसारसे ऊपर उठकर उस संसारमें पहुँचता है जो परमात्माके आदेश मात्रसे हुआ है। इसमें साधक 'वाहिदियत' और 'वहदत' की मंजिलोंको पार करता है। इस यात्राका अन्त 'हक़ीक़ते-मुहम्मदिया' में होता है।

(२) सैर फ़ी'-ल्लाह अर्थात् परमात्मामें यात्रा। इसमें साधक परमात्माकी जातमें लय हो जाता है। यह 'अहदियत' की मंजिल है।

(३) सैर अनी'-ल्लाह। इसमें साधक परमात्माके गुणोंसे विभूषित होकर इस अभिव्यक्त होनेवाले संसारमें लौटकर आता है। यह फ़नाके बाद 'बक़ा' की अवस्था है। 'लय' के बाद 'स्थिति' की अवस्था है।

---

११. सूफी साधक और सूफी साधना

साधारणतः मुसलमानोंमें यह विश्वास प्रचलित है कि इस दृश्यमान जगत्के साथ-ही-साथ एक अदृश्य जगत् भी है। इस अदृश्य जगत्का ज्ञान सबको नहीं प्राप्त हो सकता है। लेकिन इस दीख पड़नेवाले संसारमें ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वे अपनी दिव्य दृष्टिसे उस अदृश्य संसारको देख सकते हैं। इन व्यक्तियोंमें बड़ी-बड़ी शक्तियाँ वर्तमान रहती हैं और वे परमात्माके विशेष कृपापात्र होते हैं। इस प्रकारकी दिव्य शक्तिप्राप्त मुस्लिम सन्तोंको 'वली' कहते हैं। 'वली' का बहुवचनमें "औलिया" रूप हो जाता है। ऐसी प्रचलित धारणा है कि औलियाका परमात्माके साथ एक निकटका सम्बन्ध होता है। उनके लिए दृश्य तथा अदृश्य जगत्में कोई अन्तर नहीं है। जब वे भावाविष्टावस्थामें रहते हैं तो उनके और अदृश्य जगत्के बीचका अवरोध दूर हो जाता है और उन्हें सत्यके दर्शन होते हैं। इस अवस्थामें वे पैगम्बरके समकक्ष हो जाते हैं फिर भी पैगम्बरके साथ उनका बराबरीका दर्जा नहीं हो सकता। प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक कालमें शेख या औलियाका स्थान पैगम्बरसे नीचेका ही है। सभी पैगम्बर सन्त हैं लेकिन सभी सन्त पैगम्बर नहीं हैं। सनातन-पन्थी इस्लामके इस दृष्टिकोणके अनुसार पैगम्बर मानवीय गुण-दोषोंसे परे हैं जब कि सन्त कुछ ही समयके लिए उस स्थितिमें रहते हैं[1]। कुछ लोगों-का यह भी कहना है कि सन्त पैगम्बरसे भी बढ़कर होते हैं[2]।

कहा जाता है सन्तोंके लिए कोई जरूरी नहीं है कि वे आध्यात्मिक तत्त्वोंके जानकार हों और न यही जरूरी है कि वे धार्मिक ग्रन्थोंमें निरत रहें। फ़क़ीरी जीवन बितानेवाला अथवा बहुत बड़ा सदाचारी और निष्ठा-

१. कश्फ़०, पृ० २३५-२३६।

२. वही, पृ० २३६।

वान व्यक्ति ही सन्त हो सकता है। जिसे भावाविष्टावस्था और 'उल्लास' की प्राप्ति हो जाय वही 'वली' है। इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर उसके लिए संसारका बन्धन नहीं रह जाता और न वह संसारका रह जाता है। अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे वह बहुत बड़े-बड़े चमत्कार दिखला सकता है। ऐसे लोगोंके प्रति साधारण जनतामें श्रद्धा और भक्तिके भाव होते हैं। साधारण जनता अपने सांसारिक कष्टोंके निवारणार्थ उनकी पूजा करती है और उनका आशीर्वाद पानेके लिए सचेष्ट रहती है।

सन्तोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी धारणा और इस प्रकारके विश्वास अधिकांशमें सूफियोंके ही कारण हैं। सूफियोंका ऐसा विश्वास है कि इस्लामके अनुयायियोंमें वे विशेष रूपसे परमात्माके कृपापात्र हैं। सन्तों के बारेमें उनका ख्याल है कि वे परमात्माके वली (मित्र) हैं इसलिए सूफियोंके भी अन्तर्गत उन्हें परमात्माका विशेष अनुग्रह प्राप्त है। इस प्रकारसे वे समझते हैं कि साधारण मनुष्यों और परमात्माका जहाँतक सम्बन्ध है उसमें सूफियोंका विशिष्ट स्थान है। इसी प्रकारसे सूफियों तथा परमात्माके बीच सन्तोंका है। कहा जाता है कि क़ुरानमें जो यह कहा गया है कि 'परमात्माके औलिया (मित्रों) पर किसी प्रकारका संकट नहीं आयगा और उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होगा' (१०,६३) अथवा 'खुदा ईमान लानेवालोंका वली (मित्र) है' (२,२.५८), उन्हीं सन्तोंको लक्ष्यमें रखकर कहा गया है। ये सन्त परमात्माके कितने कृपापात्र और सन्निकट समझे जाते हैं इसका अनुमान एक हदीससे लगाया जा सकता है जिसमें कहा गया है कि 'जो एक वली (सन्त) को कष्ट पहुँचाता है वह वास्तवमें मेरे (परमात्माके) साथ मुख़ालफ़त करता है।' प्रसिद्धि प्राप्त सन्तोंको लोग शेख़, वली कहा करते हैं। उन्हें मुराबीत भी कहते हैं। इन सन्तोंकी आध्यात्मिक शक्ति और गुणोंके बारे में अल-हुजवीरीने कहा[1] है 'परमात्माने आजतक पैग़म्बरी शक्तिको बचा रहने दिया है और सन्तोंके

1. कश्फ, पृ० २१३।

द्वारा उसे प्रकट करता है जिसमें कि (परम) सत्यके चिन्ह और मुहम्मद-की सत्यताके प्रमाण दृष्टिगोचर होते रहें। उस (परमात्मा)ने सन्तोंको सृष्टिका शासक बनाया है......उनके अवतरित होनेके प्रसादस्वरूप आकाशसे वृष्टि होती है तथा उनके जीवनकी पवित्रतासे पृथ्वीसे पौधे उगते हैं और उनकी आध्यात्मिक शक्तिसे मुसलमान काफ़िरोंपर विजय प्राप्त करते हैं।'

औलियाके सम्बन्धमें यह समझा जाता है कि चूँकि वे परमात्माके विशेष कृपापात्र हैं इसलिए परमात्माने उन्हें विशेष शक्ति प्रदान की है। साधारण जन अपने इसी विश्वासके कारण अपने दुखोंके निवारण करने-के लिए उनका स्मरण करते हैं। उनके मक़बरोंपर शीरीनी चढ़ाते हैं और मन्नत मानते हैं। बीमारीसे छुटकारा पानेके लिए, पुत्र पानेके लिए, किसी विशेष कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिए लोग सन्तोंके मज़ारपर नज़र चढ़ानेकी बात कहते हैं। जब उनकी मनोकामना पूरी हो जाती है तो वे सन्तके मज़ारपर बलि चढ़ाते हैं। जो धनी हैं वे जब इन मज़ारोंके दर्शनके लिए जाते हैं तो ग़रीबोंको दान देते हैं, पैसा बाँटते हैं या रोटी देते हैं। सन्तोंके मक़बरोंके सम्बन्धमें एक हदीसका हवाला दिया जाता है कि 'अगर तुम्हारा हृदय शोक-सन्तप्त है तो पवित्र आत्माओंकी क़ब्रके पास जाओ और शान्तिकी खोज करो'[1]।'

सन्तोंके मज़ारोंके दर्शनके लिए लोग जो जाते हैं उसे ज़ियारत कहते हैं। लोगोंका विश्वास है कि परमात्माके विशेष प्रेमपात्र होने-के कारण सन्त कभी मरते नहीं। इसीलिए यह कोई ज़रूरी नहीं है कि जिस पीर या सन्तकी पूजा लोग उसके जीवन-कालमें करते हैं उसे उसकी मृत्युके बाद छोड़ दें। वास्तवमें जिन लोगोंने जितनी प्रसिद्धि पायी है तथा जिनके करामतोंकी जितनी अधिक कहानियाँ प्रचलित हैं, मरनेके बाद भी प्रायः वे उतना ही महत्त्व रखते हैं। उनकी क़ब्रको लोग बड़ी श्रद्धासे देखते हैं और उसको अच्छी अवस्था में बनाये रखने के

1. दर०, पृ० ८८।

लिए समुचित व्यवस्था करते हैं। उनपर फूल चढ़ाते हैं और चिराग़ जलाते हैं। सुप्रसिद्ध सन्तोंकी क़ब्रोंपर सुन्दर इमारतें भी बना दी जाती हैं। सुन्दर बेशक़ीमती दुशालों अथवा ज़री के काम किये हुए रेशमके वस्त्रोंसे वे ढँक दी जाती हैं। इमारतोंकी खिड़कियों या मक़बरोंके चारों ओर बने हुए बाड़ोंकी छड़ोंमें लोग चिथड़े लपेट देते हैं। लोगोंका विश्वास है कि ऐसा करनेसे उन्हें पुण्य-लाभ होगा और उस विशेष सन्तके प्रभावसे उन्हें सफलता मिलेगी।

इन मक़बरोंमें उस सन्तकी सेवाके लिए संसारत्यागी दरवेश रहते हैं। वे स्वयं भी पवित्र जीवन बितानेवाले होते हैं। अपने दुःखोंको दूर करनेके लिए अथवा किसी अन्य काममें सफलता प्राप्त करनेके लिए लोग उन दरवेशोंसे मृत सन्तसे प्रार्थना करनेके लिए कहते हैं। ये सेवामें नियुक्त दरवेश स्वयं भी शेख़ या औलिया हो सकते हैं और अपने साथ एक या दो मुरीद (शिष्य) रखते हैं जिन्हें वे आध्यात्मिक शिक्षा देते हैं। वैसे तो इन मक़बरों या दरगाहोंके दर्शनके लिए लोग बराबर ही जाते हैं लेकिन विशेष अवसरपर अथवा उर्सके समय विशेष रूपसे लोग वहाँ जाते हैं। उर्सका मतलब विवाहोत्सव है। उस समय सन्तकी समाधिके निकट खूब उत्सव मनाया जाता है और मेला लगता है। सालभरमें यह एक बार होता है और सन्तके मृत्यु-दिवसपर मनाया जाता है। सूफियोंके अनुसार मृत्युके दिन सन्तका अल्लाहके साथ मिलन होता है। सन्तकी आत्मा परमात्माके साथ एकत्वके सूत्रमें बँध जाती है। उस दिन जाकर लोग बड़े भक्ति-भावसे उस सन्तकी समाधिके पास फ़ातिहा पढ़ते हैं और सम्पूर्ण क़ुरानका पाठ किया जाता है। साधारणतः ये मक़बरे सन्तोंकी मृत्युके बाद उनकी समाधिपर बनाये जाते हैं लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी सन्तके नामपर किसी विशेष स्थानपर मक़बरे बना दिये जाते हैं। इस तरहका एक मक़बरा श्रीनगर (कश्मीर) में शेख़ अब्दुल क़ादिर जिलानीका है और चटगाँवमें बाबा फरीदके नामपर एक मक़बरा बना है जो वास्तवमें पाकपतन (पंजाब) में मरे और

वहाँ दफनाये गये[1]। बहुतसे ऐसे भी औलिया हैं जिनकी क़ब्रका पता लोगोंको नहीं होता लेकिन कहा जाता है कि उनकी क़ब्रका पता जीवित सन्तोंको उनकी आध्यात्मिक शक्तिके कारण लग जाता है[2]।

औलिया लोगोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह प्रकट करना धर्मके विरुद्ध माना जाता है। उनके आचार-विचारके सम्बन्धमें लोगोंके मनमें किसी प्रकारके प्रश्न नहीं उठते। अद्‌भुत वेशवाले तथा अद्‌भुत ढंगका व्यवहार करनेवाले औलिया देखनेको मिलते हैं। इनमेंसे कुछ तो नंगे ही घूमते-फिरते नजर आते हैं और लोग उनको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। स्त्रियोंको उनसे पर्दा करनेकी जरूरत नहीं समझी जाती। कुछ ऐसे भी हैं जो लम्बा चोगा धारण करते हैं। ये चोग़े रंग-बिरंगके कपड़ोंके टुकड़ोंसे बने हुए होते हैं। कुछ घास खाते हैं और कुछ अपने बेढंगेपनसे लोगोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। सन्त शब्दका प्रयोग इतना व्यापक हो गया है कि जलालुद्दीन रूमी जैसे सूफी-कवि और साधक तथा इब्न-अल अरबी जैसे दार्शनिक और कविसे लेकर पगले, अर्द्ध-विक्षिप्त, कम-समझ तथा अनाप-शनाप बकनेवाले सभी इस कोटिमें आ गये हैं। इ. डब्ल्यू. लेनने अपनी पुस्तक 'माडर्न इजिप्शियन्स' में लिखा है कि मिस्रमें जब वह प्रथम बार गया तो काहिराकी सड़कोंपर उसने एक विकृताङ्ग व्यक्तिको देखा। वह प्रायः नंगा था और गदहेकी पीठपर सवार था जिसे एक आदमी पकड़े हुए था। वह विकृताङ्ग अपने गदहेको उसके सामने खड़ा कर देता और फ़ातिहा पढ़कर उससे भिक्षा माँगता। पहली-बार जब ऐसा हुआ तो वह उससे बच निकलना चाहता था। उसकी इस चेष्टाको देखकर वहाँसे होकर जानेवाले एक व्यक्तिने उसे बहुत फटकारा और उसे समझाया कि वह विकृताङ्ग एक महान् सन्त है और उसका आदर करना चाहिये तथा वह जो चाहे उसे पूरा करना चाहिये। अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसपर विपत्ति आ पड़ेगी। सन्तोंके

1. सूफि०, पृ० १०७।

2. दर०, पृ० ८९।

सम्बन्धमें इस प्रकारकी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। यह समझा जाता है कि औलियाके लिए आचार-विचारकी कोई पाबन्दी नहीं है चूँकि वह एक पवित्र आत्मा है और कोई ग़लती नहीं कर सकता। धार्मिक ग्रन्थोंमें बताये हुए नियम-क़ानून उसपर लागू नहीं किये जा सकते और उसके अद्भुत दीख पड़नेवाले व्यवहारको साधारण मनुष्यकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। जलालुद्दीन रूमीने कहा है कि औलियाका हाथ मानो परमात्माका ही हाथ[1] है। लेकिन इस प्रकारके विश्वासके कारण बहुतसे धूर्तोंको भी छूट मिल गयी है जो सन्तोंका स्वांगभर रचते हैं और मन-मानी करते हैं।

औलिया लोगोंके सम्बन्धमें बातें करते समय मुसलमानोंके सामने क़ुरानमें वर्णित मूसा और खिज्रकी कहानी बराबर रहती है। मूसा और खिज्रकी कहानीमें कहा गया है कि जब मूसाने परमात्मासे पूछा कि और भी कोई ऐसा है जो उससे अधिक जाननेवाला हो। उसे खिज्रके पास जानेके लिए कहा गया। खिज्रके बारेमें कहा जाता है कि वे अमर हैं और रमते सूफियोंको परमात्मा सम्बन्धी अपने ज्ञानको बतलाते हैं। मूसा अपने नौकर जोशुआके साथ उस स्थानपर पहुँचा जहाँ दो समुद्र मिलते हैं। जब वे वहाँ पहुँचे तब अपनी पकाई हुई मछलीकी बात भूल गये जिसे खानेके लिए वे अपने साथ लाये थे। वह मछली समुद्रमें चली गयी। खाना खानेके वक्त जोशुआने मूसाको बतलाया कि उस मछलीका क्या हो गया। जिस स्थानपर वह मछली समुद्रमें प्रवेश कर गयी थी उस स्थानपर जब ये लोग गये तब खिज्रसे उनकी मुलाकात हुई। मूसाने खिज्रके साथ यात्रा करनेकी इच्छा प्रकटकी जिसमें कि वह उससे ज्ञान सीख सके। खिज्र मूसाको अपने साथ ले जानेके लिए तैयार हो गये लेकिन उन्होंने यह शर्त रखी कि मूसाको कुछ पूछना नहीं होगा। दोनों समुद्रके किनारे साथ-साथ चले। इसके बाद वे एक नौकापर बैठे। खिज्रने उसमें छेद कर दिया। मूसा चिल्ला उठे कि यह उसने क्या किया?

---

१. मि. इ., पृ० १२९।

ऐसा करके क्या वह सबको डुबाना चाहता है ? ख़िज़्रने कहा कि उसने पहले ही कहा था कि मूसाको धैर्य नहीं रहेगा और वह चुप नहीं रह सकेगा। मूसाने अपनी भूल स्वीकार कर ली और वे लोग नौका छोड़कर आगे बढ़े। उन लोगोंकी एक नौजवानसे मुलाकात हुई। ख़िज़्रने उसे मार डाला। इसपर फिर मूसा चिल्ला उठा कि ख़िज़्रने एक निरपराध व्यक्तिको मार डाला है। फिर ख़िज़्रने शर्तकी बात याद दिलायी। मूसाने इस बार भी अपनी भूल स्वीकार कर ली और कहा कि अब कुछ भी बोलनेपर ख़िज़्र उसको अलग कर दे सकते हैं। फिर वे आगे बढ़े और एक शहरमें पहुँच वहाँके निवासियोंसे खाना माँगा 'लेकिन उन्होंने उनसे मिलनेसे इन्कार कर दिया। वहाँपर उन्हें एक दीवार मिली जो अब गिरी-तब गिरी हो रही थी। ख़िज़्रने उसे मरम्मत करनेमें हाथ लगा दिया। मूसासे इस बार भी चुप नहीं रहा गया और उसने ख़िज़्रसे कहा कि अगर वह उसके लिए पारिश्रमिक चाहता तो वह उसे मिल जाता। इसपर ख़िज़्रने कहा कि उसने मूसाको तीन मौके दिये और तीनों बार मूसाने ग़लती की अतएव वह अब उसे साथ नहीं ले जायेंगे। फिर भी जानेके पहले उन्होंने मूसाको तीनों घटनाओंका अर्थ बतला देना चाहा। ख़िज़्रने बतलाया कि नौकामें उन्होंने इसलिए छेद कर दिया कि वह नौका ग़रीबोंकी थी और उनके पीछे एक राजा आ रहा था जो सभी अच्छी नावोंको अपने लिए ज़बर्दस्ती ले रहा था। उसने लड़केको इसलिए मारा कि उसके माता-पिता परम-धार्मिक हैं और वह अत्यन्त अधार्मिक था अत-एव वह उन्हें कष्ट पहुँचाता। उसे मारकर भगवान्से उसने ऐसी प्रार्थना-की कि वह उन्हें एक धार्मिक और भला लड़का दे। दीवार मरम्मत करनेका कारण यह था कि वह दीवार दो अनाथ बच्चोंकी थी और उसके नीचे ख़जाना गड़ा हुआ था। भगवान्की इच्छा थी कि वह ख़जाना उन्हें तब मिले जब वे बड़े हो जायँ। इस प्रकारसे ख़िज़्रने बत-लाया कि जो कुछ भी उसने किया है वह भगवान्की इच्छासे किया।

ख़िज़्र और मूसाकी कहानी द्वारा यह बतलानेकी चेष्टा की जाती है कि

औलिया लोग जो कुछ भी करते हैं वह सांसारिक मनुष्योंकी दृष्टिमें अनुचित और खराब मालूम हो सकता है लेकिन उसके पीछेका रहस्य औलियाको ही मालूम रहता है। भगवान्की इच्छासे वह परिचित रहता है और भगवान् उसपर दया करके अपने सम्बन्धमें जानने देते हैं। भगवान्के साथ उसका एक सम्बन्ध रहता है जहाँ अन्य सांसारिक व्यक्तियोंकी पहुँच नहीं होती। खिज्र एक बहुत बड़े सन्त माने जाते हैं जिन्हें परमात्मा-विषयक ज्ञानका पता है। वह परमात्माके गुप्त नामको जाननेवाले हैं जिसे जाननेपर जाननेवाला चमत्कारोंका अधिकारी हो जाता है। उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह नाना प्रकारके चमत्कार दिखला सकता है। खिज्रमें विश्वास करना सूफियोंकी एक विशेषता है। परमात्माके अनुग्रह-प्राप्त सन्तोंको परमात्माके गुप्त नामसे परिचय कराना खिज्रका काम है। खिज्रने अमरता प्रदान करनेवाले जलका पान किया है अतएव संसारके अन्त होनेतक वे जीवित रहेंगे। कहा जाता है कि उनका असली नाम अबुल अब्बास मल्कान था और वे नूहके पुत्र थे। वे कई नामोंसे परिचित हैं जैसे, ख्वाजा खास, दुर्मिन्द, दुभिन्दो, जिन्दा पीर तथा वीर बताल आदि।[1] प्रचलित विश्वासके अनुसार जिस स्थानपर खिज्र बैठते हैं वह स्थान हरा हो जाता है। खिज्र विद्याके अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं। उन्होंने ग़ज़ालीको सहज ही सब विद्या सिखा देनी चाही लेकिन ग़ज़ालीने इस बातको स्वीकार नहीं किया। खिज्रने उसे कई पीपे तेल दिये जिसमें वह अपना विद्याध्ययन जारी रख सके।[2]

खिज्र उन सन्तोंमें हैं जिनकी प्रतिष्ठा समस्त इस्लामी जगत्में समान रूपसे होती है। और भी अन्य सन्त हैं लेकिन वे स्थान-विशेषमें ही पूजे जाते हैं। 'खिज्र' शब्दका अर्थ 'समुद्री रंगका हरापन' है। उसका सम्बन्ध जलसे जुड़ा हुआ है और मछली खिज्रका वाहन है। जलके कारण अगर किसी प्रकारका भय उत्पन्न हो तो खिज्रका स्मरण किया जाता है। अगर

१. ग्लो० पं० ट्रा० का०, प्रथम खंड, पृ० ५६३।

२. वही, पृ० ५६३।

कोई समुद्रकी यात्रा करता है तो वह ख़िज़्रको याद करेगा, अगर कोई कुएँमें उतर रहा है तो वह ख़िज़्रका स्मरण करेगा। अगर बाढ़की आशंका हुई तो उनकी याद लोगोंको आती है और अगर नदीमें जलकी कमी हो रही हो तो भी लोग उनकी शरणमें जाते हैं[1]। वे प्राणशक्ति देनेवाले समझे जाते है। भारतवर्षमें मुसलमान उनकी एक विशेष ढंगसे अर्चना करते हैं। एक विशेष त्योहार होता है जिसे 'बेड़ा' कहते हैं। एक लकड़ी के तख़्तेपर चिराग, फल, फूल, मिठाइयाँ आदि रखकर उसे ख़िज़्र के नाम-पर जलमें बहा दिया जाता है।[2] लोगोंका विश्वास है कि इस प्रकार की पूजासे ख़िज़् प्रसन्न होंगे और मङ्गल करेंगे।

सन्तोंके चमत्कारोंके सम्बन्धमें ऐसा विश्वास मुस्लिम जनतामें फैला हुआ है कि भगवान्‌ने उन्हें ऐसी शक्ति दी है वे कि अपनी इच्छाके अनुसार संसारके एक कोनेसे दूसरे कोने क्षणभरमें चले जा सकते हैं। संसारकी दृष्टिसे एक क्षणमें ओझल हो सकते हैं और एक ही क्षणमें सामने आ उपस्थित हो सकते हैं। वे एक क्षणमें हजारों मीलकी यात्राकर अन्य स्थानोंपर पहुँच सकते हैं। पानीपर सहज भावसे चल सकते हैं। पहाड़ों-की चोटियाँ उनके मार्गमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचा सकतीं। साधारण मनुष्योंके लिए जो असम्भव है उसमें उनकी अबाध गति है। वे शक्तिसे वर्षा कर सकते हैं, जड़ वस्तुओंसे जो बेजान हैं, बातें कर सकते हैं, भविष्यकी बातोंको देख सकते हैं और भविष्यवाणी कर सकते हैं। एक ही समयमें अनेक स्थानोंपर दिखलाई पड़ सकते हैं, मृतकों-को जिला सकते हैं, मुँह से फूँककर बीमारी भगा सकते हैं। मिट्टीको सोना बना सकते हैं। ऐसे स्थानोंपर जहाँ भोजनकी सामग्री, जल आदि न हो वहाँ अपनी अलौकिक शक्तिके बलसे वस्तुओंको मँगा सकते हैं। इस प्रकारके अनेक कार्य वे कर सकते हैं जिनकी गिनती करना सम्भव नहीं। इन चमत्कारोंके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी कहानियाँ प्रचलित हैं और जिस

१. वही, पृ० ५६७।

२. इ० इन्डि०, पृ० १३५, १३६।

सन्तको जितनी ही अधिक प्रसिद्धि है उसके नामके साथ और भी अधिक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं।

एक ओर जहाँ औलिया लोगोंको शुभ फल और मङ्गल करनेकी शक्ति है वहाँ अप्रसन्न होनेपर अमङ्गल करनेकी भी क्षमता है। लोग अमङ्गलके भयसे कोई भी ऐसा काम नहीं करते जिसमें वे अप्रसन्न हों। कहा जाता है कि ग़यासुद्दीन तुग़लक शाहने शेख निज़ामुद्दीन औलियाका अपमान किया था अतएव उसकी अकस्मात् मृत्यु हो गयी[1]। किसीका कहना है कि उसकी मृत्युका कारण मुल्तानके शाह रुक्ने आलमका शाप था। बादशाहकी कुछ बातोंको अपमानजनक समझकर वे अप्रसन्न हुये थे[2]। 'फ़ुतुहाते फ़िरूज़शाही' में फ़िरूज़शाहने लिखा है कि जहाँ कहीं उसने किसी फ़क़ीरकी बात सुनी वहाँ वह उसके दर्शनके लिए जाता था जिसमें कि वह उसके आशीर्वाद ग्रहण कर सके[3]। अमीर खुसरूने लिखा है कि किस प्रकारसे सीदी मौला नामक एक दरवेशको मरवा डालनेके कारण अकाल पड़ गया था और लोग भूखों मरने लगे थे। सीदी मौला सन् १२९५ ई० के लगभग बादशाह फ़िरोज़शाह खिलजीके कालमें हुए थे और बादशाहको उसपर सन्देह हो गया था कि वह उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा है[4]।

सन्तोंके बारेमें लोगोंकी यह भी धारणा है कि साधारण लोगोंके लिए सब समय यह पता लगाना अत्यन्त कठिन है कि सन्त कौन है? ऐसा समझा जाता है कि बहुत-से ऐसे सन्त हैं जो सांसारिक लोगोंपर अपनेको प्रकट नहीं करते। हुज्वीरीने सन्तोंके बारेमें कहा[5] है कि परमात्माके विशेष कृपापात्र ऐसे सन्त हैं जिन्हें 'परमात्माने विशेष रूपसे अपना बना लिया है और उन्हें अपने राज्यका अधिकारी चुना है और अपने कार्यों-

१. इन्डि० इ०, पृ० १३२।

२. ग्लो० पं. ट्रा. का. खंड १ पृ० ४९३।

३. इन्डि. इ. पृ० १३२-३३

४. वही, पृ० १३३।

५. कश्फ़, पृ० २१२-२१३।

को प्रकट करनेके लिए विशेषत्व प्रदान किया है तथा भिन्न-भिन्न चमत्कारोंका उन्हें मालिक बनाया है। उनके अवगुणोंको उसने दूर कर दिया है और नीचेकी ओर खींचनेवाली आत्मा तथा वासनाओंसे मुक्त कर दिया है। इससे वह उसीकी चिन्तामें निरत रहता है और उस (परमात्मा) के साथ उसकी अभिन्नता है।' आगे फिर हुजवीरीने बतलाया है कि इन सन्तोंमें 'चार हजार ऐसे हैं जो गुप्त रहते हैं और एक दूसरेको नहीं जानते और न वे अपनी श्रेष्ठ अवस्थासे ही परिचित रहते हैं। सब समय वे अपने आपसे तथा मनुष्योंकी दृष्टिसे ओझल रहते हैं।' चमत्कारोंके कारण जब लोगोंको इस प्रकारके सन्तोंका पता चल जाता है तब वे उनकी पूजा करते हैं। इन सन्तोंके प्रति लोगोंका श्रद्धा-भाव केवल मृत्युके बाद ही नहीं होता बल्कि उनके जीवन-कालमें भी होता है। इन्हीं सन्तोंके बारेमें मुहम्मद हमीदने लिखा[1] है कि भारतवर्षमें एक प्रकारके ऐसे भी सन्त हैं जिन्हें पीर-ए-गैब या गैब पीर कहते हैं। यह नाम उन्हें सम्भवतः इसीलिए दिया गया है कि अपने जीवन-कालमें वे अपनी शक्तिके द्वारा लोगोंकी आँखोंसे ओझल हो जाते हैं या मृत्युके बाद उनका शरीर अदृश्य हो गया होता है।

सन्तोंको अपनी आध्यात्मिक शक्तिका पता रहता है या नहीं इसके सम्बन्धमें दो प्रकारके विचार प्रकट किये जाते हैं। मजहबकी पाबन्दियोंको पूरा-पूरा मानकर जो चलनेवाले हैं उनका कहना है कि सन्तोंको अपनी शक्तिका पता रहता है और चूँकि उनपर परमात्माकी विशेष कृपा रहती है इसलिए वे अपनी शक्तिसे परिचित रहनेपर भी गुमराह नहीं होते। इस प्रकारके विचार रखनेवालोंका कहना[2] है कि जो लोग यह समझते हैं कि परमात्माकी खिदमत तभीतक जरूरी है जबतक साधक सन्त नहीं हो जाता, बिल्कुल गलत है। उनके अनुसार परमसत्यतक पहुँचनेके मार्गमें कोई ऐसा मुकाम नहीं जिसमें खिदमतकी पाबन्दी छोड़ दी गयी हो।

१. ग्लौ० पं० ट्रा० का०, खंड १, पृ० ५२५।

२. कश्फ०; पृ० २१८।

इस मतकी पुष्टिके लिए अल-हुज्वीरीने कई उदाहरण दिये हैं। हुज्वीरीने लिखा[1] है कि मैंने सुना है कि एक आदमी शेख अबू सईदसे मिलने आया और मस्जिदमें घुसते समय उसमें पहले बाँया पैर रखा। शेखने यह कहते हुए उसे हटा देनेके लिए कहा कि 'जो व्यक्ति यह भी नहीं जानता कि दोस्त (परमात्मा) के घरमें कैसे प्रवेश करना चाहिये वह हम लोगोंके योग्य नहीं है।' इस्लामके धर्म-ग्रन्थोंमें बताये हुए मार्गपर चलनेवाले सनातन-पन्थी साधारणतः सन्तोंके बारेमें इसी तरहका विचार रखते हैं। लेकिन इससे भिन्न मत रखनेवालोंका कहना है कि सन्तोंको अपनी वास्तविक शक्तिका पता नहीं रहता। वे जैसे संसारको भूल जाते है वैसे अपने आपको भी भूल जाते हैं। वे संसारके अन्य प्राणियों जैसे नहीं होते। उनके लिए धार्मिक नियम-क़ानूनोंकी पाबन्दियोंका कोई अर्थ नहीं। जबतक उनकी साधना पूरी नहीं होती तभीतक वे इन सारी बातोंपर ध्यान देते हैं और जब सन्तकी अवस्थामें पहुँच जाते हैं तब उनके लिए ये सारी चीजें निरर्थक हो जाती हैं। उनके मतानुसार ये नियम-क़ानून भी सन्तोंके लिए अवरोध-जैसे हैं। इनका ज्ञान रहना मानो उनके और परमात्माके बीचका पर्दा है। चाहे जो हो, सनातन-पन्थियोंके जोर देनेपर भी लोगोंने सन्तोंके अचार-विचारपर ध्यान देना उचित नहीं समझा और उन्हें बराबर एक दूसरे जगतका प्राणी मानते रहे और साधारण मनुष्योंकी कोटिसे परे मानते रहे। उनमें किसी प्रकारकी त्रुटि-विच्युतिका होना वे नहीं मानते।

सूफियोंका विश्वास है कि प्रत्येक कालमें एक ऐसा सन्त अवश्य होता है जो सर्वोच्च स्थानका अधिकारी होता है। उस सन्तको कोई देख नहीं सकता, वह बराबर अदृश्य रहता है। संसारको चलानेके लिए और उसपर नियन्त्रण रखनेके लिए ये औलिया (सन्त) परमात्माके द्वारा शासकके रूपमें भेजे जाते हैं। इस प्रकारके बहुतसे सन्त हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इन सन्तोंकी एक नियत संख्या है। किसीके अनुसार

१. कश्फ० : पृ० २१८।

यह संख्या ४००० है और कोई इसे ३५६ बतलाता है। आध्यात्मिक शक्ति और पवित्रताके अनुसार इनकी सात श्रेणियाँ हैं। इनकी समितिको 'गौस उल आलम' कहते हैं। गौस उल आजम इनमें सर्वोच्च है जो अपने पुण्य बलसे दूसरोंके पाप काटता है। क़ुत्ब उसका वजीर है। जो अपने समयका सर्वश्रेष्ठ सन्त होता है उसे क़ुत्ब-उल-वक्त या क़ुत्ब-उल-अक़्ताब कहते हैं[1]। हुजवीरीने बतलाया[2] है कि इस प्रकारके अधिकारियोंमें 'तीन सौ ऐसे हैं जिन्हें अख्यार कहते हैं, चालीस अब्दाल हैं, सात अब्रार कहलाते हैं, चार औताद हैं, तीन नुक़्बा और एक क़ुत्ब है जिसे गौस भी कहते हैं। ये एक दूसरेको जानते हैं और बिना एक दूसरेकी रायके कोई काम नहीं करते।' कुछ लोगोंके अनुसार सबसे ऊपर गौस, चार औताद, सात अख्यार, चालीस अब्दाल, सत्तर नुजबा और तीन सौ नुक़बाकी समिति है। इनकी एक विशेष संख्या बराबर बनी रहती है, उसमें कमी-बेशी नहीं होती[3]। ये सभी अदृश्य रहते हैं और उनकी एक शासन-सभा है जिसकी बराबर बैठकें होती हैं। और क़ुत्ब उन सबोंके ऊपर है। इन बैठकोंमें आने-जानेमें इन लोगोंके लिए समय और दूरीकी कोई भी बाधा नहीं। एक क्षणमें ये संसारके एक कोनेसे दूसरे कोनेमें आ-जा सकते हैं। इनके लिए जैसे पहाड़ों, नदियों, समुद्रोंकी कोई बाधा नहीं है। अल-हुजवीरीने[4] तिरमिधके अबूबक़ वर्राक़के सम्बन्धमें लिखा है कि एक बार मुहम्मद बिन अली (अल-हकीम) ने उन्हें कहीं ले जाना चाहा। अबूबक़ वर्राक़ने 'शेखकी जैसी मरजी' कहकर अपनी सम्मति जनायी। जैसे ही वे लोग रवाना हुए, अबूबक़ वर्राक़को एक भयानक सुनसान स्थानके बीचोबीच हरेभरे पेड़के नीचे एक सोनेका सिंहासन दीख पड़ा। उसके पास ही एक पानीका सोता बह रहा था। सुन्दर पोशाक

१. ग्लो. पं. ट्रा. का, पृ० ५२४।

२. कश्फ० : पृ० २१४।

३. इ. इन्डि., पृ० २८७ तथा इन्सा. इ. (प्रथम खण्ड), पृ० ६९।

४. कश्फ० : पृ० २२९।

पहने हुए एक व्यक्ति उस सिंहासनपर बैठा हुआ था। जब मुहम्मद बिन अली वहाँ पहुँचे तब वह आदमी उठ खड़ा हुआ और उन्हें सिंहानपर बैठनेके लिए कहा। थोड़ी देरके बाद चारों ओरसे लोग आने लगे और देखते-देखते उनकी संख्या चालीस हो गयी। तब मुहम्मद बिन अलीने अपना हाथ घुमाया और तुरत आसमानसे भोजन आया और उन लोगोंने भोजन किया। मुहम्मद बिन अलीने एक आदमीसे कुछ पूछा और दोनोंने काफी देरतक बातें कीं जो अबूबक्रके बिल्कुल समझमें न आयीं।...... जब ये दोनों तिरमिध लौटे तब अबूबक्रके पूछनेपर मुहम्मद बिन अलीने बतलाया कि वह आदमी क़ुत्ब था जिसपर सारी दुनियाकी व्यवस्थाका भार है।

अफीफुद्दीन तिलिमसानीने सूफियोंकी यात्राके चार मंजिल बतलाये हैं। तिलिमसानीके वर्णनसे क़ुत्बके स्थान और आध्यात्मिक शक्तिका पता चलता है। तिलिमसानीने बतलाया है कि पहली मंजिलकी समाप्ति फ़ना है जो मारिफ़ (ईश्वरीय ज्ञान) से प्रारम्भ होती है और दूसरी मंजिल वह है जब फ़नाके बाद बक़ाकी स्थितिका आरम्भ होता है। जो इस मुकामपर पहुँच जाता है वह मानो परमसत्यमें ही यात्रा करने लगता है। उस समय वह परम सत्यके द्वारा परमसत्यके लिए अग्रसर होता है। इस प्रकारसे अग्रसर होता हुआ वह उस जगह पहुँचता है जो क़ुत्बका स्थान है। वहाँ पहुँचकर वह आध्यात्मिक जगत्का केन्द्र हो जाता है। विभिन्न अवस्थाओंमें पहुँचे हुए साधक उस स्थानसे समान दूरी-पर रहते हैं क्योंकि क़ुत्बके चारों ओर साधनाकी अवस्थाएँ घूमती रहती हैं। क़ुत्बके लिए दूरी अथवा निकटता नामकी वस्तु नहीं रह जाती। क़ुत्बके लिए मारिफ़ (ईश्वरीय ज्ञान) और फ़ना नदियोंके समान हैं जो समुद्रकी नाईं उसीमें आकर विलीन हो जाते हैं और वह अपनी इच्छाके अनुसार उनमेंसे जिसे भी चाहे, पूर्ण करता रहता है। दूसरोंको परमात्माकी ओर अग्रसर करानेका उसे अधिकार है। क़ुत्बको किसीका अनुशासन मानकर नहीं चलना पड़ता। हज़रत मुहम्मदके पहले वह

अग्रसर होता तो पैग़म्बर कहलाता[१]।

आध्यात्मिक जगत्के इन अधिकारियोंका ऊपरसे नीचेतक एक सिलसिला है। क़ुत्ब जो इनमें शीर्षस्थानीय है, उसके दो सेवक होते हैं जिनको इमामैन कहते हैं। इनमेंसे एक क़ुत्बके दाहिनी ओर रहता है उसको अब्दुर्रब कहते हैं, वह आलमे-मलकूत अर्थात् देव-जगत्पर नज़र रखता है। क़ुत्बकी बायीं ओर रहनेवालेको अब्दुल मालिक कहते हैं और वह आलमे-नासूत अर्थात् भौतिक जगत्पर नजर रखता है। क़ुत्बके बाद औतादका स्थान है। चारों दिशाओंके लिए चार औताद हैं। पूर्ववालेको अब्दुल हक़्क़, पश्चिमवालेको अब्दुल अलीम, उत्तरवाले-को अब्दुल मुरीद और दक्षिणवालेको अब्दुल क़ादिरके नामसे पुकारते हैं[२]। औतादके कामोंके सम्बन्धमें हुज्वीरीने लिखा है कि 'सूफियों-को यह मालूम है कि औताद प्रत्येक रातको सम्पूर्ण जगत्का चक्कर लगा आता है और अगर किसी स्थानपर उनकी दृष्टि नहीं पड़ी तो दूसरे दिन उस स्थानपर कुछ गड़बड़ी अवश्य दिखाई देगी और तब उन्हें क़ुत्बको इसकी ख़बर देनी पड़ती है जिसमें वे अपने ध्यान द्वारा उस स्थानपर दृष्टि डालें तथा उनकी कृपासे उस स्थानकी गड़बड़ी दूर हो[३]।

शेख़ अबुल क़ासिम गुरगानी[४] और जुनैद[५] अपने कालके क़ुत्ब थे। ये क़ुत्ब केवल अदृश्य रूपसे ही इस सम्पूर्ण जगत्की व्यवस्था नहीं करते बल्कि कभी-कभी इस दृश्यमान जगत्के भी अधिकारी होते हैं। जैसे कहा जाता है कि हजरत मुहम्मदके बाद चारों खलीफा, हसन और हुसैन तथा मुआविया, उमर बिन अब्दुल अजीज और मुतवक्किल ये तीन खलीफा

१. सि. इ., पृ० १६४।

२. नज़मुलग़नीः तज़किरातुस्सुलुक। पृ० १८८-१८९।

३. कश्फ० : पृ० २२८।

४. वही, पृ० २०६।

५. वही, पृ० १४७।

अपने समयके क़ुत्ब थे[1]। इसी प्रकार अबुल अब्बास अहमद बिन मस-रूक़[2] तथा फ़रगनाके अशल्टक गाँवके एक वृद्ध जिनका नाम बाब उमर[3] था, औतादोंमें थे।

औतादके बाद अब्दालोंका स्थान है। इनका स्वभाव पूर्ण रूपसे बदल जाता है इसलिए ये अब्दाल कहे जाते हैं। अध्यात्मके क्षेत्रमें वे पूर्ण रूपसे परिवर्तित हो जाते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि अब्दालोंकी संख्या स्थिर रहती है। जैसे ही एककी मृत्यु होती है, दूसरा उसका स्थान ले लेता है और उनकी संख्या ज्योंकी त्यों बनी रहती है। इस प्रकारसे ये बदलते रहते हैं और यही कारण है कि वे अब्दाल कहे जाते हैं[4]।

अब्दालोंके बाद पाँच अम्द हैं जो स्तम्भस्वरूप विश्व-ब्रह्माण्डके आधार हैं। उनके बाद सत्तर नुजुबा और तीन सौ नुक़बा हैं जो अमीर उमरावोंकी तरह हैं। इनके अलावे अनगिनत औलिया हैं।

प्रारम्भिक कालके सूफियोंकी कहानियोंसे लगता है जैसे ये चमत्कार उस कालमें साधकोंकी दृष्टिमें तुच्छ समझे जाते थे और वे उन्हें कुछ अच्छी नज़रसे नहीं देखते थे। उन्होंने इन चमत्कारोंकी निन्दा भी की है। लेकिन मनुष्यकी जिस प्रवृत्तिने हज़रत मुहम्मदको प्रकृत मनुष्यसे अलौकिक और दिव्य जगत्का प्राणी बना दिया उसने इन सन्तोंको भी मनुष्यकी कोटिसे अलग कर दिया। लोगोंके मनमें जितना आकर्षण इन चमत्कारोंके प्रति था उस अवस्थामें उनके लिए इस प्रकारका विश्वास स्वाभाविक था। लोगोंको सन्तोंके पवित्र जीवन और पवित्र उपदेशोंसे बढ़कर उनकी करामातों (चमत्कारों)के लिए विशेष आग्रह था।

प्रारम्भमें सूफी साधकोंने इन चमत्कारोंको साधकके लिए एक प्रलो-

1. तज़किरातुस्सुलुक, पृ० १८८-१८९ सूफि०, पृ० १०४-१०५ पर उद्धृत।
2. कश्फ०, पृ० १४६।
3. वही, पृ० २३५।
4. सूफी, पृ० १०५-१०६।

भन माना था जो उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट करता है। इसे वे अपने आध्यात्मिक मार्गकी बाधा समझते थे, बायजीद बिस्तामीका कहना था कि 'साधना-की प्रारम्भिक अवस्थामें परमात्मा मेरे सामने बहुतसे चमत्कार लाया करते थे लेकिन मैंने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और जब उन्होंने देखा कि मैं ऐसा करता हूं तब उन्होंने मुझे वह साधन दिया जिससे मैं उनके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्तकर सकूँ[1]।' उस कालके सूफी साधक इन चमत्कारोंसे दूर भागते थे क्योंकि वे परमसत्यतक पहुँचनेमें रोड़ा जैसे हैं। बादमें चलकर दरवेशोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंने करामातों (चमत्कारों) को बहुत बड़ा बना दिया। अपने अपने सम्प्रदायके सन्तोंको दूसरे सम्प्रदायके सन्तोंसे बड़ा दिखलानेके लिए उन लोगोंने इन चमत्कारों-की कहानियोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर फैलाया। वैसे प्रारम्भिक कालमें भी चमत्कारोंकी जानकारी सूफी साधकोंको थी लेकिन वे उनसे दूर ही रहनेकी चेष्टा करते थे। इस सम्बन्धमें राबियाकी कहानी उस कालके सूफियोंकी मनोवृत्तिका पूरा परिचय देती है। कहा जाता है कि राबियाके साथ रहनेवाली उसके भाईकी बेटी जुल्फाने राबियासे पूछा कि जो लोग उससे मिलना चाहते हैं उन्हें वह अपने पास क्यों नहीं आने देती। राबियाने कहा 'मैं डरती हूँ कि मेरे मरनेके बाद मेरा नाम लेकर लोग ऐसी बातें करना शुरू करेंगे जो मैंने न किया है और न कहा है।' इसके बाद राबियाने कहा कि 'लोग कहते हैं कि जहाँ मैं प्रार्थना करती हूँ उस स्थानपर मुझे रुपये मिलते हैं और मैं बिना आगके भोजन पकाती हूँ।' जब जुल्फाने यह कहा कि लोगोंकी यह भी धारणा है कि उसे (राबियाको) अपने आप अपने घरमें ही भोजन और जल प्राप्त हो जाता है तब राबियाने कहा कि 'अगर वैसा होता भी तो वह उन वस्तुओंको छूतीतक नहीं। उसने बतलाया कि जरूरतकी चीजें वह खरीदा करती है[2]।' उस कालके सूफी सदाचार, परमात्माके प्रति अनन्य प्रेम तथा

---

१. मि० इ०, पृ० १३१।

२. रा. मि., पृ० ३१।

संन्यास आदिपर अधिक जोर देते थे। करामातों (चमत्कारों) की ओर उनकी दृष्टि नहीं थी। सह्ल इब्न अब्दल्लाका कहना था[1] कि सबसे बड़ा चमत्कार दुर्गुणोंके बदले सद्गुणोंको प्राप्त करना है। इस प्रकारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे चमत्कारोंके सम्बन्धमें प्रारम्भिक कालके सूफियोंके दृष्टिकोणका पता चल जाता है।

इन चमत्कारोंको लेकर सनातन-पन्थी साधकों और अन्य साधकोंमें पूरा मतभेद है। सन्तोंके नामके साथ जिस प्रकारके चमत्कार जुड़े हैं उसी प्रकारके चमत्कार पैगम्बरके नामके साथ भी जुड़े हुए हैं। पैगम्बरकी इस शक्तिके साथ सन्तोंकी शक्तिकी तुलना करनेका मतलब यह है कि सन्तोंको पैगम्बरके साथ बराबरीका दर्जा दिया जाय। जैसे जिस प्रकारके चमत्कार-की शक्ति पैगम्बरमें दीख पड़ती है वैसी शक्ति सन्तोंमें भी देखनेको मिलती है। देखनेमें दोनोंके चमत्कारोंमें कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता अतएव कुछ लोगोंने सन्तोंको पैगम्बरके समकक्ष मान लिया अथवा उनसे भी आगे बढ़ा दिया[2]। इससे पैगम्बरका विशेषत्व खंडित होता है अतएव हुजवीरी जैसे सनातन-पन्थी सूफी-साधकोंने इन विरोधी विचारधाराओंमें सामञ्जस्य स्थापित करनेकी चेष्टा की है। पैगम्बर द्वारा होनेवाले चम-त्कारों (करामातों)को उन लोगोंने सन्तोंके चमत्कारोंसे भिन्न बताया। सन्तोंके चमत्कारोंको इसीलिए 'करामात' कहा गया और पैगम्बरके चम-त्कारोंको 'मुअजीजात'नाम दिया गया। शरीअतको मानकर चलनेवाले सनातन-पन्थी सूफियोंने चमत्कारोंकी इन दो कोटियोंको माना है। उनके अनुसार सन्तोंके लिए यह उचित है कि वे अपने चमत्कारकी शक्तिको प्रकट न करें और उसे छिपाये रखें जब कि पैगम्बरके लिए इस शक्तिका प्रकट करना जरूरी है। कहा जाता है कि पैगम्बरके चमत्कारोंकी नकल नहीं हो सकती। वह अपनी इस शक्तिसे पूर्ण परिचित रहता है लेकिन सन्तके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह जाने कि सचमुचमें उसके पास ऐसी

१. मि. इ., पृ० १३०।

२. कश्फ०, पृ० २३६।

शक्ति है। 'मुअजीजा' (पैग़म्बरके चमत्कार) भगवान्‌की तरफ़से केवल पैग़म्बरके लिए ही है। पैग़म्बरको छोड़कर दूसरा कोई इस प्रकारकी शक्ति-का अधिकारी नहीं है। ये उसके पैग़म्बर होनेके प्रमाणस्वरूप हैं। भगवान् यह शक्ति पैग़म्बरको प्रदान करता है। धार्मिक नियम-कानूनोंके ऊपर पैग़म्बरका अधिकार है। पैग़म्बर उनसे ऊपर है लेकिन उन सन्तोंको जो करामातोंके अधिकारी हैं पैग़म्बरके बनाये हुए नियम-कानूनोंके अनुकूल रहना पड़ता है। सन्त इन नियमोंको मानकर ही चलता है। वास्तवमें यह शक्ति सन्तोंको पैग़म्बरसे ही प्राप्त होती है जैसे मधुसे टपकी हुई बूँदें होती हैं। चमत्कारोंको प्रकट करनेकी शक्ति जो सन्तोंमें होती है उसका कारण वे अपनी शक्तिको नहीं मानते बल्कि उसे वे परमात्मा द्वारा प्रदत्त मानते हैं। कहा जाता है कि चमत्कारोंके प्रकट होनेके समय स्वयं सन्तों-को उनका पता नहीं होता क्योंकि उस समय वे भावाविष्टावस्थामें रहते हैं। उस अवस्थामें वे जो कुछ भी करते हैं वह मानों परमात्माका ही किया हुआ काम है।

सनातन-पन्थी सूफी साधकोंने पैग़म्बर और सन्तके अन्तरपर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि जहाँ 'सन्त-त्व' का अन्त होता है वहाँसे पैग़म्बर-त्व' का प्रारम्भ होता है। प्रत्येक पैग़म्बर सन्त होता है लेकिन सभी सन्त पैग़म्बर नहीं होते। सन्तोंकी 'हाल' (भावाविष्टावस्था) की अवस्था स्थायी नहीं होती लेकिन पैग़म्बरकी स्थायी होती है, वही उसकी प्रकृत अवस्था है। पैग़म्बर मानव जगत्‌के दोष-गुणोंसे परे होता है जब कि सन्तोंके लिए यह अवस्था अल्पकालिक ही होती है। अतएव सनातन-पन्थी सूफियोंका कहना है कि सभी अवस्थाओं तथा सभी कालोंमें सन्तका दर्जा पैग़म्बरसे नीचेका है। 'सन्त-त्व' का प्रारम्भ भी है और अन्त भी लेकिन पैग़म्बर सदा-सर्वदा पैग़म्बर ही थे। वे प्रारम्भमें भी पैग़म्बर थे और अन्तमें भी पैग़म्बर रहेंगे और जब वे इस दृश्यमान जगत्‌में प्रकट नहीं हुए थे उस समय भी वे पैग़म्बर ही थे[1]।

१. कश्फ०, पृ० २३८।

सन्तोंकी शक्ति सीमित है। अबुल हसन खुरक़ानी फारसके रहनेवाले एक सूफी सन्त थे। उनकी मृत्यु सन् १०३३ ई०में हुई। उनके बारेमें कहा जाता है कि एक दिन रातमें उन्होंने कहा कि किसी एक विशेष मरुभूमिमें बहुतसे आदमी डाकुओं द्वारा मार डाले गये हैं। पता लगानेपर मालूम हुआ कि उन्होंने जो कुछ कहा था वह बिलकुल ठीक है। उसी रातको किसीने उनके पुत्रका सिर काटकर उनके दरवाज़ेपर लटका दिया और उन्हें पतातक नहीं चला। अपनी रोती हुई स्त्रीके पूछनेपर कि शेखको इतनी दूरकी बात मालूम हो गयी और दरवाज़ेकी घटनाका पता नहीं, इससे वह क्या समझे, शेखने बतलाया कि पहली घटनाके समय उसकी आँखोंसे हिजाब (पर्दा) दूर हो गया था और दूसरी घटनाके समय वह फिर उसकी आँखोंपर पड़ गया था[1]। यह कहानी सन्तोंकी सीमित शक्तिपर प्रकाश डालती है।

खुरक़ानीके सम्बन्धकी एक दूसरी कहानी कही जाती है कि एक बार कुछ आदमी कहीं यात्रापर जानेवाले थे। उन लोगोंने खुरक़ानीसे एक ऐसी प्रार्थना बतलानेके लिए कहा कि जिसमें वे रास्तेमें आपत्ति-विपत्तिसे अपनी रक्षा कर सकें। खुरकानीने कहा कि 'तुम लोगोंपर अगर कोई विपत्ति आ पड़े तो मेरा नाम ले लेना।' इस जवाबसे उन लोगोंको सन्तोष नहीं हुआ, फिर भी वे अपनी यात्रापर चले। रास्तेमें कुछ लुटेरोंने उनपर आक्रमण किया। उनमेंसे एकने सन्त खुरक़ानीका नाम लिया और नाम लेते ही वह अदृश्य हो गया। न उसका ऊँट ही दिखलाई पड़ा और न उसका सामान ही। लुटेरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बच गया और दूसरोंका सामान लुट गया। घर लौटनेपर उन लोगोंने खुरकानीसे इसका कारण पूछा, उन लोगोंने यह भी बतलाया कि उस समय उन लोगोंने भगवान्‌का नाम लिया था लेकिन कोई फल नहीं निकला। खुरक़ानीने बतलाया कि वे लोग नामके लिए भगवान्‌को पुकारते हैं और खुरक़ानी भगवान्‌को वास्तवमें पुकारते हैं। अतएव जब कोई खुरक़ानीको पुकारता है

१. मि० इ०, पृ० १३३-१३४।

तो वे उसकी ओरसे भगवान्‌को पुकारते हैं और भगवान्‌के दरबारमें उनकी पुकारकी सुनवाई होती है[1]। इससे पता चलता है कि सन्तोंपर भगवान्‌की कृपा होती है और भगवानके साथ उनका एक सीधा सम्बन्ध रहता है।

परमात्माके साथ सन्तोंका एकत्व कैसे सम्भव हो पाता है इसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि साधकको मुर्शिद (गुरु)का बराबर चिन्तन करना चाहिये। उसे बराबर गुरुका ध्यान करना चाहिये। सभी बुरे विचारोंसे गुरु उसकी रक्षा करता है। गुरुकी अलौकिक शक्ति मानों साधककी सभी चेष्टाओंमें उसके साथ बनी रहती है और जहाँ भी वह जाता है उसके साथ बनी रहकर उसकी रक्षा करती है। गुरु अपनी शक्ति द्वारा उसके सभी कर्मों, सभी विचारोंका दर्शक बना रहता है और सब प्रकारसे उसका सहायक बना रहता है। ध्यान करते-करते यह चीज इतनी दूरतक पहुँच जाती है कि साधक सभी मनुष्यों तथा सभी वस्तुओंमें गुरुको ही देखता है। इस स्थितिको 'गुरुमें लय कर देना' कहते हैं। गुरु अपनी दिव्य शक्तिसे जान जाता है कि साधक इस साधनामें कहाँतक सफल हो सका है और कहाँतक वह अपनेको उसके साथ एक कर पाया है। इस अवस्थामें पहुँचनेपर मुर्शिद उस साधकको अपने सम्प्रदायके संस्थापक दिवंगत पीरकी दिव्य शक्तिके अधीन कर देता है। साधक अपने गुरुकी आध्यात्मिक शक्तिके सहारे उस पीरको प्रत्यक्ष करता है। इसको 'पीरमें लय करना' कहते हैं। अब साधक मानों उस पीरका अङ्ग बन जाता है और उसकी सम्पूर्ण दिव्य शक्तिका अधिकारी बन जाता है। तीसरी अवस्थामें मुर्शिद (गुरु) उसको पैग़म्बरके निकट पहुँचा देता है और साधक सभी वस्तुओंमें पैग़म्बरको ही देखने लगता है। इस अवस्थाको 'पैग़म्बरमें लय' होना कहते हैं। चौथी अवस्थामें साधक परमात्मातक पहुँच जाता है और सभी वस्तुओंमें वह परमात्माके दर्शन करने लगता है और इस प्रकारसे वह उसके साथ एकत्व प्राप्त करता है[2]। इस अवस्थामें पहुँचनेके

१. वही, पृ० १३९-१४० ।

२. ब्राउन : दरविशेज़ (१८६८) पृ० २९८, मि. इ. पृ० १४०-

बाद मुर्शीद (गुरु) उसे फिर उसकी प्रथमावस्थामें पहुँचा देता है और सबसे ऊपर उठकर, सबसे अछूता रहकर वह फिरसे साधारण मनुष्योंकी तरहसे इस्लामके नियमोंका पालन करने लगता है। वह सहजभावसे अपना जीवन व्यतीत करने लगता है। अब उसे संसारके माया-मोह नहीं छू पाते। वैसे इस चौथी मंजिलतक पहुँचना बहुत ही कठिन है। कोई-कोई ही वहाँ पहुँच सकता है। दूसरी मंजिलतक ही अधिकांश लोग पहुँच पाते हैं।[1] मोल्लाशाह और तवक्कुल बेगकी निम्नलिखित कहानीसे यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी—

अपने मुर्शीद मोल्लाशाहके नियन्त्रणमें तवक्कुल बेगने इस आध्यात्मिक अनुभूतिको प्राप्त किया था। कहा जाता है कि मोल्लाशाहने तवक्कुल बेगको अपने सामने बैठनेके लिए कहा। वैसा करनेपर तवक्कुल बेगको लग रहा था जैसे उसकी चेतनापर कोई नशा छाया हुआ हो। मोल्लाशाहने उसे अपने भीतर अपनी (मोल्ला शाहकी) ही प्रतिच्छविका ध्यान करनेके लिए कहा। इसके बाद उन्होंने उसकी आँखें बाँध दीं और अपने हृदयपर ध्यान अवस्थित करनेके लिए कहा। तवक्कुल बेगको लगा जैसे परमात्माकी कृपासे तथा गुरुके प्रसादसे उसका हृदय खुल गया हो और उसने देखा जैसे वहाँ एक उलटा हुआ प्याला रखा हो। यह प्याला जब सीधा हो गया तो उसे अपने भीतर परम आनन्दकी अनुभूति हुई। उसने गुरुसे कहा—"मेरे आका, यह गुहा जहाँ मैं आपके सामने बैठा हुआ हूँ वह हूबहू मेरे अन्तरमें दिखाई पड़ता है और मुझे जान पड़ता है जैसे एक दूसरा तवक्कुल बेग एक दूसरे मोल्लाशाहके सामने बैठा हुआ है। इसके बाद उन्होंने उसे आँखें खोलनेके लिए कहा। उसने अपनेको शेख (गुरु) के सामने बैठा हुआ पाया। फिर मोल्लाशाहने उसे आँखें बाँध लेनेके लिए कहा और उसने गुरुको अपनी दिव्य दृष्टिसे वैसे ही अपने सामने बैठा हुआ देखा। इसके

१४१ पर उद्धृत।

१. मि. इ., पृ० १४० तथा दर०, पृ० ३२०-३२१।

बाद वह बोल उठा—"ओ मेरे मालिक, अपनी प्रकृत दृष्टिसे अथवा दिव्य दृष्टिसे जहाँ भी देखता हूँ, सिर्फ तुम्हें ही देखता हूँ[१]।"

ऊपर तवक्कुल बेगकी जो कहानी कही गयी है उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सूफी साधनामें मुर्शीद (गुरु) का स्थान महत्त्वका है। यहाँ मुर्शीद (गुरु) और मुरीद (शिष्य) के सम्बन्धमें थोड़ीसी और चर्चा कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा। सूफी-साहित्यमें गुरुके लिए साधारणतः मुर्शीद, शेख और पीर शब्दका व्यवहार होता है। सूफी साधनामें गुरुका इतना महत्त्व है कि गुरुके बिना सूफी साधनाकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। भगवत्प्राप्ति और आध्यात्मिक मार्गपर अग्रसर होनेके लिए मुर्शीदकी आवश्यकता पद-पदपर है। बिना उसकी कृपा और मददके मुरीद (शिष्य)के लिए कुछ भी करना सम्भव नहीं। सूफी मार्गपर अग्रसर होने वाले साधकके लिए यह आवश्यक है कि वह अपनेको सम्पूर्ण रूपसे मुर्शीदके हाथोंमें छोड़ दे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मुर्शीद-में ऐसी शक्ति होती है कि वह मुरीदको आध्यात्मिक मार्गमें लगा देता है। सांसारिक प्रलोभनोंसे बचाये रखनेमें गुरु उसका सहायक होता है और क्रमशः सूफी मार्गकी एक मंज़िलसे दूसरी मंज़िलतक पहुँचनेमें उसकी निगरानी करता रहता है। यहाँतक कि परमात्माके साथ मिलन भी उसके बिना सम्भव नहीं। गुरुको इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि जो साधक गुरुकी सहायता लिये बिना सूफी-मार्गपर अग्रसर होनेकी चेष्टा करता है वह ढोंगी[२] समझा जाता है। यह भी कहा गया है कि गुरुका आश्रय लिये बिना जो इस आध्यात्मिक मार्गपर अग्रसर होना चाहता है वह मानों शैतानको अपना मार्गप्रदर्शक माने हुए है और उसकी तुलना उस पेड़से की गयी है जो बागवानके ध्यान नहीं देनेके कारण कोई फल नहीं देता अथवा कड़ुआ फल देता[३] है।

१. मि. इ., पृ० १६४।

२. कश्फ०, पृ० १७।

३. मि. इ., पृ० ३२।

गुरु सब कुछको जाननेवाला है। परमात्माके राज्यमें जो कुछ होता है उसे वह देखता है और उसके अनजानमें कोई बात नहीं होती[1]। मुर्शिदके सम्बन्धमें सूफियोंकी यही धारणा है। इतना ही नहीं, परमात्मासे भी अधिक[2] उसे माननेके लिए कहा गया है। अतएव साधकके लिए कहा गया है कि वह जो कुछ भी करे, जो कुछ भी सोचे, अपने शेख (गुरु) को बराबर सामने रखे[3]। गुरुकी साधारणसी बात शिष्यके लिए क़ानून है। अगर वह शरिअतके खिलाफ़ भी कुछ करनेके लिए कहे तो उसकी पूर्ति करना शिष्यके लिए आवश्यक है[4]। मुर्शिद असाधारण शक्तिवाला होता है अतएव शिष्यके लिए अपने आपको उसके हाथोंमें छोड़ देना उसकी साधनाका मूलमन्त्र है। वास्तवमें यही एकमात्र वस्तु है जिसकी अपेक्षा शिष्यसे की जाती है।

मुर्शिद एक ऐसा व्यक्ति है जो स्वयं सूफी मार्गकी प्रत्येक विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयोंका परिचय प्राप्त किये हुए रहता है। वह 'अहवालों' (सूफी मार्गमें प्राप्त होनेवाली अवस्थाओं) के आनन्दका अनुभव किये हुए रहता है। परमात्माके अनन्त सौन्दर्य, अनन्त ऐश्वर्यको वह प्रत्यक्ष किये हुए रहता है। वह शिष्योंकी मनःस्थिति और उसके भीतरकी सम्भावनाओंको अपनी शक्तिसे जान लेता है। वह उसी समय किसीको अपना शिष्य बनाता है जब उसे पूर्णरूपसे विश्वास हो जाता है कि वह साधनाके पथसे नहीं हटेगा। हुजवीरीने[5] बतलाया है कि साधनाके पथपर चलनेकी इच्छा रखनेवाला जब मुर्शिदके पास जाता है तब वह तीन वर्षोंतक उसे कुछ नियमोंका पालन करते हुए जीवन-यापन करनेका विधान करता है जिसमें कि वह

१. कश्फ़०, पृ० ५७।

२. द्र०, पृ० ३५७।

३. वही, पृ० ३५७।

४. सूफि०, पृ० ८७।

५. कश्फ़०, पृ० ५४–५५।

सांसारिक वस्तुओंका त्याग करनेमें सफल हो सके। अगर उन नियमोंका पालन उसने उचित ढंगसे किया और शेख (गुरु)को उससे सन्तुष्टि हुई तब तो ठीक है नहीं तो वह कह देता है कि वह उसे (शिष्यको) इस मार्गपर नहीं लगा सकता। शिष्यको पहला वर्ष तो लोगोंकी सेवामें लगाना पड़ता है, दूसरा वर्ष परमात्माकी सेवामें और तीसरा वर्ष अपने हृदयकी निगरानी करनेमें। लोगोंकी सेवा वह तभी कर सकता है जब उसमें विनय और दीनताके भाव हों। वह सबको अपना मालिक और अपनेसे श्रेष्ठ समझे तथा ऐसा करनेमें उसे अपने मनमें किसी भेदभावको नहीं लाना होगा। परमात्माकी सेवा करनेके लिए उसे इस संसार अथवा आनेवाले संसारके स्वार्थोंका त्याग करना होगा। उसे परमात्माकी सेवा निष्काम भावसे परमात्माके लिए ही करनी होगी। अगर वह कुछ पाने-की इच्छा लिये हुए परमात्माकी सेवा करता है तो वास्तवमें वह अपनी ही सेवा कर रहा है, उसमें परमात्माकी भक्ति नहीं है। इसी प्रकारसे अपने हृदयकी निगरानी वह तभी करता है जब वह अपने हृदयसे नाना-प्रकारकी चिन्ताओंको दूर करनेमें लगा रहता है और चित्तको एकाग्र करनेमें सफल होता है।

शिबली, जो एक बड़े सूफी-साधक हो गये हैं, की कहानीसे यह अनुमान किया जा सकता है कि मुर्शीद अपने शिष्यको किस प्रकारसे उस आध्यात्मिक मार्गके लिए तैयार करता है। शिबली[1], जुनैदके शिष्य थे। वे जुनैदके पास गये और उनसे कहा कि लोगोंका कहना है कि उनके (जुनैद के) पास परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानका मोती है अतएव वे उसे उसके हाथ बेच दें। जुनैदने कहा कि उस मोतीका मूल्य चुकाने भर दाम शिबलीके पास नहीं है और अगर वह उसे मुफ्त दे दें तो उसके लिए उसका मूल्य समझना कठिन होगा। अतएव जुनैदने उससे कहा कि वह भी उन्हींकी तरह आँखें मूँदकर इस समुद्रमें धँस पड़े जिसमें कि धैर्यके साथ इन्तजारी करते हुए वह उसे पा सके। शिबलीने पूछा कि

१. मि. इ. पृ० ३४–३५

वह क्या करे। जुनैदने उसे गन्धक बेचनेके लिए कह दिया। एक वर्ष बाद शिवली जब इस व्यापारको लेकर सब जगह विख्यात हो गये तो जुनैदने उससे कहा कि दरवेश होकर भीख माँगे। बगदादकी गलियोंमें एक वर्षतक भीख माँगते रहे। उनकी ओर किसीने ध्यान नहीं दिया। जब वे फिर लौटकर जुनैदके पास आये तो जुनैदने कहा कि वह उन लोगोंकी ओर ध्यान ही न दे और उन लोगोंकी ओरसे अपना ध्यान बिलकुल हटा ले। इसके बाद जुनैदने शिवलीसे कहा कि वह उस प्रान्तमें जाकर सब लोगोंसे माफी माँगे जहाँ गवर्नर रहकर उसने बहुतोंको सताया होगा। शिवली चार वर्षोंतक सबसे माँफी माँगते रहे, केवल एक आदमी उन्हें नहीं मिला। जुनैदने कहा कि अभी भी नामकी कामना है इसलिए एक वर्ष और उसे भिक्षावृत्ति करनी होगी। रोज शिवली भीख ले आकर जुनैदको देते और जुनैद उसे दूसरोंको बाँट देते और दूसरे दिन भोरतक शिवलीको भूखा रखते। एक वर्ष ऐसा करते रहनेपर जुनैदने उसे इस शर्तपर शिष्य बनाया कि नौकर रहकर उसे दूसरोंकी सेवा करनी होगी। एक वर्ष बीत जानेपर जुनैदने शिवलीसे पूछा कि अब वह अपने बारेमें क्या सोचता है। शिवलीने बताया कि परमात्माकी सृष्टिमें वह अपनेको अधम समझता है। जुनैदने कहा कि अब उसकी निष्ठा दृढ़ है।

अपने 'अहं'को मिटानेके लिए साधकोंको उपवास, रात्रि-जागरण, मौन-व्रत, एकान्तमें रात-दिन ध्यान, सभीका सहारा लेना पड़ता है। सह्ल इब्न अब्दल्लाहने अपने एक शिष्यको बिना किसी विरामके सारा दिन 'अल्लाह, अल्लाह' कहते रहनेका आदेश दिया। जब वह इसे पूरा कर चुका तब उन्होंने उसे रातमें भी उसी तरहसे 'अल्लाह, अल्लाह' कहनेका आदेश दिया। कुछ दिनोंके बाद निद्रावस्थामें भी उसके मुँहसे 'अल्लाह, अल्लाह' ही निकलने लगा। इसके बाद उन्होंने उसे मौन रहकर स्मरण करनेके लिए कहा। सिवाय अल्लाहके अब उसके मनमें और कुछ नहीं रह गया। कहते हैं कि एक बार एक लकड़ीका कुन्दा उसकी देहपर गिर गया और उसके क्षतसे जो खून बह निकला उसमें

'अल्लाह, अल्लाह' लिखा हुआ दीख पड़ा[1]।

सूफियोंका विश्वास है कि पीर (गुरु)में यह सामर्थ्य है कि वह मुरीदके भीतर आध्यात्मिक शक्तिका प्रवेश करा दे। इसके लिए एक क्रिया होती है जिसका प्रयोग गुरु करता है। इस क्रियाको तवज्जह कहते हैं। इसमें ध्यानके द्वारा गुरु अपने अन्तरसे शिष्यके हृदयमें आध्यात्मिक शक्ति पहुँचा देता है। इस तवज्जहके बहुतसे प्रकार हैं। साधारण तौरपर तवज्जहकी प्रचलित क्रियामें गुरु अपने शिष्यके पास बैठ जाता है और इस बातकी कल्पना करता है कि उसका तथा शिष्यका हृदय बिल्कुल पासमें है और इस बातका ध्यान करता है कि उसके हृदयसे शक्ति निकल रही है और शिष्यके हृदयमें जा रही है। उस समय शिष्य इस बातका ध्यान करता रहता है कि उस शक्तिको वह गुरुसे प्राप्त कर रहा है। इसका एक और ढंग[2] बतलाया जाता है कि शिष्य शेखकी आकृति अपने मनमें पूरी तरहसे बिठा ले और उसे अपना दाहिना कन्धा समझे। वहाँसे अपने हृदयतक एक लकीरका चिन्तन करे। इसी लकीरसे होकर गुरुकी शक्ति उसके हृदयमें प्रवेश कर पायेगी और उसपर अधिकार जमा लेगी। इस प्रकारसे बार-बार इस प्रक्रियाको दुहरानेसे पीर उसके अस्तित्वको जैसे सम्पूर्ण रूपसे आत्मसात् कर लेते हैं।

गुरुमें ऐसी शक्ति होती है कि अगर वह किसी अजनबीकी ओर दयादृष्टिसे देख ले तो वह उसका अपना बन जाता है। जुनैदके बारेमें कहा जाता है कि एक बार बगदादमें उन्होंने एक सुन्दर ईसाई युवकको देखा। परमात्मासे उसके लिए उन्होंने प्रार्थना की। उसके थोड़ी ही देर बाद वह उनके पास आया और इस्लाम धर्ममें दीक्षित हो गया। बादमें वह बड़े सन्तोंमें गिना गया[3]।

शिष्य चाहे जितना बड़ा साधक क्यों न हो जाय, गुरुसे वह बड़ा

१. मि० इ०, पृ० ४६।

२. ग्लो० ट्रा० का० पं० प्रथम खंड, पृ० ५११-५१२।

३. कश्फ०, पृ० ५७।

नहीं हो सकता। शिष्यके अन्तरके प्रत्येक अनुभवसे गुरु अवगत रहता है। शिष्यके हृदयकी प्रत्येक गति-विधि, प्रत्येक आध्यात्मिक अनुभवका गुरुको ज्ञान रहता है। जुनैद और सारी अल-सकतीकी कहानीसे गुरु-शिष्यके सम्बन्धका पता चल जाता है और साथ ही यह भी कि गुरुका स्थान श्रेष्ठ रहता है। सारी अल-सकती जुनैदके गुरु थे। जुनैद स्वयं बहुत बड़े साधक थे और उनका बहुत बड़ा स्थान माना जाता था। सारीके वे भांजे थे। एक बार किसीने सारीसे पूछा कि शिष्य क्या कभी भी गुरुसे बड़ा हो सकता है। जुनैदकी ओर दिखलाकर सारीने अपने विनयके कारण कहा कि वह हो सकता है तथा जुनैदको उन्होंने अपनेसे श्रेष्ठ बतलाया। जुनैदको सारीके प्रति अगाध भक्ति थी अतएव जबतक सारी जीवित रहे तबतक जुनैदने शिष्योंको साधनामें दीक्षित नहीं किया। एक दिन सपनेमें जुनैदने देखा जैसे पैगम्बर उनसे कह रहे हों कि "ऐ जुनैद, तुम लोगोंको शिक्षा दो, क्योंकि परमात्माने तुम्हारे शब्दोंको अनेकानेक लोगोंके बचानेका साधन बनाया है।" जब उनकी नींद खुली तो उनके मनमें गर्व हुआ कि चूंकि पैगम्बरने उन्हें धर्मोपदेश देनेके लिए कहा है इसलिए वे सारीसे श्रेष्ठ हैं। भोरमें सारीने जुनैदके पास एक शिष्य भेजकर कहलवाया कि सबकी बात अनसुनी कर वह धर्मोपदेश नहीं करता था लेकिन अब, अब तो अपने पैगम्बरकी आज्ञा उसे माननी ही होगी। जुनैदका कहना है कि इससे उसके मनका गर्व काफूर हो गया। सारी उनके अन्तरकी बातको जानते थे लेकिन वे स्वयं सारीकी अवस्थासे अपरिचित थे। उन्होंने सारीसे क्षमा मांगी और पूछा कि वे कैसे जान गये कि पैगम्बरने उन्हें हुक्म दिया है। सारीने बतलाया कि वे परमात्मा-का स्वप्न देख रहे थे और परमात्माने ही उन्हें बतलाया कि उन्होंने पैगम्बरको तुम्हारे पास धर्मोपदेश करनेकी आज्ञा देनेके लिए भेजा है[1]।

गुरु-शिष्यका यह सम्बन्ध इस्लाममें धीरे-धीरे विकासको प्राप्त हुआ। पहले इस प्रकारकी कोई चीज अरब देशोंमें नहीं देखी जाती। इस्लामके

1. वही, पृ० १२८–१२९।

प्रारम्भिक कालमें कुछ विशेष-विशेषसाधक-साधिकाओं तक ही रहस्यवादी प्रवृत्ति सीमित थी। वे साधक संसारका त्याग किये हुए थे और मरु-भूमिमें कन्दरे वगैरहमें एकान्त वास करते थे। बहुतसे ऐसे भी साधक थे जो मरुभूमिमें न रहकर शहरोंमें ही रहते थे। ये साधक भगवान्‌को लेकर अपना समय बिताते और किसीसे उन्हें कोई मतलब नहीं था। उन्हें संसारसे कुछ लेना-देना नहीं था। भजन-पूजन और परमात्माकी कृपा प्राप्त करना उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। वे अपनी साधनाको लेकर मस्त-मौला बने रहते। धीरे-धीरे एक ऐसा भी समय आया कि अपनी साधनामें रत रहनेके अलावे सूफी-सिद्धान्तोंके अध्ययन तथा उनकी व्याख्या एवं स्पष्टीकरणकी ओर भी उन्होंने ध्यान दिया। अब उन्होंने सूफी-सिद्धान्तोंकी शास्त्रीय चर्चा करनी शुरू की। उन सिद्धान्तोंकी उन्होंने छानबीन की तथा उन्हें एक रूप देनेकी चेष्टा की। विकासके इस कालमें उन्होंने शिष्य भी बनाये। इस प्रकारसे बहुतोंके शिष्य-सम्प्रदाय भी बने। कभी-कभी उन समुदायोंमें शिष्यसंख्या कुछ व्यक्तियोंतक ही सीमित रह जाती और कितने ऐसे भी हुए जिनमें शिष्योंकी संख्या बहुत बड़ी थी। हुजवीरी ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए थे। उन्होंने इस प्रकारके बहुतसे सम्प्रदाय गिनाये हैं। इन सम्प्र-दायोंमें गुरु (शेख, मुर्शिद, पीर) और शिष्य (मुरीद, शागिर्द) का सम्बन्ध स्थापित हुआ। खानकाह और रिबात भी बने जहाँ जाकर साधनामें जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा रखनेवाले किसी सुप्रसिद्ध पीरका शिष्यत्व ग्रहण करते और पीरकी पूजा-अर्चा करते। जिनको साधनाके रहस्यका अधिकारी समझा जाता उन्हें उन रहस्योंका भेद बताया जाता और अपनी साधनाके बलपर वे खिरका पानेका अधिकारी होते। यह एक प्रकारकी पोशाक थी जिसका मतलब यह होता कि खिरका धारण करनेवाला व्यक्ति उस सम्प्रदाय-विशेषमें दाखिल कर लिया गया है। लेकिन खानकाहमें रहनेका मतलब यह कदापि नहीं था कि वह ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे। बहुत-से मुस्लिम साधक विवाहित भी थे। ईसाकी

बारहवीं शताब्दीमें सूफियोंके बड़े-बड़े सम्प्रदायोंकी स्थापना हुई। इस कालतक आकर इसका विस्तार इतना हुआ कि जो वस्तु कुछ व्यक्तियों-तक सीमित थी वह खानकाहतक आ पहुँची और जो सम्प्रदाय खानकाह-तक ही सीमित थे उनका प्रभाव-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया। धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न अंचलों और दूर देशोंके लोग विशेष-विशेष सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त होने लगे। वे अपनेको प्रसिद्धिप्राप्त विशेष पीरोंका शिष्य बताने लगे। कहना नहीं होगा कि उन शिष्योंकी दृष्टिमें उनके विशेष पीरोंकी अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं। हम आगे चलकर इस बातकी चर्चा करेंगे कि गुरु-शिष्यका यह सम्बन्ध सूफीमतमें भारतवर्षसे आया चूँकि इस्लाम धर्मकी यह अपनी चीज नहीं है और न इस रूपमें यह चीज भारतवर्षको छोड़कर अन्यत्र कहीं पायी जाती है।

खानकाह मठ की तरह ऐसे स्थान थे जहाँ साधक रह सकते थे। घूमते-फिरते दरवेश भी उसमें टिक सकते थे। बाहरसे आनेवालोंके लिए जिन्हें वहाँ रहना नहीं था, यह नियम था कि वे तीन दिनोंतक रह सकते थे और अगर उससे अधिक वे टिक गये तो उन्हें वहीपर अपने लिए किसी कामकी व्यवस्था कर लेनी पड़ती थी। इसका अपवाद भी था। अगर स्थायी भावसे टिकनेवाला साधक अपनी साधनामें लगा हुआ रहता तो उसे काम खोजनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। किसी खानकाहके पास सम्पत्ति थी और किसीके पास नहीं। खानकाहमें उन लोगोंके लिए स्थान नहीं था जिनका भीख माँगना ही रोजगार था। जिस खानकाहके पास सम्पत्ति नहीं होती उसका शेख वहाँ रहनेवाले साधकोंको भीख माँगकर जीवन निर्वाह करनेकी अनुमति देता अथवा शारीरिक परिश्रम द्वारा कमाकर खानेका आदेश देता।

खानकाहमें रहनेवालोंकी तीन श्रेणियाँ थीं—(१) अह्ले खिदमत, (२) अह्ले सुहबत, (३) अह्ले खिल्वत। इनमें प्रथम श्रेणीके लोग वहाँ सेवाधर्मका पालन करते और इस प्रकारसे जीवन-यापन करते अपने-आपको ऐसा बना लेनेके लिए सचेष्ट रहते कि वे आध्यात्मिक मार्गपर

अग्रसर होते रहें और दूसरी श्रेणीके योग्य बन जाँय। बहुत लोगोंकी राय है कि जो नयी उम्रके हैं उनके लिए सुहबतकी आवश्यकता है। उसीसे वे आध्यात्मिक मार्गसे परिचित हो सकते हैं और साधनाके पथपर अग्रसर हो सकते हैं। और बूढ़ोंके लिए खिल्वत (एकान्त-सेवन) की आवश्यकता समझी जाती है।

खानकाहका यही मतलब था लेकिन धीरे-धीरे इसके अर्थमें परिवर्तन होता गया। अब तो खानकाहका अर्थ किसी पीरकी समाधि हो गया है जहाँ लोग मन्नतें मानते हैं, उसके चारों ओर वृक्षादि लगाते हैं और अपने दुःख-कष्टोंके निवारणार्थ वहाँ जाते हैं।

जब साधकको मुर्शिदका आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है और उसका आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ हो जाता है तब उसे मुर्शिदके दिये हुए आदेशों तथा उस सम्प्रदायके नियम-कानूनों और पाबन्दियोंको बड़े मनोयोगके साथ सावधानीपूर्वक पालन करना पड़ता है। सूफियोंकी भाषामें उसकी आध्यात्मिक यात्रा (तरीका) प्रारम्भ हो जाती है और अब मुरीदकी संज्ञा बदलकर 'सालिक' (यात्री) हो जाती है। इस यात्राको तय करनेपर उसे अल्लाहका वस्ल (मिलन) प्राप्त हो सकता है। सूफी साधकों द्वारा प्रतिपादित भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंमें एक [1]सिद्धान्त यह भी है कि जबतक सूफी साधक वर्तमान शरीर धारण किये हुए रहता है तबतक उसके शरीरका मुख्य काम यह होना चाहिये कि वह वहदानिगा (परमात्माके एकत्व) का ध्यान करता रहे, उसके नामोंका स्मरण (ज़िक्र) करता रहे और वैसा करते हुए तरीका अर्थात् सूफियों द्वारा निर्धारित आध्यात्मिक मार्गपर उत्तरोत्तर अग्रसर होता रहे।

वास्तवमें 'ज़िक्र' का अर्थ स्मरण करना है। परमात्माके नामका स्मरण ही सूफियोंका 'ज़िक्र' है। 'ज़िक्र'से उनका मतलब यह है कि परमात्माके स्मरण द्वारा एक ऐसी अवस्थाकी प्राप्ति हो जिसमें साधकका मन समस्त जागतिक व्यापारोंसे हटकर परमात्माकी यादमें लग जाय

1. डि. इ., पृ० ६०९।

और उसके सिवा उसे और किसी वस्तुका ज्ञान न रह जाय। क़ुरानमें यह बहुत बार आया है कि बारम्बार परमात्माका स्मरण करो[1]। प्रारम्भमें 'ज़िक्र' से यही समझा जाता रहा लेकिन सूफियोंने इसका अर्थ अलग-अलग अपने ढंगसे किया है। अतएव आगे चलकर 'ज़िक्र' शब्द एक विशेष अर्थमें प्रयुक्त होने लगा और उसमें कई एक प्रकारकी क्रियाएँ भी शामिल हो गयीं। इन क्रियाओंका एकमात्र उद्देश्य यही समझा गया कि उनके द्वारा वज्द (भावोल्लास) की अवस्था उत्पन्न हो। बहुतसे सूफी इसे भावाविष्टावस्था भी कहते हैं लेकिन बहुत ऐसे हैं जिनका कहना है कि वज्दके बाद ही 'हाल' (भावाविष्टा-वस्था) की अवस्था आती है। 'हाल' की अवस्थामें साधकके मनमें अल्लाहके सिवा और किसी प्रकारका ख्याल नहीं आता। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि सूफी साधनामें भावाविष्टावस्थाका स्थान केवल महत्त्वका ही नहीं बल्कि यह उसका एक आवश्यक उपकरण है।

सूफी-सम्प्रदायोंमें ज़िक्रकी भिन्न-भिन्न क्रियाएँ देखनेमें आती हैं। 'ज़िक्र'की विभिन्न क्रियाएँ भिन्न-भिन्न मुर्शिदोंकी अनुभूतियोंपर आधारित हैं। ज़िक्रकी इन क्रियाओंका प्रचार प्रायः सभी मुस्लिम देशोंमें है। फ़क़ीरोंके अलग-अलग सम्प्रदायोंमें ज़िक्रका प्रचलन है। लेकिन सब समय यह जरूरी नहीं है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंकी ज़िक्रकी क्रियाएँ अलग-अलग अपने ढंगकी ही हों और वे अपनी कोई खास विशेषता लिये हुए हों। बहुत बार एक ही क्रिया सामान्य अन्तरके साथ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके भीतर देखी जा सकती है। वैसे तो मुस्लिम देशोंमें सर्वत्र ही ये क्रियाएँ देखनेको मिलती हैं फिर भी मिस्रमें इनका प्रचार बहुत अधिक है।

परमात्माके नामके बार-बार दुहराये जानेकी इस क्रियाकी उत्पत्ति हजरत मुहम्मदसे ही मानी जा सकती है। प्रार्थनाके समय अथवा खतरे-के समय क़ुरानकी भिन्न-भिन्न आयतोंको वे जोर-जोरसे पढ़ा करते थे। इसे वे बहुत महत्त्व देते थे। कहा जाता है कि एक बार हजरत अलीने

१. सूरा ३३ : ४१।

पैगम्बरसे पूछा[1] कि परमात्माको पानेका सहज रास्ता क्या है तथा किस प्रकारसे सहज ही में उसकी उपासना की जा सकती है। पैगम्बरने बतलाया कि उसके नामका स्मरण ही सचमुचकी उपासना है और उन्होंने आँखें बन्दकर जोरसे तीन बार 'ला अल्लाह इल्ल अल्लाह' कहा और अलीने उनका अनुसरण किया।

इसी प्रकार एक बार हजरत अली, पैगम्बरके साथ थे। पैगम्बरने घुटने टेके, अलीने भी वैसा ही किया। पैगम्बरने 'ला अल्लाह इल्ल अल्लाह' तीन बार दुहराया। प्रथम बार अपने मुँहको उन्होंने बाँयें कन्धेकी ओर फेरकर पढ़ा, दूसरी बार अपने मुँहको अपनी छातीपर झुकाया और तीसरी फिर बाँये कन्धेपर रखा। उनकी आँखें बन्द थीं और आवाज तेज थी[2]।

'जिक्र'के दो प्रकार हैं। एकमें साधक जोर-जोर से अल्लाहके नामका उच्चारण करता है। जोर-जोरसे ऊँची आवाजमें नाम लेनेका उद्देश्य यह है कि परमात्माके नामके सिवाय अन्य कोई ख्याल साधकके मनमें न आवे; इसे 'जिक्र-जली' कहते हैं। जोर-जोरसे नाम लेनेके अलावा और भी कितनी शारीरिक क्रियाएँ इसके साथ जुड़ी हुई हैं। दूसरा प्रकार ठीक इसके उल्टा है। इसे 'जिक्र खफ़ी' कहते हैं। इसमें साधक चुपचाप, शान्त भावसे मन-ही-मन परमात्माका स्मरण करता रहता है। 'जिक्र-खफ़ी'के अविर्भावके सम्बन्धमें कहा जाता है कि पैगम्बर और अबूबक्र दुश्मनोंके कारण एक गुफामें छिपे हुए थे। वहींपर पैगम्बरने कहा था कि 'दुःखी मत होओ, परमात्मा हमलोगोंके साथ है।' इसी वचनसे 'जिक्र-खफ़ी'की उत्पत्ति मानी जाती है।[3] नक्शबन्दी सम्प्रदायके फ़कीरोंमें जिक्र-खफ़ी का प्रचार है[4] और चिश्ती या क़ादिरी सम्प्रदायोंमें

१. दर०, पृ० १९०।

२. वही, पृ० १९०-१९१।

३. दर०, पृ० १९१।

४. डि. इ., पृ० ७०३।

'ज़िक्र जली' का। बहुतसे साधक ऐसे भी हैं जो आँखें बन्द किये हुए बिना किसी प्रकारकी आवाज़ किये अपने श्वास-प्रश्वासपर ध्यान लगाये हुए रहते हैं। जब श्वास बाहर आती है तो उसे लगता है जैसे वह 'ला-इल्लाह' कहता है और जब श्वास भीतर जाती है तब मानो वह 'इल्-अल्लाह' कहता है। कुछ साधकोंका कहना है[1] कि जाने या अनजाने प्रत्येक आदमी अपनी साँसोंके भीतर जाने और बाहर आनेके साथ अल्लाह-शब्दका उच्चारण करता है। उनका कहना है कि साँस भीतर आनेके साथ ही 'अल' शब्द अपने-आप ही उच्चरित होता है और 'लाह' शब्द साँसके बाहर जानेके साथ। उनका कहना है कि यह स्वाभाविक प्रक्रिया है और साँसोंके आने-जानेके साथ-साथ इन शब्दोंका उच्चारण होता रहता है। तसबीह (माला जपना) का व्यवहार भी सूफियों में है। इसके द्वारा वे यह जानना चाहते हैं कि कितनी बार उन्होंने परमात्माका नाम लिया है। कुछ साधकोंका कहना[2] है कि मनुष्यके हृदयके दो दरवाजे हैं। इनमें एक तो विषय-वासनाओंसे युक्त इस संसारका है और दूसरा आध्यात्मिक है। उनके विचार से 'ज़िक्र जली' प्रथमके लिए है और 'ज़िक्र खफी' द्वितीयके लिए।

'ज़िक्र' की क्रियाओंका सम्पादन अकेले भी किया जा सकता है और समूहमें भी। इस सम्बन्धमें एक हदीसका हवाला दिया जाता है जिसमें कहा गया है परमात्माका स्मरण करनेवाला कोई दल जैसे ही स्थान ग्रहण करता है, देवदूत उस मण्डलीको घेर लेते हैं और परमात्माकी दया उसके ऊपर छा जाती है और परमात्मा उन लोगोंकी याद उसके (व्यक्तिके) साथ ही करता है जो परमात्माका सान्निध्य लाभ कर चुका है[3]।

'ज़िक्र जली' की क्रियाओंके सम्बन्धमें दिल्लीके शाह वली अल्लाहने

---

१. इ. इ., पृ० ११५।

२. डि. इ., पृ० ७०४।

३. इन्सा. इ., पृ० ९५८।

अपनी पुस्तक 'कौलुल जमील' में इस प्रकारसे लिखा है[1]—

साधक सहज भावसे बैठ जाता है और जोरसे 'अल्लाह' शब्दका उच्चारण करता है। पहले अपनी आवाजको बाँयें पार्श्वसे खींचता है और बादमें अपने गलेसे। इसके बाद प्रार्थनाकी मुद्रामें बैठकर पहलेसे भी अधिक उच्च स्वरमें वह 'अल्लाह' शब्द दुहराता है। इस बार दाहिने घुटनेसे वह प्रथमतः आवाजको खींचता है और इसके बाद अपने बाँये पार्श्वसे। फिर पैरोंको मोड़कर और भी अधिक ऊँचे स्वरमें वह 'अल्लाह' शब्दका उच्चारण करता है। प्रथमतः दाहिने घुटनेसे, इसके बाद बाँयें पार्श्वसे उसकी आवाज इस बार आती है। इसी मुद्रामें बैठा हुआ वह और भी अधिक जोरसे 'अल्लाह' शब्द कहता है और इस बार उसकी आवाजका क्रम यों रहता है; पहले बाँयें घुटनेसे, फिर दाहिने घुटनेसे, इसके बाद बाँयें पार्श्वसे और अन्तमें सम्मुखसे। आवाज का सुर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसके बाद मक्काकी दिशामें मुँह फेरकर साधक प्रार्थनाकी मुद्रामें बैठ जाता है और अपनी आँखें बन्द कर लेता है। आवाजको नाभिसे खींचकर बाँये कन्धे की ओर ले आता है और 'ला' शब्दका उच्चारण करता है; तब वह 'इलाह' कहता है मानों वह अपनी आवाज मस्तिष्कसे खींचता है और अन्तमें बाँये पार्श्वसे आवाजको जैसे खींचता है और पूरी शक्ति लगाकर 'इल्ला' 'ल्लाहु' कहता है। इनमेंसे एकके बाद दूसरी सीढ़ीका वर्णन है। उनमेंसे प्रत्येकको 'जर्ब' कहते हैं। ये 'जर्ब' सैकड़ों बार दुहराए जाते हैं।

'जिक्र खफी'की क्रियाओंका क्रम निम्नलिखित है—इसमें साधक बहुत धीरे-धीरे अथवा मन-ही-मन शब्दोंका उच्चारण करता है। आँखें और जिह्वा बन्द कर लेता है और इसके बाद मानों वह अपने हृदयकी जिह्वासे कहता है—

अल्लाहु समीयुन (परमात्मा जो सुनता है)

अल्लाहु बसीरुन (परमात्मा जो देखता है)

---

१. डि. इ. पृ० ७०३ पर उद्धृत।

अल्लाहु आलीमुन (परमात्मा जो जाननेवाला है)

पहलेको वह नाभिसे हृदयतक ले जाता है, दूसरेको हृदयसे मस्तिष्कतक और तीसरेको मस्तिष्कसे अन्तरिक्षतक और फिर उसी क्रमसे पीछे लौटता है। इसी प्रकारसे वह बार-बार करता है। वह धीमे स्वरसे 'अल्लाह' कहता है। पहले दाहिने घुटनेसे और तब बाँयें पार्श्वसे। प्रत्येक बार जब वह साँस छोड़ता है वह 'ला इलाहा' कहता है और जब साँस खींचता है तब 'इल्ला ल्लाहु' कहता है। यह तीसरा जर्ब बहुत ही श्रम-साध्य है और इसे सैकड़ों, हजारों बार दुहराया जाता है और बहुत ही महत्त्वका और पुनीत माना जाता है[१]।

इनके अलावा और भी कितनी 'जिक्र' की क्रियाएँ हैं उनमें कुछ ये हैं—

(१) सुल्तानुल अजकार—यह सभी 'जिक्रों'का 'जिक्र' है। इसमें साधक प्रत्येक लतायफ (कुंडलिनी चक्र)को परमात्माके स्मरणसे जाग्रत करनेकी साधना करता है और जब मुर्शिदके प्रसादसे इसमें सफल हो जाता है और उसके प्रत्येक लतायफ जाग्रत हो जाते हैं तब कहा जाता है कि उसने 'सुल्तानुल अजकार'को सम्पन्न किया है।

(२) हब्से दम—इसमें साधक अपनी साँसोंको रोकता है और कल्बका ध्यान करता हुआ एक ही साँसमें 'ला इलाह' बहुत बार कहनेकी चेष्टा करता है।

(३) पासे अनफास—इसमें साधक अपने हृदयका चित्र मनमें ले आता है। छातीकी बाँयीं ओर उसके स्थित होनेकी वह कल्पना करता है और यह भी कल्पना करता है कि चमकते हुए अरबी अक्षरोंमें उसपर अल्लाह शब्द लिखा हुआ है। वह यह भी विश्वास बनाये हुए रहता है कि जब वह भीतर साँस खींचता है तब उससे 'अल्लाह' शब्द उच्चरित होता है और जब साँस छोड़ता है तो 'हू' शब्द उच्चरित होता है। यह 'हू' शब्द 'अल्लाहू'का अन्तिम अंश है।

१. डि. इ., पृ० ७०३।

'ज़िक्र'के अलावे एक और क्रिया है जिसे 'मुराक़बा' कहते हैं। 'मुराक़बा'का अर्थ 'ध्यान' है। इसमें पहले ज़िक्की क्रिया सम्पन्न होती है और उसके बाद साधक क़ुरानकी कुछ आयतोंको स्मरण करता हुआ ध्यान करता है। मुराक़बामें पहले जो ज़िक्रकी क्रिया होती है उसमें साधक निम्नलिखित वाक्योंका उच्चारण करता है।

अल्लाहो हाज़िरी (परमात्मा मेरे साथ मौजूद है)।

अल्लाहो नाज़िरी (परमात्मा मुझे देखता है)।

अल्लाहो शाहिदी (परमात्मा मेरा गवाह है)।

अल्लाहो माअई (परमात्मा जो मेरे साथ है)।

'ज़िक्र'के बाद साधक कुरानकी आयतोंका ध्यान करता है। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) 'वह (परमात्मा) प्रथम है। वह अन्तिम है। वह प्रकट है, वह छिपा हुआ है और वह सब कुछ जानता है' (सूरा ५७:३)।

(२) 'तुम जहाँ भी हो, वह तुम्हारे साथ है' (सूरा ५७:४)

(३) 'हम (परमात्मा) उसकी (मनुष्यकी) गर्दनकी शिराओंसे भी अधिक उसके निकट हैं' (सूरा ५०:१५)।

(४) जिस ओर भी तुम घूमो, परमात्माका चेहरा वहाँ है (सूरा २:१०९)।

(५) 'पृथ्वी पर सब कुछ नाशको प्राप्त हो जायगा लेकिन ऐश्वर्य और सौन्दर्यके साथ परमात्माका चेहरा बना रहेगा (सूरा ५५ : २६,२७)[१]।

अभीतक हम 'ज़िक्र'के सैद्धान्तिक रूपकी ही चर्चा करते रहे हैं लेकिन जबतक हम इसके व्यावहारिक रूपको नहीं समझेंगे तबतक इसका पूरा परिचय हमें नहीं प्राप्त होगा। हम यहाँपर 'रोज़'की पुस्तक 'दि दरवीशेज़'के आधारपर रिफाइ सम्प्रदायके दरवेशोंमें प्रचलित 'ज़िक्र'की क्रियाओंका वर्णन दे रहे हैं[२]—

१. डि. इ. पृ० ७०३-७०४।

२. दर० पृ० २७८-२८१।

रिफाइयोंके 'ज़िक्र'में एकके बाद एक, पाँच दृश्य दीख पड़ते हैं और उसमें तीन घंटेसे भी अधिक समय लग जाता है। प्रथम दृश्यमें 'ज़िक्र'में शामिल होनेवाले सभी दरवेश अपने शेखकी वन्दना करते हैं जो वेदीके सामने बैठा हुआ रहता है। इसके बाद चार पुराने साधक उठकर शेखके निकट जाते हैं। परस्पर एक-दूसरेका आलिंगन कर उनमेंसे दो शेखके दाहिनी ओर और दो बाँयी ओर स्थान ग्रहण करते हैं। अन्य दरवेश उनसे कुछ दूर हटकर उनके सामने अर्द्धवृत्त बनाते हुए वहाँ बिछी हुई भेंड़की खालपर बैठ जाते हैं। बैठनेके बाद दरवेश तकबीर और फातिहा पढ़ते हैं। इसकी समाप्तिके बाद शेख 'ला-इलाह इल्ल अल्लाह'का उच्चारण अविराम गतिसे करने लगता है और अन्य उसके सुरमें सुर मिलाकर 'अल्लाह' कहने लगते हैं और साथ ही एक ओरसे दूसरी ओर झूमना शुरू कर देते हैं तथा अपने हाथोंको कभी चेहरेपर, कभी छातीपर, कभी उदरपर और कभी घुटनोंपर रखते जाते हैं। इसके बाद दूसरा दृश्य प्रारम्भ हो जाता है। शेखके दाहिनी ओर बैठा हुआ एक आदमी 'हमदी मुहम्मदी' (पैग़म्बरकी वन्दना)का पाठ करने लगता है। अन्य 'अल्लाह' शब्दको ही दुहराते रहते हैं और आगे-पीछे झूलने लगते हैं। पन्द्रह मिनटोंके बाद वे उठ खड़े होते हैं और बाँयेसे दाहिने और दाहिनेसे बाँये हिलने लगते हैं। इसमें दाहिने पैरको स्थिर रखते हैं और बाँयेका ही सञ्चालन करते हैं। अगर शरीरको दाहिनी ओर झुकाते हैं तो बाँये पैरको बाँयी ओर ले जायेंगे और अगर शरीरको बाँयी ओर झुकाते हैं तो बाँये पैरको दाहिनी ओर ले जायेंगे। इसके साथ ही 'या अल्लाह' और 'या हू' शब्दका ऊँचे स्वरसे उच्चारण करते जाते हैं। उस समय कुछ आहें भरते रहते हैं, कुछकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहती रहती है, कई फफक-फफक कर रोते रहते हैं और कितनोंके शरीरसे पसीनेकी बूँदें टपकती रहती हैं। उस समय उनकी आँखें बन्द रहती हैं, चेहरा पीला पड़ा हुआ रहता है। कुछ मिनटों तक रुकनेके बाद तीसरा दृश्य सामने आ जाता है। इसमें उनके अङ्ग-सञ्चालन आदिकी क्रियाएँ और भी

वेगवती हो जाती हैं। और भी अधिक क्षिप्रता लानेके लिए उनमेंसे एक बीचमें आकर अपने उदाहरणसे अन्य सभीको और अधिक वेग लानेके लिए प्रोत्साहित करता है। फिर थोड़ी देर ठहरनेके बाद चौथा हल्क प्रारम्भ होता है। सभी दरवेश अपने माथेकी पगड़ीको उतार फेंकते हैं और एक वृत्त बनाकर खड़े हो जाते हैं और उस कमरेके चारों ओर तीव्र गतिसे घूमने लगते हैं और बीच-बीचमें पाँव पटकते जाते हैं और सभी एक ही साथ उछल पड़ते हैं। यह नृत्य बड़े जोरोंमें 'या अल्लाह' और 'या हू'के निरन्तर उच्चारणके साथ चलने लगता है। अत्यधिक ऊँचे स्वरमें वे चिल्लाते रहते हैं। शेख और उसकी बगलमें बैठनेवाले उनको और भी तीव्रताके साथ नाचनेके लिए स्वयं जोरोंसे नाचकर प्रोत्साहन देते हैं। वे इस तरहसे नाचते-नाचते ऐसी अवस्थामें पहुँचते हैं जहाँ वे पागलोंकी नाईं शेखके हाथोंसे आगमें तपाये हुए लाल लोहेके छड़ोंको बढ़-बढ़कर लेने लगते हैं। कभी वे उसे चाटते हैं, कभी प्यारसे चूमते हैं, कभी दाँतोंके बीच पकड़ लेते हैं और अन्तमें उसे मुँहमें लेकर ठण्डा करते हैं। जिनको ये लाल तपाये हुए छड़ नहीं मिल पाते वे ठण्डे छड़ोंको ही दीवारोंपरसे जहाँ वे टँगे हुए रहते हैं, ले लेते हैं और अपने हाथ, पाँव और शरीरमें घुसेड़ते हैं। चौथे हल्कका अन्त होते-होते दो दरवेश इन छड़ोंको शेखके हाथोंमें दे देते हैं। जलती हुई आगमें वे पहलेसे ही वहाँपर तपते रहते हैं।

उस क्रियामें किसीके चेहरेपर शिकन या पीड़ाके चिह्न नहीं दीखते। अन्तमें शेख प्रत्येकके पास जाता है उनके घावपर मुँहसे फूँकता है और अपना थूक उसपर मलता है और उसपर मन्त्रका पाठ करता है और कहता है कि वे जल्दी ही आरोग्य लाभ करेंगे। कहा जाता है कि चौबीस घण्टेके बाद घावका कोई भी चिह्न नहीं रह जाता।

औरतें भी साधना कर सकती हैं इसलिए उनको दृष्टिमें रखकर 'ज़िक्र' के लिए स्थान और समय निर्धारित करते हैं। टाइटसका कहना[1]—

1. इन्डि. इ. पृ० ११६।

है कि इस देशमें उसकी स्त्रीने बिजनौर जिलेके किसी स्थानपर किसीके अन्तःपुरमें इस तरहके लोगोंको 'जिक्र' के लिए इकट्ठे होते देखा था। भारतवर्षमें साधारणतः 'जिक्र' के लिए वृहस्पतिवारकी रात्रिमें लोग इकट्ठे होते हैं।

नक़्शबन्दी सम्प्रदायवाले मुरीदको 'जिक्र' के बारेमें पहलेसे पूरी हिदायत देते हैं। गुरुके साथ बैठकर उसे गुरुका अनुसरण करना पड़ता है। कहा जाता है कि सालिकको अपनी आँख बन्द कर लेनी चाहिये, मुँहको बन्द रखना चाहिये, जीभको ओठोंसे दबाये रखना चाहिये। बतलाया गया है कि हृदयका आकार सरोगाछकी तरह नुकीली आकृतिका है। सालिकको 'जिक्र' का जप करते हुए हृदयपर ध्यान लगाये रहना चाहिये। 'ला' को ऊपरकी ओर, 'इलाह' दाहिनी ओर तथा सम्पूर्ण 'ला इलाह इल्ल अल्लाह' को हृदयके नुकीले बिन्दुपर केन्द्रित करना चाहिये। ऐसा करनेसे संसार तथा उसके प्रलोभन साधकके मनसे दूर हो जाते हैं और वह परमात्माकी विभूतिके दर्शन करता है तथा बादमें उसके (परमात्माके) साथ उसे एकत्वका बोध होता है[1]। एक जगह और कहा गया है कि 'जिक्र' में सालिक अपनी आँखें तथा होटोंको बन्दकर अपने निश्वास-प्रश्वासपर ध्यान लगाये रहता है। जब वह साँस छोड़ता है तो सोचता है जैसे वह 'लाइलाह' कहता है। और जब श्वास भीतर खींचता है तो वह 'इल्ल अल्लाह' कहता है। कुछ दरवेशोंका कहना है कि मनुष्य जाने या अनजाने अल्लाहका नाम लेता रहता है। जब वह श्वाँस भीतर खींचता है तब 'अल' कहता है और जब साँस छोड़ता है तो 'लाह' कहता है। उनके मतसे यह स्वाभाविक प्रक्रिया है[2]।

बादमें चलकर सूफियोंने देखा कि भावाविशावस्था केवल जिक्र (स्मरण), ध्यान आदिसे ही नहीं उत्पन्न होती बल्कि नृत्य, संगीत आदिसे भी होती है। नृत्य संगीत आदिका सम्मिलित नाम 'समा' से प्रकट

१. डि. इ. : पृ० ७०४ तथा दर०; पृ० १४३–१४४।

२. इन्डि. ई., पृ० ११५।

किया जा सकता है। 'समा' का अर्थ वास्तवमें 'सुनना' है, वैसे इस 'सुनने' का साधारण बोलचालकी भाषामें जो 'सुनने' का प्रयोग किया जाता है उससे थोड़ा अन्तर है। इसमें सुननेका मतलब यह है कि सुननेवाला जिस चीजको सुन रहा है उसमें तन्मय हो जाय, जैसे संगीतका सुननेवाला संगीतमें तल्लीन हो जाता है। लेकिन सूफी इसका एक विशेष अर्थमें प्रयोग करते हैं। सूफियोंके अनुसार इसका अर्थ संगीत, गायन समस्वरसे पाठ आदि है जिनमें एक या सबके सम्मिलित प्रभाव द्वारा भावाविष्टावस्थाकी उत्पत्ति होती है। यह अर्थ धीरे-धीरे विकासको प्राप्त हुआ है। भक्ति साहित्यके 'श्रवण' के अनुरूप यह है। इस शब्दका प्रयोग क़ुरानमें नहीं मिलता लेकिन पुरानी अरबी भाषामें संगीत और गायनके अर्थमें यह शब्द प्रयुक्त हुआ है[1]।

सूफी इस बातमें विश्वास करते हैं कि परमात्माने जगत्के सभी प्राणियोंको अपनी-अपनी भाषामें उसका गुणानुवाद करनेकी शक्ति दी है। इस प्रकारसे सृष्टिकी जितनी ध्वनियाँ हैं वे स्तुति-वादनका रूप ले लेती हैं। अतएव परमात्माने जिसके अन्तरको खोल दिया है और आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की है वह सर्वत्र उसकी आवाज सुनता है। यही कारण है कि मुअज्जिनके लय सुरवाले संगीतको सुनकर अथवा हवाकी आवाज या चिड़ियोंके सुरीले संगीत आदिको सुनकर वह भावाविष्टावस्थाको प्राप्त हो जाता है। सूफी कवियोंने भी बहुत जगह कहा है कि इस सृष्टिमें आनेके पहले जब आत्मा, परमात्मासे अलग नहीं हुआ था और उस समय उसने जो स्वर्गीय संगीत सुना था उसको इस संसारका संगीत जाग्रत कर देता है। संगीत सुनकर वह इस संसारसे परे होकर उस स्वर्गीय संगीतको सुनने लगता है और उसे पूर्वावस्था (जिसमें आत्मा, परमात्मासे अलग नहीं था) प्राप्त हो जाती है। वह भावाविष्टावस्थाको प्राप्त हो जाता है और उसका नफ्स (आत्माका वह अंश जो कुप्रवृत्तियों-की ओर ले जाता है) पिंजड़ेके पक्षीकी तरह पिंजड़ेसे छुटकारा पानेके लिए

१. इन्सा. इ. खण्ड ७, पृ० १२१।

छटपट करने लगता है (इब्नुल्फरीद)[१]।

समाका प्रचलन सूफियोंमें पहलेसे चला आ रहा था और वह उत्तरोत्तर फैलता ही गया। सनातन-पन्थी मुसलमानोंने इसकी निन्दा की और इसे गर्हित बतलाया। उनके मतानुसार यह धर्मानुमोदित नहीं है। लेकिन दूसरे लोग इसे केवल उचित ही नहीं मानते बल्कि इसको उन्होंने साधनाका एक अङ्ग बना लिया है। हुजवीरीने, जिनकी मृत्यु ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हुई, अपनी पुस्तक 'कश्फ अल-महजुब'में दोनों पक्षोंकी बात कही है और इसके सम्बन्धमें उन्होंने मध्यम मार्ग चुना है। उनकी दृष्टिमें अपने आपमें समामें कोई दोष नहीं है लेकिन असली चीज यह है कि उसका उपयोग हम किस प्रकारसे करते हैं। अगर समासे भावाविष्टावस्थाकी प्राप्ति हो जाय तो वह अपेक्षित है और अगर वह केवल दिल बहलावके लिए हो तो उसे छोड़ देना चाहिये।[२]

संगीतको धर्मानुमोदित माननेके पक्ष या विपक्षमें बहुत-सी हदीसोंका हवाला दिया जाता है। इसे धर्मानुमोदित साबित करनेके लिए अबू अब्दल रहमान अल-सुलमीने बहुत-सी हदीसोंका संग्रह अपनी पुस्तक किताब अल-समामें किया है[३]। चाहे जो हो, बहुतसे सूफियों और दरवेशोंके सम्प्रदायोंने इसको अपना लिया और इसको एक विशिष्ट स्थान दिया। भारतवर्षमें चिश्ती-सम्प्रदायमें इसका अत्यधिक प्रचलन[४] है। इसी प्रकारसे उलेमाओंके विरोधके बावजूद भी रिफाई, मौलवी, बदावी, सादी तथा अशरफी सम्प्रदायवालोंने इसे अंगीकार किया[५]। धीरे-धीरे बहुत-से वाद्य-यन्त्रोंको भी स्वीकार कर लिया गया। शेखका कहना है कि क़ादिरी सम्प्रदायके प्रवर्तक अब्दुल क़ादिर जिलानीके ठीक बाद होनेवाले उनके

१. स्ट. इ. मि., पृ० २३६।

२. कश्फ. पृ० ४०२

३. वही, पृ० ४०१।

४. सूफी०, पृ० ११३।

५. दर०, पृ० २८६।

उत्तराधिकारी साद शम्सुद्दीनने साधकों द्वारा किये जानेवाले नृत्यके साथ संगीतका समावेश किया[1]। रोज़का अनुमान है कि सम्भव है कि मुसलमानोंमें इस प्रकारके नृत्यका प्रचलन मिस्र, ग्रीक तथा रोमके धार्मिक नृत्योंसे ही आया हुआ हो[2]। उसके समय समाका उपयोग विशेष रूपसे होता है।

संगीत, वाद्यादिसे भावोल्लास उत्पन्न होने पर सूफी-साधक अकेले या सम्मिलित रूपसे नृत्य करना शुरू कर देते हैं जिसे 'रक़्स' कहते हैं। हुजवीरीके मत[3]से नृत्य न धर्मानुमोदित है और न सूफियोंने ही उसे कोई स्थान दिया है लेकिन भावोल्लासके समय जब हृदय आनन्दसे धड़कता रहता है उस समय औचित्य अनौचित्यका प्रश्न दूर हो जाता है। उस समय साधक न 'नृत्य करता रहता है और न पायबाजी' बल्कि उस समय उसका 'अहं' भाव जाता रहता है। उसे जो लोग नृत्य समझते हैं वे अत्यन्त भूल करते हैं। यह ऐसी अवस्था है जिसका वर्णन शब्दोंमें नहीं हो सकता। उस अवस्थामें कपड़ेके टुकड़े-टुकड़े कर देने या वैसे ही निकालकर फेंक देनेकी बात सूफियोंमें पायी जाती है। उस कपड़ेका क्या उपयोग होना चाहिये इसपर हुजवीरीने पूरा प्रकाश डाला है।[4] वह कपड़ा या तो दरवेशोंके काममें आता है या गानेवालेको मिल जाता है या शेख़ जिसे दे दे उसे ही वह प्राप्त हो जाता है।

सूफी साधनामें लतायफी सित्ताके सिद्धान्तका भी प्रचलन है। कहा जाता है कि इस सिद्धान्तके प्रवर्तक शेख़ अहमद हैं जो नक़्शबन्दी सम्प्रदायके थे। वे ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए। लतायफका सिद्धान्त बहुत कुछ कुंडलिनी चक्रोंके सिद्धान्त जैसा है। शेख़ अहमदने मनुष्यके शरीरमें छ अवस्थानोंका जिक्र किया है जो एक दूसरेको घेरे हुए हैं। ये छ निम्नलिखित हैं—

---

1. दर०, पृ० २८६।
2. वही, पृ० २८७।
3. कश्फ०, पृ० ४१६।
4. वही, पृ० ४१७–४१८।

नफ़्स—इसका स्थान नाभिके नीचे है।

क़ल्ब—छाती के बाँयी ओर अवस्थित है।

रूह—छातीके दाहिनी ओर अवस्थित है।

सिर्र—क़ल्ब और रूहके बीचमें है।

खफ़ी—इसका स्थान ललाट है।

अख़्फ़ा—मस्तिष्कमें अवस्थित है।

कुछ लोगोंके मतानुसार अख़्फ़ा छातीके मध्य स्थित है और सिर्रका स्थान क़ल्ब और अख़्फ़ाके बीच है और खफ़ीका स्थान रूह और अख़्फ़ाके बीच है। इनके रंगों तथा प्रत्येक स्थानके देवताकी भी कल्पना की गयी है। जैसे क़ल्बका रंग पीला है और वह आदमके क़दमोंके नीचे स्थित है। रूहका रंग लाल और अब्राहमके पाद तले उसका स्थान है। इसी प्रकारसे सिर्र उजला, खफ़ी काला और अख़्फ़ा हरे रंगका है और ये क्रमसे मूसा, यीशु और मुहम्मदके पैरोंके नीचे अवस्थित हैं।

कुछ लोगोंका कहना है कि नफ़्स नील वर्णका है। सूफी साधकोंका कहना है कि जब नफ़्स पूर्ण रूपसे अदृश्य हो जाता है तब उज्ज्वल वर्णका आधिपत्य हो जाता है। साधक जिस अवस्थाको प्राप्त होता है वह उस रंगका शिरस्त्राण धारण करता है और उस रंगको देखकर उस साधककी आध्यात्मिक यात्राकी मंज़िलका पता चलता है। साधारणतः रूहका रंग हरा हो जाता है। कहा जाता है कि जैसे-जैसे सालिक ऊपरकी ओर बढ़ता जाता है वह भिन्न-भिन्न रंगोंको देखता है। आखिरी मंज़िल वह है जब सम्पूर्ण भावसे वर्णहीनता आ जाती है अर्थात् कोई भी रंग नहीं रह जाता। साधक उस समय फ़नाकी अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। इसे सूफी 'आलमे हैरत' कहते हैं।

सूफीके लिए परमात्माके अनवरत स्मरण द्वारा इन लतीफ़ोंको जाग्रत करना आवश्यक है। 'ज़िक्र' आदिकी विशेष क्रियाओं द्वारा सूफी एकके बाद एक लतीफ़ेको जाग्रत करनेमें समर्थ होता है और अन्तमें उसे परम ज्योतिके दर्शन होते हैं।

---

१२. सूफीमतका अन्य धर्मों और मतोंके साथ तुलनात्मक अध्ययन

सूफियों द्वारा प्रतिपादित परमात्मा, आत्मा, सृष्टि-रहस्य सम्बन्धी सिद्धान्त, सूफियोंका प्रेम-तत्त्व, सूफियोंका रहस्यवाद, सूफीमतका विकास आदिकी चर्चा करते समय हमने बार-बार यह देखा है कि सूफीमतका सनातन-पन्थी इस्लामके साथ मतैक्य नहीं है। लेकिन हमने यह भी देखा है कि सूफी साधक मूलतः इस्लामके अनुयायी थे अतएव अपने सिद्धान्तोंकी विवेचना करते समय वे इस्लामको अपनी आँखोंसे ओझल नहीं होने देते थे। जहाँ कहीं भी उन्हें लगता था कि उनके कथन अथवा आचरणके साथ सनातन-पन्थी इस्लामका मेल नहीं खाता वहाँ अपने दृष्टिकोणके समर्थनके लिए वे क़ुरानका सहारा लेते तथा अपने ढंगसे उसकी व्याख्या करते। उससे अगर काम नहीं चलता तब वे 'हदीसों'की शरण लेते और ऐसा करते समय दूसरोंकी तरहसे उन्होंने भी बहुत-सी 'हदीसों'की सृष्टि की। हमने यह भी देखा है कि अपने सिद्धान्तोंके कारण बहुतसे सूफी साधकोंको नाना-प्रकारके कष्ट झेलने पड़े और बहुतों-को जानसे हाथ धोना पड़ा। लेकिन इतना सब होते हुए भी अन्त में इस्लामने सूफीमतको स्वीकार कर लिया। लेकिन इसे स्वीकार कर लेनेका अर्थ यह नहीं है कि सनातन-पन्थी इस्लामने अपने सिद्धान्तोंको छोड़कर सूफीमतको अपना लिया। सनातन-पन्थी इस्लामने उसे बर्दाश्त कर लिया और उसे इस्लामका अंग मान लिया। सनातन-पन्थी इस्लामके मूलभूत सिद्धान्तोंके साथ सूफीमतके सिद्धान्तोंसे जो अन्तर है उसकी विशद विवेचना यहाँ नहीं करनी है। संक्षेपतः उस अन्तरपर प्रकाश डालना ही यहाँ यथेष्ट होगा।

सूफीमतमें परमात्माके प्रति जिस प्रेम और मिलनकी बात कही जाती

है वह सनातन-पन्थी इस्लामके विरुद्ध है। रहस्यवादी प्रवृत्ति, भावाविष्टावस्था, जिक्र आदिको सूफीमतमें प्रधानता दी गयी है लेकिन सनातन-पन्थी इस्लाम इनको कोई स्थान नहीं देता। संन्यासकी प्रवृत्ति भी सनातन-पन्थी इस्लाममें मान्य नहीं यद्यपि मुहम्मद साहबने संन्यास जीवन स्वयं बिताया था। एकान्त-सेवन आदि सूफीमतकी अपनी चीजें हैं। सनातन-पन्थी इस्लाम बाह्याचारपर अधिक जोर देता है। नमाज, हज, रोजा, जकात; आदिको सनातन-पन्थी इस्लाम प्रत्येक मुसलमानके लिए आवश्यक मानता है। सूफी उन्हें दूसरा ही रूप देते हैं अथवा इन बाह्याचारोंकी आवश्यकता नहीं स्वीकार करते। इनकी उन्होंने अपने ढंगसे व्याख्या की है वह हम पहले ही देख चुके हैं। सूफी आन्तरिक पवित्रताको ही असली चीज मानते हैं और बाह्याचारके बदले उसीपर ध्यान देनेकी बात कहते हैं। मुसलमान (विश्वासी) तथा काफिर (अविश्वासी)के भेदपर सनातन-पन्थी इस्लाम अधिक जोर देता है। सूफियोंमें उदारता है। वे इस प्रभेदको नहीं स्वीकार करते। अतएव 'जेहाद'का अर्थ सूफी अपनी बुराइयोंसे युद्ध करना समझते हैं। उनके मतानुसार असली 'जेहाद' यही है। सूफीमतका गुरुवाद, सनातन-पन्थी इस्लामको स्वीकार नहीं।

परमात्माके स्वरूपको लेकर सनातन-पन्थी इस्लाम और सूफीमतमें बहुत बड़ा भेद है। सनातन-पन्थी इस्लाम परमात्माके सर्वातीत रूपको ही मानता है। परमात्मा और मनुष्यके बीचके व्यवधानपर सनातन-पन्थी इस्लाम बहुत जोर देता है। उसे यह कभी भी मान्य नहीं है कि परमात्माके साथ 'एकमेक' हुआ जा सकता है अथवा उसके और मनुष्यके बीच प्रेमी-प्रियतमका सम्बन्ध हो सकता है। मनुष्य परमात्माका दास है और सिर्फ उसके आदेशोंका पालनकर उसका अनुग्रह प्राप्त कर सकता है तथा उसके दण्डसे बच सकता है। सूफी परमात्माके सिवा किसी अन्य सत्ताको नहीं स्वीकार करते; फलस्वरूप उनके सामने परमात्माका सर्वगत रूप बराबर बना रहता है। उसे पानेके लिए वे प्रेमका आश्रय लेते हैं और उसे पानेकी व्याकुलतामें पागल बने रहते हैं। उनके लिए वह परम प्रियतम है

जिसके सौन्दर्य और विभूतिपर सूफी साधक अपनेको न्योछावर कर देता है। परमात्मा और मनुष्यके बीच रागात्मक सम्बन्ध सूफीमतकी विशेषता है। सूफी कहता है कि वह उस परमात्माको पा सकता है, उसके साथ अंतरंग हो सकता है, उसके साथ एकमेक हो सकता है। सनातन-पन्थी इस्लामके अनुसार परमात्मा और आत्माके बीच इस प्रकार घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं हो सकता।

हम यह देख चुके हैं कि सूफीमत भिन्न-भिन्न चिन्ताधाराओं और मतोंसे प्रभावित हुआ है। यहाँ उन मतोंके साथ सूफीमतका संक्षेपमें एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेकी हम चेष्टा करेंगे। उन्हीं मतोंकी हम चर्चा कर रहे हैं जिनसे सूफीमतका प्रभावित होना कहा जाता है। हम यह देख चुके हैं कि भारतीय चिन्ताधाराका प्रभाव भी सूफीमतपर पड़ा है। अतएव सर्वप्रथम भारतीय चिन्ताधाराके प्रकाशमें सूफीमतके सिद्धान्तों-का विवेचन कर रहे हैं।

आत्मा, परमात्मा, सृष्टि-रहस्य, चरम-लक्ष्य आदिके सम्बन्धमें सूफियोंमें काफी मतभेद है। कोई परमात्माको परम-सत्य, सर्वोच्च-सत्य मानता है और कोई परम-सत्य मानते हुए एकमात्र सत्य मानता है। कितने परमात्माको सर्वगत मानते हैं और कितने सर्वातीत और कितने कहते हैं कि वह सर्वगत होते हुए भी सर्वातीत है। जगत्‌का स्रष्टा वही है और यह जगत् उसके गुणों अथवा स्वरूप (जात)की अभिव्यक्ति है। इस प्रकारसे हम पायेंगे कि सूफियोंकी इन विभिन्न विचारधाराओंमें कितनी ऐसी हैं जिनका साम्य अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदिके साथ है फिर भी पूरी छान-बीन करनेपर यह सहज ही देखा जा सकता है कि वे मत वेदान्तके इन विभिन्न मतवादोंसे प्रभावित तो हैं लेकिन वे उनकी नकलमात्र नहीं हैं। वहदतुल-वुजूदके सिद्धान्तको माननेवाले यह कहते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टिका उद्‌गम एक ही है और वह उसीमें लय हो जाती है। परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है और जगत् उसकी अभिव्यक्ति। इब्नुलअरबीने 'हमाउस्त' अर्थात् 'सब कुछ वही है' के सिद्धान्तका प्रति-

पादन किया है। यह सिद्धान्त इसीपर आधारित है कि परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है और सभी इसकी प्रतिच्छायामात्र हैं जो लौटकर फिर उसीमें मिल जाते हैं। इस मतके माननेवाले सूफी, कुरानकी इस आयतसे अपने मतका प्रतिपादन करते हैं, "इन्ना लिल्लाह व इन्ना इलैहे राजयून" अर्थात् हम लोग परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं और परमात्मामें ही लौट जायेंगे। इसकी तुलना तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली, प्रथम अनुवाकके मन्त्रसे कर सकते हैं—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञास्व, तद्ब्रह्मेति।

अर्थात् "ये सब प्रत्यक्ष दीखनेवाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा (अन्तमें इस लोकसे) प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं उसको तत्त्वसे जाननेकी इच्छा कर, वही ब्रह्म है।" अथवा एक दूसरे मन्त्र "एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्"से उसकी तुलना की जा सकती है। इस मन्त्रमें कहा गया है कि वही उद्गम-स्थल है जिससे सब उत्पन्न होते हैं और उसीमें फिर लौट जाते हैं। मतालिबे-रशीदीमें एक स्थानपर कहा गया है कि "क्या ही वर्णहीन सत्ता है जो असंख्य वर्णोंमें प्रकट होती है, क्या ही रूपहीन सत्ता है जो दस सहस्र रूपोंमें प्रकट होती है।" इसकी तुलना श्वेताश्वतर उपनिषद्के इस मन्त्रसे की जा सकती है—

> य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्,
> वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
> विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः,
> स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥ (४, १)

अर्थात् जो रंग-रूप आदिसे रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजनवाला होनेके कारण विविध शक्तियोंके सम्बन्धसे सृष्टिके आदिमें अनेक रूप-रङ्ग धारण कर लेता है तथा अन्तमें यह सम्पूर्ण विश्व (जिसमें विलीन भी हो जाता है) वह परम देव (परमात्मा) एक (अद्वितीय) है। वह हम लोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करे।

इसी प्रकारसे सूफियोंका यह कहना कि "वास्तवमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें एक ही आत्मा है जो विभिन्न पदार्थों और जीवोंके रूपमें अभिव्यक्त होता है[1]" श्वेताश्वतर उपनिषद्के निम्नलिखित मन्त्रसे तुलनीय है—

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताकेवलो निर्गुणश्च ॥६,११ ॥

अर्थात् (वह) एक देव ही सब प्राणियोंमें छिपा हुआ, सर्वव्यापी (और) समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी परमात्मा है, (वही) सबके कर्मोंका अधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतोंका निवास-स्थान, सबका साक्षी चेतन-स्वरूप, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत है ।

जीलीके सिद्धान्तकी चर्चा करते हुए हमने देखा है कि जीली मानता है कि परमात्माकी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण सत्ताओंमें हो रही है और उस परमात्माकी पूर्णता सृष्टिके अणु-परमाणुमें अभिव्यक्त हो रही है। वह खण्डोंमें विभक्त नहीं है। सृष्टिकी सम्पूर्ण वस्तुएँ उसकी पूर्णताके कारण हैं तथा उसीके दिये हुए नामसे नामवाली हैं। इसे स्पष्ट करते हुए जीलीने कहा है कि "सृष्टि बरफके समान है और तेज स्वरूप परमात्मा जलके समान है जो बरफका मूल है। उस जमी हुई वस्तुका नामकरण बरफ हुआ है पर जल ही उसका असली नाम है।"

जीलीने परमात्मा और सृष्टि आदिके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थलपर प्रकट किये विचारोंसे उसकी तुलना की जा सकती है। श्वेतकेतुके पिता उसे उपदेश देते हैं। श्वेतकेतु बारह वर्ष-की अवस्थामें उपनयन करा चुका है और सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर चौबीस वर्षकी अवस्थामें लौटा है। उसे अपने ज्ञानका अभिमान है और वह अपनेको बहुत बड़ा बुद्धिमान और व्याख्यान करनेवाला मानता है। उसके पिता उससे कहते हैं—"सोम्य, तू जो ऐसा महामना, पाण्डित्यका अभिमानी और अविनीत है सो क्या तूने वह आदेश पूछा है जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है ; अमत मत हो जाता है और अविज्ञात

1. क. डि. इ. ज., पृ० १८ ।

विशेष रूपसे ज्ञात हो जाता है।' यह सुनकर श्वेतकेतुने पूछा—'भगवन्, वह आदेश कैसा है?' इसपर पिताने उसे उपदेश दिया है जो छान्दोग्योपनिषत्, षष्ठोध्याय, प्रथमखण्डके (४–६) मन्त्र हैं। श्वेतकेतुके पिता कहते हैं, "यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डे न सर्वं मृन्मयं विज्ञात ँ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥ यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञात ँ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्॥ यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञात ँ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेव ँ सोम्य स आदेशो भवतीति॥ अर्थात् सोम्य, जिस प्रकार एक मृत्तिकाके पिण्ड द्वारा सम्पूर्ण मृन्मय पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि विकार केवल वाणीके आश्रयभूत नाममात्र हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है। सोम्य, जिस प्रकार एक लोहमणिका ज्ञान होनेपर सम्पूर्ण लोहमय (सुवर्णमय) पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणीपर अवलम्बित नाममात्र हैं, सत्य केवल सुवर्ण ही है। सोम्य! जिस प्रकार एक नखकृन्तन (नहन्ना) के ज्ञानसे सम्पूर्ण लोहेके पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणीपर अवलम्बित केवल नाममात्र हैं, सत्य केवल लोहा ही है; सोम्य! ऐसा ही वह आदेश भी है।

इस प्रकारसे बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे यह समझना कठिन नहीं होगा कि सूफियोंके बहुत-से सिद्धान्त यदि वेदान्तकी कुछ विचार-धाराओंकी हू-ब-हू नकल नहीं हैं तो भी उनपर उन विचार-धाराओंकी स्पष्ट छाप है। सूफी मानते हैं कि "परमात्मा अपने स्व-भावमें तर्क, ज्ञान, बुद्धि और कल्पनासे परे और स्वतन्त्र है" फिर भी "वह केवल परम-सत्ता ही नहीं है वरन् परम-कल्याण (खैरे-महज़) भी है जिसमें अनुग्रह, क्षमा और करुणा है[1]।" इसकी तुलना रामानुजाचार्यके मतसे की जा सकती है। रामानुजाचार्यके मतकी चर्चा करते हुए राधाकृष्णनने कहा है कि "सत्, चित्, आनन्द जैसे गुणोंके कारण ब्रह्ममें एक व्यक्ति-

१. क. डि. इ. ड. पृ० १२९–३०।

त्वका आरोप हो जाता है। परमात्माका व्यक्तित्व पूर्ण है क्योंकि उसमें सभी अनुभूतियाँ हैं और उसे किसी बाहरी वस्तुकी अपेक्षा नहीं। परमात्माके प्रमुख गुणोंमें ज्ञान, शक्ति और करुणा हैं। अपनी करुणाके कारण ही परमात्माने सृष्टिकी रचना की, नियम बनाये और (इसीके कारण) जो पूर्णताकी ओर अग्रसर हो रहे हैं उनकी वह सतत सहायता करता है[1]।"

सृष्टिके सम्बन्धमें भी सूफीमतकी, उपनिषदोंमें प्रकट किये गये विचारोंसे समानता है। सृष्टिके कारणकी छानबीन सूफियोंने की है। कहा जाता है कि जो परमात्मा सब कुछ है उसे अपनेको प्रकट करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी? एक अनेक कैसे हो गया? इसके लिए सूफी एक हदीसका प्रमाण देते हैं—

"कुन्तो कनजन् मखफीयन् फ़ाहबबतो अन ओरिफो फ़खलक़तुल खल्क" अर्थात् मैं एक छिपा हुआ ख़जाना था, फिर मैंने इच्छा की कि लोग मुझे जानें। इसलिए मैंने सृष्टिकी रचना की। तैत्तिरीयोपनिषद्, षष्ठ अनुवाकमें आया है—

"सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति" अर्थात् उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं प्रकट तथा बहुत हो जाऊँ।

इस तरहकी बहुत-सी समानताएँ वेदान्त और सूफीमतमें हैं, लेकिन वेदान्तकी किसी विशेष विचारधाराके साथ सम्पूर्णतया इसे मिलानेकी चेष्टा ग़लत होगी। सूफी साधारणतः अवतारवाद नहीं मानते। पुनर्जन्मका सिद्धान्त भी सूफीमतको मान्य नहीं।

भारतीय गुरुवादसे सूफीमत अत्यधिक प्रभावित है। साधनाके क्षेत्रमें गुरुका जो स्थान सूफियोंमें देखा जाता है वह इस्लाम-धर्ममें नहीं पाया जाता। इस्लाम-पूर्व अरबमें भी इस प्रकारकी कोई वस्तु नहीं थी। यूरोपमें भी इस प्रकारका गुरु-शिष्य सम्बन्ध देखनेको नहीं मिलता। गुरुकी भक्तिका रूप जैसा भारतवर्षमें है वैसा संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं

१. इ. फि. (खंड २), पृ० ६८१।

है। गुरुकी भक्तिका यह रूप पश्चिमी मस्तिष्ककी समझमें बहुत कुछ नहीं आता[1]। यह हम देख ही चुके हैं कि भारत-अरबका सम्बन्ध बहुत पुराना है और इस बातके बहुतसे प्रमाण पाये जाते हैं कि मंसूर बिन हल्लाज जैसे कितने सूफ़ी साधक इस देशमें आये थे और यहाँकी साधनासे उनका परिचय हुआ था। उस काल (मध्ययुग)में भारतवर्षमें जो धर्म-साधनाएँ थीं उनमें गुरुका स्थान बड़े महत्वका माना गया है। वैसे तो साधनाके क्षेत्रमें गुरुका महत्त्व भारतवर्षमें बहुत ही प्राचीन समयसे स्वीकार किया जाता रहा है। शिष्यको पूर्णरूपसे अपनेको गुरुके हाथोंमें सौंप देना चाहिये, यह भावना भारतवर्षमें अति प्राचीन कालसे ही रही है। अतएव इस प्रकारका अनुमान करना गलत नहीं होगा कि यह गुरुभक्ति और साधना-में गुरुका स्थान भारतवर्षसे सूफ़ीमतमें गया है।

सूफ़ीमतमें मुरीद (शिष्य)के लिए यह कहा गया है कि वह "इमाम (गुरु)के हाथोंमें अपनेको शवकी नाईं छोड़ दे"[2]। मुण्डकोपनिषद् (१-२-१२)में कहा गया है।

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

अर्थात् "कर्मसे प्राप्त किये जानेवाले लोकोंकी परीक्षा करके ब्राह्मण वैराग्यको प्राप्त हो जाय।(यह समझ ले कि) किये जानेवाले सकाम कर्मों-से स्वतःसिद्ध नित्य परमेश्वर नहीं मिल सकता ; वह उस परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हाथमें समिधा लेकर वेदको भलीभाँति जाननेवाले और परब्रह्म परमात्मामें स्थित गुरुके पास ही विनयपूर्वक जाय। हम देख चुके हैं कि सूफ़ीमतमें गुरुको कितना बड़ा स्थान दिया जाता है। गुरुको परमात्मासे भी बड़ा माननेकी बात कही गयी है। गुरुमें निष्ठा रखनेवाले और परमात्माकी तरह गुरुमें भी भक्ति करनेवालेके हृदयमें ही इस साधना-के रहस्यका अर्थ प्रकाशित हो सकता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६, २३)

१. इन्सा, रे. ए, पृ० ५४६।
२. दर०, पृ० ३२८।

में कहा गया है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात् जिसकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है (तथा) जिस प्रकार परमेश्वरमें है उसी प्रकार गुरुमें भी है उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

मध्ययुगीन भारतवर्षका सम्पूर्ण वातावरण कुछ ऐसा था कि प्रायः सभी धर्म-साधनाओंने गुरुको परमात्माके समकक्ष ला दिया था। और गुरु, गोविन्दकी तुलनामें गुरुको बड़ा स्थान दिया जाने लगा था चूँकि गुरुके बिना गोविन्दको जानना सम्भव नहीं माना जाता था। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह[1] (पृ० १४)में गुरुके महत्त्वपर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि जिस प्रकारसे बहुत भारी पत्थरको उठानेमें हजारों आदमियोंको कष्ट होता है और जिसे एक बुद्धिमान् मनुष्य लकड़ी आदिके साहाय्यसे बिना प्रयासके उठा लेता है उसी प्रकारसे गुरु कुञ्जी (कुञ्चिकया) द्वारा बिना कठिनाईके हम लोगोंको सिद्धि लाभ करा देते हैं। गुरुकी असीम शक्तिपर यह अखण्ड विश्वास उस युगकी एक विशेषता थी। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रहमें एक जगह कहा गया है "नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे"। सूफीमतमें गुरुवादका यह प्रवेश बादकी चीज है और इसकी प्रेरणा देनेवाला भारतवर्ष ही रहा है।

सूफियोंमें लतायफी सित्ताका सिद्धान्त प्रचलित है इसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। सूफी समझते हैं कि इन लतीफोंको परमात्माके सतत स्मरण द्वारा जाग्रत करना साधकके लिए आवश्यक है। 'जिक्र' आदिकी विशेष क्रियाओं द्वारा सूफी एकके बाद एक लतीफको जाग्रत करनेमें समर्थ होता है और अन्तमें उसे प्रकाशके दर्शन होते हैं। कहा जाता है कि जैसे-जैसे सालिक (साधक) ऊपरकी ओर बढ़ता जाता है वह भिन्न-भिन्न रंगोंको देखता है। 'सित्ता' छः को कहते हैं इसलिए साधकको इन

१. गोपीनाथ कविराज द्वारा सम्पादित (सन् १९२५ ई०)।

छः लतीफोंको जाग्रत करना पड़ता है। योगमें छः चक्रों और कुंडलिनीका वर्णन है। शरीरमें छः चक्रोंके स्थान बताये गये हैं। साधक नाना प्रकारकी साधनाओं द्वारा चक्रोंका भेदन करता है और कुंडलिनी शक्तिको उद्‌बुद्ध करता है।

योगके षड्‌चक्रोंके स्थान, देवता और रंग बताये गये हैं जो निम्नलिखित[1] हैं—

चक्रोंके नाम	स्थान	रंग	देवता
१. मूलाधार	रीढ़के अधोभागमें पायु और मुष्क मूलके मध्य	पीत	ब्रह्मा
२. स्वाधिष्ठान	मेरुदण्डमें मेढ़्के ऊपर	श्वेत	विष्णु
३. मणिपुर	मेरुदण्डमें नाभिके पास	लाल	रुद्र
४. अनाहत	हृदयके पास	धूम्र	ईश
५. विशुद्धाख्य	कण्ठके पास	श्वेत	सदाशिव
६. आज्ञा	भ्रुवोंके बीचमें	+	शम्भु

योगके प्राणायाम, ध्यान आदिसे सूफियोंके 'जिक्र'की क्रियाओंकी बहुत कुछ समानता है। 'जिक्र'की क्रियाओं का वर्णन करते समय हमने देखा है कि किस प्रकारसे साधकको ध्यानस्थ होकर बैठना पड़ता है और किस प्रकारसे उसे 'ला अल्लाह इल्ल अल्लाह'का जप करना पड़ता है और किस प्रकारसे हृदयके नुकीले बिन्दुपर उसे केन्द्रित करना पड़ता है। इस क्रियाका फल भी बतलाया गया है कि संसारके प्रलोभनोंसे अब साधक आकृष्ट नहीं होता और उसे परमात्माकी विभूतिके दर्शन होते हैं। हमने यह भी देखा है कि किस प्रकारसे मनुष्य जाने या अनजाने जब साँस खींचता है तब 'अल' कहता है और साँस छोड़ते समय 'लाह' कहता है। सूफियोंका विश्वास है कि यह स्वाभाविक गतिसे सम्पन्न होता है। इसकी तुलना योगशिखोपनिषद्‌के मंत्रयोग-प्रकरणसे कर सकते हैं। योगशिखोपनिषद्‌के "मंत्रयोगमें कहा गया है कि जीवके निश्वास-प्रश्वासमें ह

१. ना. सं., पृ० १२८।

और स वर्ण उच्चरित होते हैं। 'ह'कारके साथ प्राणवायु बाहर आता है और 'स'कारके साथ भीतर जाता है। इस प्रकार जीव सहज ही 'हं-सः' इस मन्त्रका जप करता रहता है।......हठ योगसे जड़िमा नष्ट होती है और आत्मा परमात्माका अभेद सिद्ध होता है इसके बाद वह लययोग शुरू होता है जिसमें पवन स्थिर हो जाता है और आत्मानन्दका सुख प्राप्त होता है[1]।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूफियोंने भारतवर्षसे ही प्राणायाम आदिकी क्रियाओंको सीखा। प्राणायामकी विधिका पता सूफियोंको ईसाकी नवीं शताब्दीमें भी था[2] और बादमें तो उसका और भी अधिक प्रचलन उनमें हुआ।

हम पहले यह देख चुके हैं कि बहुतोंने सूफ़ीमतपर बौद्ध धर्मके प्रभाव को स्वीकार किया है। यहाँ हम देखना चाहेंगे कि दोनोंमें क्या समानता या असमानता है। बौद्ध दर्शनका सारतत्त्व आवागमनसे छुटकारा पाना और इस जीवनके सुख-दुःखसे वीतराग होना है। किसी भी कार्यका कारण मनुष्यकी इच्छा-शक्ति है। मनुष्यके मनमें अगर किसी प्रकारकी इच्छा उत्पन्न न हो तो वह किसी कामके करनेमें प्रवृत्त नहीं होगा। अतएव संसारके दुःख, सुख, मोह, मत्सर, लोभ, द्वेष आदिका कारण मनुष्यकी इच्छा ही है और इसी इच्छाके कारण नाना कर्मोंको करता हुआ वह बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें घूमता रहता है। "लोभ, द्वेष, मोह, कामराग, व्यापाद, रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या दोषों[3]के कारण ही मनुष्यको बार-बार जन्म लेना पड़ता है।" ये दोष ही सब अनर्थोंकी जड़ हैं और इन्हें दूरकर और इनसे मुक्ति पाकर ही निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है और यही मनुष्यका चरम-लक्ष्य है। वीतरागता ही इनसे मुक्ति दिला सकती है। लेकिन इस वीतरागताका क्षेत्र केवल इसी लोक और इसी जीवनतक सीमित नहीं है, बल्कि परलोकतक इसका विस्तार है।

१. वही, पृ० १२८-१२९।

२. मि० इ०, पृ० ४८।

३. विसुद्धि मग्ग, (२२.११.२०)।

मनुष्यको यहाँके सुख-दुखोंके प्रति तो उदासीन होना ही होगा, साथ ही परलोकके प्रलोभनोंको भी मनमें नहीं लाना होगा। इसके लिए बुद्धने जिस मार्गका उपदेश दिया है उसपर चलकर ही इन दोषोंको दूर किया जा सकता है और चरम-लक्ष्य—निर्वाण—प्राप्त किया जा सकता है। सूफीमतमें यह चरम-लक्ष्य[1] फ़ना फ़ील्लाह है। परमात्मामें लय हो जानेको ही फ़ना फ़ील्लाह कहते हैं। परमात्मा ही परमसत्य है, उसमें विलीन होना सूफी साधकका एकमात्र लक्ष्य होता है।

सूफियोंका कहना है कि संसारकी बुराइयोंसे छुटकारा पाकर ही साधक इस मार्गपर अग्रसर हो सकता है। अल-कुशैरीने बतलाया है कि सच्चा सूफी वही है जो इस संसारके प्रति तथा आनेवाले जीवनके प्रति एकदम अनासक्त रहता है। राबिया अल-अदाविया प्रारम्भिक कालकी सुप्रसिद्ध सूफी थी। उसके साथ रहनेवाला सूफी साधक सुफियान अल-तावरीने राबियासे पूछा[2] कि "परमात्माका सान्निध्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाले साधकको क्या करना चाहिये?" राबियाने जवाब दिया कि "परमात्माके सिवा उसे इस संसारकी तथा आनेवाले संसारकी सभी वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिये।"

सूफियोंके मतसे 'अहं'की भावना ही सारी बुराइयोंकी जड़ है। सभी सुख-दुःख, सभी पापमयी इच्छाओंके मूलमें 'अहं' है। इस अज्ञानसे छुटकारा पाकर ही मनुष्य परम-सत्यकी उपलब्धि कर सकता है। अतएव सूफी साधकोंका कहना है कि आत्माकी भावना जो स्वयं एक असत्य वस्तु[3] है उसे असत्य समझनेसे ही मनुष्य सांसारिक बुराइयोंसे मुक्ति पा सकता है। नागार्जुनने इसी चीजको कहा है[4]—

१. लि० हि० प०, पृ० ४४१।

२. अ० मि० नि० मि० इ०, पृ० २२१।

३. लि० हि० प०, पृ० ४४१।

४. महायान, पृ० ११२ पर उद्धृत।

आत्मनि सति परसंज्ञा
स्व पर विभागात्परिग्रहद्वेषौ ।
अनयोः सम्प्रति बद्धा
सर्वे दोषाः प्रजायन्ते ॥

अर्थात् आत्मा या अपनापन होनेपर ही परायेका भाव उत्पन्न होता है फिर अपने-परायेका भेद हो जानेसे हम किसीको चाहते हैं, किसीसे बुरा मानते हैं ; अर्थात् किसीसे हमारा द्वेष होता है। इन दोनोंके कारण ही सभी बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं । सूफियोंने भी यह माना है कि 'सूफी-मार्ग' पर चलकर ही इन बुराइयोंको दूर किया जा सकता है। बिना इस मार्गपर चले साधक अपने लक्ष्यको नहीं प्राप्त हो सकता। इस प्रकारसे आत्मा, संसारकी बुराइयों, मार्गकी कल्पना इत्यादिमें दोनोंमें समानता दीख पड़ती है।

बौद्धों के 'निर्वाण' के साथ 'फ़ना' के सिद्धान्तकी बहुत समानता है। निकोल्सनने इसे स्वीकार नहीं किया है लेकिन उसे वेदान्तसे आया हुआ माननेमें उन्हें संकोच नहीं। निकोल्सनका कहना है कि "सूफियोंकी भावाविष्टावस्थाका उल्लास जब कि वह परमात्माके सौन्दर्यके ध्यानमें लगा हुआ रहता है, अर्हतकी नीरस बौद्धिक स्थिरताके प्रतिकूल है। मैं इस अन्तरपर इसलिए जोर दे रहा हूँ कि मेरी रायमें मुस्लिम चिन्ताधारा-पर बौद्ध धर्मके प्रभावको अत्यधिक अतिरंजित किया गया है। बहुत कुछ जिसे बौद्ध प्रभाव कहा गया है वह भारतीय अधिक है बौद्ध उतना नहीं ; सूफियोंके फ़नाका सिद्धान्त इसका एक उदाहरण है[1]।"

निकोल्सनका यह मत भिन्न-भिन्न विचारधाराओंके सम्बन्धमें इसी प्रकारसे लागू होता है जिनसे सूफीमतके प्रभावित होनेकी बात कही जाती है। जहाँतक बौद्ध धर्म और भारतीय विचारधाराका प्रश्न है उसपर इस ढंगसे विचार करना ठीक नहीं जान पड़ता। बौद्ध धर्म और भारतीय अन्य विचारधाराओंका परस्पर एक ऐसा सम्बन्ध रहा है कि एकको छोड़-

१. मि. इ., भूमिका, पृ० १८ ।

कर दूसरेको समझनेकी चेष्टा करना कभी-कभी भ्रमोत्पादक होता है और फिर बौद्ध धर्मको भारतीय विचारधारासे अलग करके नहीं देखा जा सकता। अब यहाँ सबसे पहले 'निर्वाण'को समझनेकी चेष्टा करें और बादमें हम देखें कि 'फ़ना'के सिद्धान्तसे कहाँतक उसकी समानता है।

निर्वाणको समझनेकी कई प्रकारसे चेष्टा की गयी है। इसकी व्याख्याएँ भी कम नहीं हुई हैं। बुझ जाना, शरीरसे छुटकारा पाना, कई एक अर्थ इससे निकाले जाते हैं। बहुत लोगोंका कहना है कि निर्वाण और पूर्ण विलयनमें कोई अन्तर नहीं और मृत्युके बाद ही इसकी प्राप्ति होती है। लेकिन मैक्समूलर आदिने इसका अर्थ मनकी शान्तावस्थासे किया है। उस शान्तावस्थामें मन इस क्षणभंगुर संसारके सुख-दुःखसे अलग हो जाता है। उस अवस्थामें 'अहं'का ज्ञान मिट जाता है और सारी इच्छा-आकांक्षाएँ, यहाँतक कि सुख-दुःखकी अनुभूति भी मिट जाती है। "लोकके प्रति, परलोकके प्रति, सभीके प्रति राग न होना ही मुक्ति है। बुद्धके अनुसार मुक्ति केवल शान्ति है, सब प्रकारके क्षोभोंका अभाव है। किसी ब्रह्मके मिलन या और इसी तरहकी बातको बुद्ध मुक्ति नहीं मानते।" अश्वघोषने बहुत सुन्दर उदाहरण देकर इस बातको समझाया है—

निर्वाणको प्राप्त हुआ दीपक जैसे न धरतीमें चला जाता है, न आकाशमें ही उड़ जाता है, दिशाओं और विदिशाओंमें भी नहीं जाता सिर्फ तेलके न रहनेसे शान्ति पा जाता है वैसे ही निर्वाणको प्राप्त पुण्यात्मा न धरतीमें समा जाता है, न आकाशमें उड़ जाता है, दिशाओं और विदिशाओंमें भी नहीं जाता, सिर्फ क्लेश न रहनेसे शान्ति पा जाता है—

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्
स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥
एवं कृती निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।

दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्
क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥

'निर्वाण'के सम्बन्धमें चर्वाल्कीने बड़े सुन्दर ढङ्गसे विचार किया है जिससे पता चल जाता है कि निर्वाणका सिद्धान्त बौद्ध धर्ममें भी केवल नीरस ही नहीं रहा है—निर्वाणके सिद्धान्तका क्रमिक विकास कुछ इस प्रकारका रहा है। ईसा पूर्व छठीं शताब्दीमें ब्राह्मणेतर जातियोंमें दार्शनिक तत्त्व चिन्तनकी एक बहुत बड़ी लहर आयी थी। उस समय सांसारिक जीवनसे मुक्ति पानेकी समस्यापर कई प्रकारसे लोग विचार कर रहे थे। बुद्धने उस समय एक अनादि अनन्त आत्माको अस्वीकार कर दिया और सांसारिक जीवनके क्रमशः पूर्ण विलयनके सिद्धान्तको माना। लेकिन बौद्ध धर्मकी भिन्न-भिन्न शाखाओंमें कुछ ही ऐसी थीं जिनकी भक्ति उस निष्प्राण और नीरस निर्वाणके प्रति बनी रही। बहुतोंने बुद्धको शाश्वत और अलौकिक माना। ईसाकी पहली शताब्दीमें इस विचारधाराने इतना जोर पकड़ा कि उपनिषदोंसे प्रभावित होकर इन शाखाओंने बुद्धको पूर्ण ब्रह्म बना दिया और समन्तभद्र, वैरोचनके रूपमें उनकी पूजा होने लगी। महासंघिक, वात्सीपुत्रीय आदि प्रारम्भिक शाखाओंने यह माना कि निर्वाणमें भी एक प्रकारका ज्ञान रह जाता है और वेदान्तके प्रभावमें आकर इन लोगोंने अद्वैतवादको स्वीकार किया। इनमेंसे कुछ लोगोंने दृश्यमान जगत्को परम-ज्ञानकी अभिव्यक्ति मात्र माना और उसमें तर्कका प्राबल्य रहा। किन्तु दूसरोंने इसे माननेमें अपनी असहमति प्रकट की। उनका कहना था कि परम सत्ताको तर्क द्वारा नहीं जाना जा सकता। उन्होंने नानात्वको प्रपञ्च कहा और रहस्यवादियोंके सहज ज्ञानसे उसे गम्य माना। ईसाकी छठीं शताब्दीमें शून्यवादियों और ज्ञानवादियोंने दर्शनको इतना पूर्ण बना दिया कि वेदान्तकी प्राचीन धारा उससे प्रभावित होकर नये रूपमें प्रकट हुई[1]। बौद्ध-निर्वाणके क्रमिक विकासको देखनेसे यह समझा जा सकता है कि निकोल्सनका विचार युक्तिसंगत

1. क. बु. नि., पृ० ६०-६२।

नहीं। फ़ना और बक़ाके सिद्धान्त बौद्धोंकी उस शाखासे प्रभावित हैं जिसने रहस्यवादपर ज़ोर दिया। ध्यान देनेकी बात यह है कि ये विश्वास महायानियोंके हैं और फारसके पूर्वी अञ्चलमें महायान शाखाका पूरा प्रभाव था। फ़ना और बक़ाकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं अतएव उनको यहाँ दुहराना अनावश्यक है। हम देखते हैं कि दोनोंकी विचार-धारामें कितनी समानता है।

'फ़ना'की प्राप्ति साधककी तभी होती है जब वह सूफी-मार्ग (तरीक़ा) पर चलता है। साधक इस मार्गकी कई मंज़िलें और अवस्थाएँ पारकर चरम-लक्ष्यको प्राप्त करता है। इसी 'मार्ग'की सबसे बड़ी और महत्त्वकी मंज़िल 'मुराक़बा' है। यह सूफियोंकी ध्यानावस्था है। इस मंज़िलकी सफलतापर ही साधक फ़ना-प्राप्तिकी आशा कर सकता है। इस मंज़िलमें उसकी 'अहं' भावनाका पूर्ण निरसन हो जाता है और परमात्माके साथ उसके मिलनका मार्ग खुल जाता है। सूफियोंके इस मुराक़बासे बौद्ध 'ध्यान' अथवा 'समाधि'की बहुत कुछ समानता है। 'समाधि'की अवस्थामें मन शान्त हो जाता है, उसे किसी प्रकारका राग या आसक्ति नहीं रह जाती। वह निष्काम हो जाता है। ध्यानावस्थामें वह अस्तित्व-ज्ञानसे रहित हो जाता है। लगता है जैसे बौद्धोंके 'ध्यान' अथवा 'समाधि'की कल्पनाने ही सूफियोंमें 'मुराक़बा'का रूप ले लिया।

सूफियोंने बौद्ध साधकोंके एकान्त-सेवनको देखकर ही सम्भवतः 'ख़िलवत'को सूफी-साधनामें महत्त्वका स्थान दिया। इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी कहना कठिन है, लेकिन सूफियोंका जितना अधिक ज़ोर एकान्त-सेवनपर रहा है उसे देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि 'ख़िलवत'को इतनी प्रमुखता देनेके मूलमें बौद्धोंके विवेक (एकान्त) का सिद्धान्त है। सूफियोंने इसपर इतना अधिक ज़ोर दिया है कि उनका कहना है कि एकान्त-सेवन तो जीवनभर करना चाहिये, लेकिन अगर यह सम्भव न हो तो सालमें कुछ कालके लिए भी साधकको एकान्त-वास

करना चाहिये। खिल्वती सालभरमें चालीस दिन एकान्त-सेवन करते हैं और मिस्रके देमिरदशी सालभरमें कम-से-कम तीन दिन[1]। एकान्त-सेवनके समय साधकका सम्बन्ध संसारसे बिल्कुल नहीं रहता। उस समय वह बोलतातक नहीं। बौद्ध-धर्ममें विवेकके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा गया है। चन्द्रदीप सूत्र (शिक्षा समुच्चय, पृ० १९५) में कहा गया है—

वनषण्ड सेवथ विविक्त सदा
विजहित्व ग्राम नगरेषु रतिम्।
अद्वितीय खड्ग समभोथ सदा
न चिरेण लप्स्यथ समाधिवरम्॥

अर्थात् अकेले जंगलका सेवन करो। गाँव-नगरोंका प्रेम छोड़ दो। बिना किसी दूसरेके सदा खड्ग (गैंडेका सींग) के समान बनो। इस तरह श्रेय समाधि मिलते देर न लगेगी। इसी प्रकारसे धम्मपदकी गाथाओंमें भी विवेक (एकान्त) की महिमा दी हुई है—

"बुद्धिमानको चाहिये कि पाप-धर्मको छोड़कर पुण्यधर्मोंकी भावना करे। घरसे बेघर होकर विवेक (एकान्त) में निस्सार कर्मोंको छोड़ अभिरमणकी इच्छा करे तथा अपने आपको चित्त-क्लेशोंसे अलग रखे[2]।"

एक जगह और कहा गया है—

"लाभका मार्ग दूसरा है और निर्वाणका मार्ग दूसरा। इस बातको बुद्धके श्रावक भिक्षुओंको समझ लेना चाहिये। और उसे चाहिये कि सत्कारका अभिनन्दन करे पर विवेक (निर्जनता)का सेवन करे[3]।"

इस प्रकारसे हम देखते हैं कि बौद्ध धर्मकी चिन्ताधाराके साथ सूफीमतके फ़ना, मुराक़बा, खिल्वत आदि सिद्धान्तोंकी बहुत-कुछ समानता है, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि सूफियोंने इन सिद्धान्तोंकी बौद्ध धर्मसे हू-ब-हू नक़ल की। बहुत समय ऐसा भी होता है कि समान

१. ज. रा. ए. सो. (१९०४), पृ० १४० ।

२. धम्मपद : गाथा ८७–८८ ।

३. वही : गाथा ७५ ।

परिस्थिति और समान कारणोंके फलस्वरूप दो धर्मोंके कुछ सिद्धान्तोंमें समानता दीख पड़े। इस सम्भावनाके होते हुए भी सूफीमतमें ऐसे बहुतसे विचारों और सिद्धान्तोंका समावेश है कि उन्हें अन्य धर्मोंका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव माननेमें संकोच नहीं होगा।

ब्राउन, निकोल्सन आदि विद्वान सूफीमतको सबसे अधिक नव-अफलातूनी दर्शनसे प्रभावित मानते हैं। उनका यहाँतक कहना है कि सूफीमतको रूप देनेमें सबसे अधिक नव-अफलातूनी दर्शनका ही प्रभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तत्कालीन इस्लामी दुनियाको ग्रीक-दर्शन का परिचय प्राप्त हो चुका था। ईरानी इतिहासका संक्षिप्त परिचय देते हुए हमने देखा है कि ईरानी बादशाह नौशेरवाँके दरबारमें सात दार्शनिक जो नव-अफलातूनी सिद्धान्तके माननेवाले थे अपने देशसे निताड़ित होकर आये थे। उन्हें नौशेरवाँने उचित सम्मान दिया था और ईरानमें उन्हें अपने मतके प्रचार करनेका सुयोग प्राप्त हुआ था। इन सातों दार्शनिकोंके नाम इस प्रकार हैं—डायोजिनस (Diogenes), हर्मियस (Hermias), यूलेलियस (Eulalius), प्रिसियन (Priscian), दमैसियस (Damascius), इसीदोर (Isidore) और सिम्प्लीसियस (Simplicius)। इन सातोंको जस्टिनियनके अत्याचारके कारण अपना देश छोड़ना पड़ा था। उसने एथेन्समें दर्शनका अध्ययन-अध्यापन बन्द कर दिया था। वैसे इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि इन दार्शनिकोंने ईरानमें क्या किया लेकिन यूरोपियन विद्वानोंका अनुमान है कि उनके मतका प्रचार कम-से-कम बुद्धिजीवी वर्गमें अवश्य हुआ। वैसे डब्ल्यू·आर·इङ्गेका कहना है कि इन सातों दार्शनिकोंको वहाँ जाकर बड़ी निराशा हुई और दर्शनके लिए वह स्थान उन्हें अनुपयुक्त मालूम हुआ और बादमें खुसरोकी सहायतासे वे लोग फिर यूरोप लौट गये। खुसरोने जस्टिनियनसे वादा करा लिया था कि उन्हें किसी प्रकार से उत्पीड़ित नहीं किया जायगा[1]। अतएव इस बातपर बहुत कुछ निर्भर

१. इन्सा. रे. ए. (भाग ९), पृ० ३१८।

नहीं किया जा सकता कि उन्होंने ईरानी विचारधाराको प्रभावित किया।

नव-अफलातूनी दर्शन तर्क और बुद्धिके द्वारा चरमलक्ष्यकी प्राप्ति सम्भव नहीं मानता। ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीसे लेकर ईसाकी पाँचवीं शताब्दीतकका काल ग्रीक-दर्शनकी प्रगतिकी दृष्टिसे बहुत कुछ नगण्य सा रहा। प्लेटो (अफलातून)का दर्शन अब नव-अफलातूनी दर्शनके रूपमें रहस्यवादी प्रवृत्तियोंमें प्रकाश पा रहा था। तर्कका स्थान मनुष्यकी सहजवृत्ति, अन्तर्ज्ञानने ले लिया। मस्तिष्कका स्थान हृदयने ले लिया। अब यह समझा जाने लगा कि सत्यको समझना अन्तर्ज्ञानके द्वारा ही सम्भव है और अन्तरके प्रकाशमें उसे देखा जा सकता है[1]। नव-अफलातूनी दर्शनके अनुसार परम-मंगल ही सभी वस्तुओंका उद्गम-स्थल है। वह शक्ति मंगलमय और निरपेक्ष है। यह सृष्टि उसीकी प्रतिच्छाया है। वह प्रकृतिमें व्याप्त है। पदार्थ अ-सत् और क्षणभंगुर है। भावाविष्टावस्थाके द्वारा फिर वहाँ पहुँचा जा सकता है जहाँसे जीव आया हुआ है। नव-अफलातूनी दर्शन परमात्माको इस रूपमें नहीं देखता कि उसके साथ किसी प्रकारका वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सके लेकिन सूफी परमात्माके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करनेकी बात कहते हैं[2]। नव-अफलातूनी दर्शनमें भावाविष्टावस्थापर पूरा जोर दिया गया है। लेकिन उनकी इस भावाविष्टावस्थाके साथ ईसाइयोंकी भावाविष्टावस्थाका वैसा मेल नहीं खाता। साधनाके प्रारम्भमें ही, कैथोलिक ईसाइयोंके मतसे, भावाविष्टावस्था बार-बार आया करती है जबकि नव-अफलातूनी दर्शनके अनुसार यह एक कठिन चीज है और साधक जब अपनी साधनामें अग्रसर होता हुआ चरमतक पहुँच जाता है तब कहीं भावाविष्टावस्थाकी अनुभूति उसे होती है[3]। यहाँपर नव-अफलातूनी दर्शनकी अधिक चर्चा करना सम्भव नहीं लेकिन इतनेसे यह समझा जा सकता है

१. वही, पृ० ३०७–३०८।

२. प० मि०, पृ० १२-१३।

३. इ० रे० ए० पृ० ३१६।

कि इस विचारधाराका प्रभाव तत्कालीन मुस्लिम समाजपर पड़ा होगा और सूफीमतमें उसकी छाया हम देखते हैं।

लेकिन ऐतिहासिक दृष्टिसे नव-अफलातूनी दर्शनका जन्म और विकास पूर्वी मस्तिष्कका परिणाम है न कि पश्चिमी मस्तिष्कका। नव-अफलातूनी दर्शनसे अपना विरोध प्रकट करते हुए ईसाई कहते हैं कि वे मूर्तिपूजक थे और अगर उन दार्शनिकोंको "थोड़ी और बुद्धि होती तो वे ईसाई हो जाते"। उनका यह भी कहना है कि वे स्वप्नलोकमें विचरनेवाले रहस्यवादी थे जिनकी चरम साधना यही थी कि वे उस निरपेक्षमें अचेत हो जाँय। नव-अफलातूनी दर्शनका जन्मदाता प्लोटिनस समझा जाता है। हम देख चुके हैं कि सन् ईसवीकी तीसरी शताब्दीमें ग्रीक विचारधारा गतिरुद्ध हो गयी थी, उसमें प्राण नहीं रह गया था। अफलातून (प्लेटो) और अरस्तूके सिद्धान्तोंको लेकर उस समयके दार्शनिक इस बाह्य जगत्की विभिन्न समस्याओंका समाधान नहीं करना चाहते थे। प्लोटिनसने इन दोनोंका पूर्णरूपसे अध्ययन किया लेकिन उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसे शान्ति नहीं मिल रही थी। उस समय शान्ति पानेके लिए उसने कष्टसाध्य तपस्या शुरू की और तियाना (Tyana)के एपोलोनियसका जीवन उसका आदर्श था। एपोलोनियस, पाइथेगोरसके सम्प्रदायका एक दार्शनिक था। एपोलोनियस अपनी आध्यात्मिक भूख मिटानेके लिए भारतीय ब्राह्मणोंकी शरणमें आया था। फिलासट्रेटसने भारतीय ज्ञानकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ईसाई क्लिमेन्टको बुद्धकी जानकारी थी[१]। प्लोटिनस स्वयं ईरानमें ज्ञान-पिपासा शान्त करनेके लिए आया था। यह भी कहा जाता है कि वह भारतवर्षमें आया था लेकिन इसका ठीक प्रमाण नहीं मिलता। प्लोटिनस प्रणीत इनियड (Enneads)के अनुवादक बुइये (Bouillet)का कहना है कि प्लोटिनसके विचारोंके साथ भारतीय दर्शनकी इतनी समानता है कि यह परिणाम निकालना गलत नहीं होगा कि उसके साथ उसका परिचय अवश्य था। अगर वह भारतवर्षमें नहीं

१. वही, पृ० ३०८।

भी आया था तो अवश्य ही अलेक्जेन्ड्रियामें भारतीय साधकों और दार्श-निकोंके सम्पर्कमें वह आया था[1]। उस कालमें अलेक्जेन्ड्रिया, विद्याका एक केन्द्र था। केवल इतना ही नहीं बल्कि वह पूर्वी और पश्चिमी विद्वानोंका एक मिलन-स्थान था। उस कालमें एशियाके ज्ञानकी काफी चर्चा थी और उसके प्रति लोगोंके मनमें श्रद्धा थी[2]। प्लोटिनसको भारतीय विचार-धाराका परिचय, कहा जा सकता है कि अद्भुत ढङ्गसे प्राप्त हुआ। तियानाका एपोलोनियस जिसे प्लोटिनस गुरु-सदृश मानता है, फारस और भारतवर्षका पूरा-पूरा भ्रमण किये हुए था। भारतीय मन्दिरों और यहाँके ज्ञानियोंका दर्शन प्राप्तकर वह फिर लौट गया था। और उसके भी बहुत पहले पाइथेगोरस एशियाकी विचारधारासे परिचय प्राप्त कर चुका था। वह भी इन देशोंका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किये हुए था। अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं अगर नव-अफलातूनी दर्शनका भारतीय विचारधाराके साथ बहुत साम्य हो। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सूफीमत भारतीय विचारधारासे प्रभावित है।

नास्टिक मतसे भी सूफीमतके प्रभावित होनेकी बात कही जाती है अतएव नास्टिक मतके सम्बन्धमें यहाँ संक्षेपमें कुछ जाननेकी चेष्टा करेंगे। सबसे पहले स्पष्ट रूपमें यह जान लेना चाहिये कि नाना प्रकारके मतवाद तथा नाना सम्प्रदायोंकी विभिन्न विचारधाराएँ जो सन् ईसवीकी प्रथम दो शताब्दियोंमें अपना प्रभाव-विस्तार किये हुए थीं और जिन्होंने बादमें चलकर ईसाई धर्ममें चरम ज्ञानके सिद्धान्तका समावेश कराया वे सम्मि-लित भावसे 'नास्टिक मत'के नामसे प्रसिद्ध हुईं। किसी एक विशेष मतवादका नाम नास्टिक-मत नहीं था। ईसवी सन्‌के पूर्वसे ही इन विचारधाराओं और सम्प्रदायोंका अस्तित्व था। विभिन्न साधकोंकी स्वानुभूतियोंपर आधारित कई एक दल थे। कोई जरूरी नहीं था कि ये सभी ईसाई धर्मसे मेल खाते हों। बादमें चलकर ईसाई धर्मकी कट्टरताके

१. का. ब., पृ० ३५।

२. ई. रे. ए., पृ० ३०८।

कारण इन सभी विचारधाराओंका सम्मिलित नाम 'नास्टिक मत' पड़ा। इन्होंने ईसाई धर्मको प्रभावित किया और स्वयं भी ईसाई धर्मसे प्रभावित हुईं। ये विचारधाराएँ मुख्य रूपसे मिस्रमें पुष्पित और पल्लवित हुईं और आज जो कुछ भी उनका रूप हमारे सामने आता है वह उस साहित्यके द्वारा जिसमें उन्होंने ईसाई-धर्मके विरुद्धमें बहुत कुछ कहा है और जो मिस्रके काप्टिक ईसाइयों द्वारा सुरक्षित रखा गया है। अतएव यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि ठीक-ठीक इसका रूप क्या था, यह बताना आज कठिन है। कुछ ग्रन्थ अगर मिलते भी हैं तो उनमें रचयिताका नाम नहीं दिया हुआ है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंकी तरह-से उनमें भी कभी रचयिताका नाम, किसी विशिष्ट साधकका नाम है या किसी प्राचीन ऐतिहासिक या पौराणिक प्रसिद्ध पुरुषका। अभीतक उनके जितने सम्प्रदायोंका पता चला है उनमें प्रायः प्रत्येकका विश्वास है कि परम ज्ञानकी उपलब्धि किसी व्यक्तिके लिए सहज नहीं है। वह अपने आप उस ज्ञानको प्राप्त नहीं कर सकता। यह ज्ञान सीधे आध्यात्मिक जगत्से प्राप्त होता है। अतएव उनके प्रत्येक सम्प्रदायवालोंका यह दावा है कि उनके पास वह ज्ञान सुरक्षित है जिसे जाने बिना उस आध्यात्मिक जगत्में प्रवेश पाना सम्भव नहीं। अतएव उस ज्ञानका अधिकारी व्यक्ति उस सम्प्रदायका पूज्य था, उसमें उसके अनुयायी दिव्यत्वका आरोप करते थे।

नास्टिक-मतके विभिन्न सम्प्रदायोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी कई विचार-धाराओं और साधनापद्धतियोंको देखकर यह बता सकना कठिन है कि किस मतवाद या साधना-पद्धतिसे इसका आविर्भाव हुआ। यह हम देख चुके हैं कि वे परमज्ञानकी उपलब्धि, परम सत्ताका स्वरूप, भौतिक और आध्यात्मिक जगत्का सम्बन्ध आदि विषयोंको बुद्धिसे परे मानते हैं। केवल बुद्धिके द्वारा अगर कोई इन्हें जाननेकी चेष्टा करता है तो वह व्यर्थ है। इसके लिए आत्म-प्रकाश, रहस्यानुभूतिकी आवश्यकता है। साधारणतः नास्टिक मतके अन्तर्गत जो विभिन्न सम्प्रदाय माने जाते हैं

उनमें मातृ-शक्तिकी उपासना, इस संसारसे परित्राण करानेवाला, आध्यात्मिक दिव्य शक्तिसम्पन्न पुरुष, साधन-मार्गकी नाना मंजिलें तथा आत्माका इस बुराइयोंसे भरे जगत्में अवतरण आदि सिद्धान्तोंका पाया जाना कुछ इस प्रकारका है कि इसे किसी विशेष मतवादसे निकला हुआ माननेमें कठिनाई होती है। यही कारण है कि इसके आविर्भाव और विकासको लेकर नाना प्रकारके मत हैं। कोई इसे जरथुस्त्री धर्मसे निकला हुआ मानता है, कोई इसपर मिस्रकी विभिन्न परम्पराओं और अनुश्रुतियोंका प्रभाव मानता है तथा कोई बैबिलोनका और कोई पर्सियाका[1]। जिन सिद्धान्तोंकी ऊपर चर्चा की गयी है उन्हें लेकर भारतीय दृष्टिकोणसे अभीतक कोई भी अध्ययन नहीं हुआ है यद्यपि उन सिद्धान्तोंका अस्तित्व भारतीय परम्परा और साधनामें बहुत पहलेसे ही वर्तमान है। यूरोपीय विद्वान् नास्टिक-मतके विकासमें भारतीय चिन्तनधारा और बौद्ध धर्मका प्रभाव तो स्वीकार करते हैं लेकिन उसे बहुत बादका मानते हैं। इ. एफ. स्काटका कहना है कि नास्टिक मतके विकासमें भारतीय चिन्ताधाराका प्रभाव बादमें चलकर परिलक्षित होने लगता है लेकिन उसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। वैसे बर्देसानीज (Bardesanes), जिसे स्काट 'नास्टिक मत'के विकासकी परम्परामें अन्तिम मानता है, का कहना है कि वह भारतीय चिन्ताधारासे प्रभावित हुआ है।[2]

नास्टिकोंके मतसे यह जगत् अपने आपमें बुरा है और इसका बनानेवाला भी तब बुरा ही है।[3] वैसे सभी सम्प्रदाय इसे माननेको तैयार नहीं। नास्टिक मानते हैं कि पदार्थ (पुद्गल) अपने आपमें बुरा है। इस बुराइयोंवाले जगत्के ऊपर दूसरा जगत् है जो पवित्र है। आत्मा उसी पवित्र और आध्यात्मिक जगत्का वासी है लेकिन उस जगत्में कुछ ऐसा

१. ई. रे. ए. खंड ६ पृ० २३४।

२. वही, पृ० २३४।

३. हि. वे. फि., पृ० ३१५।

हेरफेर हुआ कि आत्मा उससे पतित होकर इस जगत्में चला आया। इस जगत्में आकर आत्मा इस जगत्के बन्धनों–पदार्थ–के द्वारा बन्दी बना लिया गया। वह स्वतन्त्र हो सकता था और ऊपरकी ओर बढ़ सकता था लेकिन वह पदार्थ उसको बाधा देता है। मनुष्यके भीतर जो एक पवित्र आध्यात्मिक अंशका निवास है वह परमात्मासे आया हुआ है। इस अन्धकारपूर्ण जगत्से फिर वह प्रकाशमय जगत्में जा सकता है। इसका उद्धार हो सकता है लेकिन उसके लिए परमात्माकी दिव्य शक्तिसे विभूषित एक दूसरी ईश्वरीय शक्ति अथवा उसीके जैसी कोई अन्य शक्ति अगर अवतरित हो तभी यह सम्भव हो सकता है। नास्टिकोंका कहना है कि सूर्य, चन्द्र और तारा एक दुष्ट शक्ति (Evil spirit) के द्वारा निर्मित हैं और दृश्यमान् जगत्में एकमात्र अच्छाई अगर कहीं है तो वह मनुष्यकी आत्मा है[1]।

नास्टिक मत इस विश्व ब्रह्माण्डके ऊपर एक परमात्माको मानता है जिसके साथ किसी प्रकारका वैयक्तिक रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता। कभी-कभी उसे पवित्र ज्योति कहा गया है। वह सर्वातीत है। सबका पिता है। अजन्मा है, अज्ञेय है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस परम-पितासे इस विश्व-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई और उस सृष्टिमें ऊपरसे नीचे तक चराचरोंकी विभिन्न कोटियाँ हैं। कोई उत्तम है, कोई नीच। स्त्री और पुरुषका जोड़ा इसी क्रमसे निर्मित हुआ है। इन सभी विभिन्न सत्ताओंका समवाय, अपनी सम्पूर्णतामें मंगलमय और पूर्ण है। इसे 'प्लेरोमा' कहा गया है। इस प्लेरोमाकी विभिन्न सत्ताओंको 'अयान' (Aeons) कहा गया है। नास्टिक मतमें यह माना गया है कि अन्य सत्ताएँ जो परस्पर भिन्न हैं वे उस निर्वैयक्तिक और अज्ञेय परमात्माकी अभिव्यक्ति मात्र हैं। इस प्लेरोमाका सबसे निचला अयान इस जगत्में पतित होकर आता है और जब उद्धारकी बात कही जाती है तो इसी अयानकी। इस अयानको 'सोफिया' नाम

1. वही, पृ० ३१५।

दिया गया है जिससे यह सृष्टि निर्मित हुई है। सोफिया देवी है, मातृशक्ति है। सोफियाका अवतरण सृष्टि-प्रक्रियाको प्रारम्भ कर देता है और सोफियाके इस अवतरणके द्वारा आध्यात्मिक, प्रकाशपूर्ण जगत्‌के साथ इस निचले अन्धकारपूर्ण जगत्‌का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। सोफियाके अवतरणसे उस प्रकाशपूर्ण जगत्‌का सन्तुलन विनष्ट हो जाता है और जब-तक वह फिर वहाँ नहीं जाती तबतक उसका सन्तुलन ठीक नहीं होता। जरथुस्त्री धर्ममें भी मंगलमयी, प्रकाशपूर्ण शक्ति और अन्धकारकी शक्तिका पारस्परिक संघर्ष चलता रहता है। नास्टिक मतमें एक बीचकी कड़ीकी भी बात कही गयी है। वह कड़ी, आध्यात्मिक दिव्य पुरुषके अवतार-द्वारा स्थापित होती है। यह दिव्य पुरुष ही उद्धारकर्त्ता है। नास्टिक मतमें संन्यास व्रतकी भी बात कही गयी है जिसके द्वारा मनुष्य यहाँकी बुराइयोंपर विजय प्राप्तकर आध्यात्मिक जगत्‌को पानेका अधिकारी बनता है।

नास्टिक मतके इस अध्ययनसे हम यह सहज ही समझ सकते हैं कि सूफीमतपर इसके प्रभावकी बात कितनी दूरसे खींचकर लायी गयी है। हो सकता है कि इसके उच्चतम ज्ञान और संन्यासका प्रभाव घुमाफिराकर इसपर पड़ा हो। नास्टिक मत परमात्माको सर्वातीत मानता है और उसे सृष्टिकर्त्ता नहीं मानता। उसके लिए इस सर्वातीत परमात्माके बाद एक दूसरी शक्तिकी बात कही गयी है। चाहे जो हो, इतना कहनेमें हमें संकोच नहीं होगा कि नास्टिक मतका प्रभाव सूफीमतपर कुछ वैसा नहीं है जिसपर कुछ विशेष जोर दिया जा सके।

इसी प्रकारसे जरथुस्त्री धर्मका प्रभाव भी सूफीमतपर कुछ वैसा नहीं दिखलाई पड़ता। वैसे सासानी बादशाहोंके कालमें ही इसके लिए क्षेत्र तैयार हो गया था ऐसा अनुमान करना कुछ गलत नहीं हो सकता। जरथुस्त्री धर्मके ठीक-ठीक प्रभावका अनुमान करना थोड़ा-सा कठिन है, चूँकि मुसलमानोंने जब सासानी साम्राज्यका ध्वंस कर दिया तब बहुत-सी जरथुस्त्री धर्मपर प्रकाश डालनेवाली सामग्री भी नष्ट कर डाली गयी। वैसे पिन्काटने जरथुस्त्री धर्ममें सूफीमतके आविर्भावको ढूँढ़नेकी चेष्टा की है।

ईसाई धर्म और इस्लाम दोनोंका आविर्भाव शामी जातिमें हुआ है तथा दोनोंने बहुत-कुछ समान परम्पराओंसे पाया है अतएव किसी प्रश्नपर विचार करते समय उनकी दृष्टिभंगीमें समानताका होना कुछ आश्चर्य-जनक नहीं है। लेकिन ऐसा कहनेका अर्थ यह नहीं है कि दोनोंकी चिन्ता-धाराएँ एक ही हैं, फिर भी बहुत-कुछ समानता तो दीख ही पड़ती है। इस्लाम धर्मपर ईसाई धर्मका कुछ-न-कुछ प्रभाव विचार तथा साधनाके क्षेत्रमें दीख पड़ता है।

बहुतसे यूरोपीय विद्वानोंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि इस्लामका आविर्भाव जिस कालमें हुआ उस समय अरब तथा अन्य निकटके देशोंमें ईसाई धर्मके अनुयायी तथा साधक थे और उनसे अरबोंका साक्षात् परिचय था। सनातन-पन्थी इस्लामकी बहुतसी ऐसी चीजें हैं जिन्हें उसने ईसाई-धर्मसे ग्रहण की थीं। कहते हैं कि संन्यास-जीवन, उपवास, आन्तरिक शुद्धि तथा बुराइयोंपर विजय पानेके लिए नाना प्रकारके कष्ट-साधन, प्रार्थनाकी विधि आदि ईसाई धर्ममें जिस प्रकारसे हैं उससे इस्लाम बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ है। सूफीमतको भी ईसाई रहस्यवादी साधकोंकी जीवन-चर्या और दृष्टिकोणसे प्रभावित बताया जाता है।

कहा जाता है कि इस प्रभावका विस्तार मुख्य रूपसे दो कारणोंसे हुआ है। एक तो ईसाई साधकों तथा तापस-जीवन बितानेवालोंके साथ निकटका सम्बन्ध। ये साधक सीरिया आदिमें उस कालमें थे। दूसरा कारण यह बताया जाता है कि मुसलमानोंकी द्रुतगामिनी विजयके साथ-साथ केवल इस्लाम धर्मका दूर-दूरतक प्रचार ही नहीं हुआ बल्कि उनका ईसाई धर्मावलम्बियोंके साथ सामाजिक सम्बन्ध भी हुआ। बहुत-सी ईसाई लड़कियोंको या तो मुस्लिम-विजेता जबर्दस्ती साथ ले गये और उनसे शादी कर ली अथवा धीरे-धीरे ईसाई लड़कियोंने मुसलमानोंसे शादी करना प्रारम्भ किया। चाहे जैसे भी हो, ईसाई धर्मकी परम्परा और वातावरणमें पली हुई ये लड़कियाँ मुसलमानोंके घरमें गयीं जिनके संस्कारोंका बहुत अधिक प्रभाव उनकी सन्तानोंपर पड़ा। इनका असर

मुस्लिम विचारधारापर अत्यधिक पड़ा[1]।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म और ईसाई साधकोंका प्रभाव इस्लामपर पड़ा है लेकिन इसमें दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि ईसाई धर्म और साधना अपने आप विकासको प्राप्त हो रही थी और स्वयं कई चिन्ताधाराओंसे प्रभावित हो रही थी। नास्टिकमत, नव-अफलातूनी दर्शन तथा अन्य ग्रीक विचारधाराओंका प्रभाव ईसाई धर्मपर पड़ रहा था। बौद्ध धर्म और संन्यासियोंका प्रभाव भी अवश्य उसपर पड़ रहा था। ऐसी हालतमें ईसाई रहस्यवादियोंने बहुत-कुछ दूसरे मतोंसे ग्रहण किया अतएव यह कहना कठिन है कि वे विचारधाराएँ इस्लाममें ईसाई धर्मसे ही सीधे आयीं। दूसरी बात यह है कि हज़रत मुहम्मदने बादमें बहुत-सी ऐसी वस्तुओंका निषेध कर दिया जिन्हें उन्होंने ईसाई-धर्मका समझा। जैसे संन्यास तथा ऊनी वस्त्रोंका व्यवहार आदि। क़ुरानकी प्रारम्भिक सूराओंमें यद्यपि संन्यास और आत्म-संयमपर जोर दिया गया है लेकिन जब मुहम्मदको उनके ईसाई धर्मके होनेका पता चला तब उन्होंने उसपर जोर नहीं दिया[2]। इससे इस्लाम धर्म तथा उसके अनुयायियोंकी दृष्टिभंगीका पता चलता है। वे अन्य धर्मोंकी वस्तुओंको सीधे स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे। अन्य धर्मोंसे जो कुछ भी इस्लाममें आया वह अधिकांशमें अप्रत्यक्षभावसे ही आया। अन्य धर्मके अनुयायी जब इस्लामकी तीव्र गतिके सामने नहीं ठहर सके तब उन्होंने इस्लाम धर्मको कुबूल कर लिया लेकिन अपनी प्राचीन परम्पराओं और संस्कारोंको छोड़ देना उनके लिए सहज नहीं था। अतएव मुसलमान होनेके बाद अपने प्राचीन संस्कारोंको कुछ संशोधनके साथ अथवा उसी रूपमें अन्य व्याख्याके साथ उन्होंने बचा रखा और इस प्रकारसे कुछ दिनोंमें ये सभी इस्लामके अंग बन गये। इसपर हमने अन्यत्र विचार किया है।

---

१. स्ट. अ. मि. नि. मि. इ., पृ० ११२–११३।

२. वही, पृ० १३०।

१३. भारतवर्षमें सूफीमतका प्रवेश तथा भारतीय परिपार्श्वमें सूफीमत

भारतवर्षमें सूफीमतके प्रवेशकी निश्चित तिथि बताना कठिन है लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानोंके आक्रमणके तुरत बादसे ही सूफी-साधकोंका यहाँ आना जाना प्रारम्भ हो गया। भारतवर्षके साथ अरब देशोंके सम्बन्धका जिक्र हम पहले ही कर चुके हैं। पहले-पहल इन सूफी-साधकोंका पता सिन्ध, पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें चलता है लेकिन बादमें सम्पूर्ण देश उन सूफी-साधकोंसे परिचित हो गया। ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके एक मुसलमान इतिहास-लेखकके अनुसार प्रथम-प्रथम मालाबारमें मुसलमान तीर्थ-यात्रियोंका एक दल आया जो सीलोनमें आदमके पाद-चिह्नका दर्शन करने जा रहा था। इस दलका नेता शेख शरफ बिन मालिक था जो करङ्गनोर (मालाबार) के राजाको धर्मोपदेश द्वारा मुसलमान बनानेमें सफल हुआ। लोगोंका विश्वास है कि यह घटना हजरत मुहम्मदके जीवन कालकी है और बहुतोंका खयाल है कि ईसाकी नवीं शताब्दीकी यह बात है[1]। वैसे इसका कोई प्रमाण नहीं पाया जाता, फिर भी इससे इतना पता तो अवश्य चलता है कि धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे इस देशमें मुसलमान बहुत पहलेसे आने लगे थे।

भारतवर्षमें इस्लाम धर्मका प्रवेश सन् ७११ ई० में हो चुका था जब बसराके गवर्नर हजाज बिन यूसुफके आदेशसे अरबी जेनरल इमामुद्दीन मुहम्मद बिन कासिम सिन्धमें अपनी फौजोंके साथ आ घुसा और पंजाबमें मुलतानतकके प्रदेशको जीत लिया। उसके पहले मुहालिबके आक्रमणकी भी बात कही जाती है। कहा जाता है कि वह सन् ६६४ ई० में मुल्तान-तक बढ़ आया था वैसे अल-बालाधुरीका कहना है कि वह लाहौर तथा

१. प्रि. इ., पृ० २६४—२६५।

बन्नूतक पहुँच गया था[1]। सिन्ध और पंजाबका दक्षिणी-पश्चिमी हिस्सा सन् ८७१ तक उमैय्या और अब्बासी खलीफोंके हाथमें रहा और उसके बाद सिन्ध स्वतन्त्र हो गया। अरब इतिहास-लेखक मसूदी सन् ९१५ ई० में अमीर इस्माइलका जिक्र करता है। मसूदी ने बतलाया है कि उसका राज्य मुल्तानसे खुरासानतक फैला हुआ था और वह अरब जातिका था। कहा जाता है कि उसने सन् ९०० ई० में उन प्रान्तोंको अपने अधिकारमें किया था। मुल्तानमें वह एक सूर्य-मन्दिरका जिक्र करता है जिससे अमीरको काफी आय होती थी। हिन्दू तीर्थयात्री बराबर वहाँ आया करते थे। मुल्तानके इस सूर्य-मन्दिरकी चर्चा इब्न हौकल भी करता है। सन् ९७६ ई० तक उस सूर्य-मन्दिरका पता चलता है। सन् ९८५ ई०में क़रमतियोंने आकर इस मन्दिरको तोड़फोड़ डाला। ये क़रमती स्वयं मिस्र और ईराक़से भगाये गये थे। इन्हें सनातन-पन्थी इस्लामने धर्मविरोधी कहकर इनपर अत्याचार करना शुरू किया था।

दक्षिण भारतमें अरब व्यापारियोंका दल बहुत पहलेसे ही आने-जाने लगा था। कहा जाता है कि जमोरिनका व्यापार अरब देशोंके साथ बहुत चलता था इसलिए उसने हिन्दुओंके मुसलमान बननेमें काफी सहायता पहुँचायी चूँकि उसे नाविकोंकी जरूरत थी और उसके लिए मुसलमान बहुत उपयुक्त थे। अतएव उसने कुछ इस प्रकारकी व्यवस्था की कि प्रत्येक मछुआ-परिवारका एक या अधिक पुरुष मुसलमानोंकी तरहसे पाला-पोसा जाय[2]। दक्षिण भारतकी एक मुसलमान जाति रवुत्तन है जो सईद नथर शाह (सन् ९६९ ई०-सन् १०३९ ई०) के प्रति बहुत बड़ा सम्मान प्रदर्शित करती है। आज भी त्रिचनापल्लीमें मुसलमान उनके मक़बरेका दर्शन करने जाते हैं। रवुत्तन तामिल-भाषी प्रान्तमें पाये जाते हैं। अधिकांशमें वे मदुरा, तिन्नेवेली, कोयम्बटूर, उत्तरी अर्काट और नीलगिरि अञ्चलमें वास करते हैं।

१. ब्लौ, पं. ट्रा. का, (खण्ड १) पृ० ४८९।

२. प्रि, इ., पृ० २६५–२६६।

दक्षिण भारतकी एक दूसरी मुसलमान-जाति है जो दुदेकुलके नामसे प्रसिद्ध है। दुदेकुल धुनियाँ और बुनकर का पेशा करते हैं। उनका कहना है कि बाबा फखर अल-दीनके प्रभावसे वे मुसलमान बने। बाबा फखर अल दीनका मक़बरा पेनुकोन्डामें है। कहा जाता है कि वे सीस्तानके राजा थे और अपने भाईको राजपाट सौंपकर फ़क़ीर हो हो गये थे। मक्का और मदीनाकी तीर्थ-यात्राके बाद उन्होंने पैग़म्बरको सपनेमें देखा। पग़म्बरने उन्हें भारतवर्षमें आने और धर्म-प्रचार करनेका आदेश दिया। वे त्रिचनापल्लीमें नथर शाहके शिष्य हो गये। वहाँसे वे दो सौ साथियोंके साथ धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे निकल पड़े। कहा जाता है कि वे पेनुकोन्डामें एक हिन्दू मन्दिरके पास ठहरे। वहाँका राजा उनका वहाँ आना और रहना पसन्द नहीं करता था लेकिन उन्हें वहाँसे हटानेके लिए उसने जबर्दस्ती नहीं की। यह देखनेके लिए कि उसके पुजारी और मुसलमान फ़क़ीरमें कौन अधिक आध्यात्मिक शक्तिवाला है, दोनोंको बोरेमें चूनेके साथ भरकर बँधवा दिया और पोखरेमें डलवा दिया। पुजारी तो डूब ही गया लेकिन कहा जाता है कि बाबा फ़खर अलदीन शहरके बाहर एक पहाड़ीपर पाये गये। इसके बाद राजा मुसलमान हो गया और उसके साथ और भी बहुतसे लोग मुसलमान हो गये। वह मन्दिर मस्जिदमें परिणत कर दिया गया[1]।

मुसलमानोंकी सैनिक विजयोंके साथ इस्लामका प्रचार भी यहाँ बढ़ा। सैनिक विजयोंके साथ बहुत लोग तो जबर्दस्ती मुसलमान बना दिये गये लेकिन इनसे भी अधिक इस्लामके प्रचारमें धर्म-प्रचारकोंका हाथ रहा है जिन्होंने शान्तिपूर्ण तरीकेसे बहुतोंको मुसलमान बनाया। सूफी साधकोंके पहले बहुत-से मुस्लिम धर्म-प्रचारक मुस्लिम विजेताओंके साथ आये। इनमें अधिकांश ऐसे आये जिनका इन सैनिक विजयोंसे कोई मतलब नहीं था। उनका विश्वास था कि धर्मके प्रचारसे उन्हें पुण्य-लाभ होगा। लेकिन यह सही है कि सैनिक विजय और राजनीतिक

१. प्रि. इ., पृ० २६७–२६८।

परिस्थिति अगर मुसलमानोंके पक्षमें नहीं होती तो धर्म-प्रचारकोंको न कोई सुविधा ही मिलती और न सम्भवतः सफलता ही। जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन करनेवालोंका प्रभाव हिन्दुओंपर नहीं पड़ा लेकिन शान्त और उदार सूफी-साधकोंने उनके हृदयपर विजय प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। महमूद गजनीके आक्रमणके दो सौ वर्षों बादतक इस प्रकारके धर्म-प्रचारकोंके नाम बहुत अधिक सुननेको नहीं मिलते। लेकिन ईसाकी तेरहवीं शताब्दीमें तथा उसके बाद भी बड़े-बड़े धर्म-प्रचारकों, पीरों और सूफी-साधकोंके नाम सुननेको मिलते हैं। ईसाकी चौदहवीं शताब्दीमें इनका पूरा जोर रहा। धर्म-प्रचारकोंका यह वेग ईसाकी पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीमें बहुत कम हो गया और सत्रहवीं शताब्दीमें प्रायः लुप्त हो गया।

सूफियोंकी उदारता, उनका सन्तों जैसा जीवन तथा भारतीय विचार-धाराके साथ साम्य होनेके कारण इन सूफी साधकोंके प्रति लोगोंकी श्रद्धा बढ़ी। वह करामातोंका युग था। उन दिनों सिद्धों, तान्त्रिकों एवं नाथ-पन्थियोंका पूरा जोर था। सूफियोंकी करामातोंकी कहानियोंसे जनताका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों द्वारा वे समान रूपसे समादृत हुए। जहाँतक पता चलता है सन् ईसवीकी बारहवीं शताब्दीके अन्तमें प्रथम-प्रथम सूफी-साधक अन्य मुस्लिम देशोंसे आये। बहुतोंका कहना है कि सम्भवतः ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें ही सूफी-चिन्ताधाराका प्रवेश भारतवर्षमें होने लगा था। कहते हैं कि शाह सुल्तान रूमी बंगालमें सन् १०३५ ई०में आये। सैयद नथर शाह सन् १०३९ ई० में आये। दक्षिण भारतमें धर्म-प्रचार करनेवाले यही प्रथम समझे जाते हैं। ये साधक अपने देशमें काफी ख्याति लाभ कर चुके थे। उनमें धार्मिकता, जीवनकी सादगी, उदारता आदि पूर्ण मात्रामें थी। इन कारणोंसे जनता का प्रियभाजन बननेमें उन्हें जरा भी कठिनाई नहीं हुई। उनका सादा-सरल जीवन, सांसारिक विषयोंके प्रति विरक्ति, धार्मिक कट्टरताके प्रति उदासीनता और सबसे बढ़कर उनके चमत्कारोंकी कहानियोंने हिन्दू

जनताको आकृष्ट किया।

पहले पहल आनेवाले धर्म-प्रचारकोंमें शेख इस्माइलका नाम आता है। वह सन् १००५ ई०में लाहौरमें आया था। कहा जाता है कि लाहौरमें आनेवाले इस्लामके प्रचारकोंमें वही पहला प्रचारक था[1]। उसमें खूब वाक्-पटुता थी और अपने तर्कों द्वारा वह लोगोंमें विश्वास उत्पन्न कर सकता था। उसने बहुतोंको मुसलमान बनाया। इसके बाद सन् १०३६ ई०में अबुल हसन बिन उस्मान बिन अली अल-हुजवीरीके लाहौरमें आनेका पता चलता है। वैसे हुजवीरीने लिखा है कि वह क़ैदी बनाकर वहाँ लाया गया था[2]। हुजवीरी बहुत बड़ा विद्वान् था। उसने अपनी पुस्तक 'कश्फ़ अल-महजूब'में सूफीमतका सुन्दर विवेचन किया है। वह स्वयं एक सूफी था। अबुलहसन अल-हुसरीके शिष्य अबुल फ़ज़ल मुहम्मद बिन अल-हसन अल खुत्तलीसे उसने सूफीमतकी शिक्षा ग्रहण की थी। बहुतसे अन्य सूफी-साधकोंसे अपने मिलनेकी बात उसने स्वयं लिखी है। उसने बहुत भ्रमण किया था। कहते हैं कि इस्लामी साम्राज्य-के एक छोरसे दूसरी छोरतक वह घूमा हुआ था। वह ग़ज़नी (अफ़ग़ा-स्तान)का रहनेवाला था और लाहौरमें उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके ठीक सालका पता नहीं चलता। उसकी मृत्यु सन् १०६३ ई० तथा सन् १०७२ ई०के बीच किसी समय हुई। लोग उसे बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। बहुतसे सूफियोंका यह विश्वास है कि अली अल-हुजवीरी भारतवर्षके सन्तोंके ऊपर अधिष्ठित हैं और यद्यपि उनकी मृत्यु हो गयी है फिर भी कोई भी सन्त बिना उनकी आज्ञाके इस देशमें नहीं प्रवेश करता[3]। बाहरसे आनेवाले साधक उनके मक़बरेका दर्शन सबसे पहले करते हैं। लेकिन दो सौ वर्षों बाद आनेवाले ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीकी तरह वह लोकप्रिय नहीं हो सका। वह दाता गंज बख़्शके

1. प्रि० इ०, पृ० २८० ।

2. कश्फ०, पृ० ९१ ।

3. सूफि०, पृ० १२८ ।

नामसे प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह नाम ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीका दिया हुआ है। यह पता नहीं चलता कि उसकी कोई शिष्यपरम्परा थी या नहीं। वह सुन्नी था तथा सनातन पन्थी इस्लामको मानकर चलनेवाला था। उसने सूफीमत तथा सनातन-पन्थी इस्लामके बीच सामञ्जस्य स्थापित करनेकी चेष्टा की है।

ईसाकी तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दीमें मुस्लिम धर्म-प्रचारकों और सूफियोंका पूरा जोर देशके कई भागोंमें रहा। पंजाब, कश्मीर, डेक्कन तथा देशके पूर्वी भागमें इन दो शताब्दियोंमें इनका कार्य पूरे जोशके साथ हुआ। पंजाबमें बहाअल-हक़्क़, पाकपत्तनके बाबा फरीदुद्दीन और अहमद कबीरके नाम सुननेको मिलते हैं। अहमद कबीरको लोग 'मख़दूमे-जहानिया' भी कहते हैं। कहा जाता है कि ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें कश्मीरमें सर्वप्रथम बुलबुल शाहने सूफीमतका श्रीगणेश किया। कश्मीरका प्रथम मुसलमान राजा सदरुद्दीन हुआ। बुलबुल शाहके प्रभावमें आकर वह मुसलमान बना और उक्त नामको ग्रहण किया। पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्तमें मीर शम्सुद्दीन नामक एक धर्म-प्रचारक कश्मीरमें आया और उसके प्रभावमें आकर वहाँ बहुत लोग मुसलमान बने। शम्सुद्दीन शिया-संप्रदायका था और इराकसे आया था[1]।

ईसाकी बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें जब मुहम्मद गोरीने भारत-वर्षपर आक्रमण किया, उच्च (बहावलपुर) इस्लामी विद्याका एक बहुत बड़ा केन्द्र था। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मिन्हाजे-सराज उच्च स्थित फिरोजी कालेजका अध्यापक नियुक्त हुआ था। यही मिन्हाजे-सराज उपस्थित फिरोजी कालेजका अध्यापक नियुक्त हुआ था। यही मिन्हाजे-सराज बादमें जब उच्चका स्थान दिल्लीने ले लिया तब वहाँ चला गया और तीन-तीन बार अल्तमशके दरबारमें काज़ी नियुक्त हुआ[2]। उच्च उस कालमें धर्मप्रचारका एक बहुत बड़ा केन्द्र था जहाँसे सिन्ध और दक्षिण-पश्चिमी

१. प्रि. इ., पृ० २९२।

२. प्लौ. प. ट्रा. का., पृ० ४९०–४९१।

पंजाबमें इस्लाम धर्मका प्रचार हो रहा था। इस उत्तमें बादमें कई सूफी-साधक आये।

उस कालके मुस्लिम साधकोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती थे, जिनकी मृत्यु सन् १२३६[1] ई० में अजमेरमें हुई जहाँ आज भी बहुत बड़ा मेला लगता है। इनका जन्म सीस्तान (अफ़गानिस्तान) में सन् ११४२ ई० में हुआ था। जब ये तीर्थयात्राके लिए मदीना जा रहे थे उसी समय उनके हृदयमें जैसे भारतवर्ष आनेकी पुकार आयी। पैग़म्बरने सपनेमें उनसे कहा कि "परमात्माने भारतवर्षको तुम्हारे हाथों सौंपा है। वहाँ जाकर अजमेरमें बस जाओ। परमात्माकी कृपासे और तुम्हारे तथा तुम्हारे शिष्योंके पुण्यबलसे इस्लाम धर्मका प्रचार उस देशमें होगा[2]।" कहा जाता है कि इसके बाद ही वे अजमेर आए और उनकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि हिन्दू और मुसलमान समान भावसे उनसे श्रद्धा करते थे और उनका आशीर्वाद ग्रहण करते थे। पहले पहल जिन्हें उन्होंने मुसलमान बनाया उनमें एक योगी था जो वहाँके राजाका गुरु था[3]। उनकी शिष्य-परम्परामें ख़्वाजा कुतबुद्दीन और फरीदुद्दीन शकरगंज, जो बाबा फ़रीदके नामसे अधिक प्रसिद्ध थे, जैसे सूफी साधकोंके नाम आते हैं।

भारतवर्षमें आनेवाले प्रारम्भिक सूफियोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ अज्ञात है, लेकिन उनके बारेमें कितनी ऐसी कहानियाँ प्रचलित हैं जो सम्भवतः कालक्रमसे गढ़ ली गयीं हैं फिर भी उनसे इतना तो पता चलता है कि बहुत पहले वे यहाँ आये थे और उनके प्रति लोगोंमें एक गहरी श्रद्धाका भाव था। एक बाबा रतनकी कहानी ऐसी ही है जिनके बारेमें कहा जाता है कि वे ७०० वर्षोंतक जीवित रहे! कहा जाता है कि दो बार उन्होंने मक्काकी यात्रा की थी। बाबा रतन हिन्दू थे और दुबारा जब वे मक्का गये तब इस्लाम-धर्ममें दीक्षित हो गये। बीबी पाक-दामनानकी

१. इन्डि. इ., पृ० ४३।

२. प्रि. इ., पृ० २८१।

३. वही, पृ० २८१।

कहानी भी इसी प्रकार से अतिशयोक्तियोंसे भरी हुई है। उनके चमत्कारों-की कहानी जनतामें खूब प्रचलित है। लाहौरमें उनके सात मक़बरे एक साथ बने हुए हैं। कहा जाता है कि इनमें छ तो हजरत अलीके परिवार-की थीं उनके नाम यों हैं—(१) रुक़िया जो बीबी हाजके नामसे मशहूर है और जो अलीकी लड़की थी, (२) बीबी हूर, (३) बीबी नूर, (४) बीबी गौहर, (५) बीबी ताज, (६) बीबी शाहबाज। बादकी पाँच अलीके भाई अक़ीलकी लड़कियाँ थीं और सातवीं उनकी रसोई पकानेवाली थी जो बीबी तन्नूर अथवा तन्दूर कहलाती है। उनके सम्बन्धमें जो कहानी प्रचलित है वह इस प्रकार है—

कर्बलाके मैदानमें जब यज़ीदकी सेनाओंने हुसैनको घेर लिया तब हुसैनने इन सातोंसे उस स्थानको छोड़कर चले जानेके लिए कहा। किसी तरहसे जब ये लाहौर पहुँची तब वहाँके हिन्दू राजाने उन्हें राज-महलमें लिवा लानेके लिए अपने बेटेको भेजा। ये लोग जानेको राजी नहीं थीं। राजाके लड़केने जब ज़िद की तो उनमेंसे एक ताज बीबीने उसकी ओर क्रुद्ध दृष्टिसे देखा और वह बेहोश हो गया। होश आनेपर उसने माफ़ी माँगी और इस्लाम-धर्म कबूल कर लिया। वे राजमहलमें तो आ गयीं लेकिन बादमें लोगोंके व्यवहारसे तंग आकर उन्होंने धरतीसे प्रार्थना की कि वह उन्हें अपनी शरणमें ले ले। धरती फटी और ये उसमें विलीन हो गयीं। राजा इसके बाद फ़क़ीर हो गया और वहाँपर सात मक़बरे बनवा दिये। राजा जब मुसलमान हो गया तब उसका नाम अब्दुल्ला पड़ा। पीछे बाबा खाकीके नामसे वह मशहूर हुआ। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु सन् ७१९–७२० ई० में हुई और उसकी क़ब्र भी पाकदामनान मक़बरेके पास है। महमूद ग़ज़नीने अपनी चढ़ाईके समय इस मक़बरेको घेरवा दिया था और बहुत दिनों बाद अकबरने उसमें और सुधार करवा दिये।

सन् ईसवीकी ग्यारहवीं शताब्दीके एक दूसरे सन्तकी भी कहानी इसी प्रकारसे प्रचलित है। इनका कोई विश्वसनीय वृत्तान्त प्राप्त नहीं है।

इनका नाम सईद सालार मसूद गाजी मियाँ अथवा बाले मियाँ है। गाजीमियाँके पिताका नाम सालार साहू और माताका नाम सितरए-मुअल्ला था। इनकी माता महमूद गजनवीकी बहन थीं। कहा जाता है कि गाजीमियाँ महमूद गजनवीके साथ उसकी चढ़ाइयोंमें थे और बहराइच के पास सन् १०३३ ई० में लड़ाईमें मारे गये। बहराइचमें उनका मकबरा है। उनके उर्सके समय मेला लगता है, जिसमें हिन्दू भी जाते हैं। उस समय जुहरा बीबीके साथ इनकी शादीका उत्सव मनाया जाता है। जुहरा बीबीकी कहानी इस प्रकार है—जुहरा बीबी जन्मान्ध थी। वह बारा-बंकी जिलेके रधौली गाँवकी थी। गाजीमियाँके मक़बरेका वह दर्शन करने गई थी और कहा जाता है कि उनकी कृपासे उसे फिरसे दृष्टि-शक्ति प्राप्त हुई। गाजीमियाँकी क़ब्रके पास ही उसने अपने लिए भी क़ब्र खुदवायी। अट्ठारह सालकी उम्रमें वह अविवाहित मर गयी और उसी क़ब्रमें दफ़ना दी गयी। तबसे उसके माँ-बाप और अन्य रिश्तेदार प्रत्येक वर्ष वहाँ उसका ब्याह रचाने जाया करते थे। धीरे-धीरे यह बात सर्वत्र फैल गयी और भारतवर्षके भिन्न-भिन्न हिस्सेसे लोग इस अवसरपर वहाँ इकट्ठा होने लगे। एक लाठीके सिरेपर वे बालोंका गुच्छा बाँधते हैं और नाचते-गाते तथा जुलूस निकालते हैं। इसे वे गाजीमियाँका सिर कहते हैं। इस अव-सरपर लोग भिन्न-भिन्न प्रकारकी वस्तुएँ नज़र चढ़ाते हैं। जुहराबीबीके दहेजमें वे बर्तन आदि चढ़ाते हैं। मक़बरेपर लोग रुपया पैसा फेंकते हैं तथा उसके सिरेपर जाकर लगनेको वे शुभ मानते हैं। हिन्दुस्तानके अन्य हिस्सोंमें भी गाजीमियाँके उर्स होते हैं। समय-समयपर गाजीमियाँका मक़बरा धोया जाता है और वह पानी निकटके पोखरेमें जाकर गिरता है। उस पोखरेमें स्नान करनेके लिए बहुत-से कुष्ठ रोगी जाते हैं। उनका विश्वास है उस पोखरेमें स्नान करनेसे उनका रोग दूर हो जायगा। पूर्वी बंगालमें गाजीमियाँका थान (स्थान) है जिसकी पूजा हिन्दू और मुसल-मान दोनों करते हैं, वहाँ मेला नहीं लगता[1]।

---

१. बाबारतन, बीबी पाकदामनान और ग़ाज़ीमियाँकी कहानी,

सईद जलालुद्दीनका नाम भी उस कालके धर्म-प्रचारकोंमें बहुत महत्त्वका है। सन् ११९९ ई० में उसका जन्म बुखारामें हुआ। सन् १२४४ ई० में वह उच (बहावलपुर रियासत) में आकर बस गया। इसने बहुतोंको मुसलमान बनाया। उसीका पोता अहमद कबीर था जो मखदूमेजहानियाके नामसे विख्यात है। अबूअली कलन्दर एक दूसरा धर्मप्रचारक था जिसका सम्मान आज भी लोग करते हैं। वह पानीपतमें आकर रहा और सन् १३२४ ई० में वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके मक़-बरेका लोग दर्शन करनेके लिए जाते हैं।

प्रारम्भसे ही सिन्ध और पंजाबमें ये धर्म-प्रचारक और सूफ़ी-साधक आते रहे हैं। सिन्धमें बहुत-से सूफ़ी-साधक हो चुके हैं और सूफ़ीमतका प्रभाव वहाँ बहुत रहा है। सिन्धमें सूफ़ीमतके प्रवेशकी कहानी बड़ी मनो-रञ्जक है। कहा जाता है कि सैयद उस्मानशाह नामक एक सुप्रसिद्ध सूफ़ी अपने तीन मित्र शेख बहवलद्दीन, शेख फ़रीदगंज और शेख मखदूम जलालुद्दीनको अपने साथ भारतमें आनेके लिए अनुप्रेरित किया। सैयद उस्मानशाह बग़दादके बादशाहके प्रियपात्र थे। बादशाह उन्हें बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। इतना सम्मान और इतने आरामकी जिन्दगीके बावजूद भी सैयद उस्मान शाह न-जाने किस आन्तरिक शक्तिसे चालित होकर भारतवर्षमें आनेके लिए बेचैन हो उठे। बादशाहने उन्हें बहुत रोकना चाहा पर वे नहीं रुके। उन चारोंकी यात्राके सम्बन्धमें बहुत-सी किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है जब वे लोग फ़ारसकी खाड़ी-के किसी टापूमें पहुँचे तो उसे बिल्कुल निर्जन पाया। यहाँसे किसी दूसरी जगह नौकाके लिए जाना था। उस्मान शाहने अपने मित्रोंसे कहा कि परमात्मापर भरोसा कर पानीमें घुस पड़ो ; लेकिन तभी तुम इसको पार कर सकते हो जब संसारके सभी माया-मोहका तुम त्याग कर दोगे। अगर किसी प्रकारका मोह तुम्हारे भीतर रह जायगा तब तुम पार

जान ए. सुभानकी पुस्तक 'सूफ़ीज़्म' इट्स सेन्ट्स और श्राइन्समें विस्तारसे दी हुई है।

नहीं हो सकोगे। ऐसा कहकर भीख माँगनेका अपना पात्र उन्होंने सामने रख दिया और उन लोगोंसे उसपर हाथ रखे हुए रहनेके लिए कहा। उन्होंने कहा कि इस प्रकारसे वह भिक्षापात्र उन सबको पार कर देगा। जब वे लोग बीच धारामें गये तब पात्र डूबने लगा। उस्मान शाह-ने कहा कि उन लोगोंमेंसे किसीके पास ऐसी कोई वस्तु अवश्य है जिसका लोभ वह छोड़ नहीं सका है। बात यह थी कि समय-कुसमयका ध्यान रख बहबल्दीनने अपने पास एक सोनेकी ईंट रख छोड़ी थी। उस्मान शाहके कहनेसे जब उन्होंने ईंट फेंक दी तो वे फिर ऊपर आ गये और उस धाराको पार करनेमें समर्थ हुए। इसके बाद वे मक्का और मदीना गये।

उनकी यात्रामें एक दूसरा विघ्न आ उपस्थित हुआ। कहा जाता है कि शेख फ़रीदगंज अत्यन्त सुन्दर थे। एक दिन वे रोटी खरीदने एक नानबाईकी दूकानपर गये। दूकानपर नानबाईकी पत्नीके सिवा और कोई नहीं था। वह शेखको देखकर मोहित हो गयी। उसने किसी तरहसे फ़रीदको अपने वशमें करना चाहा, लेकिन असफल रही। अन्तमें उसने शोर मचाया और अन्य लोगोंके आनेपर फ़रीदको दोषी बनाने लगी। जब शेख उस्मानको यह बात मालूम हुई तो अपने चमत्कार-बलसे अपने मित्रकी रक्षा की। इसी तरहसे रास्तेमें एक साधुने शेख उस्मानको खौलते हुए तेलमें कूदनेके लिए ललकारा। उस्मान कूद पड़े और जब वे उसमेंसे बाहर निकले तो उनके शरीरपर किसी प्रकारका असर नहीं दीखा। सिर्फ उनके कपड़े लाल हो गये थे। साधुने उनसे कहा "सचमुच तुम लालोंमें लाल हो।" तभीसे वे लाल शाहबाज कहलाने लगे। अन्ततक वे लाल वस्त्र धारण करते रहे। जब वे सिन्ध पहुँचे तब उनका स्वागत भी एक विचित्र ढंगसे हुआ। उस समय सिन्धमें बहुत कट्टर मुल्ला अपना प्रभाव जमाये बैठे थे। उन लोगोंने दूधसे लबालब भरा हुआ एक कटोरा भेज दिया। उसका मतलब यह था कि तुम लोग यहाँ किस लिए आ रहे हो, यहाँ तो पहलेसे ही फ़क़ीर भरे हुए हैं। तुम लोग किसी दूसरी जगह

बसेरा लो। उस्मान शाहने एक फूल दूधके ऊपर रख दिया। ऐसा करने-का मतलब उनका यह था कि उनलोगोंको किसी सांसारिक वस्तुकी चाहना नहीं है। वे फूलकी तरह ऊपर-ऊपर बहते रहेंगे। सिन्धमें सूफी-मतके प्रवर्त्तक उस्मान शाह थे। शेख बहवल्दीन उच चले गये और अन्य दो और और दूसरी जगहोंमें। उस्मान शाहका जन्म सन् १३१८ ई० में अफगानिस्तानमें मारवन्द नामक शहरमें हुआ था और सन् १३५० ई० में बगदादसे वे सिन्धके लिए चले[1]।

सिन्ध और पंजाबसे सूफी-साधक धीरे-धीरे उत्तरी भारतके अन्य भागोंमें भी फैल गये। उनके प्रभावका विस्तार देशके प्रायः सम्पूर्ण भागमें हुआ। बारहवीं शताब्दीके अन्तमें बख़्तियार खिलजीने बंगाल और बिहारको जीतकर गौड़में अपनी राजधानी बनायी। इसके बाद हिन्दू राजा कांसका राज्य लगभग दस वर्षोंतक रहा और कहा जाता है कि वह बहुत उदार था और उसकी मुसलमान-प्रजा भी उससे सन्तुष्ट थी। उसके पुत्र जटमलने सन् १४१४ ई० में जब इसके पिताकी मृत्यु हुई तब अपने सभी अफसरोंको बुलाकर कहा कि वह इस्लाम कबूल करने जा रहा है। उसने यह भी कहा कि अगर उन लोगोंको यह मंजूर न हो कि धर्म-परिवर्तनके बाद वह राजा नहीं रह सकता तो वह अपने भाईको राज्य दे देनेके लिए तैयार है। लेकिन अफसरोंने उसे हर हालतमें स्वीकार करना मंजूर किया। मुसलमान होनेके बाद उसका नाम जलालुद्दीन मुहम्मद शाह हुआ। उसके राज्यमें हिन्दुओंपर काफी अत्याचार हुआ और बहुत लोग जबर्दस्ती मुसलमान बनाये गये। कहा जाता है कि पूर्वी बंगालके साढ़े पाँच सौ वर्षोंके मुस्लिम शासनमें हिन्दू प्रजापर इतना अत्याचार कभी नहीं हुआ था[2]।

---

१. सूफीमत और सिन्धके सम्बन्धमें श्री गुरुदयाल मल्लिककी 'डिवाइन ड्वेलर्स इन दी डेजर्ट' और श्री जेठमल परसराम गुलराज द्वारा लिखित "सिन्ध एन्ड इट्स सूफीज़" पढ़ना चाहिये।

२. प्रि. इ., पृ० २७७—२७८।

इस प्रकारके दबावका और भी प्रमाण है। खड्गपुरका राजा हिन्दू था। वह अकबरके किसी जेनरल द्वारा पराजित हुआ। उससे कहा गया कि अगर वह मुसलमान हो जाय तो राज्य उसका रह सकता है। उसने मुसल्मान बनना स्वीकार कर लिया। चटगाँवके असदअली खाँके पूर्वज भी हिन्दू ही थे। मुर्शीद कुली खाँ एक ब्राह्मणका पुत्र था जो मुसलमान बन गया था। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि बंगालमें इस्लामके प्रचारके कारणोंमें एक शक्तिका प्रयोग भी था। अन्य कारणोंमें नीच समझी जानेवाली जातियोंपर हिन्दुओंका अत्याचार भी था। वे हिन्दुओं द्वारा पददलित होनेके कारण मुसलमान हो गये। इस धर्म-परिवर्तनमें सूफियों और अन्य मुस्लिम फ़क़ीरोंके शान्तिपूर्ण तथा चमत्कार-शक्तिका कम हाथ नहीं रहा है।

बंगालमें सात सूफी-सम्प्रदायोंका पता चलता है जिनमें सम्भवतः सबसे पहले सुहरवर्दी-सम्प्रदायका प्रवेश हुआ। बंगालमें इस सम्प्रदायके प्रवर्तक मखदूम शेख जलालुद्दीन तबरीजी थे, जिनकी मृत्यु सन् १२४४ ई० में हुई। वे शहाबुद्दीन सुहरवर्दीके शिष्य थे[1]। शेख फ़रीदुद्दीन शकरगंजके द्वारा चिश्ती-सम्प्रदायका प्रचार बंगालमें हुआ। इसी तरहसे बंगालमें क़लादानी सम्प्रदायके प्रवर्तक सम्भवतः पण्डुआ (हुगली) के शाह सफीउद्दीन शाही थे। उनका काल सन् १२९० ई० या १२९५ ई० के लगभग है। शाह मदार एक रमते फ़क़ीर थे। घूमते-घामते ही उन्होंने मदारी-सम्प्रदायका प्रसार बंगालमें किया। अधमी सम्प्रदाय भी खिदबानीके नामसे बंगालमें प्रचलित है। कहा जाता है कि बंगालमें नक़्शबन्दी-सम्प्रदायके प्रचार करनेवाले शेख हमीद दानिशमन्द थे और अब्दुर क़ादिर जिलानी द्वारा सोलहवीं शताब्दीमें क़ादिरी सम्प्रदाय बंगालमें आया।

कहते हैं कि कच्छ और गुजरातमें पीरानके इमाम शाहने इस्लाम धर्ममें बहुतोंको दीक्षित किया। उनके चमत्कारोंकी बहुत-सी कहानियाँ

1. वही, पृ० २७८।

प्रचलित हैं। कहा जाता है कि उनमें ऐसी शक्ति थी कि जरूरत होनेपर वर्षा करा देते थे। एक बार कुछ तीर्थयात्री बनारस जा रहे थे। इमाम शाहने कहा कि वे उन्हें वहाँ पहुँचा देंगे। इसके बाद शाहने दूसरे ही क्षण उन्हें बनारस पहुँचा दिया जहाँ उन्होंने गंगा-स्नान किया। उन्हें जब चेतना हुई तब उन्होंने अपनेको पीरानमें ही पाया। इस चमत्कारके कारण वे सभी लोग मुसलमान हो गये। उनकी मृत्यु सन् १५१२ ई० में पीरानमें ही हुई। उनके मकबरेका दर्शन करने हिन्दू और मुसलमान दोनों जाते हैं। कच्छमें हिन्दूसे मुसलमान बननेवाले बहुत लोग दावल शाह पीरकी पूजा करते हैं[1]।

बोहरा, अब्दुल्लाको अपने सम्प्रदायका पहला धर्म-प्रचारक मानते हैं लेकिन दूसरे मुल्ला अलीको मानते हैं। वह यमनसे आया था और उसने अपना प्रचार कार्य सन् १०६७ ई० में गुजरातमें आरम्भ किया। कहा जाता है कि वह बहुत बड़ा विद्वान् था और उसमें चमत्कारकी शक्ति थी। उसके चमत्कारोंसे प्रभावित होकर बहुतसे हिन्दू मुसलमान बन गये[2]। ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें एक इस्माईली धर्म-प्रचारक अलामूत (पर्सिया) से भेजा गया था। उसने अपना नाम नूर सतागर या नूर सौदागर रख लिया। जब वह आया तब गुजरातका राजा सिद्धराज (सन् १०९४ ई०—सन् ११४३ ई०) था। उसने एक हिन्दू नाम अपना लिया लेकिन मुसलमानोंसे उसने कहा कि उसका असली नाम सईद सआदत है। उसने निम्नवर्गके हिन्दुओं जैसे कनबी, खरवा और कोरी आदिको मुसलमान बनाया[3]। ईसाकी पन्द्रवीं शताब्दीमें पीर सदर अल-दीन एक दूसरा इस्माईली धर्म-प्रचारक सिन्धमें आया। वह खोजा लोगोंका प्रधान था।

दक्षिण भारत और डेकनमें भी यह धर्म-प्रचारका काम चलता रहा।

---

१. प्रि. इ., पृ० २७७।

२. वही, पृ० २७५।

३. इन्डि. इ., पृ० ४३।

दक्षिण भारतमें निम्न वर्गके हिन्दुओंमें बहुतसे मुसलमान हो गये। उनमें तियन, मुक्कुवन जो मछुए थे, चेरुमन आदि थे। बहुतसे अरब व्यापारी पश्चिमी घाटकी ओर आकर बस गये और उनके द्वारा भी इस्लाम-धर्म-का प्रचार हुआ। डेक्कनमें पीर महाबीर खमदायत नामक एक अरबी धर्म-प्रचारक सन् १३०४ ई०में आया जिसने बीजापुरके बहुतसे जैन-धर्मा-वलम्बियोंको मुसलमान बनाया। पीर महाबीर खमदायत नाममें 'महाबीर' शब्द बहुत ही अर्थपूर्ण मालूम होता है। सम्भव है कि जैन-धर्मावलम्बियों-ने मुसलमान हो जानेके बाद इस शब्दको जोड़ दिया है। कहा जाता है कि मालाबारसे ही इस्लाम धर्मका प्रचार लैकैडाइव और माल्डाइव द्वीपोंमें हुआ। वास्तवमें अरब तथा पर्सियाके व्यापारियोंने अपने धर्मका प्रचार इन सब स्थानोंमें किया।

अतएव हम देखते हैं कि इस्लामका प्रचार इस्लामकी सैनिक विजयों-के कारण बहुत-कुछ सम्भव हो पाया लेकिन केवल सैनिक बलके द्वारा ही इसका इतना अधिक प्रचार सम्भव नहीं हो पाता अगर अन्य शान्ति-पूर्ण तरीके काममें नहीं लाये जाते। वैसे यह भी ठीक है कि इन चमत्कारकी कहानियों तथा धर्मप्रचारकों और सूफी साधकोंके शान्तिपूर्ण तरीकोंका ऐसा व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता कि इतने बड़े पैमानेपर इस्लामका प्रसार होता अगर इस्लामकी सैनिक विजय नहीं होती। केवल बल-प्रयोग और सैनिक विजयोंके द्वारा ही अगर इस्लामका प्रचार होना सम्भव होता तो प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष इस्लाम धर्मको कबूल कर लिये होता। लेकिन हम देखते हैं कि वैसा नहीं हो पाया। इस्लाम धर्म तथा सूफीमतने इन विजयोंके साथ भारतमें प्रवेश पा अपनेको एक ऐसे वातावरणमें पाया जिसका परिचय उन्हें पहले कभी नहीं हुआ था और पहली बार उन्हें एक ऐसी संस्कृति, एक ऐसी सभ्यता और एक ऐसे धर्मसे पाला पड़ा कि वे उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

हम देख चुके हैं कि प्रारम्भमें फ़रीदुद्दीन शकरगंज, अली मखदूम

हुजवीरी आदि कुछ ऐसे सूफी साधक आये जो धर्म-प्रचारक भी थे। उनके प्रभावमें आकर विशेषरूपसे हिन्दुओंमें निम्नवर्गके लोग ही मुसलमान बने। लेकिन बादके सूफी साधकोंने धर्म-प्रचारकी ओर और हिन्दुओं को मुसलमान बनानेकी ओर ध्यान नहीं दिया[1]। इस भारतीय वातावरणका प्रभाव उनपर पड़ना शुरू हुआ। वे स्वयं साधक थे और ज्ञान-पिपासु थे। उन्होंने यहांके विभिन्न धर्मों और विचारोंका अध्ययन किया। ये सूफी बहुत ही उदार थे और एक ऐसा भी समय आया कि इस्लाम-धर्मको सर्वश्रेष्ठ माननेकी हठधर्मिता भी उनमें नहीं रही। भारतवर्षमें प्रवेशके बाद हिन्दू-धर्मने सूफीमतको बहुत अधिक प्रभावित किया और प्रारम्भिककालमें जो सूफीमतका रूप था उसमें बहुत कुछ परिवर्तन आ गया। भारतवर्षमें आकर सूफीमत वही नहीं रह गया जो मुस्लिम-प्रधान देशोंमें था। यहांके वातावरण, रीति-रिवाज और चिन्तन-पद्धतिने इस्लाम धर्म और सूफीमतको अत्यन्त प्रभावित किया, फलस्वरूप हिन्दू धर्मकी बहुत-सी चीजोंको जाने या अनजाने उन्होंने ग्रहण कर लिया। यहाँ संक्षेपमें हम यह देखनेकी चेष्टा करेंगे कि किस प्रकारसे हिन्दू और मुसलमान राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक मामलेमें एक दूसरेके निकट आने लगे।

जब मुसलमान शासकों और सेनानायकोंने देख लिया कि बल-प्रयोगके द्वारा इस्लामका प्रसार बहुत कुछ सम्भव नहीं दीखता तब उस नयी परिस्थितिमें उन्हें हिन्दुओंके प्रति अपनी नीतिमें परिवर्तन करना पड़ा। जहां मूर्तिपूजकोंके लिए उनके मनमें इतनी घृणा थी वहां अब व्यवहारमें उन्हें उदारता लानी पड़ी। फलस्वरूप शासन-कार्यमें उन्होंने हिन्दुओंकी मदद लेनी शुरू की। चचनामाके अनुसार जजिया टैक्स वसूल करनेके लिए ब्राह्मण नियुक्त किये गये[2]। जजिया टैक्स केवल उन्हीं लोगोंके लिए है जो मुसलमान नहीं हैं। लेकिन इस टैक्सके वसूल करनेका

१. मि. टे. इ., पृ० १५३।

२. इन्डि. इ., पृ० १५१।

मतलब ही है कि अगर वे टैक्स देते जायें तो उन्हें शासककी ओरसे किसी प्रकारसे छेड़ा नहीं जायगा और उनकी जान और मालको कोई खतरा नहीं रहेगा।

राजनीतिक दृष्टिसे सम्पूर्ण भारतवर्षपर मुसलमानोंका कब्जा कभी भी नहीं हुआ। अतएव बहुतसे हिन्दू राजाओंसे उन्हें सन्धि-विग्रह आदि करना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग नहीं रह पाये और धर्मकी अपेक्षा राजनीतिको उन्होंने अधिक महत्त्व दिया। अतएव ऐसा बहुत बार देखनेको मिलता है कि हिन्दू राजाओंकी ओरसे मुसलमान फौजें भी लड़ रही हैं और मुसलमान बादशाहों या नवाबोंकी ओरसे हिन्दू फ़ौजें। कहा जाता है कि मालवाके मुसलमान शासकने जब बहमनी राज्यपर आक्रमण किया तो उसकी जो सबसे अच्छी पल्टन थी उसमें हिन्दु और मुसलमान सैनिक थे। उसकी बारह हजार पल्टनमें अफ़गान और राजपूत थे। उधर विजयनगरके राजा देवरायने अपनी पल्टनमें मुसलमानोंको रखा था और उनके सरदारोंको जागीरें दी थीं और अपनी राजधानीमें एक मस्जिद भी बनवायी थी।[1]

अकबरके समयतक आते-आते तो इसमें और भी वृद्धि हुई। बीरबल और टोडरमल अकबरके दरबारमें बहुत प्रभावशाली मन्त्रियोंमें थे। मुगलोंके दरबारमें हिन्दुओंको बहुत ही ऊँचे-ऊँचे पद मिले थे और कहा जाता है कि जब औरङ्गजेब बादशाह हुआ तब हिन्दुओंको एकदमसे हटा देना चाहता था लेकिन उसके लिए भी यह एक समस्या हो गयी थी। भारतीय इतिहासकी जानकारी रखनेवालोंके लिए यह नयी बात नहीं है और इस प्रकारके सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। लेकिन यहाँ राजनीतिक दृष्टिसे हमें विचार नहीं करना है। फिर भी इससे इतना पता तो अवश्य चल जाता है कि प्रारम्भमें मुसलमान जब इस देशमें आये तो उनका एकमात्र उद्देश्य था कि वे सम्पूर्ण भारतवर्षमें इस्लामका प्रचार कर दें लेकिन इसमें सफल नहीं हो सके और बादमें हिन्दुओंको वे उस दृष्टिसे

---

१. हि० इ०, पृ० ४७१।

नहीं देखते थे जैसा कि प्रारम्भमें वे देखते थे। और समय बीतनेके साथ-साथ हिन्दुओं और मुसलमानोंके दृष्टिकोणमें परिवर्तन हुआ और धर्मकी विभिन्नता होनेपर भी उन्होंने एक साथ रहना और एक दूसरेके प्रति विश्वास करना सीखा।

अकबर और उसका पोता दाराशिकोह सम्भवतः इस दिशामें सबसे आगे चले आये थे। दाराहशिकोहने ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीमें कुछ उपनिषदोंको 'सिर्र-ए-अकबर'के नामसे फ़ारसीमें अनूदित किया था। इसी फ़ारसी अनुवादसे फ्रेन्च विद्वान् आंकतिल डुपेरोंने लैटिनमें अनुवाद किया[१]। यह दो भागोंमें सन् १८०१ ई० और सन् १८०२ ई० में प्रकाशित हुआ था। दाराशिकोहने 'सिर्र-ए-अकबर'की भूमिकामें इस बातपर प्रकाश डाला है कि उसने उपनिषदोंका अनुवाद क्यों किया? उसका कहना है कि उसकी आध्यात्मिक ज्ञान-पिपासा अत्यन्त उग्र थी और वह एकेश्वरवाद, तौहीद तथा कुरानके कितने ही रहस्योंको समझना चाहता था। इसके लिए उसने ईसाई-धर्मग्रन्थ उलटे-पलटे, लेकिन उसे उनसे इच्छानुकूल तृप्ति नहीं हुई। अतएव उसने हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन किया, जो 'एकेश्वरवाद'को अस्वीकार नहीं करते। उसने पाया कि एकेश्वरवाद-संबंधी वेदकी ऋचाओंका व्याख्या-सहित संग्रह 'ओपनेखत' में है। इसलिए बनारसके संन्यासियोंकी सहायतासे उसने इसका अनुवाद किया, जो हिजरी सन् १०६७में पूरा हुआ। उसने लिखा है—"अगर कोई भी कठिन समस्या अथवा सूक्ष्म प्रश्न उसके मनमें आता था, जिसका निराकरण पूरी चेष्टाके बाद भी वह नहीं कर पाता था, तो उसकी गुत्थीको इस प्राचीन ग्रन्थकी सहायतासे सुलझानेमें वह समर्थ हो पाता था। निस्सन्देह यह पहला ईश्वरीय ग्रन्थ है और एकेश्वरवादके महासागरका उद्गम-स्थल है।" दाराशिकोहने भगवद्गीताका भी अनुवाद फ़ारसीमें किया था, जिसकी हस्तलिखित प्रति इण्डिया-आफ़िसकी लाइब्रेरीमें सुरक्षित रखी हुई है। डा० रिउका कहना था कि वह अबुल फ़ज़लकी लिखी हुई

१. प्रा० इ० लि०, पृ० ६० ।

है, लेकिन डा० इथेने इसका-जोरोंसे प्रतिवाद किया है और उसे दारा-शिकोहका लिखा हुआ बतलाया है। उसने रामायण, गीता, उपनिषद् तथा योगवाशिष्ठका अनुवाद फ़ारसीमें किया था। हिन्दु साधुओंके सत्संग द्वारा भी वह ज्ञान प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील रहता था। हिन्दू योगी लालदास और सूफी सरमदसे वह पूरा प्रभावित था[1]।

दाराशिकोहको मुल्लाओंका कोप-भाजन बनना पड़ा। उसकी इन कारवाइयोंको सनातन-पन्थी इस्लामके अनुयायी बर्दाश्त नहीं कर सके। अतएव उसे अपने प्राणोंसे भी सन् १६५९ ई० में हाथ धोना पड़ा। लेकिन उसकी मृत्युका कारण केवल धर्म ही नहीं था बल्कि उसका राजनीतिक कारण भी था। औरंगजेब स्वयं बादशाह होना चाहता था और अपनी धार्मिक-कट्टरताके द्वारा उसने मुसलमानोंको अपने पक्षमें कर लिया। दाराशिकोहका यह कहना कि हिन्दू तथा मुसलमानोंके रहस्यवादमें केवल शब्दोंकी ही भिन्नता है, मूलमें दोनों एक ही हैं, कट्टर मुसलमानोंके लिए असह्य था। दाराशिकोहने अपनी पुस्तक 'मज्मुल बहरैन' में हिन्दुओं और मुसलमानोंके दार्शनिक तत्त्वोंमें समानता दिख-लानेकी चेष्टा की है। 'मज्मुल बहरैन'का अर्थ है—'जहाँ दो समुद्रोंका मिलन होता है'।

मुहम्मद काज़िमके 'आलमगीर-नामा'के एक उद्धरणसे इस बातका पता चल जाता है कि कट्टर मुसलमानोंकी दृष्टिमें दाराशिकोह कैसा था। मुहम्मद काज़िम लिखता है—

"तसव्वुफ़ नाम देकर जिन स्वतन्त्र-विचारों और धर्म-विरोधी भाव-नाओंको दाराशिकोहने प्रश्रय दे रखा था, बादमें चलकर वह उन्हीं तक सीमित नहीं रहा बल्कि हिन्दुओंके धर्म और प्रतिष्ठानोंकी ओर भी उसका रुझान हो गया। वह बराबर ब्राह्मणों, योगियों और संन्यासियोंकी संगतमें रहने लगा और इन गुमराह तथा गये गुज़रे लोगोंको पण्डित और परम-ज्ञानका जानकार मानने लगा। वह उनकी पुस्तकोंको जिन्हें वे

1. हि० औ० (खंड १), पृ० २९७।

वेद (वेद) कहते हैं, परमात्माका वचन मानने लगा। उन्हें वह परमात्मा द्वारा प्रकट किया हुआ तथा अतिप्राचीन और उत्कृष्ट ग्रन्थ समझने लगा और उन्हीं के अनुवाद में लगा रहता। अल्लाहके पवित्र नामके बदले हिन्दू नाम 'प्रभु'को अपनाया और अपनी अँगूठियोंपर उसने हिन्दी अक्षरोंमें इस नामको खुदवा लिया। इन उलटे-सीधे विचारोंके कारण उसने नमाज, रोजा और अन्य धार्मिक कृत्योंको छोड़ दिया।"[1]

इससे यह अच्छी तरहसे समझा जा सकता है कि हिन्दु धर्मका प्रभाव मुस्लिम समाजके कुछ लोगोंमें कितनी दूरतक पहुँच गया था। दाराशिकोहकी ही तरहसे बादशाह अकबर, अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी भी हिन्दू धर्मसे अत्यधिक प्रभावित हुए थे। उन्होंने अपने धर्मकी उत्कृष्टताको सन्देहकी दृष्टिसे देखना शुरू किया अथवा उसे छोड़ ही देना चाहा।

अब्दुल क़ादिर बदायूनीने अकबरके सम्बन्धमें जो लिखा है उससे पता चलता है कि अकबरमें कितना अधिक परिवर्तन आ गया था। बदायूनीके अनुसार अकबरके मनमें यह बात आ रही थी कि इस्लामको एक ही हजार वर्ष रहना था अतएव वह शेखों और उलमाओंके निर्देशोंको माननेके लिए बाध्य नहीं रह गया। उसकी मनःस्थिति ऐसी हो गयी थी कि हजरत मुहम्मदके बदले अपनेको पैगम्बर कहना चाहता था लेकिन ऐसी घोषणा करनेका उसे साहस नहीं हुआ। फिर भी उसने अपना नया धर्म "तौहीदे इलाही" चलाया जो केवल ऊपर ऊपरसे ही इस्लाम-धर्मके जैसा मालूम होता था। बदायूनीके अनुसार अकबरने इस बातको माना कि आत्मा परमात्मामें जाकर मिल जाता है जो इस्लाम धर्मके विरुद्ध है। जरथुस्त्री धर्मवालोंकी तरह अग्नि-पूजा भी उसने चलाई और अबुल फ़ज़लको यह आदेश दिया कि वह यह देखे कि अग्नि बुझने न पावे[2]।

ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीमें सूफीमतमें और भी परिवर्तन आ गया।

1. इण्डि. इ., पृ० १६१-१६२।

२. वही, पृ० १६०।

शाहजहाँके कालमें सूफीमत हिन्दू धर्मसे प्रभावित तो हुआ और दाराशिकोहके कारण इस प्रभावका और भी विस्तार हुआ लेकिन ये सूफी, इस्लाम धर्मको छोड़कर अलग नहीं गये। यद्यपि उनमें कुछ ऐसे अवश्य थे जो अधिक-से-अधिक हिन्दू धर्मकी ओर झुक गये थे। औरंगजेबके दकियानूसीपन और अनुदारताके कारण बहुतसे सूफी इस्लामी कट्टरताके विरोधमें बोलनेको बाध्य हुए। वे हिन्दू धर्मकी ओर और भी अधिक झुके। औरंगजेबने सूफियोंके साथ अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार किया था। सूफियोंके प्रति उसके इस क्रोधके दो कारण थे। एक तो वह उन सूफियोंको जो धर्मके विरोधमें कुछ बोलते या आचरण करते कठिन-से कठिन दण्ड देनेके लिए प्रस्तुत रहता। दूसरे उन सूफियोंको जिन्हें वह अपने भाई दाराशिकोहका मित्र समझता था उनके प्राणोंकी ख़ैर नहीं थी। उसने सरमदको मरवा डाला जो उस कालका एक सुप्रसिद्ध सूफी था[1]। दाराशिकोह क़ादिरी सम्प्रदायका था अतएव क़ादिरी सम्प्रदायवालोंको औरङ्गजेबका बराबर भय बना रहता[2]। दाराशिकोहको मुहम्मदशाह निसानुल्लाहने क़ादिरी-सम्प्रदायमें दीक्षित किया था[3]। मुहम्मदशाह, मियाँ मीरके शिष्योंमें थे। दाराशिकोह अपने नामके साथ क़ादिरी और हनीफ़ीका व्यवहार किया करता। उसी कालमें बुल्लेशाह और इनायतशाह जैसे भी सूफी हुए थे। इनायतशाहने अपने ग्रन्थ 'दस्तूर-उल-अमल' में मुक्ति पानेके विभिन्न साधनोंका ज़िक्र करते हुए योगकी क्रियाओंका उल्लेख किया है। उसी ग्रन्थमें इनायतशाहने यह भी बतलाया है कि परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानको अलेक्ज़ेण्डर अपने साथ भारतवर्षसे ग्रीस ले गया था और वहाँसे इस्लाम धर्मके अनुयायियोंने उसे पाया[4]। बुल्लेशाह

१. हि. औ. (खण्ड ३) पृ० ११२–१३।

२. वही, (खण्ड १) पृ० २९८।

३. ब्लौ, पं. ट्रा. का. प्रथमखण्ड, पृ० ५०२।

४. पं. सू. पो., पृ० ४६।

उसीका शिष्य था। बुल्लेशाहने स्पष्ट भाषामें सनातन-पन्थी इस्लामके आचारोंका विरोध किया है। उसकी पंजाबी भाषाकी कवितासे यह पता चल जाता है कि किस प्रकारसे उसने अन्तर-शुद्धि और मनकी निष्ठापर ज़ोर दिया है। बुल्लेको यह कहकर लोग उपदेश देते हैं कि ऐ बुल्ले, जाओ, मस्जिदमें बैठो; लेकिन मस्जिदमें जानेसे क्या हुआ अगर हृदयने प्रार्थना नहीं की ! बाहरकी पवित्रतासे क्या अगर भीतरकी मैल नहीं गयी ? बिना एक सिद्ध मुर्शिदके तुम्हारी प्रार्थना निष्फल है। आगमें जाय नमाज़ ! मिट्टीमें मिले रोज़ा ! कल्मापर सियाही फिर गयी। बुल्लेशाह कहता है, मालिक तो मेरे भीतर मिल गया है और लोग उसे दूसरी जगह खोजते हैं।

भारतीय चिन्ताधाराका प्रभाव बुल्लेशाहपर इतना अधिक पड़ा था कि उसके लिए परमात्मा नाना पैगम्बरों और अवतारोंमें दीख पड़ता है—

बिन्द्राबन में गौ चरावे
लंका चढ़के नाद बजावे
मक्केदा बण हाजी आवे
वाह वाह रंग वटाईंदा
हुन किथे आप चपाईंदा।

अर्थात् वृन्दावनमें तुमने गायें चरायीं, लंकापर चढ़ाईकर (विजयका) डंका बजाया और (फिर) तुम मक्कामें हाजी होकर आये, तुमने अद्भुत ढंगसे रूप बदले हैं। अब तुम अपनेको क्यों छिपा रहे हो ?

बुल्लेशाहने उसे पा लिया है। वह प्रियतम सबके भीतर समाया हुआ है—

सैयो हुन साजन मैं पाइयो ई
हर हर दे बिच समाईयो ई

इस प्रकारसे सूफियोंने मुहम्मदके साथ-ही-साथ अन्य अवतारोंको भी सम्मानकी दृष्टिसे देखना शुरू किया। मन्दिर और मस्जिदका भेद उनके लिए नहीं रह गया। ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीका एक सुप्रसिद्ध सूफी

साहिबजानी तो इतनी दूरतक बढ़ गया कि उसने मन्दिरोंमें पूजा करनी भी शुरू कर दी[1]। सूफियोंमें बहुत ऐसे भी थे जो मांससे परहेज करते थे। सभी प्राणियोंके प्रति उनके मनमें दया थी और मांस खाना उनकी दृष्टिमें हिंसा थी[2]।

बुल्लेशाहकी कवितासे हम यह स्पष्ट देखते हैं कि भारतीय वातावरण-से प्रभावित होकर मुसलमानोंकी दृष्टि उदार और व्यापक हुई। कुरानमें यह कहा गया है कि प्रत्येक देशका अपना पैगम्बर और कुरान जैसा धर्म-ग्रन्थ है जो मनुष्य-प्रणीत नहीं है। अतएव उन्होंने राम और कृष्णको भी उसी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा और उनका स्मरण करते समय उन्होंने वैसा ही सम्मान प्रदर्शित करना शुरू किया जैसा कि वे हजरत मुहम्मदके नामका स्मरण करते समय किया करते थे[3]। सूफी कवियोंमें यह प्रवृत्ति भी देखनेको मिलती है कि जैसे वैष्णव कृष्णको उपास्य देव मानकर वृन्दावन, गोकुल और राधाका नाम लेते हैं उसी प्रकार उन्होंने हजरत मुहम्मदको लेकर काव्य-रचना की है। सूफी स्वयं अपनेको राधाके स्थानपर रखता है, मदीना उसके लिए मथुरा है। गोकुल अथवा वृन्दावन उसका अपना घर है। करीम बख्श एक पंजाबी सूफी थे। उन्होंने एक बारां माह (बारहमासा) लिखा है जिसमें उन्होंने भारतीय बारह मासोंका जिक्र किया है और राधाकी तरह उन्होंने भी अपने हृदयकी वेदना प्रकट की है[4]।

पंजाबके शम्सी सम्प्रदाय वाले जो झेलम नदीके पश्चिममें ही हैं, आगा खाँको ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन त्रिदेवोंका अवतार मानते हैं[5]। वे भगवद्गीताके प्रति श्रद्धाका भाव रखते हैं यद्यपि मूर्तिकी पूजा नहीं करते।

१. दबिस्ताँ, खंड ३, पृ० ३०२ (पं० सू० पो०, भूमिका, पृ० १८)।

२. वही पृ० ३०२।

३. इनायत अल्लाह खाँ, तजकिरा (इण्डि० इ० पृ० २०८)।

४. पं० सू० पो०, पृ० ११४-११९।

५. इण्डि० इ०, पृ० १७५।

बाहरसे देखनेमें हिन्दू जैसा मालूम होते हैं। सम्भवतः इस्माईली सम्प्रदायके खोजासे वे सम्बन्द्ध हैं। कहा जाता है कि मुल्तानके एक सुप्रसिद्ध सन्त पीर शम्सुद्दीन तबरीजीके नामपर उनके सम्प्रदायका नामकरण हुआ है। पीर सदर अल-दीनने ब्रह्माको मुहम्मद माना, विष्णुको अली और आदमको शिव[1]। पीर सदर अल-दीन खोजा सम्प्रदायका सन् १४३० ई०के लगभग प्रधान था। सिन्धमें उसके प्रयाससे बहुत लोग मुसलमान बने। उसने 'दशावतार' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें अलीको विष्णुका दसवाँ अवतार माना। प्रारम्भसे ही खोजा-सम्प्रदायवाले इसे अपना धर्म-ग्रन्थ मानते आये हैं। नौ अवतारोंतक तो वे ठीक हिन्दुओं की तरह से मानते हैं लेकिन दसवाँ अवतार अलीको मानते हैं। इस ग्रन्थको खोजा-सम्प्रदायवाले बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। मरणासन्न व्यक्तिके पास इस ग्रन्थका खोजा लोग पाठ करते हैं। अन्य धार्मिक कृत्योंके अवसरपर भी इसका पाठ किया जाता है।[2] पीरजाद-सम्प्रदायवाले भी विष्णुके दसवें अवतारको, जिसे वे निष्कलंक अवतार मानते हैं, भविष्यमें आनेवाला परमदेव मानते हैं। बंगालके मुसलमान कवियोंमें करम अली और करीम अल्लाहने राधा और कृष्ण तथा कालीके गान गये हैं[3]। हिन्दीमें रसखान आदि मुसलमान ही थे। पीरजाद सम्प्रदायका प्रवर्तक मुहम्मद शाहदुल्ला था जो ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीके मध्यमें था। पंजाबके हुसैनी ब्राह्मण हिन्दू हैं। वे माथेपर तिलक लगाते हैं लेकिन मुसलमानोंके यहाँ भीख माँगते हैं। वे हजरत इमाम हुसैनकी कहानी कहते हैं इसीलिए उनका नाम हुसैनी ब्राह्मण पड़ा। इस्लामके बहुतसे धार्मिक कृत्योंको वे मानते हैं। वे रोजा रखते हैं और ख्वाजा मुईनिद्दीन चिश्तीके परम भक्त हैं[4]।

१. खोजा वृत्तान्त पृ० २०८। (प्रि० इ० पृ० २७५)

२. प्रि० इ०, पृ० २७४।

३. हि० बं० लैं० लि० पृ० ७९८-७९९।

४. इन्डि० इ० पृ० १७४-१७५।

आर्नल्डका कहना है कि पंजाबके मेवात और गुरगाँव जिलोंमें बहुतसे मुसलमान केवल नाममात्रके लिए मुसलमान हैं। इस्लाम धर्मके बारेमें वे कुछ नहीं जानते। उनके यहाँ मस्जिद भी नहीं है[1]। राजपूतानाके मेरात पहले शादी-विवाहमें हिन्दुओंकी तरह विधि-विधानका पालन करते थे और जंगली सूअरका माँस खाते थे लेकिन अब वे कट्टर होते जा रहे हैं।

टाइटसने मुसलमानोंमें कई प्रकारकी मूर्ति-पूजाकी चर्चा की है जो इस्लाम धर्मके विरुद्ध है। यू. पी. के चूड़िहार कलका सहजा माईकी पूजा करते हैं और हिन्दुओंकी तरह श्राद्ध करते हैं। पंजाबके मेओ, सियान्सी, भगती और लल्चीकी पूजा करते हैं। मेओ नाममात्रके मुसलमान हैं। हिन्दुओंके व्रत, त्यौहारको वे उसी प्रकारसे करते हैं जिस प्रकारसे हिन्दू। लेकिन उपवास और रोजा उन्हें मान्य नहीं। गाँवके देवी-देवताओंको पूजते हैं और ब्राह्मणोंको अपना पुरोहित मानते हैं[2]। अमृतसरके मिरासी, दुर्गा भवानी की और पूर्वी बंगालके तुर्कनवास, लक्ष्मी देवीकी पूजा करते हैं। मद्रासके दुदेकुल हिन्दुओंकी तरह हथियारोंकी पूजा करते हैं। तावीजका प्रचार हिन्दुओं और मुसलमानोंमें समान रूपसे है और भूत भगानेके लिए समान रूपसे दोनोंमें झाड़-फूँक चलती है। यद्यपि इन पूजाओंका प्रचलन धीरे-धीरे कम होता गया है लेकिन प्लेग आदि महामारीके फैलनेपर मुसलमान स्त्रियाँ मन्नतें मानती हैं और सब प्रकारके देवी-देवताओंकी पूजाके लिए प्रस्तुत रहती हैं। चेचक फैलनेपर वे शीतला माईकी पूजासे विरत नहीं होतीं[3]।

इसी प्रकारसे कानपुर जिलेमें दीक्षित वंशवालोंमें जो मुसलमान हो गये हैं वे जन्म, विवाह और मृत्युके समय इस्लाम धर्मसे अनुमोदित कृत्य करते हैं लेकिन नमाज नहीं पढ़ते। वे भी चेचकके भयसे चेचक देवीकी पूजा करते हैं। इस प्रकारसे हिन्दूसे मुसलमान बन जानेवाले अपने

१. प्रि. इ., पृ० २८७।

२. एथनोग्राफी, पृ० ४९।

३. इन्डि. इ., पृ० १६६।

पुराने धर्म और विश्वासोंको सम्पूर्णतया छोड़ नहीं सके और मुस्लिम समाजको प्रभावित करते रहे[1]।

एक और भी अद्भुत चीज धीरे-धीरे हिन्दू और मुस्लिम समाजमें आयी। बहुतसे हिन्दू, मुसल्मान पीरोंके शिष्य थे और बहुतसे मुसलमान, हिन्दू योगियोंके चेले थे। सैय्यद मुहम्मदलतीफके अनुसार मियाँ मीरने जो एक सूफी थे, गुरु-हरगोविन्दकी बहुत बार सहायता की थी। लाहौरके काजीकी रिश्तेदार किसी औरतको उन्होंने गुरुके पास भेजा था जो गुरुके विचारों और सिक्ख-धर्मके सिद्धान्तोंसे खूब प्रभावित थी और सिक्ख धर्म ग्रहण करना चाहती थी[2]। बाबा फत्तू (सन् १७०० ई०) एक मुस्लिम थे। उनके बारेमें कहा जाता है कि एक हिन्दू सन्त सोधी गुरु गुलाबसिंहके आशीर्वादसे उन्हें भविष्यवाणी करनेकी शक्ति प्राप्त हुई थी। उनका मक़बरा काँगड़ा जिलेके रनीतालमें है। और दूसरी ओर बाबू शाहानाको एक मुस्लिम फ़क़ीरका चेला कहा जाता है। झंग जिलेमें बाबा शाहानाके अनुयायी हैं। पंजाबके गिरोत स्थानमें जमाली सुल्तान और दियालभावनकी कब्रें पास-पास हैं। ये दोनों साधु थे। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें ये दोनों थे। दोनोंमें बड़ी मित्रता थी। इन दोनोंकी कब्रोंपर हिन्दू और मुसलमान दोनों जाकर पूजा चढ़ाते हैं[3]।

मलङ्ग-सम्प्रदायवाले हिन्दू गोसाईं साधुओंकी तरह पहाड़ों, जंगलोंमें घूमते-फिरते रहते हैं। सन्तोंकी समाधिका दर्शन करते रहते हैं और जहाँ बैठते हैं वहाँ धूनी लगाते हैं और अपने शरीरमें भस्म मलते हैं[4]। पंजाबके झङ्ग जिलेमें सादिक़ निहङ्गके स्थानपर मुस्लिम फ़कीर धूनी लगाते हैं जो रात-दिन जलती रहती है। सन्तका जब उर्स होता है तब इस धूनीपर

१. गौ. ना. बे. प्रा. खण्ड ६, पृ० ६४।

२. हि. पं.०, पृ० २५६।

३. इन्डि. इ., पृ० १५४–१५५।

४. इ. इन्डि., २९०।

रोट पकाते हैं जो तोड़-तोड़कर लोगोंमें बाँटा जाता है[१]। इसी प्रकार से गोरखपुरके इमामबाड़ेमें एक धूनी जलती रहती है जिसे क्रुकने बतलाया है कि वह रोशनअली नामक एक शिया फ़क़ीर ने पहले पहल प्रारम्भ किया था। एक सौ वर्षसे वह इसी तरहसे जलती आ रही है। कहा जाता है कि उसके भस्मसे ज्वर दूर होता है।

पंजाबके उत्तर-पश्चिमी कोनेपर अवान प्रायः छः सौ वर्षोंसे रहते आये हैं। कहा जाता है कि वे मारवाड़से आये। अवान प्रायः मुसलमान हैं लेकिन वे ब्राह्मण पुरोहितसे काम लेते हैं। खोखर भी वहीं हैं और वे भी मुसलमान हैं लेकिन वे राजपूत परम्पराका पालन करते हैं[२]। हिन्दू समाजकी जाति-व्यवस्थाका प्रभाव भी मुसलमानोंपर अत्यधिक पड़ा है और जिस प्रकारसे हिन्दू समाजमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं उसी प्रकार देशके कुछ हिस्सोंमें नया मुसलमान बननेवाले अपनेको शेख, सैयद, मुगल या पठान किसी एकमें गिनते हैं[३]। मुसलमानों की इस प्रवृत्तिके लिए दो प्रमुख कारण हैं। एक तो यह कि अरब, तुर्क और पर्शियावाले जो यहाँ आये उनके हाथमें राजशक्ति थी। वे बादशाह थे या सरकारी उच्च-पदस्थ कर्मचारी और स्वभावतः समाजमें प्रतिष्ठित माने गये। जो यहाँके नये मुसलमान बने उनसे वे अपनेको श्रेष्ठ मानते थे। दूसरा कारण नया मुसलमान बननेवालोंका पूर्व-संस्कार था। मुसलमान बननेके पहले वे अगर उच्च जातिके थे तो मुसलमान बननेके बाद वे भूल नहीं सके कि वे उच्च जातिके हैं अतएव जो निम्नवर्गके थे और जिन्होंने इस्लाम धर्मको ग्रहण किया उन्हें अपने समान समझनेमें उन्हें संकोच बोध होता था। इसी वजहसे मुसलमानोंमें ऊँच-नीचका भेद आया। यद्यपि यह भेद मस्जिदमें नमाज पढ़ते समय नहीं दीख पड़ता। फिर भी जहाँतक वैवाहिक आदि सम्बन्ध हैं उसमें यह भेद वर्तमान है।

१. से. इ. रि. पं. १९११, (खंड १), पृ० १७५।

२. पुथनोग्राफी, पृ० ४७।

३. वही, पृ० १३१।

पश्चिमी भारतके पर्सियन बाशिन्दे जो मुगलके नामसे प्रसिद्ध हैं, शिया हैं और वे भारतीय मुसलमानोंसे विवाह नहीं करते[1]। निम्नवर्गसे बननेवाले मुसलमान 'नौ-मुस्लिम' कहलाते और उच्चवर्गमें जाना उनकी सम्पत्ति या उनके आचार व्यवहारपर निर्भर करता। इसीका आभास हम इस बातमें पाते हैं कि "पिछले साल मैं एक जुलाहा था, इस साल शेख हूँ और अगले साल अगर (चीजोंकी) क़ीमत बढ़ जाय, तो मैं सैयद हो जाऊँगा[2]।

सैयद अपनेको पैगम्बरकी पुत्री फ़तिमाका वंशज मानते हैं। इस नामकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें उनका कहना है कि जब जिब्राइल परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानको लेकर नीचे आये तो उन्होंने पन्जतने-पाक (पाँच पवित्रात्मा), मुहम्मद, अली, फातिमा, हसन और हुसैनके ऊपर एक चादर फैला दी और बोले कि 'ऐ मुहम्मद, सर्वशक्तिमान तुम्हारे ऊपर आशीर्वादकी वर्षा कर रहे हैं और उनके हुक्मसे तुम तथा तुम्हारे साथ जो बैठे हुए हैं उनके वंशज आजसे सैयद कहलायेंगे[3]। शेख वास्तवमें उन्हींके लिए व्यवहृत होना चाहिये जो अरब हैं और विशेष रूपसे कुरैशोंकी तीन शाखाओंके लिए। अबू बकके वंशजोंके लिए सिद्दीकी, उमरके वंशजोंके लिए फ़ारुक़ी और अब्बासके वंशजोंके लिए अब्बासीका व्यवहार होता है। ये सभी 'शेख़' का व्यवहार अपने नामके साथ करते हैं। लेकिन आज इसका सबसे अधिक व्यवहार होने लगा है और अब वह केवल उसी अर्थमें प्रयुक्त नहीं होता जिस अर्थमें उसका प्रयुक्त होना उचित बताया जाता है। अब इन तीनोंके अलावे हाशिमी, अन्सारी तथा और भी बहुतसे छोटे समुदाय इसका व्यवहार करते हैं[4]। मुगल वास्तवमें मंगोल नहीं हैं। उनमें दो जातियोंके लोग हैं—पर्सियन और चगताई। बाबर चगताई

१. एथनोग्राफी, पृ० १४३।

२. इ. इ., पृ० १०।

३. इ. इ. इ. पृ० १०।

४. एथनोग्राफी, पृ० १४०।

वंशका था और चगताई वास्तवमें टर्कोंके थे। भारतवर्षमें बाबरके वंशजोंको मुग़ल इसलिए कहा गया है कि जिसमें टर्कोंके ओटोमन बादशाहोंसे उनका अन्तर स्पष्ट हो सके[१]। चूँकि मुग़ल दिल्लीके बादशाह थे अतएव अरबोंके बाद उनका स्थान है। पठान वे हैं जो अफ़ग़ानिस्तान और पश्चिमोत्तर प्रदेश और उसके आस-पासके प्रदेशोंके रहनेवाले हैं। दिल्लीके मुसलमानों (सन् १२०६ ई० से १४५० ई० तक)के लिए 'पठान' शब्दका प्रयोग भूलसे किया जाता है। वास्तवमें बहलोल लोदी (सन् १४५० ई० सन् १४८९ ई०) ही दिल्लीका पठान शासक था। शेरशाहका सूर-वंश भी पठान ही था।[२]

आधुनिककालके मुस्लिम-नेताओंमें सर मुहम्मद इक़बालने मुसलमानोंकी इस जाति-पाँतिके विभेदको लेकर बहुत दुःख प्रकट किया है। इस्लाम वास्तवमें जाति-पाँति नहीं मानता, सभी मुसलमानोंको सिद्धान्ततः समान सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं फिर भी हिन्दूसे मुसलमान बने हुए लोगोंमें अभी ऐसे संस्कार दीख पड़ते हैं जो उनमें मुसलमान होनेके पहले वर्तमान थे। जैसे खानपानके मामलेमें वे अपनेसे बाहरवाले मुसलमानोंसे परहेज रखते हैं[३]। इस प्रकारसे मुसलमानोंमें दो सामाजिक समुदाय हो गये हैं : शरीफ़ जात (ऊँची जाति वाले) और अजलाफ़ जात (नीची जाति वाले)।[४]

सर मुहम्मद इक़बालने दुःख प्रकट करते हुए कहा है जिसका सारांश इस प्रकार है—इस देशमें क्या मुसलमानोंकी एकता सुदृढ़ है ? धार्मिक क्षेत्रमें कुछ उन्मादी नानाप्रकारसे सम्प्रदाय और समुदाय बनानेमें व्यस्त हैं और एक दूसरेसे लड़ते रहते हैं। मुसलमानोंने इस मामलेमें हिन्दुओंको भी मात कर दिया है। मुसलमानोंमें जाति-

१. इन्डि. इ., पृ० १७०।

२. इ. इ. इ., पृ० ११।

३. वही, पृ० ९।

४. इन्डि. इ., पृ० १६९।

विभेदके दो प्रकार हो गये हैं—धार्मिक जाति-भेद और सामाजिक जाति-भेद मुसल्मानोंने हिन्दुओंसे सीखा है। शान्त तरीकोंमेंसे यह एक है जिससे विजित जाति, विजयी जातिसे बदला लेती है[1]।

चाहे जो हो, ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं जिनसे यह भलीभाँति समझा जा सकता है कि भारतवर्षमें मुसल्मानोंके अधिकारके कुछ दिनों बादसे ही हिन्दू आचार-विचार, धार्मिक साधना आदिका प्रभाव मुसल्मानोंपर पड़ने लगा।

---

१. वही, पृ० १७१।

१४. भारतवर्षके सूफी सम्प्रदाय

कहा जाता है कि भारतवर्षमें सूफी सम्प्रदायका प्रवेश ईसाकी बारहवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें हुआ[1]। वैसे हम पहले देख चुके हैं कि सूफी साधक बहुत पहलेसे ही इस देशमें आने लगे थे लेकिन सम्प्रदायके रूपमें सूफीमतका प्रवेश बादमें ही हुआ। सूफी सम्प्रदायोंका संघटन भी बादमें ही हुआ। हमें यहाँ यह स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिये कि सूफीमतके विकासके क्रममें प्रसिद्धि-प्राप्त साधकोंके शिष्य-प्रशिष्य होते गये और उन्होंने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायोंका रूप ले लिया। ये सम्प्रदाय धीरे-धीरे अन्य देशोंमें फैल गये। सम्प्रदायोंका नामकरण भिन्न-भिन्न सूफी-साधकोंके नामपर हुआ। ईसाकी बारहवीं शताब्दीतक इन सम्प्रदायोंका रूप स्पष्ट हो गया[2]।

सूफियोंके अनुसार इन विभिन्न सम्प्रदायोंका आविर्भाव इस्लामके साथ ही हुआ। यह हम देख चुके हैं कि इस्लामके प्रारम्भिक कालमें परमात्माके दण्डके भय तथा नरकाग्निकी यातना भोगनेकी कल्पनासे लोग सांसारिकतासे विमुख होने लगे और संन्यासकी ओर झुके। परमात्माके दण्डका भय उन्हें इस प्रकारसे अभिभूत किये हुए था कि लोग सांसारिक माया मोहका त्याग कर एकान्त सेवन करने लगे। इस प्रकारके लोगोंके धीरे-धीरे दल भी बन गये। द' ओसन (D' Ohsson) का कहना है कि हिजरी सन्‌के प्रथम वर्षमें मक्काके पैंतालिस तथा मदीनाके उतने ही लोगोंने एक दल संघटित किया और उन्होंने पैगम्बरके प्रति वफ़ादारीकी शपथ ली। उन्होंने यह भी तय किया कि प्रतिदिन वे कुछ विशेष

---

१. इन्फ्लु० इ०, पृ० ११७।

२. सूफि०, पृ० १५९।

धार्मिक साधनाएँ करेंगे। इन लोगोंने अपने लिए 'सूफ़ी' नाम रखा[1]।

प्रायः सभी सूफ़ी सम्प्रदाय हज़रत मुहम्मदसे ही अपने सम्प्रदायका आविर्भाव बतलाते हैं और हज़रत मुहम्मदके बाद चौथे खलीफा हज़रत अलीसे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। खलीफोंके क्रमकी दृष्टिसे भले ही अलीका स्थान चौथा हो गया हो लेकिन हम आगे चलकर देखेंगे कि सूफी सम्प्रदायों-की दृष्टिसे उनका स्थान हज़रत मुहम्मदके बाद ही है। अलीके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाले सैकड़ों सम्प्रदाय हैं जब कि अबू बक्रके साथ अपना सम्बन्ध जोड़नेवाले केवल तीन ही हैं। ये तीन बिस्तामी, बक़्तशी और नक़्शबन्दी हैं। अलीका स्थान कुछ ऐसे महत्वका हो गया है कि नक़्शबन्दी भी अपना सम्बन्ध उनसे किसी-न-किसी तरह जोड़ लेते हैं।

द' ओसन (D' Ohsson) का कहना है कि पैग़म्बरके जीवित रहते ही अबू बक्र और अलीने इस प्रकारके दल संघटित कर लिये थे और अपने-अपने दलका वे नेतृत्व करते थे। उनकी अलग-अलग धार्मिक क्रियाएँ थीं और दलमें शामिल होनेवालेको एक विशेष शपथ लेनी पड़ती थी[2]। इन धार्मिक सम्प्रदायोंके विकासमें उवैसकी कहानी अपना एक महत्त्व रखती है। वैसे उवैसकी कहानीको प्रामाणिक माननेमें बहुतोंको संकोच है। कहा जाता है कि सबसे पहले उवैस करनीने सन् ६५७ ई० में कठोर जीवन बितानेवाले फ़कीरोंके एक सम्प्रदायका श्रीगणेश किया[3]। वह यमनमें करनका रहने वाला था। कहा जाता है कि एक दिन उसने बतलाया कि जिब्राइलने सपनेमें आकर उसे आदेश दिया है कि परमात्माने उसे संसार-त्याग करने तथा तापस जीवन बितानेके लिए कहा है। उसका यह भी कहना था कि जिब्राइलने उसे भविष्यमें क्या करना होगा इसकी योजना बता दी है और संघटनके नियमोंको भी बता दिया है। वे नियम कुछ इस प्रकारके थे—सब सांसारिक सुखोंका

---

१. दर०, पृ० २६५।

२. दर०, पृ० २६६।

३. वही, पृ० २६६।

त्याग, समाजसे अलग रहना, परमात्माका रात-दिन स्मरण और ध्यान आदि। उहुदकी लड़ाईमें पैगम्बरके दो दाँत टूट गये थे अतएव उवैसने अपने दाँत उखड़वा दिये थे। उसके दलवालोंके लिए दाँतोंका उखड़वा देना आवश्यक था। उसने लोगोंको विश्वास दिलाया कि जब वे लोग सोये रहेंगे तब एक देवदूत आकर उनके दाँतोंको उखाड़ देगा और जागनेपर उन दाँतोंको वे अपने पास ही पड़ा हुआ पायेंगे। यह सहज ही समझा जा सकता है कि उसके सम्प्रदायमें शामिल होनेके लिए बहुत ही कम लोग उत्सुक हुए होंगे। बादमें यमनतक ही उसका सम्प्रदाय सीमित रह गया[1]।

प्रथम जो साधकोंके दल थे वे बराबर एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाया करते थे जो बादमें चलकर अत-तरीक़ (पथ) अथवा ख़ानवाद (परिवार) कहे जाने लगे। उन्हें ही आजकल सम्प्रदाय कहा करते हैं। इन सम्प्रदायोंमें शिष्य-प्रशिष्यका सिलसिला कुछ इस प्रकारका है कि सम्प्रदायोंके आदि-प्रवर्तकोंके उपदेश अथवा विशेष विधि एक-के-बाद दूसरी पीढ़ीके शिष्यको प्राप्त होती जाती है। सम्प्रदायके मुर्शिद या पीर आदि प्रवर्तकके उत्तराधिकारी समझे जाते हैं। यह मुर्शिद या पीर ही उस सम्प्रदायका प्रधान समझा जाता है।

सभी सम्प्रदायोंका आविर्भाव चार पीरोंसे माना जाता है। लेकिन ये चार पीर कौन थे इसमें बहुत ही मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है चार पीरोंके नाम इस प्रकार हैं—(१) हजरत मुर्तजा अली (पैगम्बरके दामाद), (२) अलीके बनाये हुए ख़लीफ़ा, ख्वाजा हसन बसरी (३) ख्वाजा हबीब आजमी, जो हसनके द्वारा ख़लीफ़ा मनोनीत किये गये थे, (४) अब्दुल वाहिद बिन ज़ैद कुर्फी[2]। चार पीरोंके नाम जो इस प्रकार गिनाये गये हैं वे सर्वमान्य नहीं हैं। अलीको इन चार पीरोंमें नहीं गिनते। कहा जाता है कि अलीके सत्तर शिष्य थे जिन्होंने

1. दर०, पृ० २६६-२६७।

2. ह० इ० इ०, पृ० २८७।

अलीकी मृत्युके बाद अपनेमें ही चार पीरोंको चुना। इन चार पीरोंमें कुछ तो हसन, हुसैन, ख्वाजा कुमैल और बसराके हसनका नाम लेते हैं और कुछ इन चार नामोंमें अन्तिम दोको तो ज्योंका त्यों रख देते हैं लेकिन हसन और हुसैनके बदले उवैसुल करनी और सरीउस-सकतीका नाम लेते हैं। इनमें भी सरीउस-सकतीके बदले कोई-कोई अब्दुल्ला बहरीका नाम लेते हैं[1]। एक और लिस्ट है जिसमें चार नाम आते हैं। प्रथमके चार नामोंके समान ही ये नाम भी हैं, केवल उनके पहले या पीछे रखनेमें अन्तर है। इस लिस्टमें ये नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं—(१) कमिल, (२) इमाम हसन, (३) इमाम हुसैन और (४) ख्वाजा हसन बसरी[2]।

इन चार पीरोंसे चौदह खानवादे (परिवार) हुए। वास्तवमें ये चौदह सम्प्रदाय हसन अल-बसराके शिष्य-प्रशिष्योंसे हुए। अभी हमने देखा है कि चार पीरोंके नाममें मतभेद है लेकिन हसन अल-बसराका नाम सबने समान रूपसे रखा है। इस प्रकारसे हजरत अलीके बाद उसीका नाम महत्त्वका है। तीन प्रमुख सूफी सम्प्रदाय चिश्ती, कादिरी और सुहरवर्दी उसीसे सम्बद्ध हैं और चौथा मुख्य सम्प्रदाय नक़्शबन्दी, अबू बक्रके नामसे युक्त है।

हसनके दो प्रमुख शिष्योंसे दो सम्प्रदाय हुए। उसके शिष्योंमें ख्वाजा अब्दुल वाहिद बिन जैदसे जैदिया सम्प्रदाय तथा हबीबुल अजमीसे हबीबिया। इनमें जैदियासे चार सम्प्रदाय हुए और हबीबीयासे आठ। जैदियासे (१) इयाजिया—इस सम्प्रदायका नाम किसी-किसीने अयाजिया[3] भी कहा है। इसके प्रवर्तक ख्वाजा फुजैल बिन इयाज या अयाज थे। (२) अधमिया—इसके प्रवर्तक अबू इसहाक इब्राहीम बिन अधम थे। ये बल्खके रहनेवाले थे। (३) हुबैरिया—यह सम्प्रदाय अमीनुद्दीन

१. सूफि०, पृ० १६२।

२. ग्लौ० पं० ट्रा० का (प्रथम खंड), पृ० ५२६।

३. हु०इ० इ०, पृ० २८८ तथा ग्लौ० पं० ट्रा० का० (प्रथमखंड) पृ० ५२६।

हुवैर तुल बसरीसे प्रारम्भ हुआ। इनके बारेमें बहुत कम जानकारी प्राप्त है। कहा जाता है कि ये जुनैदके साथ रहते थे। (४) चिश्तिया—इसके प्रवर्तक ख्वाजा अबू इसहाक शामी चिश्ती थे।

हबीबियासे निम्नलिखित आठ सम्प्रदाय हुए:—

नाम प्रवर्तक

(१) करखिया—शेख मारूफ करखी।

(२) सक़तिया—ख्वाजाहसन सारी अस्सक़ती।

(३) तैफूरिया—अबूमजीद तैफ़ूरुल बिस्टामी।

(४) जुनैदिया—अबुल क़ासिमुल जुनैद।

(५) गाज़रूनिया—ख्वाजा अबूइसहाक़ गाज़रूनी।

(६) तरतवसिया—अबुल फरह तरतवसी।

(७) सुहरवर्दिया—शेख ज़ियाउद्दीन अबूनजीब सुहरवर्दी।

(८) फ़िरदौसिया या कुब्राविया—अबुलजनाब अहमद बिन उमरुल खिवक़ी जो नजमुद्दीन कुब्राके नामसे विख्यात थे।

ऊपरके आठ नाम जिस क्रमसे दिये गये हैं ठीक वही क्रम सभी नहीं मानते। इन सम्प्रदायोंके नाम निम्नलिखित क्रमसे भी हैं[1]—(१) तैफ़ूरिया, (२) करखिया, (३) जुनैदिया, (४) सक़तिया, (५) गाज़रूनिया, (६) तरतूसिया, (७) सुहरवर्दिया और (८) फ़िरदौसिया। एक तीसरी लिस्टमें ये सभी नाम इसी क्रमसे हैं लेकिन सकतियाको जुनैदियाके पहले रखा गया है और तरतूसियाके बदले केवल तुसी सम्प्रदाय कहा गया है[2]। अधमी और जुनैदीको सब समय सूफ़ी-सम्प्रदायोंके अन्तर्गत नहीं गिनते लेकिन तारीख़ुल औलिया और अनवारुल अरीफ़ीनमें ये चौदह नाम गिनाये गये हैं। सिक्ती और करखी सम्प्रदाय बहुत पहले ही खतम हो गये और उनके अनुयायियोंको क़ादिरी सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त कर लेते हैं। फ़ारसी और उर्दूकी पुस्तकोंमें सूफ़ी इतिहासके सम्बन्धमें जो लिखा

१. ह. इ. इ., पृ० २८८।

२. ग्लौ. पं. ट्रा. का., पृ० ५२६।

आया है उसमें उन्हें क़ादिरीके भीतर ही रखा गया है[1]।

इन सम्प्रदायोंके प्रवर्तक हबीब अजमीके बारेमें कहा जाता है कि वे बसराके हसनके शिष्य थे और उनकी मृत्यु सन् ७७२-७३ ई० में हुई। वे अरबी भाषाका शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते थे। वे पर्सियाके थे। वे सूदपर रुपया चलाया करते थे लेकिन अपने कर्ज़खोरोंके दुःखसे अत्यन्त दुःखित होकर उन्होंने यह काम छोड़ दिया और सबका कर्ज़ माफ़कर साधनामें लग गये। मारूफ़ करख़ीके बारेमें हम पहले ही लिख आये हैं। सारी सक़ती, करख़ीका मनोनीत ख़लीफ़ा था। 'मुक़ामात' और 'अह-वालों'के सिद्धान्तकी उसने समीचीन विवेचना की है और उसे एक स्पष्ट रूप दिया है। उसका एक कथन बहुत ही प्रसिद्ध है कि अगर नरकमें परमात्माके दर्शन हों तो उसपर ईमान लानेवाले स्वर्गकी चिन्ता नहीं करेंगे। उसकी मृत्यु सन् ८७०-७१ ई० में हुई। बायज़ीद बिस्तामीको तैफ़ूर कहकर पुकारते थे। उसकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। जुनैद, प्रारम्भिक कालके सूफ़ियोंमें एक महत्त्वका स्थान रखता है। वह इस्लामी धर्मशास्त्रका बहुत बड़ा जानकार था। उसकी मृत्यु सन् ९०९-१० ई० में हुई। बीच-बीचमें उसकी भी चर्चा हम करते आये हैं। वह 'बक़ा'के सिद्धान्तको माननेवाला था और सनातन-पन्थी इस्लामकी पाबन्दियोंसे कभी दूर नहीं गया। अबू इसहाक़ गाज़रूनीकी मृत्यु सन् १०३७ ई० में हुई और अबुल्फ़रह तरतबसीकी मृत्यु सन् १०५५ ई०में हुई। अबूनजीब, जो सुहरवर्दी सम्प्रदायका प्रवर्तक था, सन् १२३४ ई० में मृत्युको प्राप्त हुआ। नजमुद्दीन कुब्रा उसका शिष्य था। उसकी मृत्यु सन् १२२१ ई० में हुई। उसके पीरने उसे 'स्वर्गका शेख़' कहा इसीलिए वह फ़िरदौसी कहा जाने लगा।

भारतवर्षमें चार प्रमुख सूफ़ी-सम्प्रदाय हैं ? चिश्तिया, क़ादिरिया, सुहरवर्दिया और नक़्शबन्दिया। इनमें चिश्तिया, क़ादिरिया और सुहर-वर्दिया सम्प्रदाय हसन अल-बसरीसे सम्बद्ध हैं और नक़्शबन्दियाका

1. ब्लौ, पं. ट्रा. का., पृ० ५४० ।

सम्बन्ध अबू बक्रसे है। कादिरिया सम्प्रदायको तरतूसियाकी शाखा मानते हैं[1] लेकिन इसमें भी मतभेद है। दूसरे मतके अनुसार इसका सम्बन्ध तरतूसिया सम्प्रदायसे इतना ही है कि दोनों जुनैदी सम्प्रदायसे सम्बद्ध हैं[2]। चाहे जो हो, इससे यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि भारतवर्षके तीन प्रमुख सम्प्रदाय अलीसे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं जब कि केवल नक़्शबन्दी अबू बक्रसे। नीचेकी तालिकासे[3] यह स्पष्ट हो जायगा—

१. सूफी०, पृ० १७४।

२. ब्लौ. पं. ट्रा. का., पृ० ५२६।

३. वही, पृ० ५२६।

मुहम्मद

- अली
  - कमिल
  - इमाम हसन
  - इमाम हुसैन
  - ख़्वाजा हसन बसरी
    - ख़्वाजा हबीब अजमी (१) [अजमी सम्प्रदाय]
      - ख़्वाजा तफ़ूर (३) [तफ़ूरी सम्प्रदाय]
      - ख़्वाजा दाऊद
        - ख़्वाजा मारूफ करखी (४) [करखी सम्प्रदाय]
          - ख़्वाजा सिरी सक़ती (५) [सिक़ती सम्प्रदाय]
            - शेख़ जुनैद (६) [जुनैदी सम्प्रदाय]
    - ख़्वाजा अब्दुल वाहिद (२) [ज़ैदी सम्प्रदाय]
      - ख़्वाजा फ़ज़ल बिन-अयाज़ (११) [अयाज़ी सम्प्रदाय]
        - ख़्वाजा इब्राहीम अधम (१२) [अधमी सम्प्रदाय]
          - ख़्वाजा हज़िफ़
            - ख़्वाजा हबेर (१३) [हबेरी सम्प्रदाय]
              - ख़्वाजा अबू
                - ख़्वाजा इसहाक़ शामी (१४) [चिश्ती सम्प्रदाय]

- हजरत मम्मदोलु
  - शेख अबू अली हसन
    - शेख अबू इसहाक़ गजरूनी (७) [गजरूनी सम्प्रदाय]
  - ख़्वाजा अहमद
    - शेख अमोइअ
      - शेख वजीउद्दीन
        - शेख अहमद दीन (८) [तूसी सम्प्रदाय]
        - शेख जियाउद्दीन (९) [सुहरवर्दी सम्प्रदाय]
          - शेख नजमुद्दीन (१०) [फिरदौसी सम्प्रदाय]
- शेख अबू बक्र
  - शेख अब्दुल वहिद
    - शेख अबुल फरह
      - शेख अबुल हसन
        - शेख अबू सईद
          - शेख अब्दुल क़ादिर [क़ादिरी सम्प्रदाय]

ऊपरकी तालिकामें उच्चारणभेदसे ही कुछ नाम भिन्न जैसे प्रतीत होते हैं जैसे तैफूरके बदले तफूर, हुबैरके बदले हबेर, सारी सक़तीके बदले सिरी सिक़ती। दूसरी बात जो ध्यान देनेकी है वह यह है कि चौदह खानवादोंमें कादिरी सम्प्रदायका नाम नहीं है अतएव बहुत कुछ सम्भव है कि वह तरतवसी सम्प्रदायकी शाखा मात्र हो और बादमें अधिक व्यापक हो गया हो।

इन भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके अपने-अपने सिद्धान्त और साधन-मार्ग हैं। कोई भी मुसलमान किसी भी सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त हो सकता है। इन सम्प्रदायोंमें ब्रह्मचर्य पालनपर विशेष जोर नहीं दिया जाता। भारतवर्षमें समय-समयपर इन सम्प्रदायोंके सूफी साधक बाहरसे आते रहे और अपने सम्प्रदायमें लोगोंको शामिल करते रहे।

भारतवर्षके चार प्रमुख सूफी सम्प्रदायोंमें चिश्ती सम्प्रदायका स्थान बड़े महत्त्वका है। चिश्ती सम्प्रदायके प्रवर्तक ख़्वाजा इसहाक़ शामी चिश्ती माने जाते हैं[1] लेकिन बहुत लोग ऐसे हैं जो ख़्वाजा अबू अब्दाल चिश्तीको इसका प्रवर्तक मानते[1] हैं और कितने ख़्वाजा मुइनुद्दीनको मानते हैं[2]। अबू अब्दाल, ख़्वाजा इसहाक़ शामीके शिष्य थे। अबू अब्दालकी मृत्यु सन् ९६६ ई०में हुई। कहा जाता है कि अबू इसहाक़, एशिया माइनरसे आकर चिश्त (ख़ुरासान)में बस गये, इसीलिए इस सम्प्रदायका नाम चिश्ती पड़ा। लेकिन बहुत लोग इसे नहीं स्वीकार करते। चिश्तमें उनके दफ़नाये जानेकी बातको वे नहीं मानते। उनका कहना है कि वे शाम (सीरिया)के अक्का स्थानमें दफ़नाये गये। अबू इसहाक़ शामी, मिमशाद अली दिनवरीके शिष्य थे।

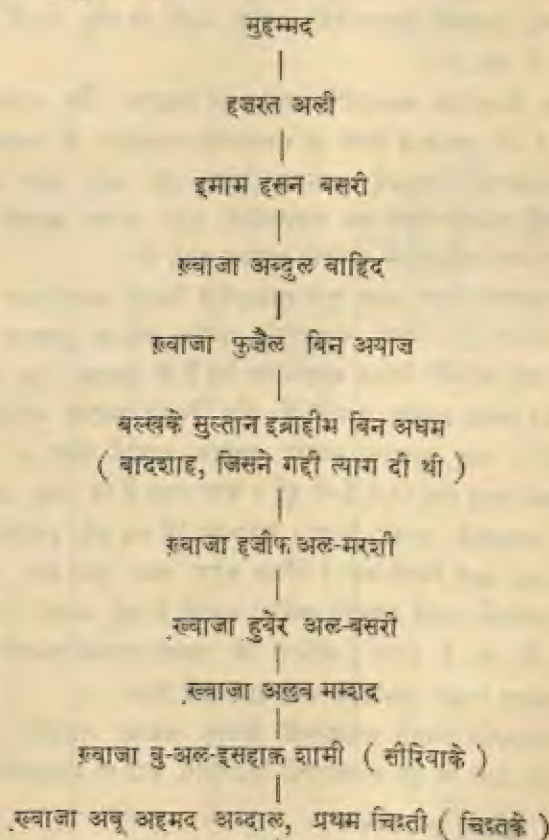
भारतवर्षमें चिश्ती सम्प्रदायके प्रवर्तक ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती हैं। इसके पहले कि इस सम्प्रदायकी विशेषताएँ क्या थीं भारतवर्षमें इसने

१. सूफि०, पृ० १७४।

२. ग्लौ० पं० ट्रा० का०, पृ० ५२८।

३. दर०, पृ० ९४ तथा सूफि० पृ० १७५।

कौन सा रूप ग्रहण किया और इसके कौन-कौनसे प्रमुख साधक थे, हम यह देख लें कि किस प्रकारसे ये हज़रत मुहम्मदसे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं और किस प्रकारसे इसके शिष्य-प्रशिष्य हुए। निम्नलिखित तालिकासे यह बात स्पष्ट हो जायगी[1]।



---

१. ब्लौ. पं. ट्रा. का. (प्रथम खंड), पृ० ५२७।

|

ख़्वाजा मुहम्मद ज़ाहिद मक़बूल चिश्ती

|

ख़्वाजा यूसुफ़ नासिरुद्दीन चिश्ती

|

ख़्वाजा कुतबुद्दीन मौदूद चिश्ती

|

ख़्वाजा हाज शरीफ़ ज़िन्दुई

|

ख़्वाजा उस्मान हरवानी

|

ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (अजमेरके सन्त)

|

दिल्लीके ख़्वाजा क़ुतबुद्दीन, क़ुत्ब साहिब

|

शेख़ फ़रीदुद्दीन शकरगंज, पाकपत्तनके विख्यात बाबा फ़रीद

|

हजरत मख़दूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर जो पीरों कलेर (रुड़कीके पास)के थे और साबिरी सम्प्रदायके प्रवर्तक थे

निज़ामी सम्प्रदायके प्रवर्तक दिल्लीके हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया

चिश्ती सम्प्रदायमें 'चिल्ल'का प्रचलन है। 'चिल्ल'का मतलब यह है कि साधक चालीस दिनोंतक किसी मस्जिदमें अपना समय बिताता है अथवा किसी कमरेमें बन्द रहता है। उस समय वह अल्प परिमाणमें भोजन करता है। अपना सब समय वह प्रार्थना और ध्यानमें लगाता है। वह बातचीत भी बहुत कम करता है। वह 'इल्ला-ल्लाहु'पर खूब ज़ोर देता है। इसका ज़ोर-ज़ोरसे उच्चारण करते हुए अपने शरीरके

ऊपरी भाग तथा सिर खूब हिलाता है। वह रंगीन वस्त्र धारण करता है। उसके सिरपर बड़े-बड़े केश (काकुल) रहते हैं। अलीको परमात्मा और मुहम्मदके बराबर मानते हैं[1]।

इस सम्प्रदायमें संगीतको खूब प्रधानता दी गयी है। साधक संगीत सुनते-सुनते भावाविष्टावस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। ख़्वाजा मुईनुद्दीनका कहना था कि संगीत आत्माका भोजन है[2]। अतएव उन्होंने गाने और संगीत सुननेको आवश्यक माना है। सनातन-पन्थी इस्लाममें संगीतको निषिद्ध माना गया है। अतएव दिल्लीमें जब इस सम्प्रदायवालोंकी संगीत-मजलिसोंका आयोजन अधिक होने लगा तो उलमाओंने इसका विरोध किया। उन लोगोंने बादशाह अल्तमशसे इसे बन्द करा देनेके लिए कहा। ख़्वाजा कुतुबुद्दीनको बादशाह बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था। कुतुबुद्दीनकी वजहसे संगीतका प्रचलन और अधिक हो गया था। बादशाहने इस मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया और कहा जाता है कि संगीतकी ये मजलिसें लगातार कई-कई दिनोंतक चलती रहती थीं[3]।

चिश्ती सम्प्रदायमें दीक्षित होनेके लिए शिष्यको सबसे पहले नमाजके दो रका कहने पड़ते हैं। इसके बाद उसे कुछ नियम बतलाये जाते हैं जिनका पालन करना शिष्यके लिए आवश्यक है। इसमें उसे किसी प्रकारका ननुनच नहीं करना होगा। ये नियम कुछ इस प्रकार हैं:—अल्लाहके नाममें वह भोजन करता है, उसे समस्त जीवन परमात्माका स्मरण करते हुए बिताना होगा। उसकी निद्रा मृत्युके साथ है। उससे कहा जाता है कि तुम फ़क़ीर हुए हो तो तुम्हें इन उपदेशोंका ध्यान रखना होगा। 'फ़क़ीर' शब्दमें 'फे', 'क़ाफ', 'ये' और 'रे' ये चार अक्षर हैं। इसमें 'फे'का मतलब फ़ाक़ा (उपवास) है, क़ाफका मतलब 'क़न्नत' (सन्तुष्टि) है, 'ये'का मतलब 'यादे इलाही' (परमात्माका स्मरण) है

१. ह. इ. इ., पृ० २८९।

२. वहीं, पृ० २८९।

३. सूफि०, पृ० २१५।

तथा 'रे'का मतलब 'रियाजत' (प्रायश्चित्त) है। उसे इन चारोंके पालन करनेके लिए कहा जाता है[1]।

इसके बाद शिष्यसे कहा जाता है कि वह मुर्शीदका ध्यान करे। विशेष रूपसे उसे प्रति दिन ध्यान करना पड़ता है। उसे फिर एक पवित्र नाम बताया जाता है जिसे वह किसी दरगाहमें जाकर जपता रहता है। चालीस दिनोंतक उपवास करते हुए उसे जप करना पड़ता है। तब उसे सम्प्रदायकी वंश-परम्परा बतलायी जाती है। धीरे-धीरे साधना करते हुए वह आगे बढ़ता है और आर्शतक वह सभी वस्तुओं और स्थानोंको प्रत्यक्ष करता है। इस अवस्थामें जब दो सितारे, नसीर और महमूद, एक हो जाते हैं तब सेहव (जागृति)की अवस्था उसे प्राप्त होती है और वह लोहे महफ़ूज (सुरक्षित तख्ता)पर पहुँच जाता है। इस हालतमें वह भूत, भविष्य, वर्तमान तीनोंको देखता है। सभी जगत् उसके लिए प्रत्यक्ष हो जाते हैं। और तब जब वह अपने हृदयसे ध्यान करता है, तक़्वीम (भावाविष्टावस्था)की अवस्था उसे प्राप्त होती है, तब वह सर्वव्यापिनी शक्तिको प्रत्यक्ष करता है और नाज तथा नयाजका रहस्य उसपर प्रगट होता है। इसके बाद इस्मे जात (सत्ताके नाम)का चरम रहस्य अपनेको उसपर प्रकट करता है।[2]

भारतवर्षमें चिश्ती-सम्प्रदायके ले आनेका श्रेय ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती संजरी अजमेरीको है। उनका जन्म संजर शहरमें, जो सिस्तानमें है, सन् ११४२ ई० में हुआ। सिस्तान, अफगानिस्तानका एक दक्षिणी प्रान्त है। बादमें अपने माँ-बापके साथ वे खुरासान चले गये और उसके बाद मेशेदके पास नीशापुरके निकट गये। वहींपर वे ख्वाजा उस्मान चिश्ती हारुनी या हरवानीके शिष्य हुए। जिस परिवारमें इनका जन्म

1. मीर हस्मनः बागो बहार (ग्लौ. पं. ट्रा. का. प्रथम खंड), पृ० ५२८ उद्धृत।

2. ग्लौ. पं. ट्रा. का. (प्रथम खंड), पृ० ५२८-५२९।

हुआ था वह कई पुश्तोंसे सूफी साधनासे प्रभावित था । इसका प्रभाव उनके ऊपर भी पड़ा । इनके जीवनमें सबसे बड़ा परिवर्तन उस समय हुआ जब शेख़ इब्राहीम कनदोजी नामक एक तेजस्वी साधकके वे संस्पर्शमें आये । कहा जाता है शेख़ इब्राहीम कनदोजीकी इन्होंने बड़ी आवभगत की जिससे प्रसन्न होकर उसने इनके अन्तरमें आध्यात्मिक परिवर्तन ला दिये । शेख़ने रोटीका एक टुकड़ा मुँहमें रखकर चबाया और उसे ही मुईनुद्दीनको खानेके लिए दिया । इसीसे मुईनुद्दीनको ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति (फलोंका एक बगीचा और चक्कीका पाट) बेच दी और उससे जो कुछ भी उन्हें मिला उसे ग़रीबोंमें बाँट दिया ।

संसार त्याग करनेपर मुईनुद्दीन गुरुकी खोजमें भटकते रहे । समरकन्दमें दो वर्षोंतक उन्होंने क़ुरानका अध्ययन किया और फिर बुखारा चले गये । वहाँपर उन्होंने मौलाना हिसामुद्दीन बुखारीसे क़ुरान पढ़ा । अन्तमें वे ख़्वाजा उस्मान हारूनीके शिष्य हुए । हारूनीके साथ इन्होंने अपना समय बिताया । कुछ लोगोंका कहना है कि बीस वर्षोंतक वे उनके साथ रहे[1] । इनके बाद कहते हैं कि सपनेमें हज़रत मुहम्मदने उन्हें भारतवर्षमें जाकर इस्लाम धर्मके प्रचारका आदेश दिया ।

कहा जाता है कि नीशापुरसे जब वे भारतवर्षके लिए चले तब रास्तेमें बहुतसे सुप्रसिद्ध साधकोंसे मिलनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ । इन साधकोंकी सत्संगतिसे उन्हें पूरी आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई । पहले वे बग़दादमें आये, वहाँपर क़ादिरी सम्प्रदायके प्रवर्तक अब्दुल क़ादिर जिलानीसे मिले । वहींपर सुहरवर्दी सम्प्रदायके प्रवर्तक अबूनजीब सुहरवर्दी और उनके उत्तराधिकारी तथा पुत्र शिहाबुद्दीनसे मिले । उनकी यह यात्रा मक्का, मदीनासे शुरू हुई थी और इराक़ तथा पर्सिया होते हुए वे आगे बढ़े थे । हमदानमें उनकी मुलाक़ात शेख़ अबू यूसुफ हमदानीसे हुई और तबरीज़में वे अबू सईद तबरीज़ीसे मिले । मौलाना जलालुद्दीन

1. इंडि० इ०, पृ० ११८ ।

रूमी, तबरीजीके ही शिष्य थे। इस्फाहानमें ख़्वाजा कुत्बुद्दीन बख़्तियार काकीसे मुईनुद्दीनकी भेंट हुई। काकी इनके शिष्य हो गये और भारतवर्षमें आकर उनके उत्तराधिकारी हुए। ये भी एक बहुत बड़े सन्त हुए। इस प्रकारसे रास्तेमें बहुतसे सूफी-साधकोंसे मिलते हुए तथा बहुतसे सूफी-साधकोंके मक़बरेका दर्शन करते हुए मुईनुद्दीन सब्ज़वार पहुँचे और यहाँपर प्रथम-प्रथम उनकी आध्यात्मिक शक्तिका लोगोंको परिचय प्राप्त हुआ। सब्ज़वारका शासक मुहम्मद यादगार नामका व्यक्ति था। वह बहुत ही दुष्ट प्रकृतिका था और अत्याचार द्वारा उसने बहुतसा धन इकट्ठा कर लिया था। मुईनुद्दीन उसी ओरसे होकर जा रहे थे और कुछ ऐसा हुआ कि वे उसके बगीचेमें आ निकले। उसी बाग़में एक तालाबके किनारे आराम करनेके लिए उन्होंने अपनी दरी बिछा दी। यादगारके नौकरोंने उन्हें मना किया और बतलाया कि उनका मालिक उनके साथ दुर्व्यवहार कर सकता है लेकिन मुईनुद्दीनने उनकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। कहा जाता है कि जब यादगार आया तब वह बड़े औद्धत्यके साथ उनकी ओर बढ़ा लेकिन जब मुईनुद्दीनकी दृष्टि उसपर पड़ी, वह रुक गया। इतना ही नहीं, उस दृष्टिका फल यह हुआ कि वह भयके मारे काँपने लगा तथा उसे अपने किये हुए पापोंका ज्ञान हुआ। वह मुईनुद्दीनके पैरोंपर गिर पड़ा और अपना शिष्य बना लेनेके लिए कहा। मुईनुद्दीनने एक ग्लास पानीमें आधा पी लिया और आधा उसे पीनेको दिया और इस तरहसे अपनी आध्यात्मिक शक्तिका कुछ अंश उसमें चले जाने दिया। यादगारने अपनी सारी सम्पत्ति बेच दी तथा अपने गुलामोंको स्वतन्त्र कर दिया। सम्पत्ति बेचकर उन लोगोंको हर्जाना दिया जिनके साथ उसने अत्याचार किया था अथवा जिनकी सम्पत्ति उसने ले ली थी। अन्तमें जो कुछ बचा उसे ग़रीबोंमें बाँट दिया और मुईनुद्दीनके साथ हिसार शादमान-तक आया जहाँपर मुईनुद्दीनने उसे रहनेके लिए कहा और दूसरोंको साधना-पथपर लगानेका आदेश दिया। इस तरहसे अपनी यात्रामें हेरात, बल्ख और ग़ज़नीतक वह पहुँचा। इस बीच उसने बहुतसे

साधकोंके दर्शन किये, बहुतोंको आध्यात्मिक मार्गपर लगाया, बहुतोंको इस्लाम-धर्ममें दीक्षित किया और बहुत स्थानोंमें अपने चमत्कारोंका प्रदर्शन किया।

सन् ११९२ ई० में शहाबुद्दीन गोरीकी फौजोंके साथ मुईनुद्दीन दिल्ली आये। दिल्लीमें वे कुछ कालतक ठहरे। इसके बाद सन् ११९५ ई०में अजमेर आये और वहीं स्थायी रूपसे रह गये[१]। अजमेरमें ही उनकी मृत्यु हुई। अजमेरमें उनका मक़बरा मुसलमानों और हिन्दुओंके लिए एक तीर्थ-स्थान बन गया है। सालाना उर्सके समय वहाँ पूरी धूमधाम होती है। अजमेरमें उनके आनेके कालको लेकर बहुत बड़ा मतभेद है। कहा जाता है कि दिल्लीमें आनेके पहले वे लाहौरमें ठहरे थे और दातागंज बख्शके मक़बरेके पास बैठकर ध्यान-चिन्तन किया था। सन् ११६५–६६ ई० में उनके अजमेर आनेकी बात कही जाती है[२]।

ख़्वाजा मुईनुद्दीनकी मृत्यु सन् १२३६ ई० में हुई। अजमेरमें रहते समय उनके चमत्कारोंकी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। उन कहानियोंसे पता चलता है कि वे कितने लोकप्रिय थे और मुसलमान किस श्रद्धाकी दृष्टिसे उन्हें देखते हैं। अजमेरमें ख्वाजा साहबकी दरगाहपर लाखों मुसलमान तीर्थ करने आते हैं। संसार भरके चिश्ती सम्प्रदाय-वालोंके लिए तो वह मक्का सदृश हो गया है। दातागंज बख्शके मक़बरेके पास कुछ समय जो उन्होंने बिताया था वह भी बादमें पवित्र माना जाने लगा। आज भी उस स्थानको लोग स्मरण रखे हुए हैं। ख़्वाजा साहबकी दरगाहकी मस्जिद अकबर बादशाहकी बनवायी हुई थी। सम्राट् अकबर सालमें एक बार वहाँ जाया करता था[३]।

अकबरने वहाँपर एक राजमहल भी बनवा दिया था। कहा जाता है

१. इन्डि. इ., पृ० ११८।

२. सूफि०, पृ० २००।

३. अक०, पृ० १८१।

कि दो बार उसने मन्नत की थी जिसके फलस्वरूप उसे वहाँ जाना पड़ता था। कहा जाता है कि अकबर पैदल वहाँ तीर्थ किया करता था[1]। एक बार उसने यह प्रतिज्ञा की कि अगर वह चित्तौरगढ़को जीत लेगा तो आगरासे पैदल मकबरेके दर्शनके लिए जायगा। सन् १५६८ ई० में जब चित्तौरपर उसने कब्जा किया तब उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। जहाँगीरके जन्मके समय सन् १५६७ ई० में मकबरेके दर्शनकी उसने प्रतिज्ञा की और लगातार दस वर्षोंतक सालभरमें एक बार वहाँ जाया करता था। सम्भवतः १५७९ ई० में अन्तिम बार वह वहाँ गया था[2]। उर्सके समय दो बड़े-बड़े कड़ाहोंमें भात रखा रहता है और जो चाहते हैं उन्हें उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा दिया जाता है।

अजमेरमें रहते हुए उनकी आध्यात्मिक शक्ति सम्बन्धी नाना प्रकारकी कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि अजमेरमें जब वे आये तो राजा पृथ्वीराजको अच्छा नहीं मालूम हुआ। राजा उनको वहाँ रहने नहीं देना चाहता था। मुईनुद्दीन तथा राजाके जादूगरोंके बीच कितनी लड़ाइयाँ हुईं इसके सम्बन्धमें नाना कहानियाँ प्रचलित हैं। जब वे शहरमें प्रथम-प्रथम सन्ध्या समय आये तो एक ऐसे स्थानपर उन्होंने आश्रय लेना चाहा जहाँ राजाके ऊँट रखे जाते थे। ऊँटवाहोंने उन्हें भगा दिया। तब उन्होंने अना-सागर झीलके किनारे एक पेड़के नीचे आसन जमाया और शाप दिया कि ऊँट जमीन छोड़कर खड़े नहीं हो सकते। भोरमें जब ऊँटवाहोंने यह देखा तब उनसे माफी माँगी और फिर ऊँट खड़े हो गये। इस कहानीका प्रचार सर्वत्र हो गया लेकिन राजाको यह अत्यन्त बुरा लगा और उन्हें उसने भगा देना चाहा। जब कुछ सैनिक उन्हें भगाने आये तो उन्होंने उनपर थोड़ी धूल फेंक दी और वे सभी दृष्टि-शक्तिसे विहीन हो गये। उन लोगोंने माफी माँगी और इस्लाम धर्म कबूल कर लेनेका वादा किया तो फिर मुईनुद्दीनकी शक्तिसे उन्हें दृष्टि मिल गयी।

१. ह. इ. इ. पृ० १४२।

२. इन्डि. इ., पृ० ११९।

राजा पृथ्वीराजके भेजे हुए राजगुरु रामदेव बहुतसे पंडितोंके साथ मुईनुद्दीनसे शास्त्रार्थ करने आये लेकिन सन्तकी दृष्टि जैसे ही उनपर पड़ी वे पराभूत हो गये। वे मुसलमान हो गये। मुईनुद्दीनने एक प्यालेका पानी पीकर उन्हें पीनेके लिए दिया। पीते ही जैसे रामदेवको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी। उनका नाम शादीदेव पड़ा। 'देव'का ठीक अर्थ न समझकर लोगोंने भ्रमवश उसका अर्थ 'दुष्ट प्रकृतिका प्रेत' लगाया अतएव अभी भी जब सालाना उर्स होता है तो लोग भूत भगानेके लिए उनका स्मरण करते हैं।

जयपाल योगी जो राजा पृथ्वीराजके दरबारमें रहता था, मुईनुद्दीनको जादू विद्यासे हरानेके लिए भेजा गया। इन कहानियोंमें तथ्य चाहे जितना हो लेकिन इससे उस कालके विश्वासोंका एक परिचय अवश्य मिलता है। कहा जाता है कि जयपाल योगीने अनासागरपर अपनी अदृश्य शक्तिके बलसे कब्जा कर लिया। जयपालने ऐसा किया कि जिसमें मुईनुद्दीनको वजू करनेके लिए जल ही न मिले। वजू नहीं करनेके कारण उनकी प्रार्थनामें बल नहीं रहेगा और इस प्रकारसे वे जादूके प्रभावको रोक नहीं सकेंगे। मुईनुद्दीनने शादीदेवको भेजकर उस झीलसे किसी तरहसे एक बाल्टी जल मँगवाया। इसका फल यह हुआ कि अजमेरके सभी कुएँ और जलाशय सूख गये और लोग पानीके बिना अत्यन्त कष्ट भोगने लगे। तब जयपालने मुईनुद्दीनसे जाकर कहा कि 'तुम धर्मात्मा बनते हो और लोगोंको जलके बिना मार रहे हो।' तब मुईनुद्दीनने बाल्टीका जल फिर उसी झीलमें डलवा दिया और फिर सब जगह जल-ही-जल हो गया। सभी कुँओं और जलाशयोंमें पानी आ गया।

जयपालने जादूके बलसे साँप, बिच्छू, बाघ, सिंह आदिको मुईनुद्दीनपर चारों ओरसे हमला करनेके लिए भेजा। मुईनुद्दीनने अपने और अपने साथियोंके चारों ओर एक गोल रेखा खींच दी। कोई भी जन्तु उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सका। तब जयपालने आगकी लपटें भेजीं। सभी पेड़ जलकर राख हो गये लेकिन उस गोल रेखाके भीतर आग नहीं

जा सकी। तब जयपाल योगी अपनी मृगछालापर आकाशमें उड़ने लगा लेकिन मुईनुद्दीनने अपने मंत्रबलसे उसे नीचे उतार दिया। अन्तमें जय-पालने हार मान ली। वह मुसलमान हो गया और उसका नाम अब्दुल्ला पड़ा। कहा जाता है कि मुईनुद्दीनसे उसने प्रार्थना की कि वह कयामतके दिनतक जीवित रहे। इसीलिए लोगोंका विश्वास है कि वह आज भी जीवित है और जो लोग अजमेरमें भूल-भटक जाते हैं या किसी विपत्तिमें पड़ जाते हैं उन्हें वह सहायता करता है। लोगोंका विश्वास है कि वह अजमेरके पास जंगलों-झाड़ोंमें रहता है। इसीलिए लोग उसे अब्दुल्ला बयाबानी कहकर पुकारते हैं। कहा जाता है कि उसीके शापसे पृथ्वीराज-की पराजय हुई और वह मुहम्मद गोरीके हाथों कैद हुआ। लोगोंका कहना है कि इसीलिए गोरी उनके दर्शनके लिए गया और एक मन्दिरको ढाई दिनमें मस्जिदके रूपमें परिणत कर दिया। इसीलिए उसे "ढाई दिनका झोंपड़ा" कहते हैं।

मुईनुद्दीनकी दो शादियाँ हुई थीं। बहुत उम्र होनेतक वे अविवाहित ही रहे। उनकी पहली पत्नीका नाम उम्मतुल्ला था। उसे एक लड़की पैदा हुई जिसका नाम बीबी हाफिज जमाल है। वह भी साधक थी। उसे मुईनुद्दीनने बादमें शिष्य बनानेका अधिकार दिया। इस्लाम धर्ममें ऐसी बहुत ही कम स्त्रियाँ हुई हैं जिनको यह अधिकार प्राप्त था। उनकी दूसरी पत्नीका नाम अस्मतुल्ला था। उसे तीन पुत्र हुए। हिसामुद्दीन पहला था जो बचपनमें ही अदृश्य हो गया। दूसरा फखरुद्दीन था। वह खेती करता था और पिताकी मृत्युके बीस वर्षों बाद मरा। तीसरा अबू सईद, अज-मेरमें ही रहता था[1]।

चिश्ती-सम्प्रदाय अत्यन्त ही लोकप्रिय रहा है। मुईनुद्दीनके शिष्योंमें बड़े-बड़े सन्त हुए हैं। चिश्ती-सम्प्रदायके कुछ सन्तोंके सम्बन्धमें संक्षेपमें

१. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीका जीवन-वृत्त जान ए. सुभानने अपनी पुस्तक 'सूफिज़्म' (पृ० १९३–२०८) में पूरे ब्योरेके साथ दिया है।

थोड़ी-सी जानकारी कर लेना आवश्यक है। उनके बहुत-से तीर्थस्थान भी हैं। सन्तोंके मकबरोंके दर्शनके लिए लोग जाते हैं। सभी सन्तों और तीर्थस्थानोंका नाम देना सम्भव नहीं है। "ग्लौसरी आफ पंजाब ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स" प्रथम खंडमें तथा जान ए. सुभानकी 'सूफिज्म' नामक पुस्तकमें इसकी विस्तारसे चर्चा की गयी है। यहाँपर चिश्तियोंके वंश-वृक्ष, कुछ प्रमुख साधकों तथा कुछ तीर्थस्थानोंका जिक्र मात्र करके ही हमें सन्तोष करना पड़ेगा।

चिश्ती-सम्प्रदायका वंश-वृक्ष निम्नलिखित है[1]—

अजमेरके सन्त ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
|
ख़्वाजा क़ुतबुद्दीन (दिल्ली के), कुत्ब साहिब
|
शेख फरीदुद्दीन, शकरगंज, पाकपत्तनके सुप्रसिद्ध बाबा फरीद
|

पीराँ कलीर (रुड़कीके पास) के हज़रत मखदूम, अलाउद्दीन अली अहमद साबीर (साबीरी-सम्प्रदायके प्रवर्तक
|
पानीपतके शेख शम्सुद्दीन तुर्क
|
पानीपतके शाहे-विलायतशाह जलालुद्दीन
|
रुदौली (यू. पी.) के शेख अब्दुल हक़्क़
|

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (दिल्ली) आदि (निज़ामी-सम्प्रदायके प्रवर्तक)

1. ग्लौ. पं. ट्रा. का. खण्ड 1, पृ० ५२७।

|

शेख आरीफ साहिब

|

शेख मुहम्मद साहिब

|

शेख अब्दुल .कुद्दूस साहिब, गंगोहके .कुत्ब

|

थानेसरके शेख जलालुद्दीन

|

बल्ख (अफ़गानिस्तान) के शेख निज़ामुद्दीन

|

गंगोह (यू. पी.) के शेख अबू सईद

|

गंगोहके शेख मुहम्मद सादिक़

|

गंगोहके दाऊद साहिब

|

शाह अब्दुल मैआली

|

हज़रत मीरान सैयद शाह भीक, मीरान साहिबके नामसे प्रख्यात जिनका मक़बरा पटियाला राज्यके घुरम स्थानमें है ।

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीके उत्तराधिकारी ख्वाजा कुतुबुद्दीन हुए । वे अत्यन्त लोकप्रिय थे और बादशाह अल्तमश उनपर खूब श्रद्धा रखता था । उनके साथ दो नाम और जुड़े हुए हैं । 'बख्तियार' (भाग्यका बन्धु) नाम मुईनुद्दीनका दिया हुआ था और 'काकी' (रोटियोंवाला आदमी) नामके साथ एक कहानी जुड़ी हुई है । वैसे उसपर कहाँतक विश्वास किया जा सकता है यह कहना कठिन है । कहा जाता है कि

एक बार वे अपने कुछ मित्रोंके साथ दिल्लीमें एक तालाब जो 'समिसया' नामसे मशहूर है, के पास बैठे हुए थे। मित्रोंने कहा कि वे गरम-गरम रोटियाँ खाना चाहते हैं। उन्होंने तालाबमें हाथ डुबा-डुबाकर उनकी मनचाही रोटियाँ दीं और तभीसे उनका नाम 'काकी' पड़ा। चाहे जो हो, निश्चित रूपसे यह कहना कठिन है कि कैसे उनका यह नाम पड़ा। उनका जन्म सन् ११८६ ई० में इस्फहानके फरगना स्थानमें हुआ। किसी-किसीने उनका जन्मस्थान बगदादके पास उशकी बतलाया है।[१] उनकी मृत्यु सन् १२३७ ई०में दिल्लीमें हुई। कुतबमिनारके पास उनकी क़ब्र है। कहा जाता है कि उन्हींके नामपर इसका नाम रखा गया।

वे बहुत बड़े संत थे और कहा जाता है कि उनका जन्म जिस समय हुआ उस समय बहुत-सी विचित्र घटनाएँ घटीं। उनके नामके साथ तरह-तरहकी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। बादमें उनके शिष्योंने उन्हें और भी अधिक रहस्यमय और ऊँचा बनानेके लिए ये कहानियाँ गढ़ी होंगी। कहा जाता है कि जिस रातमें उनका जन्म हुआ उस रातको सम्पूर्ण मकान एक अद्भुत आलोकसे आलोकित हो गया। जन्म लेनेके साथ-ही-साथ उन्होंने प्रार्थनामें अपना सर झुका दिया और भोरतक 'ज़िक्र'का उच्चारण करते रहे। कहा जाता है कि वे पैग़म्बरके वंशके थे। वंश-वृक्षमें हज़रत अलीके पुत्र हुसैनसे सोलहवें स्थानपर उनका नाम आता है।

सूफी साधनाकी ओर उनकी प्रवृत्ति जन्मजात थी। यह प्रवृत्ति उन्होंने वंश-परम्परासे पायी थी। उनकी माँ अत्यन्त धार्मिक थीं और कहा जाता है आधा क़ुरान उन्हें मुखस्थ था। अनेकों सूफी साधकोंसे उन्होंने सूफी साधनाकी शिक्षा ली थी। कहा जाता है कि शहाबुद्दीन सुहरवर्दीसे भी उन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी। बग़दादमें ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीके सम्पर्कमें वे आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन भारतवर्ष आते समय शहाबुद्दीन सुहरवर्दी और अब्दुल क़ादिर जिलानीका नाम सुनकर बग़दाद गये थे।

१. इम्पि. इ., पृ० ३०।

जब ख़्वाजा मुईनुद्दीन अजमेरमें आकर रह गये तब क़ुत्बुद्दीन बग़दाद-से भारतवर्षके लिए रवाना हुए। मुईनुद्दीनकी तरह वे भी बहुतसे सन्तों और सन्तोंके मक़बरोंका रास्तेमें दर्शन करते आये। भारतवर्षमें आनेके पहलेसे ही वे प्रसिद्धि लाभ कर चुके थे और उनके गुरु मुईनुद्दीनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी, अतएव रास्तेमें सभी लोगोंने उनका खूब सम्मान किया। वे मुल्तानमें आकर कुछ समयके लिए ठहर गये। वहाँपर सुहरवर्दी सम्प्रदायके दो बड़े सन्त बहाउद्दीन ज़करिया और जला-लुद्दीन तबरीज़ीकी सत्संगतिका उन्हें अवसर मिला। वे जब दिल्ली आये तो बादशाह तथा लोगोंकी ओरसे उनके प्रति बहुत बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया गया तथा सब लोगोंने उनसे दिल्लीमें रहनेका आग्रह किया। मुईनुद्दीनकी अनुमति पाकर वे वहीं रह गये।

अल्तमशपर चिश्ती सम्प्रदायका बहुत प्रभाव था। उसने क़ुत्बुद्दीनको क़ाज़ीका पद देना चाहा लेकिन क़ुत्बुद्दीनने इनकार कर दिया। इसके बाद नज्मुद्दीन सुग़रको क़ाज़ी नियुक्त किया गया। नज्मुद्दीन भी मुई-नुद्दीनके अन्तरंग मित्रोंमें थे। पहले तो नज्मुद्दीन और क़ुत्बुद्दीन मित्र थे लेकिन जब नज्मुद्दीन प्रधान क़ाज़ीसे शे़ख़ुल इस्लाम बने तो उन्हें क़ुत्बुद्दीनकी लोकप्रियता अखरने लगी। उन्होंने सभी प्रकारके उपाय किये जिसमें क़ुत्बुद्दीनको नीचा देखना पड़े लेकिन वे इसमें असफल रहे। एक बार जब मुईनुद्दीन दिल्ली आये तो नज्मुद्दीनने क़ुत्बुद्दीनकी शिका-यत की। मुईनुद्दीनको अपने प्रिय शिष्यके लिए बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने क़ुत्बुद्दीनको अपने साथ अजमेर जानेके लिए कहा। क़ुत्बुद्दीन जब मुईनुद्दीनके साथ दिल्लीसे बाहर हो रहे थे तब बादशाह और दिल्ली-की जनता रोती हुई उन्हें लौटानेके लिए आयी। अन्तमें मुईनुद्दीनने भग-वानके भरोसे क़ुत्बुद्दीनको दिल्ली लौट जानेका आदेश दिया। क़ुत्बुद्दीन-की लोकप्रियताका इससे पता चलता है। क़ुत्बुद्दीन इतने बड़े साधक माने जाते थे और लोग इस प्रकारसे उन्हें आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न मानते थे कि दूसरे सम्प्रदायके प्रमुख साधक भी उनके शिष्य हो गये

और चिश्ती-सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त हो गये। शिहाबुद्दीन सुहरवर्दीके शिष्य नागोरके हमीदुद्दीन जिनकी मृत्यु सन् १२७१ ई० में हुई, भारतवर्षमें शिहाबुद्दीनके खलीफा नियुक्त होकर आये थे लेकिन यहाँ क़ुत्बुद्दीनके शिष्य हो गये। शेख जलालुद्दीन तबरीजी, शिहाबुद्दीनके साथ सात वर्षों तक थे लेकिन वे भी क़ुत्बुद्दीनके शिष्य बन गये।[1]

क़ुत्बुद्दीनके उत्तराधिकारी फ़रीदुद्दीन मसऊद शकरगंज हुए। ये बहुतसे नामोंसे प्रसिद्ध हैं लेकिन इनका विख्यात नाम पाकपत्तनके बाबा फरीद ही है। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र लोग इनका नाम जानते हैं। ये एक बहुत बड़े साधक हुए और संभवतः शारीरिक कष्ट-साधन जितना इन्होंने किया उतना और किसी सूफी-साधकने नहीं किया होगा। इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि लगातार चालीस रात इन्होंने कुएँमें उल्टा लटककर प्रार्थना की थी। उन्होंने उचकी एक मस्जिदमें एक ऐसी एकान्त जगह खोज निकाली थी जहाँ उन्हें कोई देख नहीं पाता था। उनकी मस्जिदका मुअज़्ज़िन उनके पैरोंको प्रत्येक रातमें आकर बाँधता और उन्हें लटका जाता और नमाज पढ़नेके लिए जब लोग इकट्ठा होते उसके पहले ही उन्हें वह ऊपर खींच लेता और पैर खोल देता।[2]

वे एकान्त-प्रिय थे और लोगोंकी भीड़ पसन्द नहीं करते थे। लोगोंकी भीड़ लगनेके कारण वे एक स्थान छोड़कर अन्य स्थानपर चले जाते। इस प्रकारसे कई स्थान उन्हें बदलने पड़े। बहाउद्दीन ज़करियासे उन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी लेकिन सूफी-साधनाके लिए उन्हें उन्होंने गुरु नहीं बनाया। क़ुत्बुद्दीन अल्प दिनोंके लिए मुल्तानमें आये। उसी समय फ़रीदुद्दीन उनके संपर्कमें आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। उस समय उनकी अवस्था सत्रह वर्षकी थी। अपने गुरुके साथ वे दिल्ली आये। लेकिन लोगोंकी भीड़ लगनेके कारण क़ुत्बुद्दीनकी आज्ञा लेकर वे

१. सूफि०, पृ० २२८।
२. वही, पृ० २१७।

दिल्लीसे हाँसी चले गये। वहाँ भी लोगोंने भीड़ लगाना नहीं छोड़ा अतएव उस स्थानको भी छोड़ कर वे अयोध्या चले गये और वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। जीवनके अन्तिम सोलह वर्ष उन्होंने मुल्तानके कठवाल स्थानमें बिताये।

सन् १२६६ ई० में उनकी मृत्यु पाकपत्तन (पंजाब) में हुई। उनके उर्सके समय वहाँ बहुत बड़ी भीड़ होती है जिसमें हिन्दू-मुसलमान सभी शामिल होते हैं। यह उर्स मुहर्रम महीनेकी पाँचवीं तारीखको होता है। वहाँपर एक 'स्वर्गका दरवाजा' है जिसकी कुञ्जी एक ब्राह्मणके पास रहती है[1]। यद्यपि यह दरवाजा कुछ वैसा तंग नहीं है फिर भी इससे पार होनेके लिए लोग अत्यधिक भीड़ करते हैं और धक्कमधुक्कीमें बहुतोंकी मृत्यु हो जाती है। यह "बिहिश्ती दरवाजा" उनके मक़बरेका एक दरवाजा है जो केवल उर्सके समय ही खोला जाता है। इसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि बाबा फ़रीदके शिष्य निजामुद्दीन उनके मक़-बरेके पास थे तो उन्हें मालूम हुआ कि उस दरवाजेके पास मुहम्मद खड़े हुए उनसे कह रहे हैं कि जो उस दरवाजेके भीतर घुसेगा वही बचेगा[2]। तभीसे उसका नाम 'स्वर्गका दरवाजा' पड़ा।

कहा जाता है कि बाबा फ़रीदका जन्म मुल्तान जिलेके कठवाल शहरमें हुआ था। चंगेज खाँके आक्रमण करनेपर इनके पितामह अपने परिवारके साथ काबुलसे भागकर पंजाब चले आये। मुल्तान जिलेके कठवाल शहरके वे क़ाजी नियुक्त हुए। ये शकरगंज भी कहलाते हैं। शकरगंज इनके नामके साथ कैसे जुड़ गया इसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि बचपनसे ही इनकी माँ नमाज पढ़नेकी आदत डालनेके लिए नमाज पढ़नेकी दरीके नीचे कुछ मिठाइयाँ रख देतीं कि जिसके लालचसे वे नमाज पढ़ने जाया करें। एक दिन ऐसा हुआ कि उनकी माँ मिठाई रखना भूल गयीं। उस दिन जब उन्होंने दरी उठाई तो देखा कि

१. द्र०, पृ० २१७।

२. सूफि०, २१९।

मिठाइयोंका स्तूप लगा हुआ है। अतएव इनका नाम शकरगंज (मिठाइयोंकी ढेरी) पड़ा[1]।

कहते हैं कि बुढ़ापेमें उन्होंने शादीकी थी। उनके छः लड़के और चार लड़कियाँ थीं। सबसे बड़े पुत्र शेख़ बदरुद्दीन सुलैमान एक सूफी साधक थे। उनकी सबसे छोटी लड़कीकी शादी अलीअहमद साबिरसे हुई थी जो उनके प्रधान शिष्य थे और साबिरी-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। अलीअहमद उनके अपने भांजे थे। कहा जाता है कि इनके तीन पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी दिल्लीके बादशाह बलबनकी पुत्री थी। उसका नाम हुज़ैरा था। बादमें उन्होंने हुज़ैराके साथ आयी हुई दो दासियोंके साथ भी शादी कर ली। बादशाहने हुज़ैराको खूब धन दिया था और एक राजमहल भी बनवा दिया था लेकिन उसने अपनी सारी सम्पत्ति ग़रीबोंको बाँट दी और पतिके जैसा ग़रीबी और साधनाका जीवन बिताने लगी।

चिश्ती सम्प्रदायके वंश-वृक्षको देखनेसे यह पता चलता है कि बाबा फ़रीदके दो प्रमुख शिष्य दिल्लीके हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया तथा हज़रत मख़दूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर थे। चिश्ती-सम्प्रदायके यहींसे दो उप-सम्प्रदाय हो गये—निज़ामुद्दीन औलियासे निज़ामी सम्प्रदाय और अलीअहमदसे साबिरी सम्प्रदाय। ये दोनों सम्प्रदाय चिश्ती-सम्प्रदायके अन्य सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अत्यधिक लोकप्रिय हैं। जितने अनुयायी इन दोनों सम्प्रदायोंके हैं उतने अन्य चिश्ती-सम्प्रदायके नहीं हैं।

निज़ामुद्दीन औलियाका वास्तविक नाम मुहम्मद बिन अहमद बिन दानियल अल-बुखारी था। वे बदायूँ (यू. पी.) के निवासी थे। वहींपर उनका जन्म सन् १२३८ ई० में हुआ था। वे "महबूबे-इलाही" (परमात्माका प्यारा) और "सुलतानुल[2] औलिया (औलियोंके सुलतान) तथा सुल्तानुल मशेख़[3] (शेखोंके सुल्तान) नामोंसे भी पुकारे जाते

1. सूफी०, पृ० २१७।

2. सूफि०, पृ० २२३।

3. ह. इ. इ., पृ० १४३।

हैं। सन् १३२५ ई०में उनकी मृत्यु हुई और वे दिल्लीके पास गियास-पुरमें दफ़नाये गये। उनकी क़ब्रके पास उनके और भी अन्य शिष्योंकी क़ब्रें हैं। दूर दूरसे यात्री उनके मक़बरेका दर्शन करने जाते हैं। उनके शिष्योंमें अमीर ख़ुसरो, अमीर हसन दिहलवी आदि थे। ज़ियाउद्दीन जो विख्यात इतिहासज्ञ हो चुके हैं, उन्हींके शिष्य थे। अमीर ख़ुसरो, फ़ारसीके विख्यात कवि थे और हिन्दीमें उन्होंने मुकरियाँ आदि लिखी हैं। उनका जन्म ईसाकी तेरहवीं शताब्दीमें एटामें हुआ था। निज़ामु-द्दीनके अत्यन्त प्रिय शिष्योंमें थे। उनकी मृत्युसे अमीर ख़ुसरो इतने अधिक सन्तप्त हुए कि उसी शोकसे उनकी मृत्यु सन् १३२५ ई०में हो गयी। ख़ुसरोको जीवनमें नाना आपत्ति-विपत्तियोंका सामना करना पड़ा था। बलबन, कैकुबाद आदि बादशाहोंके राजत्वकालमें कभी वे बाद-शाहोंके प्रियपात्र बने और कभी कोपभाजन हुए।

निज़ामुद्दीन, बाबा फ़रीदकी ख्याति सुनकर अयोध्या चले गये। बाबा फ़रीदके अत्यन्त प्रिय शिष्योंमें वे थे। कुछ ही दिनोंमें उन्होंने सूफी-साधनामें अत्यन्त सफलता प्राप्त कर ली। बाबा फ़रीद इनसे इतना प्रभावित थे कि बीस ही वर्षकी उम्रमें उन्होंने इनको अपना ख़लीफ़ा[1] चुन कर दिल्ली भेज दिया। इस घटनाके सात वर्षोंके बाद बाबा फ़रीद-की मृत्यु हुई।

वे अत्यन्त मातृभक्त थे। इनकी माताने ही उन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया था। इनकी उम्र जब पाँच वर्षकी थी तभी इनके पिताकी मृत्यु हो गयी। इनकी माताका नाम ज़ुलैख़ा था। उनकी मृत्युके बाद भी निज़ामुद्दीन बराबर उनकी क़ब्रके दर्शन करने जाया करते थे। वे बड़ी धर्म-प्राण महिला थीं और निज़ामुद्दीनके जीवनपर उनका अत्य-धिक प्रभाव पड़ा था।

दिल्लीके बादशाहोंकी आँखोंके ये बराबर काँटे बने रहे। वे अत्यन्त लोकप्रिय थे और दूर-दूरसे लोग इनके दर्शनके लिए आया करते थे।

---

१. इण्डि. इ. पृ० ११९।

बादशाहोंको यह बहुत ही खटकता था। दूसरी बात यह थी कि वे कभी भी दरबारमें नहीं जाते थे। कहा जाता है कि मुबारक खिल्जी दूजका चाँद जिस दिन निकलता था उस दिन एक प्रकारका दरबार करता जिसमें दरबारी और शहरके अमीर-उमरा आते और उस महीनेके लिए बादशाहकी मङ्गलकामना करते। निजामुद्दीन कभी नहीं गये। बुलानेपर भी नहीं गये। बादशाहने एक बार धमकी दी कि दूसरे महीने उस दिन अगर निजामुद्दीन नहीं आये तो उन्हें वह कठोर दण्ड देगा। कहा जाता है कि निजामुद्दीन अपनी माँकी क़ब्रके दर्शन करने गये और कहा कि उसके पहले ही अगर बादशाहकी मौत नहीं हो जाय तो वे माँकी क़ब्रके दर्शन करने नहीं आयेंगे। कहा जाता है कि बादशाहके एक दासने जो निम्नश्रेणीका था बादशाहकी हत्या कर दी और बादशाहको दूजका चाँद देखना नसीब नहीं हुआ। ग़ियासुद्दीन तुग़लक उस ग़ुलामको हटाकर बादशाह बना लेकिन वह भी निजामुद्दीनसे अप्रसन्न ही रहता था। वह सन् १३२५ ई० में जब बंगालपर विजय प्राप्तकर लौट रहा था तो उसने ख़बर भेजी कि निजामुद्दीन दिल्ली छोड़कर चले जायँ। इसपर निजामुद्दीनने कहा "हनोज दिल्ली दूर अस्त" अर्थात् दिल्ली अभी भी दूर है। उसके बादसे यह मुहावरा बन गया। कहते हैं कि बादशाह दिल्ली नहीं पहुँच पाया। तुग़लकाबादमें ही उसकी मृत्यु हो गयी। बादशाहके सम्मानमें एक मण्डप बना था वह गिर पड़ा, जिससे दबकर बादशाहकी मौत हुई। लोगोंका कहना है कि इस मृत्युका कारण राजनीतिक था और कुछका कहना है कि जिस आदमीकी देखरेखमें वह बना था वह निजामुद्दीनका बहुत बड़ा भक्त था और उसीने उसको कमजोर बनवाया था। उसीकी साजिशसे बादशाहकी मृत्यु हुई।

चिश्ती-सम्प्रदायकी निजामी शाखा भी बादमें दो उपशाखाओंमें बँट गयी—हिसामी और हम्जशाही। हिसामी शाखाके प्रवर्तक मानिकपुरके हिसामुद्दीन थे। उनकी मृत्यु सन् १४७७–७८ ई० में हुई। हम्जशाही शाखाके प्रवर्तक शेख हम्ज थे जो बहाउद्दीन जकरियाके वंशज थे। इस

शाखाका सम्बन्ध निजामुद्दीन औलियासे जोड़ा जाता है। निजामुद्दीन औलियाके खलीफा नसीरुद्दीन मुहम्मद थे। ये 'चिरागे दिहली' भी कहलाते हैं। चालीस वर्षकी अवस्थामें ये निजामुद्दीनके पास आये। इनकी मृत्यु सन् १३५६ ई० में हुई। इनके बाद बहुतसे सन्त हुए। हम्जशाही इस शाखाकी सन्त परम्परामें अपनेको बतलाते हैं। नसीरुद्दीन-की कब्र 'चिरागे दिहली'के नामसे विख्यात है। इसी शाखामें नसीरुद्दीनके बहुत बाद एक सन्त शेखसलीम चिश्ती हुए। कहा जाता है कि उन्हींके घरमें जहाँगीरका जन्म हुआ था। उनकी कब्र फतहपुर-सिकरीमें है। नसीरुद्दीनके एक उत्तराधिकारी सईदमीर गेसू दराज भी थे। नसीरुद्दीन-की मृत्युके बाद ये दिल्ली छोड़कर डेक्कन चले गये। वहींपर सन् १४२२ ई० में उनकी मृत्यु हुई। नसीरुद्दीन और गेसू दराजके जरिये ही हम्ज-शाही अपना सम्बन्ध निजामी शाखासे जोड़ते हैं।

साबिरी शाखाके प्रवर्तक फरीदुद्दीन शकरगंजके दूसरे शिष्य हजरत मखदूम अलाउद्दीन अलीअहमद साबिर थे। रुड़कीके उत्तर पीराँ कलीर नामक स्थानपर उनका मकबरा है। उनका जन्म सन् ११९७–९८ ई० में हेरातमें हुआ था और मृत्यु सन् १२९१ ई० में हुई। मृत्युके पहले उन्होंने बहुत ख्याति लाभ की। उनके नामके साथ 'साबिर' (सन्तोषी) शब्द कैसे जुड़ गया इसके सम्बन्धमें एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक दिन बाबा फरीदने अपने शिष्य अलीअहमदको गरीबोंको भोजन तथा भिक्षा अपने बदलेमें देनेके लिए कहा; वे लंगरखानेमें खड़े होकर रातदिन इस कामपर जुटे रहे लेकिन स्वयं घर जाकर भोजन करनेका समय नहीं पा सके। उस कामको छोड़कर वह जाना नहीं चाहते थे। इसके बाद कुछ ही दिनोंमें वे दुबले हो गये। उनकी माँने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि उनके गुरुने हुक्म दिया था कि वे दूसरोंको भोजन बाँटें लेकिन उन्हें स्वयं भोजन करनेका आदेश नहीं दिया था। दूसरे, लंगरखानेको छोड़कर वे जा भी नहीं सकते थे। अतएव कई दिनोंसे उन्होंने कुछ खाया नहीं है। इसीसे उनका नाम

'साबिर' पड़ा ।[1]

ये जब सात वर्षके थे तभी इनके पिताकी मृत्यु हो गयी । ये अत्यन्त ही ग़रीब थे । बाबा फ़रीदने इनका पालन-पोषण किया । बाबा फ़रीद इनके अपने मामा थे । बादमें चलकर ये उनके शिष्य हो गये । बाबा फ़रीदके आदेशानुसार ये कलियर गये । एक दिन किसी शुक्रवारको ये एक मस्जिदमें गये । लोगोंने अपमानित कर उन्हें वहाँसे निकाल दिया । लोगोंका विश्वास है कि इसी वजहसे अकस्मात् वह मस्जिद गिर पड़ी और बहुतसे लोग दबकर मर गये । कलियरमें प्लेग फैल गया और वह स्थान वीरान हो गया । वहाँ जंगल हो गया । उसी एकान्तमें एक पेड़के नीचे एक झोपड़ीमें अली अहमद अपने शिष्य शम्सुद्दीन तुर्कके साथ रहते थे । इस प्रकारसे बीस वर्षोंतक वे एकान्तमें रहे । वे संगीतके प्रेमी थे । अत्यन्त क्रोधी स्वभावके थे । कोई उनके सामने जानेका साहस नहीं करता था । उनके शिष्य उनके पीछेसे ही भोजन आदि उन्हें दिया करते थे । गानेवाले भयके कारण उनसे दूर ही बैठते थे ।

चिश्ती-सम्प्रदाय भारतवर्षमें खूब ही लोकप्रिय रहा है और इसका प्रसार इस देशमें खूब हुआ । ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें चिश्ती-सम्प्रदायकी सन्त-परम्परामें एक बहुत बड़े साधक हुए जिनका नाम शेख सलीम चिश्ती था । हम यह देख चुके हैं कि जहाँगीरका जन्म उन्हींके घर हुआ था । इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मुग़ल बादशाहोंमें उनका कितना मान था । उन्होंने बादशाहके परिवारको खूब प्रभावित किया था । उनकी मृत्यु सन् १५७२ ई० में हुई । इनकी मृत्युके बादके दो सौ वर्षोंमें इस सम्प्रदायकी अवनति होती गयी और ईसाकी अठारहवीं शताब्दीके मध्यतक तो इसका ह्रास चरमतक पहुँच गया । अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें ख़्वाजा नूरमुहम्मद क़िबलाह-आलमने पंजाब और सिन्धमें इसको पुनर्जीवित करनेकी चेष्टा की । वे एक राजपूत परिवारके थे । इसके बादका चिश्ती-सम्प्रदायका जो रूप मिलता है वह कम-या-बेशी

1. ग्लौ. पं. ट्रा. का. (प्रथमखण्ड), पृ० ५३० ।

भारतीय है।

भारतवर्षमें चिश्ती-सम्प्रदायके बहुतसे तीर्थ-स्थान हैं। कुछ मुख्य सन्तोंकी समाधियाँ इतनी लोकप्रिय हैं कि वहाँ मेला लगा करता है। इनमें कुछके नाम ये हैं—

(१) क़ुत्ब साहिबकी समाधि दिल्लीमें है। इन्होंने अपनी क़ब्रपर कोई इमारत नहीं बनने दी।

(२) ख़्वाजा निजामुद्दीन औलियाकी समाधि भी दिल्लीमें है।

(३) बू अलीशाह क़लन्दर—	कर्नाल
(४) ख्वाजा शम्सुद्दीन चिश्ती साबिरी—	पानीपत
(५) जलालुद्दीन कबीर-उल-औलिया—	„
(६) शाह लखी—	अम्बाला
(७) शाह भीक मीरानजी—	ठसक
(८) मीरानजी—	थानेसर तहसील
(९) शेख फ़रीदुद्दीन—	पाकपत्तन
(१०) अमीर ख़ुसरो—	नयी दिल्ली
(११) शाह नसीरुद्दीन—	दिल्ली
(१२) मुहम्मद अरीफ—	लाहौर

इसी प्रकारसे अनेकों हैं। सबका नाम गिनाना यहाँ सम्भव नहीं है।

---

१५. भारतवर्षके सूफी सम्प्रदाय (२)

भारतवर्षके सूफी-सम्प्रदायोंमें चिश्ती-सम्प्रदायके बाद सुहरवर्दी-सम्प्रदाय है। भारतवर्षमें इस सम्प्रदायके प्रवेशका इतिहास शिहाबुद्दीन सुहरवर्दीके कुछ शिष्योंके बग़दादसे यहाँ आनेके साथ प्रारम्भ होता है। सुहरवर्दी सम्प्रदायके प्रवर्तक[1] या तो शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी थे या शेख़ ज़ियाउद्दीन अथवा ज़ियाउद्दीनके पिता अबुल नजीब। शिहाबुद्दीन भारतवर्षमें कभी भी नहीं आये। इनकी क़ब्र बग़दादमें है। बहुत लोगोंने ऐसा भी कहा है कि इनकी क़ब्र मुल्तानके क़िलेमें है लेकिन यह बिल्कुल ग़लत है।[2] इनका पूरा नाम शिहाब अल-दीन उमर बिन अब्द अल्लाह अल-सुहरवर्दी था। इनका काल सन् ११२४–१२३४ ई० है। इन्होंने अपने चाचा अबू नजीबसे शिक्षा पायी थी, जो हदीसके बहुत बड़े ज्ञाता थे। 'आदाब अल-मुरीदीन' नाम व सूफीमतपर एक पुस्तक भी इन्होंने लिखी है। शिहाबुद्दीन बड़े ही वाकपटु थे। दूर-दूरसे लोग इनकी वक्तृता सुनने आया करते थे। ख़लीफ़ों और बादशाहोंके यहाँ भी इनकी इज़्ज़त थी। सनातन-पन्थी इस्लामसे इन्होंने सम्बन्ध बनाये रखा लेकिन इनका दृष्टिकोण उदार था। इनकी लिखी हुई पुस्तकोंमें 'अवारीफ़ुल मारिफ़' बहुत ही महत्त्वकी है। फ़ारसी कवि सादी इनके शिष्य कहे जाते हैं। मिस्री कवि अल-फ़रीदसे मक्कामें इनकी भेंट हुई थी।

भारतवर्षमें सुहरवर्दी-सम्प्रदायके प्रवर्तक बहाउद्दीन ज़करिया हैं। ये मुल्तानके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम वजीहुद्दीन था। इनके पूर्वज कुरेश-वंशके थे। हज़रत मुहम्मद भी कुरेश-वंशके थे। इनके पिता-

---

१. ग्लौ.पं.ट्रा.का. (प्रथम खंड), पृ० ५४४ तथा दर०, पृ० १५९।
२. ग्लौ. पं. ट्रा. का. (प्रथम खंड), पृ० ५४४।

मह मक्कासे आकर मुल्तानमें बस गये। बहाउद्दीन अपने समयके एक बहुत बड़े सन्त थे। बग़दाद जाकर ये शेख़ शिहाबुद्दीन उमर सुहरवर्दीके शिष्य हो गये। ये मक्का गये हुए थे और वहींसे शिहाबुद्दीनकी ख्याति सुनकर बग़दाद चले गये। वहाँ कुछ ही दिनोंमें अपने मुर्शिद (गुरु)की देखरेखमें साधनाके क्षेत्रमें ये अत्यन्त अग्रसर हुए। उन्हींके आदेशसे ये भारतवर्ष चले आये।

ये बड़े ही मृदु स्वभावके थे इसलिए बहाउद्दीन अर्थात् 'देवदूत' नाम इन्होंने पाया। बाबा फ़रीद उन्हें शे.खुल-इस्लाम कहा करते थे। बाबा फ़रीद तथा जलालुद्दीन बुख़ारी दोनोंने इनके सम्बन्धमें जो कहा है उससे इनकी आध्यात्मिक शक्ति और साधनाकी पूर्णताका अनुमान किया जा सकता है। एक बार इन दोनों साधकोंके सामने ही बहाउद्दीन भावाविष्टावस्थाको प्राप्त हुए। उसी अवस्थामें उन्होंने कहा कि हे परमात्मा, इस संसार तथा आनेवाले संसारमें जो सबसे बढ़कर वस्तु तुम्हारे अनुग्रहसे प्राप्त होती हो उसे प्रदान करो। जैसे उसके जवाबमें एक आवाज़ आयी कि तुम दोनों जगतोंके कुत्ब हो। फिर सन्तने प्रार्थना की—प्रभो, इससे भी बढ़कर जो हो उसे ही दो। आवाज़ आयी—मेरी सम्पूर्ण सृष्टिके तुम ग़ौस हो। इससे भी अधिकके लिए सन्तने प्रार्थना की। इस बार जैसे आवाज़ आयी कि इसके बाद तो पैग़म्बरका ही स्थान है लेकिन मुहम्मदके बाद और दूसरा कोई पैग़म्बर नहीं होगा अतएव दो नाम उसे प्रदान किये जाते हैं—कबीर अर्थात् महान् तथा मुनीर अर्थात् प्रकाश देनेवाला।

बहाउद्दीनके चमत्कारकी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि जब सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश बादशाह हुआ तब मुल्तान, उच और सिन्धका गवर्नर सुल्तान नासिरुद्दीन क़बाच उसके विरुद्ध विद्रोह करना चाहता था। उसकी ख़बर पाते ही बहाउद्दीन ज़करिया तथा क़ाज़ी शर्फ़ुद्दीनने अल्तमशके पास चिट्ठी लिखी लेकिन दोनोंकी चिट्ठियाँ पकड़ ली गयीं। क़बाचने दोनोंको बुला भेजा। क़ाज़ीने स्वीकार

कर लिया और उसे फाँसी दे दी गयी। बहाउद्दीनने बतलाया कि उन्होंने ईश्वरीय आदेशसे चिट्ठी लिखी थी और उन्होंने जो कुछ लिखा था वह सत्य लिखा था। उनकी बातोंको सुनकर क़बाच भयसे काँप उठा और उनसे क्षमा माँगकर उन्हें चले जाने दिया।[१]

इनका जन्म मुल्तानमें सन् ११८२ ई० में हुआ था और मृत्यु सन् १२६७-६८ ई० में हुई। इनकी क़ब्र मुसलमानोंके लिए एक तीर्थ जैसी है। इनके बहुतसे शिष्य थे। ये संपत्तिशाली थे और अपने जीवनमें इन्होंने काफ़ी धन जमा किया था। इनके सात पुत्र थे। इन्होंने सारी सम्पत्ति अपने सातों पुत्रोंमें बाँट दी।

सुहरवर्दी-सम्प्रदायके प्रसिद्ध सन्तोंमें बहाउद्दीनके ज्येष्ठ पुत्र सदरुद्दीन भी थे। सदरुद्दीनके हिस्सेमें जो संपत्ति मिली थी उसे उन्होंने ग़रीबोंको दे दिया और अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। कहा जाता है कि ज़मीन जायदादके अलावे उन्हें सोनेकी सात लाख मुहरें मिली थीं[२]। अपने किसी मित्रके इस बातकी चर्चा चलानेपर उन्होंने जवाब दिया कि उनके पिताको शक्ति थी कि इतनी सम्पत्तिके बीच भी वे निर्लिप्त रह सकते थे लेकिन उनमें वह शक्ति नहीं है, वे कमज़ोर हैं।

उनके चमत्कारकी एक अद्‌भुत कहानी कही जाती है। बादशाह बलबनका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदशाह, मुल्तानका शासक था। उसकी पत्नी अत्यन्त रूपवती थी और उसे वह बहुत प्यार करता था। एक बार नशेकी हालतमें उसने उसे तलाक़ दे दिया। उसने तीन बार उसे छोड़नेकी बात कही जो इस्लामके अनुसार ऐसा है कि उस स्त्रीके साथ अगर दूसरा आदमी शादी कर तलाक़ नहीं देता तबतक फिरसे वह उसके साथ शादी नहीं कर सकता। मुहम्मदशाहका जब नशा उतरा तब उसे होश हुआ कि उसने क्या किया है। वह बहुत ही मुश्किलमें पड़ा। मुल्तानके काज़ीने सलाह दी कि सदरुद्दीन एक बहुत बड़े सन्त हैं, उन्हींके साथ उस

१. ग्लौ. पं. ट्रा. का. (प्रथम खंड), पादटिप्पणी ४, पृ० ५४४।

२. सूफि०, पृ० २२१।

स्त्रीकी शादी हो और वे तलाक़ दे दें। अतएव शादी हो गयी। शादीके दूसरे दिन जब मुहम्मदशाहने उसकी माँग की तब उन्होंने इनकार कर दिया। कहा जाता है कि उन्होंने उस स्त्रीके कहनेपर ही ऐसा किया। मुहम्मदशाह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने दूसरे दिन सदरुद्दीनको मरवा डालनेकी बात सोची। लेकिन इसी बीच मंगोलोंने मुल्तानपर चढ़ाई कर दी और मुहम्मदशाह उनसे लड़ता हुआ मारा गया। सदरुद्दीनकी जीवनी लिखनेवाले इसमें परमात्माका हाथ देखते हैं। उसकी मृत्यु सन् १२८५ ई० में हुई।

शेख़ अहमद माशूक़, सदरुद्दीनके ख़लीफ़ा थे। कहा जाता है कि ये एक व्यापारी थे। कन्दहारमें इनकी दूकान थी। ये बहुत बड़े शराबी थे। व्यापारके सिलसिलेमें ये मुल्तान आये हुए थे। उसी समय सदरुद्दीन-से एक बार मिलनेका उन्हें मौका मिला। ये अत्यन्त प्रभावित हुए और कुछ दिनों बाद उनके शिष्य हो गये।

शेख़ अहमदके नामके साथ 'माशूक़' शब्दके जुड़नेकी कहानी कुछ इस प्रकारसे कही जाती है। एक बार ये नदीमें स्नान कर रहे थे। उन्होंने परमात्मासे प्रार्थना की कि जबतक वे यह नहीं बतला देंगे कि उनकी नजरोंमें उसका क्या स्थान है तबतक वह नदीसे बाहर नहीं निकलेंगे। उन्होंने आवाज़ सुनी कि मेरी दृष्टिमें तुम्हारा स्थान बहुत ही ऊँचा है और क़यामतके दिन तुम्हारी वजहसे बहुतसे पापियोंका उद्धार होगा। लेकिन शेख़ अहमदने फिर प्रार्थना की कि हे प्रभो, इतना काफ़ी नहीं है। अपने अनुग्रह द्वारा मेरा और भी स्थान ऊँचा करो। फिर आवाज़ आयी, कि मैं तुम्हारा आशिक़ और तुम मेरे माशूक़ हो। और अब जाकर तुम अन्य लोगोंको मेरे रास्तेपर लगाओ। उसी समयसे ये माशूक़ कहे जाने लगे।

प्रायः शेख़ अहमदको भावाविष्टावस्था प्राप्त हो जाया करती थी। इसका फल यह होता था कि धार्मिक कृत्योंका ये विधिपूर्वक पालन नहीं कर पाते थे। एक बार उन्होंने फ़ातिहा नहीं पढ़ी। प्रार्थनाका यह एक आवश्यक अंग है। जब लोगोंने उनपर दबाव डाला तो उन्होंने कहा कि

अगर उसमेंसे एक वाक्य 'तुम्हारी हम सेवा करते हैं और तुम्हारी मदद चाहते हैं' निकाल दिया जाय तब वे उसे पढ़ेंगे। लेकिन उलमाको यह स्वीकार नहीं था। जबर्दस्ती लोग जब उन्हें उसे पढ़वाने लगे तो उस विशेष स्थानतक वे पहुँचे भी नहीं थे कि उनके समस्त शरीरसे खून निकलने लगा। उलमासे उन्होंने कहा कि उनका शरीर अपवित्र है इसलिए अब वे नहीं पढ़ेंगे। इससे सभीको विश्वास हो गया कि परमात्मा और उनके बीच एक विशेष सम्बन्ध है।

सुहरवर्दी-सम्प्रदायमें दीक्षित होनेवालेको प्रथम मुर्शिद (गुरु)के आदेशसे अपने छोटे-बड़े सभी पापोंके लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसके बाद उससे पाँच कल्मा पढ़नेके लिए कहा जाता है और धर्मपर पूरी तरहसे ईमान लानेके लिए कहा जाता है। नमाज तथा रोजा रखनेपर पूर्ण जोर दिया जाता है। इसे सुहरवर्दी-सम्प्रदायवाले "मुरीद होना" कहते हैं। सुहरवर्दी-सम्प्रदायवाले अपनेको नाना प्रकारके वस्त्रों आदिसे ढँके हुए रहते हैं। वे कहते हैं कि इससे इन्हें बराबर स्मरण होता रहेगा कि मनुष्य नंगा है और परमात्मा उसको देख रहा है[1]। उनके रंग-बिरंगे कपड़ोंका यह भी अर्थ लगाया जाता है कि परमात्माने मनुष्यके लिए अनेक प्रकारके जीव-जन्तु बनाये हैं।

सुहरवर्दी-सम्प्रदायके कुछ प्रमुख सन्तों और दरगाहोंके नाम निम्नलिखित हैं—

सन्तोंके नाम	दरगाहोंके स्थान	मृत्युका साल
शेख बहाउद्दीन जकरिया	मुल्तान	१२६७ ई०
शेख सदरुद्दीन	,,	१२८३ ई०
शेख अहमद माशूक़	,,	१३२० ई०
शेख रुकनुद्दीन	,,	१३३५ ई०
शेख हमीदुद्दीन	दिल्ली[2]	१३३७ ई०

१. ग्लो. पं. ट्रा. का. प्रथमखण्ड, पृ० ५४४।

२. दूसरे मत से मउ मुल्तान का एक शहरः वही, पृ० ५४६।

सैयद जलालुद्दीन मख्दूमे-जहानिया झंगका उच्च स्थान		१३८३ ई०
सईद बुरहानुद्दीन कुत्ब आलम	अहमदाबाद	१४५३ ई०
शेख मूसा	लाहौर	१५१९ ई०
सईद हाजी अब्दुल वहाब	दिल्ली	१५२५ ई०
बाबा दाऊद खाकी	कश्मीर	१५८५ ई०
सैयद झूलन शाह	लाहौर	१५९४ ई०
मीरान मुहम्मद शाह	लाहौर	१६०४ ई०
शाह जमाल	इछराके पास लाहौरमें	१६२९ ई०
शाह दौला दरियाई	गुजरात (पंजाब)	१६६४ ई०
शेख जान मुहम्मद	लाहौर	१६७१ ई०
शेख मुहम्मद इस्माइल	,,	१६७४ ई०
शेख हसन लाल्हू	कश्मीर	१६८९ ई०

ये नाम इस दृष्टिसे नहीं लिए गये हैं कि इनके अलावे और कोई प्रमुख साधक नहीं हैं। यह लिस्ट बहुत बड़ी है[1]।

सुहरवर्दी सम्प्रदायके अन्तर्गत कई उप-सम्प्रदायोंका आविर्भाव हुआ। जलाली सम्प्रदाय उनमें से एक है। इसके प्रवर्तक बहावलपुर रियासतके उच्च स्थानके सईद जलाल बुखारी थे। इनका काल सन् १३०७ ई० से सन् १३७४ ई० तकका है। जलाली फ़क़ीर गलेमें ऊनका एक हार पहनते हैं अथवा भिन्न रंगोंके सूत गलेमें लपेटे हुए रहते हैं। वे गुलूबन्द भी लिये हुए रहते हैं और लँगोटीधारी होते हैं। हाथमें वे सोटा लिये हुए रहते हैं। सिरमें काला सूत लपेटते हैं तथा हाथमें तावीज धारण करते हैं। सिंगा (horn) भी लिये हुए रहते हैं और भावाविष्टावस्थामें उसे बजाते हैं। सम्प्रदायमें दीक्षित होनेके समय उनके दाहिने हाथके ऊपरी हिस्सेमें जलते हुए कपड़ेसे एक छाप दे दिया जाता है। वह चिह्न बना हुआ रहता है। वे भंग खाते हैं। उनके साँप और बिच्छू खानेकी भी

१. देखिए सूफि० ३४७–३५० ।

बात कही जाती है[1]। वे अपना सर, अपनी मूछ और भ्रुवोंको मुड़वा देते हैं और दाहिनी ओर एक चोटी छोड़ देते हैं। उनके रहनेका कोई एक विशेष स्थान नहीं। फिर भी कुछ स्थान उनके नामके साथ जुड़े हुए हैं। कहते हैं कि इस सम्प्रदायका एक स्थान डेक्कनके पेनुकोण्डा नामक शहरमें है जो अनन्तपुर जिलेमें है। इसी तरहसे पटियालाके मनौर नामक स्थानमें उनका एक 'डेरा' है। फिरोजपुरके मुसल्लिस तकियामें रहनेवाले साँईं भी इसी सम्प्रदायके अन्तर्गत माने जाते हैं। कहते हैं कि जब बकरियोंकी बीमारी जोरोंसे फैलती है तब लोग इन जलाली-सम्प्रदायके फ़क़ीरोंको बकरियाँ भेंट देते हैं जिसमें कि बीमारी दूर हो जाय। ये फ़क़ीर 'पंजतन' और 'दममौला' आदि कहते सुने जाते हैं। इन शब्दोंको वे दुहराते रहते हैं।

जलाली-सम्प्रदायसे एक और सम्प्रदायका आविर्भाव हुआ है। इसका नाम 'चिहल्तन' है जिसका मतलब 'चालीस देह' है। कहते हैं कि सन्तानोत्पत्तिकी कामनासे किसी औरतने एक गोलीके बदले चालीस गोलियाँ खालीं और उसे चालीस बच्चे पैदा हुए[2]।

जान ए. सुभानने अपनी पुस्तक 'सूफिज्म, इट्स सेन्ट्स एण्ड श्राइन्स' में सुहरवर्दी-सम्प्रदायके अन्तर्गत और कई उप-सम्प्रदायोंकी चर्चा की है। उनमें जलालीके अलावे मखदूमी, मीरनशाही, इस्माइलशाही और दौलाशाही हैं।

मखदूमी-सम्प्रदायके प्रवर्तक मीरसईद जलालुद्दीन मखदूमे जहानिया जहाँ गश्तबुखारी थे। ये सईद जलालुद्दीन सुर्खपोशके पोता थे। सूफी इनको बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। उनका विश्वास है कि ये सम्पूर्ण पृथ्वीका भ्रमण कर चुके थे और सभी प्रमुख सन्तोंसे मिल चुके थे। दिल्लीके बादशाह फिरोजशाहके समयमें ये हुए।

मीरनशाही-सम्प्रदायके प्रवर्तक मीरान मुहम्मदशाह मौजेदरिया बुखारी

१. इ. इ. इ., पृ० २९१।

२. इ. इ. इ., पृ० २९२।

थे। ये जलालुद्दीन सुर्खपोशके वंशजोंमें थे। ये पहले तो उचमें ही रहते थे लेकिन बादमें लाहौरमें आकर बस गये। ये अकबरके समयमें थे। कहा जाता है कि इनके ही आशीर्वादसे अकबरने चित्तौड़पर विजय पायी। अकबरने इस विजयकी खुशीमें बहुत कुछ सन्तको दिया। इनकी मृत्यु सन् १६०४ ई० में हुई। प्रत्येक वर्ष लाहौरमें इनका उर्स होता है। इनकी मृत्यु यद्यपि बटालामें हुई फिर भी इन्हें लाहौरमें अनार-कलीके पास दफनाया गया। पंजाबके सिक्ख शासक रणजीतसिंहने इनकी कब्रकी देखरेखके लिए चालीस रुपये प्रतिमासकी व्यवस्था कर दी थी।

इस्माइलशाही-सम्प्रदायके प्रवर्तक हाफिज मुहम्मद इस्माइल थे। ये साधारणतः मियाँ वडाके नामसे मशहूर थे। इनका जन्म सन् १५८६ ई० में हुआ था। इनके पिताने इन्हें उस समयके प्रसिद्ध पीर मखदूम अब्दुल करीमके पास भेज दिया। उनका खानकाह चनाब नदीके किनारे लंगरे-मखदूममें था। ख़ानक़ाहके लिए इन्हें अनाज पीसनेका काम दिया गया। उस समय इनकी अवस्था बारह वर्षकी थी।

कहा जाता है कि एक बार इनके पीर अकस्मात् इनके पास चले गये और वहाँ जाकर देखा कि ये ध्यानस्थ हैं लेकिन अन्न अपने आप पिसता चला जा रहा है। पीरने तुरत ही इन्हें इस कामसे हटा दिया लेकिन इन्होंने पीरसे प्रार्थना की कि इन्हें कोई-न-कोई काम दिया जाय। अतएव इन्हें गाय दुहनेका काम दिया गया। लेकिन ऐसा हुआ कि इनके दुहनेके कारण गायोंने अधिक दूध देना शुरू किया। नजदीकके लोग भी अपनी अपनी गायें दुहवानेके लिए इनके पास हाजिर होने लगे। अब्दुल करीमने देखा कि यह एक सन्त हैं उनसे अब अधिक शिक्षा लेनेकी जरूरत इनको नहीं है।

इनकी मृत्यु सन् १६८३ में हुई। कहते हैं कि इनमें ऐसी विलक्षण शक्ति देखी गयी कि जो लोग इनसे पढ़ने जाते वे अल्पकालमें ही हाफिज हो जाते। इनकी इस प्रसिद्धिके कारण बहुसंख्यक लोग इनसे क़ुरान

पढ़ने आते। इनकी क़ब्रके पास ही लोगोंने एक मकतब खोल दिया। उस मकतबमें बहुत दिनोंतक लोग इसी विश्वासको लेकर जाते थे कि शीघ्र ही वे .कुरान पढ़ना सीख जायेंगे। लोगोंमें यह भी धारणा प्रचलित थी कि इनकी क़ब्रके पासकी जड़ी-बूटी अथवा पौधोंकी पत्तियोंको खा लेनेसे मेधाशक्ति बढ़ती है। इन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि इनकी क़ब्रपर किसी प्रकारके बुर्जका निर्माण न किया जाय। लेकिन हालके सज्जाद-निशीन (उत्तराधिकारी) ने एक मक़बरा बनवा दिया है जहाँ बैठकर वह .कुरानका पाठ करता है[१]। ये लाहौरके तेलपुरा मुहल्लेमें अन्ततक रहे। इनके तीन भाई थे और वे तीनों ही साधक थे और तीनों ही अविवाहित रहे। सईद जानमुहम्मद हुज़ूरी इनके शिष्य थे और बादमें ये ही इनके उत्तराधिकारी हुए। जान मुहम्मद उस मस्जिदके प्रथम इमाम थे जिसका निर्माण सन् १६४९ ई०में हुआ था[२]।

दौलाशाही-सम्प्रदाय दौलाशाहका चलाया हुआ था। इनका जन्म सन् १५८१ ई०में हुआ था। कहा जाता है कि ये १५० वर्षोंतक जीवित रहे और चार मुगल सम्राटोंके शासन-कालमें वर्तमान थे। अकबरके शासन-कालके २५ वें वर्षमें इनका जन्म हुआ। उसके बाद ये जहाँगीर, शाहजहाँ और औरङ्गजेबके समयतक जीवित रहे। वैसे इनकी उम्र तथा इनके जीवन सम्बन्धी अन्य कहानियाँ विश्वसनीय नहीं हैं। इनकी उम्रके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये ९५ वर्षतक जीवित रहे। सन् १५८१ ई०में इनका जन्म हुआ और सन् १६७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।[३]

शाहदौलाका मक़बरा गुजरात शहरके पूर्वी हिस्सेमें है। वहाँसे शाहदौला दरवाज़ा एक सौ गज़की दूरीपर है। उस मकबरेके आस-पास शाहदौलाके वंशजोंके मकान हैं। गद्दी शाहदौलाके नामसे वह हिस्सा परि-

१. ग्लौ. पं. ट्रा. का., (प्रथम खण्ड), पृ० ६१६।

२. वही, पृ० ६१६।

३. वही, पृ० ६३६।

चित है। सत्तरहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें भावनशाह नामक एक सन्तने उस मक़बरेको बनवाया था। सन् १८६७ ई०में उस स्थानको और ऊँचा कर फिरसे मक़बरेका निर्माण किया गया और सन् १८९८ ई०में वह पूरी तरहसे मरम्मत किया गया।

शाहदौलाके जन्मकी कहानी तथा उनका जन्मस्थान भी आज निश्चित रूपसे कह सकना कठिन है। कुछ लोग उन्हें पठान बतलाते हैं और कुछ लोग गूजर। उनकी माताका नाम नियामत खातून था। वे सुल्तान सारङ्ग घखरकी परपोती थीं। उनकी माताका शेष जीवन बड़े कष्टमें बीता और उनकी मृत्युके बाद शाहदौलाको भीख माँगनी पड़ी। एक हिन्दूको उनपर दया आयी। उसे कोई सन्तान नहीं थी और वह पैसेवाला था। उसका नाम महता कीमान था। उसने इन्हें खरीद लिया। ये बड़े धर्मात्मा और दानी थे। अन्तमें ये स्वतन्त्र होकर फ़क़ीर हो गये।

सियालकोटके पास संग्रोही ग्राममें ये शाह सैदान सरमस्तके शिष्य हो गये। शाह सैदानका एक प्रिय शिष्य था जिसका नाम मङ्गु अथवा मोल्लू था[1]। तज़किरातुल असफ़ियाके अनुसार इनके पीरका नाम सईद नासिर मस्त था और उनके प्रिय शिष्यका नाम 'दौला' ही था[2]। कहते हैं कि अपनी मृत्युके समय पीरने मङ्गुको तीन बार बुलवा भेजा लेकिन रात्रि होनेके कारण वह नहीं आया। पीर उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। शाहदौला बराबर पीरके पास बने रहे। अन्तमें पीरने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी बनाया और पीरकी मृत्यु हो गयी।

पीरकी मृत्युके बाद वे कुछ दिनोंतक शहरके बाहर छिपकर रहे चूँकि अन्य शिष्य उनके विरोधी हो गये थे। उस स्थानके चारों ओर रह कर उन्होंने दस वर्ष बिता दिये। उनकी काफी ख्याति हुई। अधिकसे अधिक लोग उनकी ओर आकर्षित हुए। उन्होंने लोगोंके लिए बहुतसे

---

१. वही, पृ० ६३२।

२. सूफि०, पृ० २४४।

काम किये। बहुत-सी इमारतें, मस्जिदें, पोखरे, कुँए, पुल आदि इन्होंने बनवाये। ऐक का नामी पुल इन्हींका बनवाया हुआ है। कहा जाता है कि दिव्य शक्तिसे प्रेरित होकर वे गुजरात (पंजाब) गये और वहीं बस गये।

गरीबोंके प्रति वे बड़े सदय थे। इसमें वे जाति, धर्मका ख्याल नहीं करते थे। उनकी इस उदारताने उन्हें खूब जनप्रिय बना दिया। हिन्दू, मुसलमान सभी उनका सम्मान करते थे। उनके शिष्योंमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे। अन्य सूफी-साधकोंकी तरह उनके चमत्कारकी भी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। उनमें बहुत-सी बादमें उनके शिष्यों द्वारा गढ़ ली गयी हैं। जंगली जानवर भी उनके पास आनेमें नहीं सहमते थे। इससे और भी लोगोंका विश्वास उनकी शक्तिमें बढ़ा। उनके विभिन्न चमत्कारोंमें एक चमत्कार यह भी है कि वे सन्तान दे सकते हैं। 'चूहा-सन्तान'के साथ उनका नाम जुड़ा हुआ है। 'चूहा-सन्तान'से मतलब ऐसे बच्चोंसे है जो बिल्कुल बुद्धिहीन होते हैं और उनका चेहरा भी साधारणसे थोड़ा भिन्न होता है। कहते हैं कि उन बच्चोंको समझनेकी शक्ति नहीं होती, छोटा सिर होता है, बड़े-बड़े कान होते हैं और चूहों जैसा उनका चेहरा होता है। लोगोंका ख्याल है कि शाहदौलाकी कृपासे सन्तान तो पैदा हो सकती है लेकिन पहली 'चूहा-सन्तान' होगी। उसे सन्तको दे दिया जाता था। शाहदौलाके शिष्य भीख माँगने आदिके काममें उनका उपयोग करते। उन्हें अपने साथ लिये हुए वे घूमते फिरते। उनकी मृत्युके बाद इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ। लोग या तो पहली सन्तानको दे देनेका वादा करते या उसके बदलेमें नजर भेंट करनेकी प्रतिज्ञा करते। इस तरहके 'चूहे बच्चे' पूँच, जम्मू आदिमें ही अधिक मिलते रहे हैं। उनकी सहायतासे इस सम्प्रदायके फ़क़ीरोंको भीख माँगनेमें मदद मिलती अतएव बहुत बार कुछ बच्चोंको शुरूसे ही वे उसी प्रकारका बना देते।

इस सम्प्रदायवालोंके पास जमीन आदि जैसी कोई सम्पत्ति नहीं है। ये

अधिकांश भीख तथा भक्तोंकी नजर चढ़ाने आदिपर ही निर्भर करते हैं। ये अपने बहुसंख्यक शिष्योंके पास सालमें एक बार जाते हैं। इन्हें कमसे कम प्रत्येक शिष्यसे एक रुपया तो मिल ही जाता है। साल भरमें शाह-दौलाके मकबरेके पास तीन बार मेला लगता है। दो ईदोंके समय और एक उनके उर्सके समय जो मुहर्रमकी दस तारीखको पड़ता है। पहले, सप्ताहमें एक बार मेला लगता था जिसमें नाचनेवाली वेश्याएँ आती थीं लेकिन अब इसमें कमी हो गयी है। उत्तराधिकारका कोई नियम नहीं। उनके वंशके प्रत्येक व्यक्तिको आमदनीमेंसे हिस्सा मिलता है। उनमें तीन प्रमुख हैं जिनमें एक सज्जाद-निशीन (उत्तराधिकारी) कहलाता है।

शाहदौला दरयाईके नामसे ये अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके जीवनके अन्तिम समयतक गरीब, अमीर, सभी इनका आशीर्वाद ग्रहण करने आते। इन्होंने भावनशाहको अपना उत्तराधिकारी बनाया।

रोजका कहना है[1] शाहदौला-सम्प्रदायकी एक उप-शाखा है जिसके फ़क़ीर स्वातके अखुन्दको अपना प्रधान मानते हैं। अखुन्दका एक शिष्य बाजी सुल्तान मुहम्मद बहुत प्रसिद्ध हुआ है। उसके बहुतसे शिष्य हैं। वह गुजरात जिले (जम्मूकी सरहदपर) के अवान गाँवका रहनेवाला है। वह शाहदौलाके मक़बरेपर रहता है।

क़ादिरी-सम्प्रदायके प्रवर्तक अब्दुल क़ादिर अल-जीलानी थे। जीलान (फ़ारस) के वे रहनेवाले थे। उनका जन्म सन् १०७८ ई० में हुआ था। सत्रह वर्षकी अवस्थामें वे बग़दाद चले गये। सन् ११२७ ई० में आध्यात्मिक जीवनके सम्बन्धमें उन्होंने प्रचार करना शुरू किया। उनकी करामातोंकी कहानियोंको सुन-सुनकर लोग उनके निकट आने लगे। धीरे-धीरे उनका शिष्य-सम्प्रदाय बढ़ता गया। क़ादिरी-सम्प्रदाय सनातन-पन्थी इस्लामसे निकट सम्बन्ध बनाये हुए रहा इसलिए मुसल-मानोंमें उसका अधिक स्वागत हुआ।

उनका पूरा नाम अब्द अल-क़ादिर बिन अब्द अल्लाह अल-

1. ग्लौ. पं. ट्रा. का., पृ० ६३१।

जीलानी था। उनका अत्यधिक सम्मान था। उन्हें लोग भक्तिपूर्वक अनेक नामोंसे पुकारते हैं जैसे पीर-दस्तगीर या पीरे-पीराँ। ग़ौसुस्समदानी, ग़ौसुल आज़म, महबूबे सुभानी, मीराँ मुहैउद्दीन, हसनुल हुसैनी आदि[1]। क़ादिरी-सम्प्रदायमें प्रचलित एक कहानीसे उनके महत्त्वपर प्रकाश पड़ता है। कहा जाता है कि पैग़म्बरकी पुत्री फातिमाने स्वप्नमें देखा कि उसके पिताके घरसे एक आदमी हाथमें एक बड़ा मशाल लिये हुए निकला जिसका प्रकाश पूर्वसे पश्चिम तक सर्वत्र फैला हुआ था। उसने अपने पिता-से इसकी चर्चा की। उसके पति हज़रत अली भी वहीं बैठे हुए थे। हज़रत मुहम्मदने बतलाया कि इसका मतलब यह है कि अलीके बाद एक आदमी आनेवाला है जिसकी पवित्रता मशाल जैसी होगी और जो सभी सन्तोंका प्रधान होगा। अलीने इसे माननेसे इन्कार किया। उन्होंने कहा कि प्रधान तो वे ही हैं। पैग़म्बरने कहा कि नहीं, जो आनेवाला है वह सभी सन्तोंके कन्धेपर पैर रखेगा और सबपर शासन करेगा। अपनी गर्दनपर जो उसका पैर नहीं रखेगा वह अपनी गर्दनपर थैले ढोयेगा। अलीने फिर नहीं माना। पैग़म्बरने उसी समय एक बच्चेकी सृष्टि की। उस कमरेमें ऊँचेपर कुछ फल रखे हुए थे। पैग़म्बरने अलीसे उसे बच्चेके लिए उतारनेके लिए कहा। अली वहाँ पहुँच नहीं सके तब पैग़म्बरने उनकी गर्दनपर बच्चेको रख दिया जिसमें कि वह फल स्वयं उतार ले। जैसे ही वह अलीके कन्धेपर चढ़ा पैग़म्बर बोल उठे, 'देखो, जिसकी चर्चा मैं कर रहा था, वह तुम्हारे कन्धेपर है।' अब्दुल क़ादिर ही वह शिशु थे[2]।

अब्दुल कादिर अल-जिलानीकी मृत्यु सन् ११६६ ई० में हुई और उनकी मृत्युके तीन सौ वर्षोंके बाद कादिरी-सम्प्रदायका प्रवेश भारतवर्षमें हुआ। कहा जाता है कि अब्दुल कादिरने अपना नीमका दातून लुधियाना-में छोड़ दिया था और वही उनकी दरगाहके पास नीमका पेड़ हो गया है। वहाँ जो मेला लगता है उसे 'रोशनीका मेला' कहते हैं। हिन्दू और

---

१. दर०, पृ० ५२—५३।

२. ग्लो. पं. ट्रा. का. प्रथम खण्ड, पृ० ५३८।

मुसलमान सभी वहाँ दिये जलाते हैं। जाट पशुओंको ले जाते हैं और उन्हें कुदाते हैं। ऐसा वे मंगलके लिए करते हैं। तीन-चार दिनोंतक यह मेला रहता है। लोगोंकी भीड़ रात-दिन लगी रहती है। हरएक तरहके गान गाये जाते हैं। वेश्याएँ भी इस मेलेमें आती हैं[1]। लेकिन स्थानीय कहानी जो इस मेलेके सम्बन्धमें कही जाती है, वह इससे भिन्न है। उसमें न अब्दुल कादिरका ही नाम आता है और न नीमके पेड़का ही जिक्र है। यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि अब्दुलकादिर अत्यन्त ही विख्यात और श्रद्धापात्र थे अतएव लगता है बादमें चलकर यह कहानी गढ़ ली गयी है।

इस सम्प्रदायकी शिष्य परम्परामें शेख मीरमुहम्मद या मियाँमीर थे जो मुगल बादशाह शाहजहाँके पुत्र दाराशिकोहके आध्यात्मिक गुरु थे। दाराशिकोहने उनकी जीवनी भी लिखी है जिसका नाम "सकीनत उलऔलिया" है। इस सम्प्रदायके बहुतसे सन्तोंकी समाधियाँ उत्तरी भारतमें प्रायः सर्वत्र पायी जाती हैं। पंजाबमें ये समाधियाँ विशेष रूपसे हैं।

भारतवर्षमें इस सम्प्रदायके प्रवर्तक मुहम्मद गौस थे। इनका बहुत ही सम्मान है। पेशावरसे दिल्लीतक सर्वत्र लोग इन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। ये अब्दुलकादिर अल-जिलानी (पीर दस्तगीर) के वंशज थे। अतएव जब ये भारतवर्षमें आये तो थोड़े ही दिनोंमें इनके बहुतसे शिष्य हो गये। क़ादिरी-सम्प्रदायकी ख्याति भारतवर्षमें पहले ही पहुँच चुकी थी। उनके आनेके थोड़े ही दिन बाद दिल्लीका शासक सुल्तान सिकन्दर लोदी उनका शिष्य हो गया और अपनी लड़कीकी शादी उनके साथ कर दी[2]। वे सन् १४२८ ई० में भारतवर्षमें आये और उचमें बस गये और वहींपर सन् १५१७ ई० में उनकी मृत्यु हुई। लेकिन बहुत दिनोंतक उनके वंशमें साधक होते गये और उनमें बहुतोंके चमत्कारकी

१. ग्लौ. पं. ट्रा. का. प्रथम खण्ड, पृ० ५३६८।

२. सूफी., पृ० २५३।

कहानी प्रसिद्ध है।

मुहम्मद गौसके उत्तराधिकारी उनके पुत्र अब्दुल .कादिर द्वितीय हुए। बचपनसे ही ये सुखमें पले और नाना प्रकारके व्यसनोंके शिकार रहे। लेकिन मुहम्मद गौसकी मृत्युके बाद जब ये खलीफा हुए तब इनके जीवनकी धारा बिलकुल परिवर्तित हो गयी। सांसारिक सभी सुखोंका इन्होंने त्याग कर दिया। बादशाहसे मिलनेवाले द्रव्यको लेना इन्होंने अस्वीकार कर दिया। इनका जीवन गरीबीसे बीतने लगा। इन्होंने नानाप्रकारके कष्ट सहे लेकिन ये अपने आध्यात्मिक पथपर दृढ़ बने रहे। परमात्मामें इनका दृढ़ विश्वास बना रहा। बादशाहके दरबारमें इनके पिताका खूब सम्मान था लेकिन उस ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। बादशाहके बुलानेपर भी ये दरबारमें नहीं गये। इनके और तीन भाई सरकारी नौकरी करते थे। वे ऊँचे ओहदोंपर थे और सुखसे जीवन बिताते थे। लेकिन इनके लिए सांसारिक सुख निरर्थक हो गया था।

क़ादिरी-सम्प्रदायवाले अपनी टोपीमें गुलाबका फूल लगाये रहते हैं।[1] .कादिरी-सम्प्रदायमें गुलाबका फूल बहुत पवित्र माना जाता है। गुलाबका फूल इस सम्प्रदायमें कैसे इतने महत्त्वका हो गया, इसके सम्बन्धमें एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि खिज़्रने अब्दुल .कादिर जिलानीको बग़दाद जानेका आदेश दिया। जब वे वहाँ पहुँचे तो शे.खने पानीसे भरा हुआ एक प्याला उनके पास भेज दिया। इसका मतलब यह था कि बग़दाद शहर पहलेसे ही सन्तजनोंसे भरा हुआ है। वहाँ अब उनके लिये स्थान नहीं है। जाड़ेका दिन था और उस समय कहीं कोई फूल नहीं खिला था। अब्दुल .कादिर अल जिलानीने उसपर एक गुलाबका फूल रख दिया जिसका मतलब यह था कि बग़दादमें उनके लिए भी स्थान हो जायगा। इसे देख लोग चिल्ला उठे कि शेख (अब्दुल .कादिर) ही उन लोगोंके गुलाब हैं। तभीसे गुलाबका स्थान इस सम्प्रदायमें हो

१. दर०, पृ० ९९।

गया ।[1] यह गुलाबका फूल पैगम्बरका प्रतीक है ।[2]

क़ादिरी- सम्प्रदायमें संगीतका स्थान नहीं है । इस सम्प्रदायमें लोग हरे रंगकी पगड़ी बाँधते हैं । उनके कपड़ोंमेंसे एक गेरुआ रंगमें अवश्य रँगा हुआ रहता है[3] । इस सम्प्रदायमें ज़िक्रे-खफी और ज़िक्रे-जली दोनों प्रचलित हैं । इस सम्प्रदायमें परमात्माको स्मरण करनेके चार तरीके बताये गये हैं[4]—यक-ज़रबी, दू-ज़रबी, से-ज़रबी, चहार-ज़रबी । साधककी आवाज़ ऐसी होनी चाहिये कि सोनेवालोंकी नींदमें बाधा न पड़े । यक-ज़रबीमें साधक अपने हृदय और गलेसे अल्लाह शब्दका उच्चारण करता है । ऐसा करनेमें आवाज़ और उच्चारण करनेके समयकी एक विशेष परिमिति होती है । वह एक बार 'अल्लाह' कहता है और तबतक फिर नहीं कहता जबतक उसकी साँस स्वाभाविक ढंगसे न आने-जाने लगे । इसके बाद वह फिर 'अल्लाह' कहता है और उसी प्रकार उसकी क्रिया चलती रहती है । ज़िक्र दू-ज़रबीमें वह नमाज पढ़ते वक्त जैसा बैठता है वैसे ही बैठ जाता है और अल्लाहका नाम लेता है । इसमें एक बार सिरको वह दाहिनी ओर घुमाकर 'अल्लाह' कहता है और फिर हृदयकी ओर घुमाकर कहता है । से-ज़रबीमें वह पालथी लगाकर बैठ जाता है और एक बार दाँयी ओर, फिर बाँयी ओर और तब हृदयकी ओर सिर करके जोरसे 'अल्लाह' कहता है । चहार-ज़रबीमें भी वह से-ज़रबीकी ही तरह करता है लेकिन हृदयकी ओर सिर करके 'अल्लाह' कहनेके बाद वह अपने सामनेकी ओर जोरसे फिर 'अल्लाह' कहता है ।

अब्दुल क़ादिर अल-जिलानीने सात तौर (अतवारे सबा) बतलाये हैं । 'ज़िक्र'के समय साधक अल्लाहके सात नामोंका उच्चारण करता है । इसमें वह बतलाया गया है कि कितनी बार नामका उच्चारण

१. वही, पृ० १००-१०१ ।

२. वही, पृ०. १०२ ।

३. ह. इ. ह., पृ० २८८ ।

४. ग्लौ. पं. ट्रा. का. प्रथम खंड, पृ० ५३९-५४० ।

किया जायगा। केवल इतना ही नहीं, रंग और प्रार्थना भी बतलायी गयी है[1]।

(१) ला इल्लाही इल्ल अल्लाह, एक लाख बार कहना होगा और इसका रंग नीला बतलाया गया है।

(२) अल्लाह जो इस्मे जलील (सौन्दर्य सूचित करनेवाला नाम)। इसका रंग पीला है। ७८,५८६ बार इसका स्मरण करना है। अब्दुल क़ादिरका कहना है कि उन्होंने स्वयं इस रंगको देखा है।

(३) इस्मे हू (उसका नाम), रंग लाल, ४४,६३० बार।

(४) इस्मे हई (अनन्त जो है उसका नाम), रंग उजला, २०,०९२ बार।

(५) वाहिद (परमात्मा, जो एक है), रङ्ग हरा, ९३,४२० बार।

(६) अज़ीज़ (अमूल्य अथवा प्यारा परमात्मा), रंग काला, ७४,६४४ बार।

(७) वदूद (प्रेम करनेवाला परमात्मा), निर्वर्ण, ३०,२०२ बार।

क़ादिरी-सम्प्रदायके भी दो प्रमुख उप-सम्प्रदाय हो गये हैं। उनमें प्रथम रज़ाक़िया है जिसका आविर्भाव शाहज़ादा अब्दुल रज़ाक़से माना जाता है और दूसरा वहाबिया है जिसका प्रारम्भ शाहज़ादा अब्दुल वहाबसे मानते हैं।

शाह क़ुमेस क़ादिरी-सम्प्रदायके सन्त हैं। वंश-वृक्षके अनुसार ये अब्दुल क़ादिर जिलानीके पुत्र अब्दुर्रज़ाककी वंश-परम्परामें पड़ते हैं। ये भारतवर्षमें क़ादिरी-सम्प्रदायके प्रथम प्रचारकोंमें गिने जाते हैं। इनके पिताका नाम अबुलहयात था। ये भी क़ादिरी-सम्प्रदायके भारतवर्षमें प्रारम्भकालीन प्रचारकोंमें माने जाते हैं। शाह क़ुमेसकी जन्म-तिथिका ठीक निर्धारण करना कठिन है। प्रचलित विश्वासके अनुसार ये हुमायूँ और अकबरके सम-सामयिक थे[2]। शेरशाह सूरके विरुद्ध हुमायूँकी लड़ा-

1. दर०, पृ० १०५–१०६।

२. ग्लौ. पं. ट्रा. का. प्रथम खण्ड, पृ० ५३२।

इयोंके समय इनका होना बतलाया जाता है लेकिन इनका जन्म सन् १४२९ ई० से पहले किसी तरह भी नहीं माना जा सकता। इनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय .कुमेसी सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायका सम्बन्ध बिहारसे बतलाया जाता है।

क़ादिरी-सम्प्रदायके सन्तोंमें शाह बिलावलका नाम आता है। ये बड़े दानी थे। शेख़ शम्सुद्दीन .क़ादिरीके ये शिष्य थे। कहा जाता है कि हुमायूँने जब फिर भारतवर्षको जीता उस समय ये उसीके साथ हेरातसे यहाँ आये। इनकी .क़ब्र रावीके तटपर थी। जब लोगोंने देखा कि नदी-की धारासे .क़ब्रके कट जानेका भय है तब लाहौरसे एक कोस पूरब उनकी क़ब्र बनायी गयी। कहा जाता है कि उनकी मृत्युके दो सौ वर्षोंके बादकी यह घटना है जब अज़ीजुद्दीनने उनके शरीरको क़ब्रसे बाहर निकाला और उस स्थानपर उसे ले गये जहाँ उनकी दूसरी .क़ब्र खोदी गयी थी। इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि शरीर ज्योंका त्यों बना हुआ था[1]।

बहलुल शाह दरवाई क़ादिरी-सम्प्रदायके थे। उनके जीवनके सम्बन्धमें कुछ ठीक-ठीक पता नहीं चलता। उनके नामके साथ बहुत-सी मनगढ़न्त कहानियाँ जुड़ गयी हैं। ये 'ज़िन्दापीर'के नामसे भी मशहूर हैं। ये शाह लतीफ बारी या बारी सुल्तानके शिष्य थे। शाह लतीफ़के सम्बन्धमें भी अद्भुत कहानियाँ कही जाती हैं। ये शाह हयातुल्नूर, .क़ादरियाके शिष्य थे। शाह लतीफ बारीके नामपर नूरपुर शाहान (रावलपिण्डीके पास)में एक मेला लगता है। पन्द्रह वैशाखके बाद जो पहला बृहस्पतिवार होगा उसी दिन यह मेला लगता है। पेशावरसे जब फल भेजे जानेका समय आता है तब सभी प्रकारके फल शाह लतीफ़को चढ़ाये जाते हैं और उसके बाद ही मेला शुरू होता है। कहा जाता है कि एक गूजर उन्हें बराबर दूध दे जाया करता था लेकिन जिस दिन उनके लिए भैंस दुही जाती उसी दिन उसकी मृत्यु हो जाती। होते-होते उस गूजरके पास केवल एक

१. वही, पृ० ५४२।

बैल रह गया। उसे भी दुहनेके लिए शाह लतीफ़ने कहा और वह भी दूसरोंकी तरह भर गया। सन्तने निकटके झरनेसे उन पशुओंमेंसे प्रत्येकका नाम ले लेकर बुलाना शुरू किया और गूजरसे उन्होंने कह दिया था कि उसे उस तरफ मुड़कर देखना नहीं होगा। सभी पशु जीवित बाहर निकल आये लेकिन गूजरने पीछे फिरकर देख लिया इसलिए वे सभीके सभी पत्थर हो गये और उसी तरह आज भी वहाँपर खड़े दिखाई देते हैं।[१] इन्हींके शिष्य बहलुल शाह थे जिनका चलाया हुआ बहलुलशाही सम्प्रदाय है।

बहलुल शाहके गुरुके गुरुसखा हयातुल मीर थे जिनके बारेमें प्रचलित धारणा यह है कि वे अमर हैं। हयातुलमीरकी जियारतके लिए लोग कुन्हरनालके किनारे बालाकोट जाते हैं। बालाकोट मानसरसे उत्तर-पूर्व २४ मीलकी दूरीपर है। हिन्दुओंका कहना है कि यह भाई बालाका स्थान है। ईदके अवसरपर एक दिन मर्द और एक दिन औरतें वहाँ दर्शन करनेके लिए जाती हैं। वहाँपर एक झरना है जिसे लोग 'शरबत' कहते हैं। कहते हैं कि उसके जलसे कुष्ठ आदि रोग दूर हो जाते हैं। बहुतसे रोगी वहाँ पड़े हुए रहते हैं[२]।

सईद मुक़ीम मुहकमुद्दीन, हयातुल मीरके द्वारा नियुक्त खलीफ़ा थे। उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय 'मुक़ीम शाही' कहलाता है। उनके बारेमें बहुत कम जानकारी प्राप्त है। मुक़ीम शाह अपने प्रपितामहके पिताकी समाधिपर अपना समय बिताते थे। एक दिन उन्होंने स्वप्नमें देखा कि वे उस स्थानपर आनेका आदेश दे रहे हैं जो आज मियानी मुक़ीम शाहके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर हयातुल मीरके साथ उनका साक्षात् हुआ जिन्होंने उन्हें कादिरी-सम्प्रदायमें दीक्षित किया।

क़ादिरी-सम्प्रदायके अन्तर्गत 'नवशाही' सम्प्रदाय है। यह उप-सम्प्रदाय शाह मारूफ चिश्ती-क़ादिरीके नामके साथ जुड़ा हुआ है। ये

१. वही, पृ० १३०।

२. वही, पृ० ५९४।

बाबा फ़रीद चिश्तीकी वंश परम्परामें पड़ते हैं। इस प्रकारसे चिश्ती-सम्प्रदायसे इनका सम्बन्ध जुड़ जाता है और दूसरी ओर क़ादिरी-सम्प्रदायके प्रसिद्ध सन्त सईद मुहम्मद ग़ौसके पुत्र सईद मुबारक हक़्क़ानीके खलीफा होनेके नाते क़ादिरी-सम्प्रदायसे भी इनका सम्बन्ध हो जाता है। लेकिन रोजके अनुसार नवशाही सम्प्रदायके प्रवर्तक शेख़ हाजी मुहम्मद थे[१]। वास्तवमें शाह मारुफके सम्बन्धमें बहुत कम पता चलता है यद्यपि उनके नामके साथ इस सम्प्रदायका प्रारम्भ माना जाता है लेकिन वास्तवमें नौशा (दुल्हा) शब्दका प्रयोग हाजी मुहम्मदके नामके साथ ही पहले पहल हुआ[१]। ये शाह मारुफके खलीफा सुलैमान शाहके शिष्य थे।

हाजी मुहम्मदके नामके साथ भी अद्भुत कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। बचपनसे ही उनके सन्त होनेके चिह्न प्रकट होने लगे थे। जब ये छः महीनेके थे तब पड़ोसकी एक स्त्री इनको पालनेसे उठाकर अपने गोदमें लेना चाहती थी। लेकिन जैसे ही वह उन्हें उठाने गयी उसने देखा कि एक साँप उनके शरीरमें लिपटा हुआ है। वह चिल्ला पड़ी। लेकिन हाजी मुहम्मदकी माँ जब आईं तो उन्हें कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ा। वह समझ नहीं पा रही थीं कि बात क्या है। उसी समय जैसे एक आवाज़ आयी कि चूँकि वह स्त्री अशुद्ध थी इसलिए वह उन्हें गोदमें ले नहीं सकी और उसे रोकनेके लिए ही वैसा हुआ था[२]।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही ये मरुभूमिमें रहने लगे। उनके माँ-बापने उन्हें ढूँढ़ निकाला और पंजाबके नौशहरा स्थानमें ले गये। वहाँपर इनके माँ-बापने एक धार्मिक आदमीकी लड़कीसे इनकी शादी कर दी और ये वहींपर रहने लगे। लेकिन शादी होनेपर भी फ़क़ीर ही बने रहे। रातमें चनाब नदीके किनारे ध्यान लगाते और दिनमें मस्जिदमें प्रार्थना करते रहते। नौशहरामें रहते हुए उनको छः वर्ष बीत गये थे जब इन्होंने

१. वही, पृ० ५५० ।

१. सूफि०, पृ० २५९–२६० ।

२. वही, पृ० २६० ।

सुलेमान शाह क़ादिरीका नाम सुना और उनके शिष्य हो गये। कुछ ही दिनोंमें ये एक बड़े सन्त हो गये और इनके पीरने इनका नाम नौशाह-गंज बख़्श रखा[1]।

उनके सम्बन्धमें एक दूसरी कहानी कही जाती है। हाजी मुहम्मद नौशाही गंज बख़्श जब एक ही वर्षके थे उसी समय इनके पिता अला-उद्दीनकी मृत्यु हो गयी। अलाउद्दीन पशुओंके खरीदने-बेचनेका रोजगार करते थे। उनकी मृत्युके बाद हाजी मुहम्मदका पालन-पोषण एक कुम्हार-के घरमें हुआ। सखी सरवारके ये अनुयायी हो गये[2]। हाजी मुहम्मदकी मृत्यु सन् १६०४–५ ई० में हुई। इनकी क़ब्र वजीराबाद तहसीलके राम-नगरके सामने चनाव नदीके किनारे चानी सहनपालमें है[3]।

क़ादिरी-सम्प्रदायमें संगीतका स्थान नहीं है लेकिन नौशाही सम्प्रदाय-वाले भावाविष्टावस्था उत्पन्न करनेमें संगीतका सहारा लेते हैं। ये बड़ी तेजीसे अपना सिर एक ओरसे दूसरी ओर घुमाते हैं। इसे ये 'हाल खेलना' कहते हैं। भेरा तहसीलके चावा स्थानपर मुहर्रमके समय नौशाही फ़क़ीर एक प्रकारका गीत गाते हैं जिससे वहाँपर उपस्थित साधकोंके छोटे दलमें भावाविष्टावस्था उत्पन्न हो जाती है। उनमेंसे कुछ तो बेहोश-से हो जाते हैं। उन्हें एक पेड़से उल्टा लटका दिया जाता है जबतक कि उन्हें फिरसे होश न हो जाय।[4]

हाजी मुहम्मदके चार शिष्य थे, शाह रहमान पीर, पीर मुहम्मद सचयार, ख्वाजा खुजैल अथवा फुजैल तथा शाह फतह। शाह रहमानके अनुयायी पाक रहमानी कहलाते हैं और मुहम्मद सचयारके अनुयायी सचयारी। मुहम्मद सचयारके नामके साथ 'सचयार' (सच्चादोस्त) शब्द कैसे प्रयुक्त होने लगा इसकी एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता

१. वही, पृ० २६०–२६१।

२. ग्लौ. पं. ट्रा. का. तृतीय खण्ड, पृ० १६६।

३. ग्लौ. पं. ट्रा. का. प्रथम खण्ड, पृ० ५५०–५५१।

४. वही, पृ० ५५१।

है कि हाजी मुहम्मदके पुत्र हाशिमकी शादी हो रही थी। बारातके साथ उनके शिष्य भी गये। कन्यापक्षवालोंने अपने यहाँकी परम्पराके अनुसार एक सौ रुपये माँगे लेकिन फ़क़ीरके पास कुछ भी नहीं था। तब पीर मुहम्मदने कहा कि कोई बात नहीं, वे रुपया ला देंगे। वे बाहर जाकर प्रार्थना करने लगे। इतनेमें एक आदमी आया जिसकी स्त्री बीमार थी। पीर मुहम्मदको वह अपने साथ घर ले गया। उसकी स्त्री अच्छी हो गयी और खुश होकर उसने उन्हें एक सौ रुपये दे दिये। तभीसे वे 'सचयार' (सच्चा यार) कहलाने लगे।

मुहम्मद फ़ुज़ैल काबुलके रहनेवाले थे और पीरकी खोजमें भारतवर्षमें आये। यहाँ आकर वे हाजी मुहम्मदके शिष्य हो गये। उनकी मृत्यु सन् १७०० ई० के लगभग हुई। उनकी क़ब्र काबुलमें है। अब्दुर्रहमानके अनुयायी पाक रहमानी कहलाते हैं। 'हाल खेलना', भावाविष्टावस्थामें बेहोश हो जाना तथा उलटा लटकाया जाना पाक रहमानियोंमें अधिक प्रचलित है। अब्दुर्रहमान अत्यन्त ही त्यागी थे और इनमें अद्भुत दानशीलता थी। इनके पीरने खानकाहकी ज़मीन जोतनेवाले मज़दूरोंको रोटी पहुँचानेका काम इन्हें दिया। इस कामके बदले इन्हें अपने लिए जो रोटी मिलती उसे ये ग़रीबोंको खिला देते और अपने भूखे रह जाते। ये बहुत दुबले हो गये। जब हाजी मुहम्मदको यह मालूम हुआ तब उन्होंने इनको अपने सामने खिलाना प्रारम्भ किया।

नौशाही सम्प्रदायके समान ही क़ादिरी-सम्प्रदायका एक उप-सम्प्रदाय क़ैसर शाही है। इसके प्रवर्तक क़ैसर शाह थे। इनकी दरगाह वज़ीराबाद गुजराँवाला ज़िलेमें है। बेनवा-सम्प्रदायके प्रवर्तक दिल्लीके ग़ुलाम अली-शाह थे। इनके अलावे दो और उप-सम्प्रदाय हैं जो पंजाबमें अत्यन्त लोकप्रिय हैं। पंजाबी भाषामें लिखे हुए उन दोनों उप-सम्प्रदायोंके कुछ सुप्रसिद्ध सन्तोंके काव्य काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इनमेंसे एक तो हुसैनशाही है जिसके प्रवर्तक हज़रत शाह लाल हुसैन समझे जाते हैं। ये लाहौरके थे और बहलुल शाह दरयाईके शिष्य थे। दूसरा मियाँ खेल

है जिसका प्रारम्भ मीर मुहम्मदसे माना जाता है। ये मियाँ मीरके नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं।

लाल हुसैनका प्रचलित नाम माधो लाल हुसैन है। वास्तवमें माधो एक ब्राह्मणका लड़का था जो लाल हुसैनका शिष्य हो गया था। दोनोंके मक़बरे एक ही साथ लाहौरमें बने हुए हैं। लाल हुसैन अकबरके सम-सामयिक थे। दाराशिकोहने उनका जिक्र किया है। बसन्त और चिरागाँ दो मेले उनके मकबरेके पास लगते हैं। पहले मेलेको रणजीत सिंहने बड़ी धूमधामसे मनाया था।[1]

लाल हुसैनके सोलह खलीफा थे। उनमें चार खाकी कहलाते थे, चार गरीब, चार दीवान और चार बिलावल। उनकी मृत्युके बाद खाकी शाह, शाह गरीब, दीवान माधो और शाह बिलावल उनके मकबरेके पास ही रहने लगे। उन चारोंके मकबरे भी वहींपर हैं। लाल हुसैनकी मृत्यु सन् १५९९ ई०में हुई। कहते हैं कि इनकी माता राजपूत महिला थीं और उनके पूर्वपुरुष फिरोजशाह तुगलकके जमानेमें ही मुसलमान हो गये थे। कलसराई नामके कोई इनके वंशमें थे जो प्रथम मुसलमान हुए। इसलिए इनका नाम धाधा हुसैन कलसराई पड़ा था। बादमें ये लाल हुसैनके नामसे प्रसिद्ध हुए चूँकि बचपनसे ही इन्हें लाल रंग पसन्द था। बहलुल शाह दरयाईने इन्हें कादिरी-सम्प्रदायमें दीक्षित किया।

माधो और इनके सम्बन्धकी कहानी बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि कादिरी-सम्प्रदायमें दीक्षित होनेके बाद २६ वर्षोंतक ये बहुत ही संयमी थे और अत्यन्त ही कठोर जीवन इन्होंने बिताया। एक दिन ये कुरानके उस स्थलपर पहुँचे जहाँ कहा गया है कि इस दुनियाकी जिन्दगी खेल और आनन्दके सिवा कुछ नहीं है। इन्होंने अक्षरशः इसको ठीक माना और इनके उस्ताद इसका अर्थ समझाते रह गये लेकिन उन्होंने ध्यान नहीं दिया। अब इन्होंने नृत्य, गान, शराब आदिमें आनन्द लेना शुरू किया लेकिन इतनेपर भी इनके पीर बहलुल शाह दरयाईने इनके आभ्य-

१. वही, पृ० ६१६।

न्तरिक आध्यात्मिक जीवनसे अपना सन्तोष ही प्रकट किया। लाल हुसैन इतनी दूरतक पहुँच गये कि कुरानकी व्याख्या करनेवाली एक पुस्तक 'मदारिक'को कुएँमें फेंक दिया और जब इनके साथी इसके लिए इन्हें फटकारने लगे तब इन्होंने कुएँसे उसे लौटा देनेके लिए कहा। कहा जाता है कि वह पुस्तक ज्योंकी त्यों लौटकर चली आयी।

माधोके बारेमें कहा जाता है कि एक दिन लाल हुसैनने उसे कहीं जाते हुए देख लिया और उसके प्रति इतना अधिक आकृष्ट हुए कि आधी रातको उसके घरके चारों ओर चक्कर काटा करते। माधो भी धीरे-धीरे इनके प्रति आकर्षित हुआ और लाल हुसैनके यहाँ आने-जाने लगा तथा इनके साथ शराब भी पीने लगा। उसके घरके सभी लोग अत्यन्त अप्रसन्न हुए लेकिन बहुत चेष्टा करनेपर भी माधोने लाल हुसैनका साथ नहीं छोड़ा।

माधो बहुत दिनोंतक मुसलमान नहीं हुआ। बादमें वह मुसलमान हो गया। उसके मुसलमान होनेकी एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि माधोके माँ-बाप हरद्वार जा रहे थे। वे माधोको भी साथ ले जाना चाहते थे लेकिन लाल हुसैनने उसे जाने नहीं दिया। वैसे लाल हुसैनने उससे वादा किया कि वे उसे बादमें हरद्वार पहुँचा देंगे। जिस दिन वे लोग हरद्वार पहुँचे उसी दिन लाल हुसैनने उसे आँखें बन्द करनेके लिए कहा। आँखें खोलनेपर माधोने अपनेको अपने माँ-बापके साथ हरद्वारमें पाया। जब वे लोग लाहौर लौटे तो सभीके सभी मुसलमान हो गये।

क़ादिरी-सम्प्रदायके कई सन्त ऐसे हैं जो कई भिन्न पेशेवालोंके विशेष सन्त माने जाते हैं जैसे हस्सू तेली, तेलियोंके सन्त माने जाते हैं। ये लाल हुसैनके समसामयिक थे। उनके मकबरेपर सालाना मेला लगता है। उनकी एक गल्लेकी दूकान थी। आज भी उस स्थानको लोग पवित्र मानते हैं। उनकी मृत्यु सन् १५९३ ई०में हुई। वे शाह जमाल क़ादिरीके शिष्य थे। शेख मूसा लोहारोंके सन्त थे। उनकी मृत्यु सन् १५१९ ई०में हुई। लाहौरके रंगरेज, अली रंगरेजके मकबरेको पूजते हैं।

मियाँ मीरके सम्बन्धमें हम पहले देख चुके हैं कि उनका सम्मान मुगल बादशाह करते थे और दाराशिकोहने उनकी जीवनी लिखी है। उनके प्रति दाराशिकोहकी अत्यन्त भक्ति थी। इन्हींके शिष्य मुल्लाशाहका शिष्य दाराशिकोह था। यद्यपि ये मियाँ मीरके नामसे विख्यात हुए लेकिन इनका असली नाम मीर मुहम्मद था। इनका जन्म सन् १५५०ई० में सिवस्तान[1] या सीस्तान[2] में हुआ। इनकी माताका इनपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। इनकी माँ क़ादिरी-सम्प्रदायमें ही दीक्षित थीं। बड़े होनेपर ये खिज्र सिवस्तानीके शिष्य हो गये। कुछ समय उनके साथ रहकर ये लाहौर चले आये और इनका सारा जीवन वहीं बीता। पीर दस्तगीरके प्रति भी इनकी अत्यधिक श्रद्धा थी। ये जीवनभर अविवाहित रहे। घरमें दीपक नहीं जलाया। इनके शिष्य मुल्लाशाहने भी इन मामलोंमें इन्हींका अनुसरण किया। इनका जीवन अत्यन्त पवित्र था और ये धर्मशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। ये दीर्घजीवी थे। अकबरके शासनके अन्तिम दिनोंमें ये लाहौर आये तथा जहाँगीर और शाहजहाँके राजत्व-कालतक जीवित रहे। इनके दीर्घजीवनका कारण यह बतलाया जाता है कि ये हब्सदम या धीरे-धीरे साँस लेनेकी क्रियाकी साधना करते थे[3] ८८ वर्षकी अवस्थामें सन् १६३५ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

दाराशिकोहने इनके जीवनके सम्बन्धमें जो लिखा है उसके अनुसार ये क़ाज़ी सईनदित्त[4] (?) के पुत्र थे। दाराशिकोहने उनके व्यक्तित्वकी चर्चा की है। उसके अनुसार ये एक बहुत ही ऊँचे दर्जेके सन्त थे और सांसारिक वस्तुओं और सुखोंको तुच्छ समझते थे। आत्म-विज्ञापन और प्रचारसे ये बहुत दूर रहते थे। इनका कहना था वास्तविक त्याग वही है जिसमें साधक परमात्माकी खोजमें अपनी दैनिक साधारण आवश्यकताओं-

---

१. सूफि०, पृ० २६९।

२. ग्लो. पं. ट्रा. का, प्रथमखण्ड, पृ० ६१५।

३. वही पृ० ६१५।

४. वही पृ० ६१९।

को भी भूल जाय। उसे एकमात्र चिन्ता यही बनी रहती है कि परमात्मा-के सतत ध्यानमें लगा हुआ रहे। ये साधकोंको विनम्र होनेका उपदेश देते थे। धनी व्यक्तियोंसे दूर रहनेमें ही ये कल्याण मानते थे।

मियाँ मीरके शिष्योंमें मियाँ नत्था, मुल्ला शाह, ख्वाजा बहारी, शेख अबुल मआली, अब्दुल ग़नी, अब्दुल हक़, मीर इनायतुल्ला आदि थे। मुल्लाशाह बदख्शाँके थे। उनकी मृत्यु सन् १६१४ ई० में हुई। अब्दुल-ग़नी उनके खलीफा थे। दाराशिकोहने इनका मकबरा बनवाया था। अबुल मआली, अकबर और जहाँगीरके शासनकालमें थे। उनका असली नाम शाह खैरुद्दीन था। अपने जीवनकालमें ही उन्होंने अपना मकबरा बनवाना शुरू किया था। सन् १६१६ ई० में उनकी मृत्यु हुई। उनके पुत्रने उनके मकबरेको पूरा कराया। मुल्ला शाहकी मृत्यु लाहौरमें हुई। उनपर वही अभियोग लगाये गये थे जो मन्सूर हल्लाजपर और शाहजहाँ-ने उन्हें प्राणदण्डकी सजा दे दी थी लेकिन दाराशिकोहके कारण उनके प्राणोंकी रक्षा हुई। दाराशिकोहकी बहन फातिमाने उनका मकबरा बनवाया था।

मियाँ मीरके प्रिय शिष्योंमें मियाँ नत्था थे जो बराबर उनकी सेवामें लगे रहते थे। वे बराबर उनके लिए वजू करनेके लिए जल पहुँचाया करते थे। एक दिन उन्हें देर हो गयी और मियाँ मीरको उनकी कोठरीमें वे ढूँढ़ते रहे लेकिन वे अदृश्य हो गये थे। कोठरीके बाहर उनका इन्तजार करते हुए मियाँ नत्था रातभर बैठे रहे। भोरमें उन्हें मीरकी आवाज मालूम हुई जो पानी माँग रहे थे। मियाँ नत्थाने जानना चाहा कि क्या बात है लेकिन मियाँ मीर बतलाना नहीं चाहते थे। मियाँ नत्था-के बहुत जिद करनेपर उन्होंने बतलाया कि वे रातमें मक्काके पास हीरा पहाड़में चले जाते हैं और वहीं प्रार्थना करते हैं। पैग़म्बर वहीं रातमें जाकर ध्यान किया करते थे।

मियाँ नत्था भी एक बड़े सन्त हुए और उनके बारेमें भी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। गुरुके पहले ही इनकी मृत्यु सन् १६१८ ई० में

हो गयी। इनकी कब्र भी मियाँ मीरकी कब्रके पास बनी हुई है। कहा जाता है कि एक बार एक जिन्न मियाँ नत्थाके पास आया और उनसे बोला कि जितना धन वे लेना चाहें वह देनेको तैयार है। उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि उन्हें जरूरत नहीं। आगे बढ़नेपर एक पेड़ जैसे उनसे कह रहा था कि 'तुमने जिन्नकी तो बात नहीं सुनी लेकिन थोड़ी-सी मेरी जड़मेंसे ले लो। किसी गले हुए धातुमें रख दोगे तो सब चाँदी हो जायेगा।' मियाँ नत्थाने ध्यान नहीं दिया। एक पौधा उनसे बोला कि 'मुझे ले लो। थोड़ा-सा भी मेरा अंश किसी धातुमें रख दोगे तो वह सोना हो जायगा।' कहते हैं कि इसपर मियाँ नत्था परमात्माकी प्रार्थना करने लगे कि हे परमात्मा, ये तुम्हारे बनाये हुए पदार्थ तुम्हारे ध्यानसे मुझे विरत करते हैं, उन्हें आदेश दे दो कि वे इस तरह मुझसे फिर कभी कुछ नहीं कहें।' दाराशिकोहके अनुसार वे चिड़ियों, पौधों और पेड़ोंकी बोली समझते थे।

चौथा मुख्य सूफी-सम्प्रदाय नक़्शबन्दी है। यह सम्प्रदाय बहुत दूरमें फैला हुआ है। टर्कीमें तो यह बहुत ही व्यापक रहा। मर्व, समरकन्द, बुखारा, भारतका उत्तरी-पश्चिमी भाग, सिन्ध तथा सम्पूर्ण ईरानमें उबैदुल्लाके शिष्यों और खलीफोंके मकबरे पाये जाते हैं। रशहात ऐन-अल-हयातके अनुसार इस सम्प्रदायके प्रवर्तक ख्वाजा उबैदुल्ला ही थे[1]। वैसे साधारणतः ख्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबन्दको ही इस सम्प्रदायका प्रवर्तक मानते हैं। ख्वाजा बहाउद्दीनकी मृत्यु सन् १३८९ ई० के लगभग हुई। 'रशहात'के अनुसार बहाउद्दीन नक़्शबन्द एक बड़े विचारक थे और उन्होंने इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें बहुत सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला है। इसीमें उनका कृतित्व है। उसके अनुसार वे इस सम्प्रदायके प्रवर्तक नहीं थे। बहाउद्दीन तरह-तरहके 'नक्शे' (चित्र) बनाते। ये चित्र आध्यात्मिक तत्त्वोंसे सम्बन्धित थे। उस प्रकारकी आकृतियोंमें बहाउद्दीन रंग भरा करते इसीलिए उनके अनुयायी 'नक्शबन्दी'

१. वही, पृ० ४३८।

कहलाये।

इस सम्प्रदायके साधकोंने नाना प्रकारके मत प्रकट किये हैं। किसीका कहना है कि आत्मा फिर दूसरा शरीर धारण कर इस संसारमें लौट आता है।[१] कोई परमात्माके ध्यान करनेपर जोर देता है। उनका विश्वास है कि दूसरेके बलिदान द्वारा अन्य किसीके जीवनको बढ़ाया जा सकता है।[२] बाबरने हुमायूँके जीवनके लिए इसी प्रकारकी प्रार्थना की थी। इनमें प्रचलित 'जिक्र'की क्रियाओंका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। नक़्शबन्दी-सम्प्रदायमें 'जिक्र'की क्रियाओंके बहुतसे प्रकार हैं। इस सम्प्रदायमें साधकोंकी नाना प्रकारकी गुप्त शक्तियोंके सम्बन्धमें बहुतसी कहानियाँ प्रचलित हैं। उनका विश्वास है कि साधनाके द्वारा साधक इस प्रकारकी शक्ति प्राप्त कर ले सकता है कि प्रकृतिकी शक्तियोंपर काबू कर लेता है। इस शक्तिके द्वारा साधक भविष्यमें होनेवाली बातोंको जान जाता है। आनेवाली विपत्तियोंसे वह किसीकी रक्षा कर सकता है। इस प्रकारकी नाना शक्तियोंका उपयोग वह अपनी मर्जीके मुताबिक कर सकता है। दूर रहकर भी वह अपनी शक्तिका सफल प्रयोग कर सकता है। इस गुह्य अध्यात्मिक शक्तिको वे 'कुव्वते रूही बातिनी' कहते हैं। इस शक्तिकी प्राप्तिके लिए कहा जाता है कि साधक जिक्र, खलवत (एकाग्रचित्तसे उपासनाके लिए एकान्त-सेवन), तवज्जह (परमात्माका ध्यान करना), मुराक़बा (भयपूर्वक परमात्माका ध्यान), तसर्रुफ तथा तसव्वुफका आश्रय लेता है।[३] किसी विशेष शेखमें इस प्रकारकी शक्तिके होनेको 'कुव्वत इरादात' कहते हैं। कुछ शेख अधिक शक्ति-संपन्न होते हैं और कुछ कम। सबमें बराबर शक्ति नहीं होती।

इस सम्प्रदायके साधकोंमें और विशेषरूपसे ईरानके साधकोंमें यह देखा गया है कि वे हाथमें लम्बी छड़ी रखते हैं और उनके सिरके बाल

१. ग्लौ. पं. ट्रा. का. (प्रथम खंड), पृ० ५४९।

२. ज. रा. ए. सो. (१९१६) पृ० ७५।

३. दर०, पृ० १४४–१४५।

बिखरे हुए हवामें उड़ते रहते हैं। वे नुकीले पत्थरोंको रौंदते-रौंदते बेहोश होकर गिर पड़ते हैं। कुव्वतुल-इरादातको बढ़ाते-बढ़ाते परमात्मामें लय हो जाना उनका चरम लक्ष्य है। कहा जाता है कि वे अफ़ीमका व्यवहार करते हैं।

इस सम्प्रदायके साधकोंमें इस आध्यात्मिक शक्तिकी प्राप्ति और उसके प्रयोगके सम्बन्धमें निम्नलिखित कहानीसे पूरा प्रकाश पड़ता है। 'रशहात'के लेखकका कहना[1] है कि अपनी युवावस्थामें वह बराबर अपने शेख, मौलाना सईदुद्दीन काशगरीके साथ हेरातमें रहता था। एक दिन वह अपने शेखके साथ पहलवानोंकी कुश्ती देखनेवाले एक दलके पास पहुँचा। वहाँपर इन दोनोंने अपनी शक्तिकी आज़माइश की। जिस पहलवानको ये चाहते अपनी शक्ति द्वारा उसे जिता देते लेकिन वहाँ इकट्ठा लोगोंमें किसीको इस रहस्यका पता नहीं चला।

इस सम्प्रदायके महत्त्वका अनुमान रोज़के निम्नलिखित कथनसे लगाया जा सकता है—नक़्शबन्दी-सम्प्रदायके इतिहासका अगर ठीक-ठीक पता लग जाय तो वह कुछ कामका साबित होगा और वह इसीलिए नहीं कि इस सम्प्रदायने इस्लाम-धर्मकी विचारधारामें एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया है बल्कि इसलिए भी कि भारतवर्ष, मेसोपोटामिया और कुछ हद तक टर्कीकी राजनैतिक बुराइयोंमें इसने कम हाथ नहीं बटाया है[2]।

नक़्शबन्दी-सम्प्रदायवालोंका टर्कीमें बहुत बोलबाला रहा। संख्या और महत्त्वकी दृष्टिसे टर्कीमें इनका स्थान अन्यत्रसे ऊँचा है। भारतवर्षमें इस सम्प्रदायके इतिहास आदिकी हमें यहाँ चर्चा करनी है इसलिए इस सम्प्रदायकी अन्य देशोंमें क्या अवस्था थी इसकी चर्चा हम नहीं कर रहे हैं। जहाँतक भारतवर्षका सम्बन्ध है इस सम्प्रदायका प्रारम्भ ख़्वाजाबाक़ी बिल्लाह बेरंगके इस देशमें प्रवेशके साथ माना जा सकता है वैसे इस देशमें

१. वही, पृ० १४७।

२. वही, पृ० ३३५।

इस सम्प्रदायके प्रभाव और विस्तारका इतिहास ख़्वाजाबाक़ी बिल्लाहके शिष्य इमामरब्बानी मुजद्दीद अलिफ़-सानी शेख़अहमद फ़ारुक़ी सरहिन्दीके नामके साथ जुड़ा हुआ है। ख़्वाजाबाक़ी बिल्लाह इस सम्प्रदायके वंश-वृक्षकी दृष्टिसे ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबन्दसे सातवीं पीढ़ीमें पड़ते हैं। ख़्वाजाबाक़ी अपने शेख़के आदेशसे भारतवर्षमें आये। वे दिल्लीमें आकर बस गये और वहींपर आनेके तीन वर्षों बाद उनकी मृत्यु हुई।

हम पहले यह देख चुके हैं कि प्रायः सभी सम्प्रदाय अपना-अपना सम्बन्ध हज़रत मुहम्मदसे जोड़ते हैं। नक़्शबन्दियोंमें प्रचलित जो वंश-वृक्ष है उसे देखनेसे यह सहज ही समझमें आ जाता है। यहाँपर सर्वप्रथम हज़रत मुहम्मदसे बहाउद्दीन नक़्शबन्द तकका वंश-वृक्ष दे रहे हैं उसके बाद भारतीय नक़्शबन्दी सम्प्रदायका वंश-वृक्ष देंगे।

१. पैग़म्बर
२. अबूबक्र अस्सद्दीक (द्वितीय ख़लीफा)
३. सलमाँ फ़ारसी
४. इमाम कासिम बिन मुहम्मद (अबूबक्रके पुत्र)
५. इमाम जाफ़र सादिक़
६. बायज़ीद बस्तामी
७. ख़्वाजा अबुलहसन ख़रक़ानी
८. ,, अबुल कासिम गरगानी अथवा करकीआनी
९. ,, अबू अली फरमदी अथवा फरमन्दी
१०. ,, अबू यूसुफ हमदानी
११. ,, अब्दुल ख़ालिक़ ग़जदवानी
१२. ,, मुहम्मद अरीफ रेवगरी अथवा रिओकरी
१३. ,, महमूद अबू ख़ैर फ़गनवी
१४. ,, अली रमीतनी अथवा रमेतनी
१५. ,, मुहम्मद बाबा सम्मासी
१६. ,, सैयद अमीर कलाल अथवा गुलाल

१७. ,, सैयद बहाउद्दीन नक़्शबन्द

इसके बाद दो परम्पराएँ मिलती हैं जिनमें कहीं-कहीं कुछ अन्तर पड़ता है। एक तो पंजाबकी परम्परा है और दूसरी परम्परा 'मिरातुल-मक़ासिद' एक तुर्की ग्रन्थकी है। दोनों परम्पराओंके नाम हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

पंजाबी परम्परा	मिरातुल मक़ासिदकी परम्परा
१. ख़्वाजा सैयद बहाउद्दीन नक़्शबन्द	
२. ख़्वाजा अलाउद्दीन अत्तार	
३. ,, या.कूब चरखी	मौलाना या.कूब चरखी हिस्सारी
४. ,, नसिरुद्दीन उबैदुल्ला अहरार	ख़्वाजा नासिरुद्दीन उबैदुल्ला ताशकन्दी समरक़न्दी
५. ,, मुहम्मद जाहिद	मुहम्मद जाहिद
६. मौलाना दरवेश मुहम्मद	मौलाना दरवेश
७. ,, ख़्वाजगी अमकिन्की	मौलाना ख़्वाजगी समरक़न्दी
८. ख़्वाजा मुहम्मद बाक़ीबिल्लाह वैरंग	मौलाना शेख़ मुहम्मद समाक़ी
९. इमाम रब्बानी मुजद्दीद अलिफसानी शेख़ अहमद फ़ारूक़ी सरहिन्दी	इमाम रब्बानी मुजद्दीद अलिफसानी शेख़ अहमद फ़ारूक़ी बिन अब्दुल वाहिद फ़ारूक़ी सरहिन्दी (मृत्यु लगभग १६६४ ई०)
१०. ख़्वाजा मुहम्मद मासूम	शेख़ मुहम्मद मासूम उर्वा-वसक़ साहिब मकतूबात (मृत्यु सन् १६८८ ई०)
११. शेख़ सैफुद्दीन	शेख़ सैफुद्दीन आरिफ़
१२. हाफ़िज़ मुहम्मद मुहसिन दिहलवी	शेख़ सईद मुहम्मद नूरी बदायूनी

१३. सईद नूरमुहम्मद बदायूनी	
१४. शम्सुद्दीन हबीबुल्ला मयहरशहीद मिर्जा जनजनान	शेखशम्सुद्दीनखाँ जानान मजहर
१५. मुजद्दीद मिरातुसालिसवाल (?) अशार सईद अब्दुल्ला (शाह गुलामअली अहमदी)	शेख अब्दुल्ला दिहलवी
१६ शाह अबू सईद अहमदी	हजरत जियाउद्दीन ,जूल जन्ना-हीन मौलाना खालिद (पचास वर्षकी उम्रमें सन् १८२७ ई० में मृत्यु । इसलिये खालिदिया सम्प्रदाय कहलाता है)
१७. हाजी दोस्तमुहम्मद कन्दहारी	
१८. मुहम्मद उस्मान (इनका मक़बरा डेरा-इस्माइल खाँ के कुलाची स्थान में है)	

नक़्शबन्दी सम्प्रदायका भारतवर्षमें प्रभाव-विस्तार अहमद फारूकी सरहिन्दीके द्वारा हुआ। अहमद फ़ारूकीके सम्बन्धमें तरह-तरहकी कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि इनके शेख बाक़ी-बिल्लाह अपने गुरुका आदेश पाकर भारतवर्षमें आये। उन्हें यहाँ भेजनेमें उनके गुरुका उद्देश्य केवल यही था कि आनेवाले सन्त अहमद फ़ारूकीके लिए वे रास्ता साफ कर दें। इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि इनके पाँच सौ वर्ष पहले ही अब्दुल क़ादिर जिलानीने इनके अवतरणकी भविष्यवाणी की थी।

अहमद फ़ारूकीका जन्म सरहिन्दमें सन् १५६३ ई० में हुआ। इनके जन्मके समय कहा जाता है कि कई तरहकी विचित्र घटनाएँ हुईं। इनके जन्मके दिनसे लेकर एक हफ्तेतक किसी संगीतज्ञका वाद्य-यन्त्र बजानेपर भी नहीं बज सका। कहा जाता है कि हज़रत मुहम्मद अन्य सभी पैग़म्बरोंके साथ आकर इनके कानमें अज़ाँ दुहरा गये। इनकी माँने सभी मृत

सन्तोंके दर्शन किये जो उनके जन्मके अवसर पर उन्हें बधाई देने आए थे। इनके पिता भी सूफी थे। वे पन्द्रह विभिन्न सम्प्रदायोंमें किसीको दीक्षित कर सकते थे। कहा जाता है कि उन्होंने अहमद फारूक़ीको उन सभीमें दीक्षित किया था।

अहमद फ़ारूक़ीके नक़्शबन्दी सम्प्रदायमें दीक्षित होनेकी कहानी भी बड़ी विचित्र है। उनके पिताको नक़्शबन्दी सम्प्रदायसे कोई भी सम्पर्क नहीं था। उनकी मृत्युके बाद अहमद हज करनेके लिए निकले। जब वे दिल्ली आये तो एक मित्रके ज़रिये वे बाक़ी-बिल्लाहके निकट सम्पर्कमें आये। बाक़ी-बिल्लाहने उन्हें अपने साथ एक हफ़्ते ठहर जानेके लिए कहा। उनपर बाक़ी-बिल्लाहका पूरा असर पड़ा। एक हफ्तेके बाद भी वे उन्हींके पास ठहरे रहे और अन्तमें मक्का जानेकी बात ही उन्होंने छोड़ दी। दो महीनेके बाद वे बाक़ी-बिल्लाहके प्रतिनिधिरूपमें सरहिन्द लौट आये।

अहमद फ़ारूक़ीने ऐसी प्रसिद्धि लाभ की कि जब वे चार वर्ष बाद फिर अपने पीरके पास पहुँचे तो उन्होंने भी उनकी पूरी इज्जत की और दूसरे लोगोंके साथ बैठकर गुरु भी उनके धर्मोपदेश सुना करते। सुहर-वर्दी तथा चिश्ती सम्प्रदायवाले भी उन्हें अपना मानते हैं। नक़्शबन्दी और क़ादिरी सम्प्रदायवाले इनके ख़लीफ़ोंसे शिष्य बनते रहे। कुछ काल-तक तो सभी सम्प्रदायवाले उनके शिष्य होते रहे लेकिन बादमें यह क्रम रुक गया। हज़रत मुहम्मदके बाद इन्हें ही लोग इस्लामका सुधारक 'मुजद्दीद' मानते हैं। इस्लाममें आयी हुई अनेक बुराइयोंको इन्होंने दूर किया। वे शिया-सम्प्रदायवालोंके विरुद्ध थे। सुन्नी-सम्प्रदायको इन्होंने पुनः प्रतिष्ठाका स्थान दिलाया। अकबरके चलाये हुए सम्प्रदाय 'दीने-इलाही'के प्रभावोंको इन्होंने इस्लामसे दूर किया। सर्वत्र सनातन-पन्थी इस्लामके अनु-यायियोंने उनको अपना अगुआ माना। सन् १६०३ ई० में तीसरी बार वे दिल्ली जाकर अपने पीरसे मिले। दिल्लीसे लौटकर जब वे लाहौर गये उसके कुछ ही दिन बाद उन्हें अपने पीर बाक़ी-बिल्लाहकी मृत्युकी ख़बर मिली और वे दिल्ली लौट आये। वे नक़्शबन्दी सम्प्रदायके सर्वोच्च-

अधिकारी माने गये।

अकबरके समयमें ही लोग इनके प्रभावमें आने लगे थे और अकबर-के दरबारके प्रभावशाली व्यक्तियोंको भी इन्होंने अपनी ओर आकृष्ट किया। जहाँगीरके समयमें इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि जहाँगीर आतंकित हो गया। बादशाहकी फौजोंमें धार्मिक सुधार लानेके लिए अहमद फ़ारूकीने अपने एक शिष्य, बदीउद्दीनको नियुक्त किया। जहाँगीरके कई उच्चपदस्थ अधिकारी इनके शिष्य थे। जहाँगीरने इस ख़तरेको देखा और उन अधिकारियोंको इधर-उधर कई स्थानोंमें भेज दिया। ख़ाने-ख़ानानको डेकनमें, सईद-सदर जहाँको बंगालमें, महाबत-ख़ाँको काबुलमें तथा ख़ाने-जहाँको मालवामें भेज दिया गया। बादशाहके प्रधान मन्त्री असफजाह शिया-सम्प्रदायके थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि अहमद फ़ारूकीने शिया-सम्प्रदायवालोंका विरोध किया अतएव असफ-जाहका उनके विरुद्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। असफजाहकी रायके मुताबिक ही जहाँगीरने अहमद फ़ारूकीके मित्रों तथा शिष्योंको इधर-उधर भेज दिया।

अहमद फ़ारूकीका प्रभाव जहाँगीरके दरबारियों तथा उच्च पदा-धिकारियोंपर कितना अधिक बढ़ गया था इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि जब जहाँगीरने उन्हें क़ैद कर लिया तब लगता था जैसे अहमदके अनुयायी बलवा कर देंगे। कहा जाता है कि अहमद फ़ारूकीको क़ैद करनेके कारण महाबत ख़ाँ इतना उत्तेजित हो गया कि वह फ़ौज लेकर दिल्लीपर चढ़ाई करनेकी बात सोचने लगा। लेकिन अहमद फ़ारूकीने सबको शान्त किया। इस प्रकारके विरोधको अहमदने दबाया। उन्होंने यह कहला भेजा कि ऐसा कुछ करना उनकी इच्छाके विरुद्ध होगा।

कहते हैं कि जब जहाँगीरने अपने उच्च पदाधिकारियोंको, जो अह-मदके शिष्य और भक्त थे, इधर-उधर भेज दिया, तब अहमद फ़ारूकीको आगे आनेवाले खतरेका आभास मिल गया और उन्होंने अपने परि-वारवालोंको अफ़ग़ानिस्तान भेज दिया। अब वे अपने कुछ अनुया-

यियोंके साथ जहाँगीरके दरबारमें बादशाहके बुलानेपर आये तो दरबारके व्यवहारके मुताबिक उन्होंने बादशाहके सामने सिर नहीं झुकाया। जब उनसे वैसा करनेके लिए कहा गया तब उन्होंने कहा कि उन्होंने परमात्माकी सृष्टिमें किसी प्राणीके सामने कभी सिर नहीं झुकाया है और न झुकायेंगे ही। इसपर बादशाहने उन्हें कैद कर लिया। वे तीन वर्ष तक क़ैद रहे।

जहाँगीर स्वयं ही धीरे-धीरे उनके प्रभावमें आने लगा और उन्हें केवल जेलसे मुक्ति ही नहीं दी बल्कि उनका शिष्य हो गया और उनकी रायके मुताबिक बहुतसे काम किये। शिया सम्प्रदायवालोंका प्रभाव दरबारसे बिल्कुल ही खतम हो गया। उनके मुजतहीद, सईद नूरुल्लाको बादशाहने हाथीसे कुचलवाकर मरवा डाला। अहमद फ़ारुकीने सुन्नी-सम्प्रदायकी पूर्ण रूपसे दरबारमें प्रतिष्ठा की। अकबरके समयकी बहुतसी प्रचलित बातोंको जहाँगीरने इनके कहनेसे खतम कर दिया। अकबरने गोमांसका निषेध कर दिया था। जहाँगीरने यह रुकावट दूर कर दी। दीवाने-आमके निकट दरबारियों तथा बादशाहके लिए एक मस्जिद बनी। अहमद फ़ारुकीकी मृत्यु सन् १६२५ ई०में हुई। औरङ्गजेब इनके पुत्र मासूमका शिष्य था।

अहमदने कई सुधार किये और कट्टरताको प्रश्रय दिया। सूफियोंके सिद्धान्तको बहुत दूरतक वे सनातन-पन्थी इस्लामके निकट ले आये। सूफियोंकी उदारताको वहींतक वे बर्दाश्त करनेके लिए तैयार थे जहाँ तक वह कुरान और सुन्नासे दूर न हो। संगीतको उन्होंने धर्म-विरुद्ध बतलाया। भावाविष्टावस्थामें नाच उठनेको भी उन्होंने इस्लाम धर्मके विरुद्ध कहा। बादशाह अथवा पीरके सामने साष्टांगको भी उन्होंने अनुचित बतलाया। सन्तों और उनकी मजारपर दीप जलाने तथा उनकी पूजा आदिको भी धर्मके प्रतिकूल कहा। उन्होंने वुजुदिया और शुहूदिया विचारधाराओंपर प्रकाश डाला और शुहूदिया विचारधाराको साधकके लिए अन्तिम मार्गदर्शक बतलाया। उनके अनुसार दोनोंमें

केवल इतना ही अन्तर है कि साधनाकी प्रथमावस्थामें साधक वुजुर्दी रहता है और अपनेको परमात्मासे अभिन्न मानता है लेकिन जब वह पूर्णता प्राप्त करता है और अन्तिम अवस्थामें पहुँचता है तो उसे इस बातका ठीक ज्ञान हो जाता है कि परमात्मा और वह दोनों अभिन्न नहीं हैं।

भारतवर्षमें नक़्शबन्दी-सम्प्रदायके कुछ प्रमुख सन्तों और दरगाहोंके नाम निम्नलिखित हैं—

	मृत्युकाल
ख़्वाजा मुहम्मद बाक़ीबिल्लाह बेरंग	दिल्ली १६०३ ई०
साँई तवक्कलशाह नक़्शबन्दी	अम्बाला
.कुत्ब साहिब	थानेसर
मुजद्दीद साहिब शेख़ अहमद फारूक़ी	सरहिन्द १६१५ ई०
शेख़ ताहिर	लाहौर १६३० ई०
मुल्ला हुसैन	कश्मीर १६४० ई०
शेख़ अहमद सईद	सरहिन्द १६५९ ई०
शेख़ मुहम्मद मासूम	सरहिन्द १६६८ ई०
शेख़ सैफ़ुद्दीन	सरहिन्द १६८६ ई०
ख़्वाजा खावन्द महमूद	लाहौर
शेख़ सादी	मोजंग, लाहौर १६९६ ई०
मख़दूम हाफ़िज़ अब्दुल ग़.फ़ूर	कश्मीर १७०१ ई०
सईद नूरमुहम्मद	बदायूँ १७२३ ई०
शेख़ अब्दुल अहद	सरहिन्द १७२९ ई०
शाह अबू सईद	टोंक १८३४ ई०
शाह अब्दुर्रहमान	सिन्ध १८४२ ई०
सैयद इमामअली शाह	रत्नछत्र (गुरदासपुर) १८६० ई०

यह हम देख चुके हैं कि अहमद फ़ारूक़ी सरहिन्दीका कितना ऊँचा स्थान है और किस प्रकारसे वे श्रद्धाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। इन्होंने

अपनेको 'क़यूम' कहा तथा अपने बादके तीन उत्तराधिकारियोंको भी उन्होंने 'क़यूम' ही कहा है।

'अल-क़यूम' परमात्माका नाम है। 'क़यूम'का अर्थ अविनाशी है। अहमद सरहिन्दीने 'क़यूम'का प्रयोग एक विशेष अर्थमें किया है। क़यूम-का अर्थ जो कुछ भी उन्होंने किया है उसके अनुसार उसमें एक ऐसी शक्ति बतलायी गयी है जिससे वह इन्सानुल कामिल (पूर्ण मानव) से भी बड़ा समझा जा सकता है। समस्त चराचर जगत्, समस्त भूत, वर्तमान और भविष्य उसीकी शक्तिसे नियन्त्रित होते हैं। नाम, गुण सभी उसीके नियन्त्रणमें है। समस्त ब्रह्माण्ड उसके शासनके अन्तर्गत है। सूर्य, चन्द्र, तथा समस्त ग्रह, तारे, परमात्माका सिंहासन आदि सभी उसीकी शक्तिसे परिचालित होते हैं। समस्त प्राकृतिक तथा जागतिक व्यापार उसीके इशारेपर चलते हैं। मनुष्यके सुख-दुःख उसीकी इच्छापर निर्भर करते हैं। कल-कल बहनेवाली नदी, हवा, समुद्रमें लहरोंका उठना और गिरना, संसारकी समस्त छोटी-बड़ी घटनाएँ सभीका सूत्र उसके हाथोंमें है।

परमात्मातक किसीकी प्रार्थना नहीं पहुँच सकती अगर .कयूम उसे न स्वीकार करे। वास्तवमें उसीके चाहनेपर हृदय साधनाके पथपर चलनेके लिए प्रवृत्त होता है। सभी साधक, सभी उपासक उसीके चाहनेसे ही साधना और उपासनामें लगे हुए हैं। बिना उसकी इच्छा उनके लिए उस ओर अग्रसर होना सम्भव नहीं हो सकता। वह परमात्माका प्रतिनिधि है। वह समस्त ब्रह्माण्डका .क़िब्ला है। जितने ग़ौस, .कुत्ब, अब्दाल आदि हैं सभी उसीके आदेशका पालन करते हैं। अदृश्य सन्तोंके ऊपर अफ़-रादोंका स्थान है और ये .कुत्बके शासनके बाहर हैं। ये अफ़राद आदेश-के लिए .कयूमकी ओर देखते हैं। इस .कयूमको परमात्माने एक विशेष 'ज़ात' प्रदान की है जिसे 'मौहूब' कहते हैं।

अहमद फ़ारूक़ी सरहिन्दीने बतलाया है कि परमात्माने केवल उसे तथा उसके बाद होनेवाले उसके तीन उत्तराधिकारियोंको ही '.कयूम'का स्थान प्रदान किया है और उसके बाद वह और किसीको यह स्थान नहीं

देगा। इस प्रकारसे क़यूम केवल चार ही हुए। अहमदका कहना है कि हजरत मुहम्मदके शरीरका निर्माण करनेके पश्चात् जो कुछ बच रहा उसीसे परमात्माने उसके तथा अन्य तीन क़यूमोंके शरीरकी सृष्टि की[1]।

अहमद फ़ारुकी सरहिन्दीके नामसे बहुत-सी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं जिनसे उनके वैशिष्ट्यका पता चलता है। कहना अनावश्यक है कि ये कहानियाँ बादमें उनके अनुयायियोंने गढ़ ली हैं। कहा जाता है कि क़ाबा उनके ही दर्शनके लिए आ गया था तथा उनकी मस्जिद संसारकी सभी मस्जिदोंसे श्रेष्ठ है और उसमें जो नमाज पढ़ता है उसे संसारकी सभी मस्जिदोंमें नमाज पढ़नेका पुण्य मिलता है[2]। परमात्माने उन्हें अपना प्रेमपात्र कहा है तथा हजरत मुहम्मदने पुत्र[3]। सभी देवदूत, जिन्न, मनुष्य तथा अन्य जीवधारी उनके सामने अपना सर झुकाते हैं।

अहमदका कहना था कि परमात्माने उन्हें अपनी दयाका ख़ज़ाना बनाया है और उस दयाके वितरणका भी उन्हें अधिकार दिया है। परमात्माने जब उनपर अनुग्रह कर दयाका अधिकारी बनाया तब सभी दयाके देवदूत उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उनसे कहा कि परमात्माने उन्हें यह आदेश दिया है कि वे उनकी (अहमदकी) आज्ञाका पालन करें और उन्हींके (अहमदके) आदेशानुसार अपना कार्य करें। अहमदका कहना था कि पापियोंका नरकसे उद्धार करने आदिका काम उन्होंने अपने पुत्र मासूमको दिया है। मासूम उनका उत्तराधिकारी था। उसी प्रकारसे अपने पुत्रको उन्होंने स्वर्गमें जानेके आदेशपत्रकी मुहर दे रखी है। स्वर्गमें जानेके जो अधिकारी हैं उन्हें पहले वह मुहर लगवा लेनी पड़ती है।

उनके खानकाहके आस-पासकी भूमि बड़ी पवित्र मानी जाती है।

---

१. रौ. क़. भाग १, पृ० ९३-९७ सूफि. पृ० २८७ पर उद्धृत।

२. वही, पृ० ९३-९७।

३. वही, पृ० ९९-१००।

उनकी क़ब्र भी बड़ी पवित्र मानी जाती है। लोगोंका विश्वास है कि वहाँकी धूल अगर किसीकी क़ब्रमें दे दी जाय तो वह व्यक्ति नरक की यातनाओंसे कष्ट नहीं पायेगा। उनके खानकाहके उत्तरमें ज़मीनका एक टुकड़ा है जो ४० गज लम्बा और तीस गज चौड़ा है। कहा जाता है कि अगर किसीको वहाँ दफ़नाया जाय तो वह अवश्य स्वर्ग पानेका अधिकारी होगा। उसके पश्चिममें एक कुँआ है। अहमद ने एक बार कहा था कि तीन बार जो उसका पानी पी ले वह निश्चित रूपसे नर-काग्निसे रक्षा पा सकेगा और सम्भवतः स्वर्गमें स्थान पा सकता है।[1]

दूसरे क़यूम मुहम्मद मासूम हुए। ये अहमद फ़ारूक़ीके तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म सन् १५९८ ई०के लगभग हुआ था। औरङ्गज़ेब इनका शिष्य था। वैसे पहले वह इनके पिता अहमद फ़ारूक़ीका भक्त था। जबसे औरङ्गज़ेबने मुहम्मद मासूमका शिष्यत्व ग्रहण किया तभीसे मासूमने उसकी सहायता करनी प्रारम्भ कर दी थी। मासूमका बहुत प्रभाव था। गद्दीके लिए जब औरङ्गज़ेबके भाइयोंमें झगड़ा शुरू हुआ तब मासूम उसके बहुत बड़े सहायकोंमें थे। मासूम अत्यन्त ही कट्टर विचारोंके थे। उन्हींके प्रभावसे औरङ्गज़ेबने जज़िया टैक्स लगाया और संगीतपर रोक लगा दी। यहाँतक कि चिश्ती-सम्प्रदायवालोंकी 'समाँ' पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया।

कहा जाता है कि जब मासूमका जन्म हुआ तब हज़रत मुहम्मद और अन्य सभी पैगम्बरों तथा सन्तोंकी रूहने आकर मासूमके कानमें अज़ाँकी आवाज़ दुहरायी। कहा जाता है कि क़ुरानकी आयतोंके कुछ अक्षरोंका मतलब उनके पिताने उन्हें बताया था। उन अक्षरोंका मतलब सिर्फ हज़रत मुहम्मद और उनके निकटस्थ साथियोंको मालूम था। उनके एक हज़ार वर्ष बाद अहमद फ़ारूक़ीपर ही ये 'प्रगट' किये गये तथा फ़ारूक़ीने अपने बेटेके सिवा और किसीको उसका रहस्य नहीं बतलाया। फ़ारूक़ीने किस तरह अपने पुत्रपर इस रहस्यको प्रकट किया इसके

१. वही, पृ० १६०।

सम्बन्धमें कहा जाता है कि उस समय ऐसी सावधानी बरती गयी कि कोई उसे सुन न ले। जिन्न आदि सभी दुष्ट आत्माओंको कैद कर दिया गया और देवदूत हाथ जोड़े हुए बाप-बेटेके चारों तरफ खड़े कर दिये गये। वे दोनों मक्कामें क़ाबाके भीतर बन्द थे। तीन दिनोंतक यह क्रम चला। जब-जब रहस्योंद्घाटन होता, मासूम बेहोश हो जाते। वे सिर्फ एक ही अक्षर 'क़ाफ'का रहस्य जान सके। कहा जाता है कि बादमें अन्य अक्षरोंका रहस्य स्वयं परमात्माने उनपर प्रकट किये।[1]

तीसरे क़यूम ख़्वाजा नक्शबन्द हुज्जतुल्ला थे। वे द्वितीय क़यूम के द्वितीय पुत्र थे। जिस साल इनका जन्म हुआ उस सालको साल-ए-मुतल्लक़ कहते हैं क्योंकि उसी साल क़यूम प्रथमकी मृत्यु हुई और क़यूम द्वितीय उत्तराधिकारी हुए तथा तीसरे क़यूमका जन्म हुआ। इनका जन्म सन् १६२४ ई० के लगभग हुआ। इनके नामके साथ भी उनके चमत्कारकी बहुत-सी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। कहा जाता है कि उनकी पोतीकी मृत्यु हो गयी थी जिसे इन्होंने तीन दिनोंके बाद जिला दिया। औरङ्गजेबपर इनका भी पूरा प्रभाव था।

चौथे क़यूम ज़ुबैर थे। ये अबुल अलीके पुत्र थे और तृतीय क़यूमके पौत्र। इनके नामके साथ भी चमत्कारोंकी नाना कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। इन्हींके कालमें औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई। द्वितीय क़यूमकी तरह इन्होंने भी तत्कालीन राजनीतिमें प्रमुख भाग लिया। औरङ्गजेबकी मृत्युके पश्चात् शाहीके लिए उसके बेटोंमें जो कलह आरम्भ हुआ उसमें ज़ुबैरने खुलकर हाथ बटाया। आज़म और मुअज़्ज़मके बीच इन्होंने मुअज़्ज़मका साथ खुले तौरपर दिया। मुअज़्ज़म ही की विजय हुई। वह इनका शिष्य था। चारों क़यूम पूरे कट्टर थे। इनकी कट्टरताने तत्कालीन राजनीतिपर पूरा प्रभाव डाला। मुग़ल साम्राज्यके पतनमें यह भी एक कारण था।

भारतवर्षके प्रमुख सूफी सम्प्रदायोंमें शत्तारी सम्प्रदाय भी है। भारतवर्षमें इसके प्रवर्तक फारसके अब्दुल्ला शत्तारी थे। इनकी मृत्यु मालवामें

1. वही, पृ० १६३–१६६।

सन् १४०६ ई० में हुई[1]। उनकी मृत्युका साल सन् १४२८–१४२९ भी कहा गया है[2]। अब्दुल्ला शत्तारी, सुप्रसिद्ध सन्त शहाबुद्दीन सुहरवर्दीके वंशके थे। शेख मुहम्मद आरिफ़ इनके पीर थे जिनसे उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञानके रहस्योंको बड़ी शीघ्रतासे सीख लिया। इसीलिए ये 'शत्तारी' कहलाये, चूँकि 'शत्तार' का मतलब 'गति' है। अपने पीरके आदेशसे ये भारतवर्षमें आये। इस देशमें आकर ये जहाँ-जहाँ गये वहाँ उन्होंने सूफी-साधकोंसे साक्षात्कार करनेकी कोशिश की। उनसे उनका कहना था कि जो ईश्वरीय ज्ञान उन्हें है वे उनको बतलावें अथवा उनसे ही उस ज्ञानको लें। वे पहले जौनपुरमें आकर बसे लेकिन वहाँके सुल्तानसे नहीं बनी इसलिए वे मालवा चले गये।

शत्तारी सम्प्रदायवाले .कादिरी सम्प्रदायवालोंकी तरह ही वस्त्र धारण करते हैं। चिश्ती और .कादिरियोंके साथ 'बेनवा' कहे जाते हैं। बेनवाका मतलब 'दीन, अपाहिज' है। जो अपने बाल कटा देते हैं वे 'मुल्हिदनुमा' कहलाते हैं अर्थात् वे धर्मके नियमोंकी पाबन्दीको नहीं स्वीकार करते हैं। अतएव वे अधार्मिक समझे जाते हैं। जो बाल नहीं कटाते और सिर्फ अपनी दाहिनी कनपटीके पासके बालोंको कटाते हैं वे 'रसूलनुमा' कहलाते हैं। सम्प्रदायमें दीक्षित होनेके समय मुर्शीद उस स्थानके कुछ बालोंको काट देता है इसीलिए वे दाहिनी कनपटीके पासके कुछ बालोंको कटाते हैं।

इस सम्प्रदायके मुख्य सन्तोंमें ग्वालियरके शाह मुहम्मद गौस थे। शाह मुहम्मद गौसके शिष्य और उत्तराधिकारी शाह वजीहुद्दीन गुजरातमें बहुत मशहूर हुए। शाह मुहम्मद गौसको हुमायूँ बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। वह हुमायूँके आध्यात्मिक गुरु थे। इस सम्प्रदायके प्रति भी मुगल बादशाहोंकी बड़ी भक्ति थी।

---

१. इ. इ. इ., पृ० २८९।

२. सूफि०, पृ० ३०७।

१६. भारतवर्षके सूफी सम्प्रदाय (२)

भारतवर्षके प्रमुख सूफी सम्प्रदायोंका इतिहास कुछ ऐसा रहा है कि समयके बीतनेके साथ उन सम्प्रदायोंके भीतर अनेक उपसम्प्रदायोंका आविर्भाव हुआ और सूफी साधकोंके कितने समुदाय इस देशके चारों ओर फैल गये। सनातन-पन्थी इस्लामके आचार-विचार, मान्यताओं आदिकी दृष्टिसे इन सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायोंके मोटे तौरपर दो विभाग किये जा सकते हैं। एक विभाग तो वह है जो सनातन-पन्थी इस्लामके आचार-विचारको बहुत दूरतक मानकर चलता है अथवा उसमें उसकी आस्था है और इस्लामी दुनियाके साथ उसका सम्बन्ध साधारणतः अच्छा है। यह विभाग बा-शरा सम्प्रदायवालोंका है और इस विभागमें सभी प्रमुख सूफी-सम्प्रदाय तथा उप-सम्प्रदाय हैं। दूसरा विभाग उन उप-सम्प्रदायों अथवा छोटे-छोटे समुदायोंका है जो इस्लामके आचार-विचारपर उतना ध्यान नहीं देते। इस विभागवाले धर्मके मामलेमें बड़ी स्वतन्त्र प्रकृतिका परिचय देते हैं। इस विभागवाले बे-शराके नामसे परिचित हैं। बे-शरा सम्प्रदाय-वालोंपर सनातन-पन्थी इस्लामकी दृष्टि वक्र ही रहती है। फिर भी बे-शरा सम्प्रदायवालोंका जनतामें खूब प्रभाव है और उसकी जीवनचर्याको उन्होंने खूब ही प्रभावित किया है।

इन बे-शरा सम्प्रदायवालोंकी प्रवृत्ति सनातन-पन्थी इस्लामकी उपेक्षा करनी ही रही है। प्रारम्भिक सूफी साधकोंके जीवनकी ओर भी वे उन्मुख नहीं हुए। इन्होंने सन्तोंकी पूजापर बहुत ध्यान दिया। नाना प्रकारके चमत्कारोंसे लोगोंको वे आकर्षित करते। उनमें नशा सेवनका खूब प्रच-लन है। जिक्रकी नाना क्रियाएँ उनमें प्रचलित हैं। अध्ययनकी आवश्य-कता उन्हें नहीं महसूस होती। उनमें अशिक्षितोंकी संख्या अधिक है। इनके पीर अधिकांश अशिक्षित हैं। ज्ञानकी उपलब्धिके लिए वे विद्या-

ध्ययन करना आवश्यक नहीं मानते। फलस्वरूप उनमें बहुतसे ऐसे भी हैं जो आचरणभ्रष्ट और ठग हैं।

बाजारोंमें घूमते हुए जो मुस्लिम फ़कीर भीख माँगते फिरते हैं और नाना प्रकारके मंत्र, तंत्र, जादू-टोना आदिके द्वारा लोगोंको प्रभावित करते हैं, बे-शरा विभागके अन्तर्गत हैं। बे-शरा सम्प्रदायमें एक दल ऐसा है जिसका नाम 'मजजूब' है। ये मजजूब, नमाज, रोजा आदिमें बिलकुल विश्वास नहीं करते, न पैग़म्बरके चमत्कारमें और न भविष्य जीवनके बारेमें।

जिस प्रकारसे प्रमुख सूफी सम्प्रदाय जैसे चिश्ती, क़ादिरी आदिका संघटन है उस प्रकारसे इनका संघटन नहीं है। बे-शरा सम्प्रदाय वालोंको ठीक उन्हींकी तरहसे विभिन्न श्रेणियोंमें अलग-अलग रखना कठिन है। साथ ही बे-शरा और बा-शरा सम्प्रदायके साधकोंमें कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि जो बा-शरा हैं वे बे-शरा हो जाते हैं और बे-शरा भी बा-शरा हो सकते हैं। कितने बे-शरा सन्त इतने प्रसिद्ध और प्रभावशाली हुए कि उनकी गिनती बा-शरा सम्प्रदायके सन्तोंमें की गयी है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बताना अत्यन्त कठिन है कि कौन-सा बे-शरा सम्प्रदाय किस प्रमुख सूफी सम्प्रदायसे आविर्भूत हुआ। लेकिन इतना अवश्य सम्भव प्रतीत होता है कि उनमेंसे कुछका किसी-न-किसी प्रमुख सम्प्रदायसे सम्बन्ध रहा होगा। उस कालमें ऐसी भी प्रवृत्ति रही है कि नया सम्प्रदाय चलानेके उद्देश्यसे कोई लब्ध-प्रतिष्ठ साधक अपने मूल सम्प्रदायसे अपनेको विच्छिन्न कर लिये हुए था। बहुतसे ऐसे भी बे-शरा सम्प्रदाय हैं जिनका कोई सुचिन्तित जीवन-दर्शन नहीं है। इन सम्प्रदायोंके आविर्भावकी कहानी कहना कठिन है। इन सम्प्रदायोंके अनुयायियोंमें एक बात और देखी जाती है कि वे अपने धार्मिक क्रिया-कलाप आदिको अत्यन्त रहस्यमय बनाये हुए रहते हैं। उन्हें प्रकाशमें नहीं आने देना चाहते। इन सम्प्रदायोंका कोई लिखित साहित्य नहीं है।

उनके अनुयायियोंको गुरुपरम्परासे सम्प्रदायके रहस्य मौखिक रूपमें प्राप्त होते हैं।

बे-शरा सम्प्रदायके भी दो विभाग किये जा सकते हैं। कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं जो किसी-न-किसी मुख्य सूफ़ी सम्प्रदायसे अपना सम्बन्ध बताते हैं लेकिन उनका आविर्भाव वास्तवमें स्वतन्त्र रूपसे हुआ है। इस प्रकारके सम्प्रदायोंका इतिहास कुछ-न-कुछ ज्ञात है लेकिन बे-शराके दूसरे विभाग-का संघटित रूप नहीं दीख पड़ता और न यही मालूम होता है कि कबसे कौन-सा सम्प्रदाय चला आ रहा है।

इन सम्प्रदायोंके सम्बन्धमें कुछके बारेमें ही कहकर सन्तोष कर लेना पड़ेगा चूँकि उनकी संख्या अत्यधिक है। इन्हींमें कलन्दरी सम्प्रदायवाले हैं। इस सम्प्रदायवालोंको वास्तवमें सम्प्रदाय कहनेमें भी संकोच होगा। क़ादिरी सम्प्रदायके एक दरवेशका नाम शाहबाजे-क़लन्दरी था। इसी प्रकारसे मौल्वी सम्प्रदायके भी एक दरवेशका नाम सम्सुद्दीन तबरीजी कलन्दरी था[1]। इनका काम भीख माँगना है। भीख माँगनेकी कलामें ये बड़े निपुण होते हैं। ये बन्दर या भालू नचाया करते हैं। ये दरवाजे-दरवाजे जाकर भीख माँगते हैं। गाँववाले चाहे वे किसी धर्मके अनु-यायी क्यों न हों, इनसे भय करते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी इनकी आवाज सुनते ही भीख लेकर दौड़ते हैं। देरी होनेपर वे शाप देते हुए चल देते हैं और समयपर भीख मिल जानेपर बहुत-बहुत आशीर्वाद देते हैं। इनमें कुछ तो विवाहित होते हैं और कुछ अविवाहित। वे एकान्तमें शहर या गाँवके बाहर या भीतर फूसकी झोपड़ियोंमें रहते हैं। ये अपना सिर, मूछ, दाढ़ी और भौओंको मुड़वाये हुए रहते हैं। इनका प्रसिद्ध स्थान पानीपत है जहाँ बू-अली क़लन्दरका मक़बरा है।

इस सम्प्रदायके प्रवर्तकके सम्बन्धमें बहुत ही मतभेद है। भारतवर्षमें इस सम्प्रदायको ले आनेवालेका श्रेय किसीने अली अबूयूसुफ़ क़लन्दरको

1. दर., पृ० ९४।

दिया है[1]। ये बू-अली .कलन्दरके नामसे विख्यात थे और स्पेनके रहने-वाले थे। कहा जाता है कि उनका सम्बन्ध चिश्ती और बख्तारी दोनों सम्प्रदायोंसे था लेकिन बादमें इन्होंने इन दोनोंको छोड़ दिया और एक स्वतन्त्र सम्प्रदायका प्रवर्तन किया। किसीने इन्हें पर्शियन इराकका रहने-वाला बतलाया है और नाम अबू-अली .कलन्दर[2]। इस सम्प्रदायके प्रव-र्तकके सम्बन्धमें भारतमें प्रचलित एक परम्पराके अनुसार इसके प्रवर्तक सईद खिज्ररूमी .कलन्दर खपरादारी थे[3]। इसमें रूमी शब्द इस बातका सूचक है कि वे रूम या तुर्किस्तानके थे। कहा जाता है कि ये अब्दुल अजीज मक्कीके शिष्य थे। अब्दुल अजीज मक्कीके बारेमें सूफियोंका विश्वास है कि वे अमर हैं तथा अब्राहमके समयसे ही वे इस संसारमें वास कर रहे हैं। कहा जाता है कि पहले पहल उन्होंने कलन्दर शब्दका प्रयोग अपने नामके साथ किया। रोजके[4] अनुसार इस सम्प्रदायके प्रवर्तक .कलन्दर यूसुफ अन्दलूसी थे जो स्पेनके अन्दलुसिया स्थानके रहनेवाले थे। रोजका कहना[5] है कि पहले-पहल उन्होंने ही .कलन्दर शब्दका प्रयोग अपने नामके साथ किया और इसका अर्थ 'विशुद्ध सोना' है। 'विशुद्ध सोना' कहनेका तात्पर्य हृदय, आत्माकी विशुद्धतासे है। किसी-किसीका कहना है भारत-वर्षमें इसे ले आनेका श्रेय सईद नज्मुद्दीन .गौसुद्दहर .कलन्दरको है। कहते हैं कि वे पहले निजामुद्दीन औलियाके शिष्य थे और बादमें उन्हींके कहनेसे रूममें जाकर खिज्र रूमीके शिष्य हो गए। खिज्र रूमीने फिर उन्हें भारतवर्षमें भेज दिया[6]।

'.कलन्दर' शब्दकी व्युत्पत्ति और अर्थको लेकर नाना प्रकारके मत

---

१. रे. आ. इ., पृ० ५१।

२. प्रि. इ., पृ० २८२।

३. सूफि., पृ० ३१०।

४. दर., पृ० २९९।

५. वही, पृ० २९९।

६. सूफि., पृ० ३११-१२।

प्रकट किये गये हैं। हम ऊपर देख चुके हैं कि इसका अर्थ विशुद्ध सोना किया गया है। शेखने इस शब्दपर बड़े विस्तारसे विचार किया है[1]। इसे फारसी शब्द 'कलान्तर'का रूपान्तर माना गया है। 'कलान्तर'का अर्थ किसी स्थानका 'प्रधान' होता है। इसे '.करिन्द' या 'कलन्दारी'से भी सम्बन्धित माना गया है। 'कलन्दारी'का मतलब एक प्रकारका बाजा है। इसे तुर्की शब्द 'काल'से भी निकला मानते हैं। 'काल'का अर्थ 'विशुद्ध' है। इस शब्दका चाहे जो भी अर्थ हो लेकिन इसका प्रयोग 'फ़क़ीर'के लिए, 'परमात्माके दास'के लिए किया जाता है।

कहते हैं कि सईद नज्मुद्दीन गौसुद्दहर .कलन्दर, जिन्हें भारतवर्षमें इस सम्प्रदायका प्रवर्तक मानते हैं, दो सौ वर्षोंतक जीवित रहे और उनकी छातीसे 'हू'की आवाज निकलती रहती थी। कहते हैं कि इंगलैण्ड और चीनकी यात्रा इन्होंने की थी। बयालिस दफे मक्का हज करनेके लिए ये गये थे। कहते हैं कि चालीस वर्षोंतक नाना प्रकारकी कृच्छ्र साधनामें ये लगे रहे। तीस वर्षोंतक एक ही पत्थरपर इनके रहनेकी बात कही जाती है। यह भी लोगोंका कहना है कि चालीस वर्षोंतक इन्होंने उपवास किया था और नित्य संध्याके समय बेरकी पत्ती चबाकर रह जाते। इनकी मृत्यु सन् १४३२ ई०में हुई। प्रायः प्रत्येक साधकके नामके साथ इस प्रकारकी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। यह मध्य युगकी एक विशेष प्रवृत्ति थी। कुत्बुद्दीन बिनादल क़लन्दर सरन्दाजे गौसी इनके उत्तराधिकारी हुए। उनके बारेमें भी लोगोंका कहना है कि वे १४५ वर्षतक जीवित रहे। कहते हैं कि जिक्रके समय उनका सिर अलग हो जाता था!

शर्फुद्दीन बू अली क़लन्दरके बारेमें कहा जाता है कि वे एक उच्च कोटिके साधक हो गये हैं और परमात्माकी उनपर विशेष कृपा थी। उनकी शक्तिपर लोगोंको इतना अधिक विश्वास था और उनके प्रति लोगोंकी इतनी अधिक श्रद्धा-भक्ति थी कि उनकी कब्रको लेकर पानी-

1. दर., पृ० १६९-१७२।

पत और कर्नालके लोगोंमें काफी मतभेद पैदा हुआ। वे कर्नालमें दफ़-नाये गये लेकिन कहते हैं कि पानीपतवालोंने उनके शवको उखाड़ कर पानीपतमें दफ़नाना चाहा। कहते हैं कि कर्नालकी क़ब्रसे वे शव नहीं निकाल सके केवल कुछ ईंट पत्थर ही निकाल सके लेकिन पानी-पतमें आकर उन लोगोंने शव ढोनेवाले बाक्समें उनके शवको पाया। चाहे जो हो, दोनों स्थानोंमें उनका उर्स आज भी होता है।

कहते हैं कि जब वे एक बार धर्मोपदेश कर रहे थे तो जैसे उन्होंने सुना कि कोई कह रहा है कि क्या वे इसी कामके लिए बनाये गये हैं। उन्होंने धर्मोपदेश करना छोड़ दिया, धर्म-ग्रन्थोंको फेंक दिया और पानीमें खड़े हो कर वर्षों तपस्या की। तपस्या पूरी होनेपर परमात्मासे उन्होंने यही माँगा कि वे उसे ही चाहते हैं और उसे छोड़ कर उन्हें और कुछ नहीं चाहिए। उन्होंने अपने शिष्य इख़्तियारुद्दीनके पास बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखी थीं जिनसे उनके विचारोंपर प्रकाश पड़ता है।

इक़्तिबासुल अनवारके अनुसार ये दिल्लीकी क़ुव्वतुल इस्लाम मस्जिदकी मीनारमें लोगोंको शिक्षा दिया करते थे। कहते हैं कि तीस वर्षोंतक इस प्रकारसे लोगोंको वे शिक्षा तथा धर्मोपदेश देते रहे।[१]

बे-शरा सम्प्रदायमें कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध सुहरवर्दी सम्प्रदायसे है। इन सम्प्रदायोंमें लालशाहबाजिया, मूसा सुहागिया, रसूल शाही आदि हैं। लालशाहबाजके नामके साथ लालशाहबाजिया सम्प्रदाय-का नाम जुड़ा हुआ है। लालशाहबाजके सम्बन्धमें बहुत कम सामग्री मिलती है। ये घूमते-फिरते फ़क़ीर थे। लालवस्त्र धारण करनेके कारण लाल शब्दका प्रयोग इनके नामके साथ किया जाता है।

कहा जाता है कि लालशाहबाजने इस्लामके धार्मिक कृत्योंकी कभी भी परवा नहीं की। वे शराब पीते थे और उनके अनुयायियोंका कहना है कि उनके स्पर्शमात्रसे शराब पानी बन जाती थी। उनकी दुश्चरित्रताके सम्बन्धमें लोगोंका कहना है कि ये सब उनके लिए दिखावेकी चीजें थीं।

१. ग्ला. पं., ट्रा. का. प्रथम भाग. पृ० ६१९

बाहरसे वे ऐसा रूप बनाये हुए रहते थे जिसमें लोग उनकी आध्यात्मिक शक्तिको न जान जायँ। बर्टनने[1] एक लालशाहबाजकी चर्चा की है और बतलाया है कि वे सिन्धके थे और ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। बर्टनके अनुसार उनकी मृत्यु सन् १२७४ ई० में सेहवानमें हुई और लोग प्रत्येक वर्ष उनके मक़बरेका दर्शन करने जाते हैं जहाँ खोनबटी जातिकी एक लड़कीकी शादी उस मक़बरेके साथ की जाती है और फिर वह शादी नहीं करती। लालशाहबाजकी मृत्यु सन् १३२४ ई० में भी हुई बतायी जाती है[2]।

मूसा सुहागिया या सोहागिया सम्प्रदायका नाम मूसा शाही सुहागके नामसे आया है जो एक बहुत बड़े सन्त थे। वे ईसाकी पन्द्रहवीं शताब्दी-के अन्तमें हुए। कहा जाता है कि वे सईद जलालुद्दीन सुर्खपोशके उत्तरा-धिकारी थे। इस सम्प्रदायका मुख्य स्थान अहमदाबाद है। 'सुहाग' शब्दका प्रयोग उनके नामके साथ सम्भवतः इसलिए हुआ है कि वे लोगोंकी भीड़से बचनेके लिए स्त्रीका वस्त्र धारण करते थे। स्त्रीके वेशमें वे रहते थे। कहते हैं कि अपनी आध्यात्मिक शक्तिको छिपाये रखनेके लिए वे स्त्रीके वेशमें हिजड़ोंके दलमें रहते जिनका काम नाचना-गाना था। इनके अनुयायी स्त्री-वेशमें रहते हैं। स्त्रियोंके गहने पहनते हैं वे चूड़ीहारों तथा नर्तकियोंसे भीख लेते हैं। जब कोई भीख देनेसे इनकार कर देता है तब वे चूड़ियाँ फोड़कर चबाने लगते हैं। वे तँबूरा, सितार, सारंगी बजाते हैं। गानेमें भी निपुण होते हैं। अपने मुर्शिदके सामने नाचते-गाते हैं। उनका दावा है कि अपने संगीतके बलपर वे वर्षा कर सकते हैं, पत्थर पिघला सकते हैं।

कहा जाता है कि शाह मूसाने अपनी प्रार्थनासे वर्षा की थी। अहमदाबादमें अनावृष्टि हुई। लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि वे उनकी रक्षा करें। उन्होंने प्रार्थना की—"ऐ मेरे पति, अगर अभी तुरत तुम

१. ह. इ. इ., पृ० १४२।

२. सूफि०, पृ० २४७।

वर्षा नहीं भेज रहे हो तो मैं सुहागिनके इन सभी आभूषणोंको दूर कर दूँगा।" कहते हैं कि उस समय वृष्टि हुई और लगातार कई दिनोंतक होती रही। उनकी मृत्यु सन् १४४९ ई०में हुई। इस्लामके बन्धनोंसे वे भी मुक्त थे। रोजा, नमाजके प्रतिबन्धसे वे परे हो गये थे।

रसूलशाही सम्प्रदायके जन्मदाता रसूलशाह नामक एक सन्त थे जो अलवरके पास बावलपुरके थे। इनके सन्त होनेकी कहानी बड़ी विचित्र है। इस सम्प्रदायके फ़कीरोंका कहना है कि औरङ्गजेबके तुरत बादके उत्तराधिकारियोंके समयमें नियामतुल्ला नामक एक धनी जौहरी था जो अलवरसे २० मील दूर बहादुरपुरका रहनेवाला था। एक बार वह अपने व्यवसायके सिलसिलेमें मिस्र गया और वहाँपर दाऊद नामक एक सन्तसे मिलने गया। उनकी ख्याति वह पहले ही सुन चुका था। दाऊद शराब पीते थे और उनका आचरण लोगोंकी दृष्टिमें बहुत निकृष्ट दर्जेका था। जब नियामतुल्ला उसके पास गया तब उन्होंने उसे शराब पीनेके लिए दी। सन्तके सम्मानके लिए वह उसे पी गया लेकिन पीनेके साथ ही जैसे उसका कायापलट हो गया। उसे ईश्वरीय ज्ञान हो गया और सब कुछका त्यागकर वह फ़कीर हो गया और दाऊदकी सेवामें रह गया। एक दिन दाऊदने नियामतुल्लासे कहा कि उस (दाऊद) की मृत्युका समय आ गया लेकिन उसकी आत्मा नियामतुल्लाके भीतर प्रवेश कर जायगी। दाऊदने यह भी कहा कि उसकी मृत्युके पश्चात् नियामतुल्ला अलवर चला जाय, वहाँ उसे सईद रसूल शाह मिलेगा। रसूलशाह को शिष्य बनाकर आध्यात्मिक ज्ञान बतानेके लिए भी दाऊदने कहा। यह सभी कह लेनेके बाद ही दाऊदकी मृत्यु हो गयी और नियाम-तुल्ला अलवर चला आया। दाऊदने बतलाया था कि रसूलशाह एक नये सम्प्रदायका प्रवर्तक होगा।

अलवरमें आकर नियामतुल्लाने सईद रसूलशाहको बुलवा भेजा और उसे शराब पीनेके लिए दी। उसे पीनेके बाद रसूलशाहका भी जीवन परिवर्तित हो गया। उसने अपना सिर मुड़वा दिया, मूँछें और

भौहोंको भी साफ करा दिया और नियामतुल्लाका शिष्य हो गया। कई वर्षोंतक वह पीरकी सेवामें रहा। एक दिन दाऊदकी नाईं नियामतुल्लाने भी रसूलशाहसे कहा कि उसकी मृत्यु हो जायगी और उसकी आत्मा रसूलशाहमें प्रवेश कर जायगी और वह (रसूलशाह) अपने नामपर एक सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा करेगा।

रसूलशाहने नियामतुल्लाकी मृत्युके बाद अपने नामपर 'रसूलशाही' सम्प्रदाय चलाया। इस सम्प्रदायवाले सिरपर एक उजला या लाल रूमाल बाँधते हैं। एक रूमालमें भस्म बाँधे हुए रहते हैं जिसे वे अपने शरीर और चेहरेपर मलते हैं। वे अपने सिर, अपनी मूछों और भौंहोंको मुँड़ाते हैं। काठकी चट्टी पहनते हैं और गर्मीके दिनोंमें हाथमें पंखा लिये फिरते हैं। वे शराब पीना धर्म-विरुद्ध नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें नशा-सेवन धार्मिक कृत्य है। पीनेकी इस आदतने उन्हें सिक्ख सरदारोंके निकट ला दिया और कहते हैं कि रणजीतसिंहने मद्यके लिये उन्हें दो सौ रुपये मासिककी रक़म निश्चित कर दी थी। यह सम्प्रदाय अल्पसंख्यक ही है। इस सम्प्रदायवाले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं करते। लोगोंका ख्याल है कि इस सम्प्रदायवाले निर्धन नहीं हैं। वे भीख माँगते हुए नहीं देखे जाते। उनमें बहुतसे साहित्यके प्रेमी भी हैं। पंजाबमें उनका प्रधान स्थान लाहोरमें लन्दाबाजारके निकट एक इमारत है। रसूलशाहियोंका यह वृत्तान्त रोज[1]के आधारपर है जिसे जान ए० सुभानने[2] कहा है कि वह तहक़ीक़ाते चिश्ती नामक पुस्तकमें दिये हुए उनके वृत्तान्तसे पूराका पूरा मिलता है। बहाउद्दीन ज़करिया मुल्तानीकी सतरहवीं पीढ़ीमें रसूलशाह पड़ते हैं।

इन बे-शरा सम्प्रदायवालोंमें मदारी-सम्प्रदाय कुछ अच्छी ख्यातिवाले नहीं हैं। यह सम्प्रदाय मदारिया अथवा तबक़ातियाके नामसे भी परिचित है। इसके प्रवर्तक सुप्रसिद्ध सन्त 'जिन्दाशाह मदार' कहे जाते

१. ग्ला. पं० ट्रा. का. (तृतीय खण्ड) सन् १९१४ ई०, पृ० ३२४।
२. सूफी० पृ० २५२।

हैं। लोगोंका विश्वास है कि वे अमर हैं इसीलिए उन्हें 'जिन्दा' कहते हैं। इस सम्प्रदायवाले काले कपड़े पहनते हैं। इनके सरके बाल उलझे हुए होते हैं जिन्हें वे बाँध लेते हैं। ये जब भीख माँगने निकलते हैं तब लोग इनके भयसे इन्हें जल्दी भीख देकर हटा देना चाहते हैं। दूकानदारोंको भीखके लिए बहुत गन्दी गालियाँ देते हैं अथवा भय दिखाते हैं। दूकानदार इन्हें शीघ्र ही भीख दे-दिलाकर छुट्टी पानेकी चेष्टा करते हैं। अपने पैरोंमें वे जंजीर बाँधे हुए रहते हैं और जब दूकानोंपर भीख माँगने जाते हैं तब उसे आगेकी ओर उछालते हैं और फिर खींच लेते हैं। वे जादू और हाथकी सफाई दिखाते हैं।

'जिन्दा शाह मदार' का नाम पटियालामें प्रचलित किंवदन्तीके अनुसार बदीउद्दीन मदार था और वे अबू इसहाक़ शामीके पुत्र थे। एक वृत्तान्तके अनुसार इनके पिताका नाम ख़्वाजा कसमी था[१]। पटियालामें उनका मीर डेरा (प्रधान स्थान) बनूरमें मुरादअली शाहका तकिया है। भटिन्डा के पास हाजी रतनके मक़बरेसे भी मदारियोंका सम्बन्ध है। कहते हैं कि जिन्दाशाह मदार यहूदी थे और उनका जन्म अलप्पोमें सन् १०५० ई० में हुआ और मृत्यु मकनपुरमें। मृत्युके समय उनकी उम्र ३८३ वर्ष की कही जाती है[२]!

मिराते-मदारीके आधारपर जान ए० सुभानने शाह मदारके सम्बन्धमें निम्नलिखित वृत्तान्त लिखा है[३]। 'मिराते-मदारी' का आधार शाह मदारके शिष्य महमूद कन्तूरी द्वारा लिखित 'इमाने-महमूदी' नामक ग्रन्थ बताया जाता है।

कहा जाता है कि शाह मदारके जन्मकी सूचना उनके पिताको मूसाने स्वयं दी थी। मूसाने नामकरण भी स्वप्नमें ही कर दिया था। मूसाने इनका नाम बदीउद्दीन बतलाया। बचपनमें शाह मदारने हदीक़

१. ग्ला, पं० ट्रा. का. (प्रथम खण्ड), पृ० ६३७।

२. ग्ला. पं० ट्रा. का. (तृतीय खण्ड), पृ० ४३।

३. सूफी०, पृ० ३०२।

शामी नामक एक यहूदीसे शिक्षा प्राप्त की। हदीक़के बारेमें कहा जाता है कि वह बड़ा ज्ञानी, पंडित था। उसके बहुतसे चमत्कारोंकी भी बात कही जाती है। शाह मदारके पिता-माता उनके बचपनमें ही मर गये। अपने गुरुके आदेशसे वे मक्का चले गये और वहाँपर कुरान, हदीस आदिका गम्भीर अध्ययन किया। इतनी विद्या प्राप्त करनेपर भी उन्हें शान्ति नहीं मिली और वे मक्का छोड़कर अपने घर सीरियामें लौटनेका विचार कर रहे थे। क़ाबाकी परिक्रमा करते समय जैसे उन्हें सुनाई पड़ा "अगर परमात्माकी खोज कर रहे हो तो मुहम्मदकी क़ब्रपर मदीने चले जाओ।" वहाँ जाकर उन्होंने पैग़म्बरकी क़ब्रको चूमा। उन्हें सुनाई पड़ा कि "ऐ बदीउद्दीन शाह मदार, परमात्माकी इच्छा हुई तो शीघ्र ही तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।" इसके बाद ही मुहम्मदके उन्हें दर्शन हुए और साथ ही अलीसे भी उनका साक्षात्कार हुआ। अलीके सामने ही हज़रत मुहम्मदने उन्हें इस्लाम धर्मके रहस्योंको समझाया और अलीकी देखरेखमें उन्हें छोड़ दिया। इसके बाद शाह मदार, नजफ अशरफ़ गये जो अलीके अनुयायियोंका केन्द्र था। वहाँ अलीने उन्हें इमाम महदीसे मिलाया। इमाम महदी, बारहवें अदृश्य इमाम हैं। इमाम महदीने बारह स्वर्गीय ग्रन्थोंसे उन्हें परिचित कराया। इन बारह ग्रन्थोंके नाम इस प्रकारसे हैं—तौरा, जबूर, फुरक़ान, इञ्जील, रकूरी, जाजरी, दशरी, बलीयन, मिरात, ऐनूर्रब, सिर्रे-माजिर और मज़हरे अलिफ। इसके बाद महदी उन्हें अलीके पास ले गये। अलीने उन्हें अपना खलीफा बनाकर मदीना भेज दिया। वहाँसे हज़रत मुहम्मदकी अदृश्य शक्तिने उन्हें भारतवर्षमें आनेका आदेश दिया।

शाह मदारका एक दूसरा जीवन-वृत्तान्त भी मिलता है[1]। उसके अनुसार वे कु़रैश वंशके अरब थे और पिताकी तरफसे वे अबू हुरैराकी वंश-परम्परामें पड़ते हैं और माताकी तरफसे अब्दुर्रहमान बिन औफकी वंश-परम्परामें पड़ते हैं। ये दोनों हज़रत मुहम्मदके साथ रहनेवालोंमें थे।

1. वही, पृ० ३०४।

इन दो वृत्तान्तोंसे यह तो पता चल ही जाता है कि वे अत्यन्त प्रभाव-शाली और लोकप्रिय सन्त थे। वैसे यह कहना कठिन है कि उनका ठीक जीवन-वृत्तान्त कौन-सा है।

कहा जाता है कि जब बदीउद्दीन भारतवर्षमें आये तो वे पहले पहल अजमेर गये। वहाँ उन्हें ख़्वाजा मुईनुद्दीनकी आत्माने उनके भविष्यके कार्यक्रमसे परिचित कराया। अजमेरसे वे मकनपूर चले गये। मकनपूर, कानपुरसे ४० मीलकी दूरीपर है। कहते हैं कि सन् १४८५ ई० में इनकी मृत्यु वहींपर हुई। लेकिन उनके जन्म और मृत्युकी तिथिके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी कहना कठिन है। सन्तोंके अनुयायियों-की यह प्रवृत्ति रही है कि उनकी शक्ति और विशिष्टताको बढ़ा-चढ़ाकर बतानेके लिए नाना प्रकारके चमत्कारोंकी कहानियाँ गढ़ लेते हैं और उनकी उम्रको अधिकसे अधिक बढ़ाकर बतानेकी चेष्टा करते हैं। अतएव इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे किसी बातको मान लेना कठिन है।

शाह मदारका एक तीसरा जीवन-वृत्तान्त कुछ इस प्रकारका है[1]। पंजाबमें 'मियाँ-बीबी' सम्प्रदायके अनुयायी जो गान करते हैं उनमें शाहमदारका जिक्र बराबर रहता है। इस परम्पराके अनुसार वे रूमके एक शेख थे और उनका नाम बदरुद्दीन था। वहाँसे वे भारतवर्षमें चले आये और उस कालके बादशाहके मसखरेके साथ टिक गये। जिसके साथ वे ठहरे थे उसकी लड़कियाँ उन्हें 'मियाँ' कहा करतीं और वे उन लोगोंको 'बीबी' कहा करते। जबसे उन्होंने उन लोगोंके घरमें बसेरा लिया तबसे राजाकी कृपा उस मसखरेपर अधिक हो गयी। उसने समझा कि यह शाह मदारकी शक्तिके कारण सम्भव हुआ।

दरबारमें उस मसखरेकी इस लोकप्रियतासे एक मन्त्रीको बड़ी ईर्ष्या हुई और उसने बादशाहके कान भर दिये। बादशाहने एक दिन मसखरेको एक बाघसे लड़नेका आदेश दिया। मसखरेने मियाँ (शाह मदार) की सहायता चाही। अपनी शक्तिके द्वारा शाह मदारने एक

१. ग्ला. पं. ट्रा. का. (प्रथम भाग), पृ० ६३८।

बाघ दरबारमें भेज दिया। उस बाघने उस मन्त्रीको मार डाला। बादशाहको बादमें 'मियाँ' की शक्तिका पता चला लेकिन 'मियाँ'को यह बात अच्छी नहीं मालूम हुई। वह वहाँसे चले जानेके लिए तैयार हो गये। इस बीच वे सभी लड़कियाँ उनके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो गयी थीं। जब मियाँने देखा कि वे लड़कियाँ उनके साथ मरने-जीनेको तैयार हैं तब वे उन अविवाहिता कन्याओंके साथ अदृश्य हो गये। यह ठीक पता नहीं चलता कि किस स्थानसे इस घटनाका सम्बन्ध है। कहते हैं कि 'मियाँ-बीबी'की कहानीका यही उद्गम है।

कहते हैं कि मदार शाह अविवाहित थे और स्त्रियोंके सम्पर्कमें नहीं आये थे। ये काले वस्त्रका व्यवहार करते थे। वे जादूगरोंके पीर माने जाते हैं।[1] उनके मक़बरेपर हिन्दू, मुसलमान सभी तीर्थयात्रा करने जाते हैं। स्त्रियाँ वहाँ नहीं जातीं। लोगोंका कहना है कि अगर वे वहाँ चली जाँय तो उन्हें असह्य पीड़ा होती है; लगता है जैसे वे आगकी लपटके बीचमें हों। उनके नामपर लोग बच्चोंके गलेमें सोने, चाँदीकी बद्धी पहनाते हैं। लोग उनके जन्म दिवसपर आटेकी बनी हुई चीजें, मांस तथा अन्य खानेकी चीजें चढ़ाते हैं। कुछ लोग उनके नामपर आगमें चलते हैं। इसको 'धम्माल कूदना' कहते हैं। 'धम्माल'का मतलब 'पुण्य-स्थान' है। उस अवसरपर खुब अधिक आग जलाकर मदारी फ़क़ीरोंको बुलाते हैं। दलका नेता और अन्य फ़क़ीर फ़ातिहा पढ़ते हैं, इसके बाद चन्दनकी लकड़ी आगमें डालते हैं। पहले, दलका नेता आगमें कूदता है इसके बाद और दूसरे फ़क़ीर। उस समय वे 'दम-मदार'-'दम-मदार' कहते रहते हैं। उनका विश्वास है कि वैसा कहनेसे उन्हें कुछ भी नहीं होगा। साँपके काटने और बिच्छूके डंक मारनेपर भी वे 'दम-मदार' कहते हैं और उनका विश्वास है कि उससे विषका असर नहीं रहेगा। आगसे जब वे निकलते हैं तब उनके पैरको दूध और बादमें पानीसे धोते हैं और कहा जाता है कि उनके पैरोंमें किसी प्रकारका घाव

१. वही, पृ० ३९९।

नहीं होता[1]।

उनके जन्म-दिवसपर लोग एक त्योहार मनाते हैं जिसे 'गाय लूटना' कहते हैं। उक्त अवसरपर सन्तके नामपर एक काली गायकी मन्नत करते हैं और जबह कर मांस फ़कीरोंको बाँट देते हैं। उनके उर्सके अवसरपर लोग रातभर जागते रहते हैं और उनके गुणोंका गान करते हैं। उस रातको लोग बहुतसे दीप जलाते हैं।

मदारिया सम्प्रदायवाले पश्चिमी पंजाबमें नहींके बराबर हैं। उस हिस्लेमें बहुत कम लोगोंको इनके बारेमें पता है। लेकिन पूर्वी पंजाबमें ये बहुत अधिक पाये जाते हैं। अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर, होशियारपुर, अमृतसर, स्यालकोट तथा फ़िरोज़पुर आदिमें ये सर्वत्र पाये जाते हैं।

मलङ्ग-सम्प्रदायके सम्बन्धमें ठीक सम्प्रदायके इतिहासकी दृष्टिसे कुछ कहना कठिन है। साधारणतः इसे मदारी-सम्प्रदायकी शाखा मानते हैं। मलङ्गोंके बारेमें कहा जाता है कि वे जमनजत्तीके अनुयायी हैं। इन अनुयायियोंमें हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। लगता है जैसे जमनजत्ती किसी व्यक्तिका नाम नहीं है बल्कि यह 'यमन (यवन) यति' शब्द है। सम्भव है कि कोई मुसलमान साधक हिन्दू यतिकी तरहसे अपना जीवन बिताता हो और उसके बहुतसे अनुयायी हो गये। लेकिन किसी निश्चित प्रमाणके अभावमें कुछ भी कहना कठिन है। कहते हैं कि जमनजत्ती, ज़िंदाशाह मदारका शिष्य था।

मलङ्ग शब्द किसी भी ऐसे साधुके वेशमें भीख माँगनेवालेके लिए प्रयुक्त होता है जो किसी भी धार्मिक सम्प्रदायके अन्तर्गत न हो। मलङ्ग खूब भङ्ग खाते हैं, चरस पीते हैं, धूँनी रमाये हुए रहते हैं। शरीरमें खाक मलते रहते हैं। लंगोटी धारण करते हैं। माथेपर लम्बे उलझे केश रखते हैं और उन्हें बाँधते हैं। स्यालकोटके पसरूर तहसीलमें शंगीशाह खाकीके मक़बरेपर मलङ्ग बराबर जाते हैं[2]। कमरमें ये जञ्जीर या रस्सीकी

१. इ. इ. इ., पृ० १९५-१९६।

२. ग्ला. पं. ट्रा. का. (तृतीय खण्ड), पृ० ५७।

करधनी लगाये रहते हैं।

इन विभिन्न सम्प्रदायोंमें हम ऐसे अनेक सम्प्रदाय पाते हैं जिनमें सनातन-पन्थी इस्लामकी पाबन्दियोंको छोड़ देनेकी प्रवृत्ति है। वैसे प्रारम्भमें कुछ ऐसे साधक थे जो अपनी आध्यात्मिक शक्तिको लोगोंसे छिपाये रखनेके लिए बहुत ऐसे कार्य करते जिससे लोग उन्हें साधक न जान पावें और उन्हें अधार्मिक समझकर उनके पास न आवें। उन साधकोंका उद्देश्य वास्तवमें उन धार्मिक पाबन्दियोंको छोड़ना नहीं था बल्कि लोगोंसे पिण्ड छुड़ानेका एक दिखावा मात्र था। हुजवीरीने एक ऐसे साधकका जिक्र किया है जिससे उस प्रकारके साधकोंके दृष्टिकोणका पता चलता है। अबू यजीद नामक एक सूफी साधकके बारेमें कहा जाता है कि वे हिजाजसे लौट रहे थे। उनके रास्तेमें रैय्य नामक नगर पड़ता था। जब वे उस शहरमें पहुँच रहे थे तब लोग उनकी आव-भगतके लिए उनके पास पहुँचे। इससे उनके ध्यानमें बाधा पड़ी। परमात्माकी ओरसे उनका ध्यान खिंचा अतएव जब वे बाजारमें आये तो एक रोटी निकालकर खाने लगे। वह रमजानका महीना था। लोग रोजा रख रहे थे। अबू यजीदको वैसा करते देख लोग उन्हें धर्म-विरोधी समझ उनसे अलग हट गये। उन्होंने अपने एक शिष्यसे कहा कि उनके इस धर्मानुमोदित कृत्यको देखकर भी लोग उनसे अलग हो गये। वास्तवमें यात्रामें रोजा रखनेकी पाबन्दी नहीं रहती। उनका रोजा नहीं रखना धर्मके विरुद्ध नहीं[1] था।

इस प्रकारके साधकोंको सूफी 'मलामती' कहते थे और उनके इस प्रकारके कृत्यको 'मलामत'। पहले यह समझा जाता था कि इस प्रकारके साधक एक विशेष कोटिके हैं और परमात्माके विशेष प्रियपात्र हैं अतएव उनके लिए इस प्रकारके दीख पड़नेवाले धर्म-विरोधी कार्य कुछ अर्थ नहीं रखते। उनके लिए यह भी समझा जाता था कि साधारण मनुष्योंकी तरह उन्हें धर्मकी पाबन्दियोंमें बँधना कोई जरूरी नहीं है। बादमें 'मला-

1. कश्फ०, पृ० ६५

मती' एक सम्प्रदाय विशेष हो गया। इस सम्प्रदायके प्रवर्तक हम्दुनुल क़स्सार थे। ये मिस्रके सुप्रसिद्ध साधक ज़ुननूनके शिष्य थे। कहा जाता है कि ज़ुननून ही पहले सन्त थे जो 'मलामतियों'की तरह आचरण किया करते थे। इस सम्प्रदायको कुस्तुनतुनियामें ले जानेवाले शेख हाज थे। वहाँपर उन्हींके नामपर इस सम्प्रदायका नाम हाजबी सम्प्रदाय पड़ा। 'मलामती' सम्प्रदायका नाम लेकर बहुतसे आडम्बर करनेवाले भी बादमें हुए। वे कपटाचरी थे। मलामती सम्प्रदायके अन्तर्गत भी बहुतसे छोटे छोटे उपसम्प्रदाय हो गये। कहा जाता है कि जो सभी सुखोंसे मुँह मोड़ कर परमात्माकी ओर ही उन्मुख है वह अगर कुछ ऐसा आचरण करे जो देखनेमें धर्मके विपरीत मालूम हो लेकिन वास्तवमें अधार्मिक न हो तो उससे कुछ आता जाता नहीं और वह साधक वास्तवमें श्लाघ्य है।

---

१७. सूफी काव्यकी विशेषता और सूफी कवि

सूफी-काव्यका प्राण प्रेम है। सूफी साधक आत्मा और परमात्माका मिलन प्रेमके द्वारा ही सम्भव मानते हैं। परमात्माको पानेके लिए आत्मा जिस बेचैनी और आतुरताका अनुभव करता है सूफी-कवि उसका वर्णन सांसारिक प्रेमकी विभिन्न मनोदशाओं जैसा करता है। प्रेमी और प्रियतमके लौकिक प्रेम द्वारा उस अलौकिक प्रेमकी अभिव्यक्तिके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं। फ़ारसके मर्मी कवियोंने रहस्यात्मक ढंगसे आत्मा-परमात्माके अलौकिक प्रेमका वर्णन किया है। इस प्रेमको व्यक्त करनेके लिए उनके पास पहलेसे आती हुई भाषाकी परम्परा थी जिसका उपयोग उन लोगोंने किया। इन कवियोंमें शायद ही कोई ऐसा हो जो साधक न हो।

प्रारम्भिक कालके सूफी-कवियोंने तत्कालीन कवियोंकी भाषा और प्रकाशन-भंगीको अपनाया। इसीलिए उनकी कविताओंमें साक़ी, शराब, प्याला, माशूक़, ज़ुल्फ़, लब आदि शब्द देखनेको मिलते हैं। उन कवियोंने प्रेम सम्बन्धी कविताओंमें जिन शब्दोंका प्रयोग किया था उन्हें सूफी-कवियोंने ज्योंका त्यों ले लिया और उन्हें सांकेतिक अर्थ प्रदान किया। हम यह देख चुके हैं कि 'समा'के द्वारा सूफी साधक भावाविष्टावस्था (हाल) को प्राप्त हो जाते थे। लौकिक प्रेम सम्बन्धी गानको सुनते-सुनते भी इन साधकोंको भावाविष्टावस्था प्राप्त हो जाती थी, चूंकि साधक उन शब्दोंका अर्थ कुछ दूसरा ही समझते थे। लौकिक-प्रेम-सम्बन्धी गानकी भाषाका प्रयोग सूफी कवियोंने अपने ढंगसे किया। उन शब्दोंके सांकेतिक अर्थको बादमें समझानेकी कोशिश की गयी है।

मुहसिन फ़ैज़ काशानीने 'रिसाल-यी मिशवाक' में इस तरहके कुछ शब्दों और उनके सांकेतिक अर्थ दिए हैं जो निम्नलिखित हैं—

रुख—चेहरा, कपोल (परम-सौन्दर्यके ऐश्वर्य अर्थात् दयालुता, प्रकाश, परम-सत्य आदिकी अभिव्यक्ति)।

ज़ुल्फ—परम-ऐश्वर्यके सर्वशक्तिमान स्वरूपकी अभिव्यक्ति अर्थात् सर्वग्रासी, महाकाल, अन्धकार, परम सत्यको छिपानेवाला दृश्यमान जगत् स्वरूप पर्दा।

ख़ाल—तिल; वास्तविक 'एकत्व' का केन्द्र-बिन्दु जो ओटमें है अतएव काले रंग द्वारा प्रकट किया जाता है।

ख़त—कपोलमें बननेवाला गड्ढा (आध्यात्मिक स्वरूपोंमें परम-सत्यकी अभिव्यक्ति)।

चश्म—आँखें (परमात्माका अपने दासों और उनकी स्वभावको देखना)।

अबरू—भौंह (परमात्माके सिफ़त जो उसके ज़ातको छिपाये हुए हैं)।

लब—होंठ ; (जिलानेवाली परमात्माकी शक्ति)।

शराब—प्रियतमके दर्शनसे भावाविष्टावस्थाका उत्पन्न होना जब तर्क आदि करनेकी शक्तिका अवसान हो जाता है।

साक़ी—सत्य जो अपनेको सभी व्यक्त रूपोंमें अभिव्यक्त करना पसन्द करता है।

ख़ुम—परमात्माके नामों और गुणोंका प्रकट होना।

ख़ुमख़ाना—समस्त दृश्य और अदृश्य जगत् जो परमात्माके प्रेम और सत्ताकी शराबको अपनेमें लिये हुए है।

पैमाना—जगत्का प्रत्येक अणु जो अपनी शक्तिके मुताबिक उस प्रेमकी शराबको ग्रहण कर पाता है।

बुत—कभी परम-सौन्दर्य (परमात्मा) के लिए, कभी कामिल (पूर्ण मानव) के लिए, कभी मुर्शिद (गुरु) तथा कभी क़ुत्बके लिए इसका प्रयोग किया गया है। कभी परमात्माके सिवा अन्य उपास्यके लिए भी इसका प्रयोग हुआ है।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि यह कोई जरूरी नहीं है कि सभी कवियोंने एक शब्द ठीक एक ही सांकेतिक अर्थमें प्रयोग किया है।

जैसे किसी कविने 'जुल्फ' का प्रयोग परमात्मा सम्बन्धी रहस्योंके लिए किया है तथा रुख (कपोल) का प्रयोग सृष्टिके लिए तथा 'शराब' का प्रयोग आध्यात्मिक प्रेमके लिए। इसी प्रकारसे 'साक़ी' का प्रयोग मुर्शिद (गुरु) के लिए भी किया गया है। 'मैखाना' उस स्थानके लिए जहाँपर आध्यात्मिक प्रेमकी शिक्षा मिलती है।

इस प्रकारकी भाषाके प्रयोगके कारण इस काव्यका रसास्वादन साधक और साधारण लोग भी कर सकते हैं। शृङ्गारप्रिय लोग अपने ढंगसे उसके अर्थ करते हैं और सूफी साधक अपने ढंगसे। भाषाका प्रयोग कुछ इस निपुणतासे इन काव्योंमें किया जाता है कि उसे सुनकर जहाँ साधकको भावाविष्टावस्था प्राप्त होती है वहाँ दूसरोंको उसकी शृङ्गारिकता अभिभूत कर देती है। वैसे इन काव्योंका अध्ययन करते समय एक बात-की ओर ध्यान रखना जरूरी है कि बहुतसे ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने भाषाके कलात्मक प्रयोग द्वारा वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करनेकी चेष्टा की है जैसा कि साधक कवियोंकी रचनाओंमें परिलक्षित होता है।

सूफी-काव्यका अधिकांश फ़ारसीमें लिखा हुआ है और फ़ारसी काव्य-परम्पराका उसपर प्रभाव है। फ़ारसी काव्य-परम्पराका प्रभाव अत्यन्त व्यापक रहा है। तुर्की, अरबी तथा अन्यान्य निकटवर्ती भाषाओं-की काव्य-धाराको इसने विषय-वस्तु और रूप-विधान दोनोंकी दृष्टिसे प्रभावित किया है। फ़ारसी-काव्यकी विशेषता रही है कि उसमें किसी वस्तु या घटनाका वर्णन सांगोपांग बड़े ब्योरेके साथ रहता है। अलंकारों-की भी भरमार फ़ारसी-काव्यमें है। इसका प्रभाव सूफी-काव्यमें पूर्ण रूपसे देखनेको मिलता है। फ़ारसी-कविमें श्लेषात्मक और अतिशयोक्ति पूर्ण प्रयोगोंकी प्रवृत्तिका बाहुल्य है। प्रयोगोंकी निपुणताके कारण उनके काव्यमें अर्थवैचित्र्यका पूरा समावेश हो जाता है। लौकिक प्रेमके गीत जब फ़ारसी कवि गाने लगता है तब उसके लिए उद्दीपन विभावनाएँ अपने आपमें कुछ महत्व नहीं रखतीं बल्कि उसके लिए प्रधान वस्तु हो उठती है उसकी प्रतीकात्मकता। वह साक़ी, शराब, मैखाना, बुलबुल

आदिके गीत गाता है लेकिन ये वस्तुएँ उसके लिये अपने आपमें प्रधान नहीं रहतीं बल्कि उनसे वह एक विशेष सन्देश, एक विशेष भावकी अपेक्षा रखता है। उसके काव्यमें उसकी वैयक्तिकता ही प्रधान हो उठती है। प्रेमाख्यानोंका उपयोग इन कवियोंने अपने मतके प्रकाशन अथवा प्रचारके लिए किया है। कभी-कभी साहित्यिक प्रदर्शनके लिए भी उन्होंने प्रेमाख्यानोंका सहारा लिया है। फ़ारसी-काव्यकी रूढ़ियोंका भी प्रयोग इन सूफ़ी कवियोंने किया है। सूफी-काव्यमें कवियोंकी कल्पना, भाव-व्यञ्जना तथा रचना-कौशलके भव्य-दर्शन होते हैं। फ़ारसी काव्यमें रूढ़ियों-के रहने तथा उसके परम्पराभुक्त होनेपर भी कवियोंको कल्पनाकी उड़ान भरने तथा शैलीका चमत्कार दिखानेका पूरा अवसर मिलता है।

फारसीके पुराने कवियोंकी एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उन्होंने वर्ण्य-विषयसे अधिक शैलीपर ध्यान दिया है। उनके लिए 'क्या कहने जा रहे हैं' यह उतना अधिक महत्त्व नहीं रखता था जितना कि 'कैसे कहने जा रहे हैं'। कहनेके ढंगको उन्होंने प्रधान बना रखा था। अतएव उनमें भाषागत चमत्कार पद-पदपर देखनेको मिलते हैं। इस परम्पराको हम आज भी देखते हैं। सैकड़ों वर्षोंसे जो फ़ारसी कवियोंका ढंग रहा है उसका अनुसरण आजके भी फ़ारसी कवि कर रहे हैं। बीचकी एक-दो शताब्दियोंमें—विशेष रूपसे ईसाकी बारहवीं, तेरहवीं शताब्दीमें सूफी-कवियोंने एक संतुलन बनाये रखा। चूँकि ये साधक और कवि दोनों थे अतएव उनके लिए शैली और भाषागत चमत्कारका जितना महत्त्व था उतना ही विषय-वस्तुका भी। उनकी काव्य-रचनाका उद्देश्य केवल मनोरंजन अथवा अपनी प्रतिभाका प्रदर्शन नहीं था बल्कि उसके द्वारा उन्हें एक आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त होती थी। उसके द्वारा वे अपने विचारों और सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते थे। अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोंके प्रकाशनका माध्यम उन्होंने काव्यको बनाया।

जहाँतक काव्यके बाहरी आकार-प्रकारका प्रश्न है सूफी-कवियोंने विशेष रूपसे मसनवियों और रुबाइयों तथा ग़ज़लोंका सहारा लिया। यहाँ

पर 'मसनवी' और 'रुबाई' तथा 'ग़ज़ल'के सम्बन्धमें कुछ जानकारी कर लेना आवश्यक है। इसके बाद ही उस कालके कुछ प्रमुख सूफी कवियों-की चर्चा हम करेंगे। यहाँ कुछके सम्बन्धमें ही कहकर हमें सन्तोष कर लेना पड़ेगा। साथ ही उनकी काव्यगत विशेषताओंकी विशद विवेचना करना भी यहाँ सम्भव नहीं है।

'मसनवी' शब्दका व्यवहार बड़े काव्यके लिए किया जाता रहा है। 'मसनवी'के छन्दोंमें प्रत्येक पद (Couplet) अपने आपमें स्वतन्त्र और पूर्ण होते हैं और वे तुकान्त होते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक पादके शब्द दूसरेमें चले जायँ। बड़े काव्योंके लिए साधारणतः मसनवियोंका व्यवहार होता है। आकारमें बड़ा होनेके कारण कविको पूरी स्वतन्त्रता बरतनेका सुयोग मिलता है। प्रेमाख्यान, धार्मिक तथा उपदेशात्मक काव्यके लिए मसनवीका ही सहारा लिया गया है। 'मसनवी' अपने आपमें एक पूर्ण ग्रन्थ होता है। उस ग्रन्थका एक विशेष नाम होता है। प्रेमाख्यानोंमें साधारणतः कवि अपने ग्रन्थका नाम नायक-नायिकाके नामपर रखता है। वैसे उस ग्रन्थमें वर्णित विषयको भी आधार मानकर नाम दिया जाता है जैसे 'साक़ीनामा'। इसमें साक़ीका ही नाना भावसे वर्णन होता है, शराबके दौरकी चर्चा रहती है। ये ग्रन्थ प्रतीकात्मक हो सकते हैं जिनमें शराबको किसी आध्यात्मिक भावका प्रतीक माना गया हो। नायक-नायिकाके नामपर भी अनेक ग्रन्थोंका नामकरण हुआ है जैसे 'यूसुफ-जुलेखा', 'ख़ुसरो-शीरीं' आदि। इन ग्रन्थोंमें ऐसे भी हैं जिनके नाम पूर्ण रूपसे काल्पनिक हैं और उनमें धार्मिक उपदेश देनेकी प्रवृत्तिकी प्रधानता है।

साधारणतः 'मसनवी' सर्ग-बद्ध' होते हैं। पहले सर्गमें परमात्माका गुणानुवाद रहता है। दूसरेमें पैग़म्बरको स्मरण किया जाता है। तीसरेमें पैग़म्बरके 'मीराज'की चर्चा रहती है। उसके बादवाले सर्गोंमें साधारणतः शासन करनेवाले सुल्तानकी प्रशंसा रहती है अथवा किसी महान् व्यक्तिकी तारीफ रहती है जिसे कवि उस ग्रन्थको समर्पण करता है। इसके बाद ही

एक ऐसा सर्ग होता है जिसमें कुछ इस प्रकारका वर्णन रहता है कि किस उद्देश्यसे अथवा किस मित्रकी प्रेरणासे कविने उस काव्य-ग्रन्थका प्रणयन किया है। उस सर्गका शीर्षक भी वह कुछ उसी प्रकारका देता है। इसके बाद ही मूल काव्य-ग्रन्थका प्रारम्भ होता है। इस ग्रन्थके विभाग या खण्ड होते हैं और फिर वे खण्ड या विभाग सर्ग-बद्ध किये जाते हैं। प्रत्येक सर्गके ऊपर उस सर्गमें वर्णित विषयका संकेत साधारणतः फ़ारसी भाषामें दिया हुआ रहता है। अन्तमें कवि एक उपसंहारसे ग्रन्थको समाप्त करता है और उस ग्रन्थके लिखे जानेकी तारीखका ज़िक्र करता है।

पहलेकी मसनवियोंमें धार्मिक अथवा रहस्यात्मक विषयोंकी चर्चा हुआ करती थी। धार्मिक तत्त्वोंका निरूपण तथा उपदेश ही उनमें अधिक पाये जाते हैं। बादमें चलकर इन मसनवियोंके विषय प्रेमाख्यान हो गये जिनमें संकेतों द्वारा कवि अलौकिकका भी परिचय देता जाता है। इन प्रेमाख्यानोंकी एक और विशेषता रही है कि कहानीके बीच-बीचमें ग़ज़ल लिखे जाते थे। इन ग़ज़लोंका उपयोग कवि ऐसे मौक़ेपर करता जब कहानीका कोई पात्र अपने मनके भारको हलका करना चाहता है। प्रेमकी पीर जब असह्य हो उठती है उस समय भी इन ग़ज़लोंका सहारा लिया गया है। धीरे-धीरे लम्बे-लम्बे काव्य-ग्रन्थोंके लिखनेका प्रचलन नहीं रहा लेकिन मसनवियोंका लिखना बन्द नहीं हुआ। इसकी सहजशैलीके कारण वर्णनात्मक अथवा उपदेशात्मक छोटे-छोटे काव्योंके लिए भी इसका प्रयोग होता रहा। प्रारम्भमें कितने कवि ऐसे थे जो एक ही सीरीज़में पाँच मसनवियाँ लिख देते थे। इस सीरीज़का एक विशेष नाम 'खम्स' था।

कहा जाता है कि रुबाई पर्सियाका सम्भवतः पुराना छन्द[1] है और वहाँपर यह अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। इसे "दु बैती" कहा जाता था और बादमें चलकर इसे रुबाई कहा जाने लगा। कहते हैं इसका प्रारम्भ "चहार बैती" से हुआ जो कि पर्सियाकी अपनी चीज़ थी। "चहार

१. लि. हि. प. (खण्ड १), पृ० ४७२–७३।

बैती" से "दु बैती" का आविर्भाव हुआ[1]। यह चार पदोंकी एक छोटी कविता है जिसमें किसी भी विषयकी चर्चा हो सकती है। इसके छोटे आकारके कारण कविको इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग करना पड़ता है और कुछ ऐसे ढङ्गसे करना पड़ता है कि वह प्रभावोत्पादक हो और पाठकको अभिभूत कर दे। गूढ़ व्यञ्जना ही इस प्रकारकी कविताका प्राण है। कवि जो कुछ कहना चाहता है उसे ऐसे नपे-तुले ढङ्गसे कहता है कि पाठक चमत्कृत हो उठता है। उस समय पाठक उसके प्रवाहमें बह जाता है और बादमें ही उसमें प्रकट किये हुए विचारसूत्रको पकड़ पाता है जिसके सहारे वह उसकी तर्कसंगत परिणतिका अपने आप अन्दाजा लगा सकता है। एक एक रुबाई अपने आपमें पूर्ण होती है। इसकी पहली, दूसरी और चौथी पंक्तियोंके तुक मिलते हैं और तीसरी पंक्तिका अन्य पंक्तियोंके साथ कभी तुक मिलता है और कभी नहीं। वैसे साधारणतः तीसरी पंक्तिका अन्य पंक्तियोंके साथ तुक नहीं ही मिलता। इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। पढ़नेवालेको इसमें एक प्रकारका आराम मिलता है। चारों पंक्तियोंके तुक मिलनेपर वह प्रभाव नहीं रह जाता। उमर ख़ैयामकी रुबाइयाँ कुछ इस प्रकारसे सजायी गयी हैं कि लगता है जैसे एकके बाद दूसरी रुबाई क्रम मिलाकर लिखी गयी है लेकिन ऐसा जरूरी नहीं कि रुबाईका लिखनेवाला कुछ इस प्रकारकी बात मनमें रखकर लिखता हो। बहुतसी रुबाइयोंको अगर इकट्ठा सजाना हो तो उनका एक-न-एक क्रम हो ही जाता है वैसे एक-एक रुबाई अपने आपमें स्वतन्त्र रहती है।

ईसाकी ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दीमें पर्सियामें कई श्रेष्ठ रुबाई लिखनेवाले हो गये हैं जिन्होंने इसका व्यवहार दार्शनिक तत्त्वोंपर प्रकाश डालनेके लिए किया है। अबू सईद बिन अबुलखैर जिनकी मृत्यु सन् १०४९ ई० में हुई इस प्रकारकी दार्शनिक और रहस्यवादी रुबाइयाँ लिखनेवालोंमें प्रथम माने जाते हैं। रुबाइयों और मसनवियोंकी रचनामें

1. वही, पृ० ४७३।

वृद्धि होती गयी और धीरे-धीरे सूफी-काव्यका उत्तरोत्तर विकास होता गया।

ईसवी सन्‌की तेरहवीं शताब्दीतक आते-आते सूफी काव्य एक ऐसी स्थितिमें पहुँच जाता है जिसे उसका चरमोत्कर्षकाल कहा जा सकता है। सूफी-काव्यके क्षेत्रमें बड़े-बड़े नाम जैसे रूमी, सादी, शबिस्तरी, हाफ़िज़, जामी आदि सुननेको मिलते हैं। सूफी काव्यका सौष्ठव और विस्तार फ़ारसी भाषामें जितना देखनेको मिलता है उतना अन्य भाषाओंमें नहीं। इस दृष्टिसे अरबी भाषामें केवल एक ही नाम उल्लेख योग्य है। इब्नुल-फ़रीद सूफी-काव्यके क्षेत्रमें एकमात्र अरबी भाषाका प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। इसके पहले कि इब्नुलफ़रीदके सम्बन्धमें हम कुछ कहें, यहाँ यह कह रखना आवश्यक है और हम पहले भी यह कह चुके हैं कि इन कवियोंमें काव्यत्वका गुण तो भरपूर था ही लेकिन केवल कवि ही कहकर उन्हें नहीं समझा जा सकता। वे कवि तो थे ही लेकिन साधनाके क्षेत्रमें भी उनका स्थान ऊँचा ही है। काव्य द्वारा जिन भावों या विचारोंको उन्होंने रूप दिया है उससे सूफीमतके अनेक सिद्धान्तों और दार्शनिक तत्त्वोंका प्रतिपादन अथवा निरूपण होता है। अतएव एक साथ ही वे कवि, साधक और दार्शनिक भी थे।

इब्नुलफ़रीदका पूरा नाम शरफ़ुद्दीन उमर इब्नुलफ़रीद था। उसका जन्म सन् ११८१ ई० में काहिरामें हुआ और उसकी मृत्यु सन् १२३५ ई० में वहींपर हुई। उसका 'दीवान' काव्यकी दृष्टिसे अत्यन्त उत्कृष्ट है। आध्यात्मिक प्रेमका गीत उसने गाया है। उसके पोतेने उसे सम्पादितकर प्रकाशित कराया। फ़ारसी भाषाके 'दीवानों' से यह आकार-प्रकारमें छोटा है। वैसे फ़ारसी भाषामें जो सूफी काव्य लिखा गया है उसके साथ इसकी तुलना नहीं की जा सकती फिर भी उसमें भावावेगोंकी तीव्रता पूरी मात्रामें है। इब्नुलफ़रीदके कहनेका ढङ्ग अपूर्व है। उसकी शैली अपनी है। कल्पना और विचारकी दृष्टिसे फ़ारसी काव्य इससे उत्तम है। इब्नुल-फ़रीद अरब जातिका था। उसके काव्यमें अरबी वातावरण पूर्ण रूपसे वर्तमान है। भाव, शैली सबमें उसने अरबी परम्पराका पालन किया है।

वह एक साधक था। संसार त्यागी था। सांसारिक ऐश्वर्य और सम्मानके प्रति वह बिल्कुल उदासीन था। कहा जाता है कि एक बार बादशाह उससे मिलने गया लेकिन उसने मिलनेसे इनकार कर दिया[1]। उसके जीवके सम्बन्धमें उसके पुत्र तथा पोतेने लिखा है। उसके 'दीवान'का सम्पादन करते हुए उसके पोतेने भूमिका-स्वरूप उसके जीवनके सम्बन्धमें कुछ परिचय दिया है। इब्नुलफ़रीदके पुत्रने लिखा है कि बहुत बार उसके पिता एक अर्थशून्य दृष्टिसे देखते रहते थे। उस समय किसीकी बात उनतक नहीं पहुँच पाती थी और अपने सामने बैठे हुए व्यक्तिको वे नहीं देख पाते थे। कभी वे खड़े हो जाते, कभी बैठते, कभी इस करवट, कभी उस करवट होते। इस प्रकारसे वे लगातार दस दिन बिता देते। उस समय वे न खाते, न पीते, न बोलते और इधर-उधर घूमते[2]। इब्नुलफ़रीदके पिता एक उच्चपदस्थ सरकारी नौकर थे। पिताके प्रति उसकी अनन्य भक्ति थी। इब्नुलफ़रीदने बतलाया है कि प्रारम्भमें जब उसे संसारके प्रति विरक्ति हुई तब वह अपने पिताकी आज्ञा लेकर एकान्त-सेवनके लिए पहाड़में चला जाता। वहाँ रात-दिन फ़क़ीरों जैसी साधनामें लगा रहता और बादमें फिर पिताके पास लौट आता। पिताकी मृत्युके बाद वह इधर-उधर भटकता रहा, फ़क़ीरोंसा जीवनयापन करता रहा, सब प्रकारसे अपनेको आध्यात्मिक मार्गमें लगाये रहनेके लिए सचेष्ट रहा लेकिन ज्ञानका प्रकाश उसे उपलब्ध नहीं हुआ। एक दिन उसने किसी व्यक्तिको देखा जो काहिराके साफिया कालेजके दरवाजेपर बहुत दिनोंसे रहता था, गलत ढङ्गसे वह वज़ू कर रहा था। जब इब्नुलफ़रीदने उससे कहा कि इतने दिनोंतक उस कालेजके पास रहनेपर भी उसे वज़ू करनेका ढङ्ग नहीं मालूम हुआ तब उसने उससे कहा कि वह मक्का चला जाय, वहींपर उसे ज्ञान मिलेगा, मिस्रमें सम्भव नहीं। तब इब्नुलफ़रीदने समझा कि वह कोई बड़ा सन्त है जो उस ढङ्गसे अपनेको छिपाये हुए है जिसमें उसे कोई

१. हि. अ., पृ० ६५४।

२. लि. हि. अ., पृ० ३९५–९६।

तंग न करे। इसके बाद वह मक्का चला गया और साधनामें रत हो गया। पन्द्रह वर्षोंके बाद वह काहिरा लौटा और लोगोंने उसे सन्तके रूपमें ग्रहण किया। सन् ११३१ ई० में उसने मक्काकी तीर्थयात्रा की थी और उसके चार वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई। इसी तीर्थयात्रामें मक्केमें सुप्रसिद्ध सूफी साधक शीहाबुद्दीन अबू हफ्स उमर अल-सुहरवर्दीसे उसकी भेंट हुई थी।

इब्नुलफ़रीदके जैसे अरबी भाषाके कम ही कवि हुए हैं जिनका सूफ़ी-काव्यकी दृष्टिसे वैसा महत्त्व हो अतएव अरबी भाषामें लिखनेवाले अन्य सूफी कवियोंकी चर्चा छोड़कर हम फ़ारसीमें लिखनेवाले कुछ प्रमुख सूफी कवियोंके बारेमें यहाँ लिख रहे हैं। इन साधक कवियोंने फ़ारसी-काव्यको बहुत ही ऊँचे स्थानतक पहुँचा दिया और आज भी उनके नाम प्रत्येककी जबानपर हैं।

यहाँ सर्वप्रथम हम साधक-कवि मुहम्मद इब्न फ़रीदुद्दीन अत्तारके सम्बन्ध ही में कहेंगे जिसका गुणानुवाद सभी करते हैं। कहते हैं कि किसीने एक सूफी साधकसे पूछा कि जलालुद्दीन रूमी और फ़रीदुद्दीन अत्तारमें कौन सूफी साधनाके रहस्योंका अधिक जानकार है तो सूफी साधकने बतलाया कि दोनों ही पूर्णताको प्राप्त थे लेकिन फ़रीदुद्दीन एक चील (Eagle) की नाई पलक मारते ही वहाँ उड़कर पहुँच गये जब कि रूमी धीरे-धीरे आयासपूर्वक वहाँ पहुँच सके। स्वयं रूमीने अत्तार और सनाईके सम्बन्धमें कहा है कि अत्तार स्वयं आत्मा थे और सनाई दोनों आँखोंके समान और इन दोनोंके बाद ही वे (रूमी) आते हैं।

अत्तार दीर्घजीवी थे और उन्होंने बहुत अधिक लिखा है। कहा जाता है कि उन्होंने एक लाख बीस हजार पद (Couplets) लिखे हैं और इनके अलावे उन्होंने गद्य-ग्रन्थ भी लिखे हैं। मन्तिक़ुत्तैर (पक्षियोंकी कान्फ्रेंन्स), पण्डनामा, असरारनामा, इलाहीनामा आदि इनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। 'तज़किरातुल औलिया' इनका सम्भवतः एकमात्र गद्य-ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने सन्तोंकी जीवनी लिखी है।

इनके कहनेका ढङ्ग अत्यन्त ही सरल और स्पष्ट था। विषय-निर्वाचन भी इनका बहुत ही सुन्दर हुआ है। उनकी शैली सुबोध और स्पष्ट तो है ही साथ ही इनमें विरोधाभास (Paradox) शैलीके अपनानेकी प्रवृत्ति दीख पड़ती है।

जैसे—

"यह संसार तुमसे ही परिपूर्ण है लेकिन तुम संसारमें नहीं हो।"

"तुम्हारा मौन तुम्हारी वाणीसे है।"

"मैं देखता हूँ कि तुम्हारे पास पहुँचनेका रास्ता क्षुद्रातिक्षुद्र अणुसे होकर है।

और तब देखता हूँ कि अल्लाहके मुखके अनुरूप दोनों संसार हैं।"

भावाविष्टावस्थामें अत्तार कह उठता है।

मैंने विजय पा ली है, मुझे कितना आनन्द है।

अब अपने को मैं, 'केवल मैं' ही नहीं जानता।

मैं अपने ही भीतर प्रेमसे जल रहा हूँ, मुझे प्रेममें ही दफना दो।

केन्द्र मेरे अन्तरमें है और उसकी विचित्रता

वृत्तकी नाईं मुझे चारों ओरसे घेरे हुए है।

मानव-मन मेरी थाह नहीं पा सकता, क्या ही आनन्द है।

मैं एक ही साथ मोती भी हूँ और उसका विक्रेता भी।'

अत्तार इत्रफ़रोश थे। अपने पिताके समान ये भी हकीम थे। इनका अपना एक दवाखाना था जहाँ दवा बेचनेके साथ-साथ रोगियोंकी जाँच कर दवा भी बतलाते थे। इनका जन्म सन् १११९ ई० में निशापुरके निकटवर्ती एक ग्राम ककनमें हुआ था। कहा जाता है कि इनकी मृत्यु सन् १२२९–३० ई० में हुई। इस प्रकारसे उनकी उम्र ११०–१११ वर्षकी हो जाती है।

दौलतशाहने फ़रीदुद्दीन अत्तारका जीवन-वृत्तान्त लिखा है उसके अनुसार उनके सूफी होनेकी कहानी इस प्रकार बतलायी जाती है—एक दिन अत्तार अपनी दूकानमें अपने आदमियोंसे घिरे हुए अपने काममें लगे

हुए थे, उसी समय उनकी दूकानके सामने एक दरवेश आया। दरवेशके चेहरेपर एक विचित्र भाव था और उसकी आँखें आँसुओंसे भरी हुई थीं। अत्तारको लगा जैसे दरवेश भिक्षा पानेके लिए वैसा किये हुए है अतएव उन्होंने उसे आगे बढ़नेके लिए कहा। दरवेशने अपने फटे वस्त्रों-को दिखलाते हुए कहा कि संसारमें वही केवल मात्र उसकी सम्पत्ति है अतएव उसके लिए वहाँसे चला जाना अथवा इस संसारसे कूचकर जाना बिलकुल मुश्किल नहीं है लेकिन वह उसके लिए (अत्तारके लिए) दुःख-कर है कि वह उस सम्पत्तिको कैसे छोड़कर जायगा। जब जानेका मौक़ा आयेगा तब वह इन सब सांसारिक वस्तुओंको कैसे समेटकर अपने साथ ले जायगा अतएव वहाँसे बुलावा आनेके पहले ही उसे (अत्तारको) सँभल जाना चाहिये। अत्तारकी जैसे आँखें खुल गयीं उसने अपनी सारी सम्पत्ति त्याग दी और उस कालके एक सुप्रसिद्ध सन्त शेख रुक्नुद्दीनका शिष्य हो गया।

उसकी मृत्युकी भी कहानी बड़ी विचित्र है। चंगेज़ख़ाँने फ़ारसपर चढ़ाई की। अत्तार एक सैनिकके हाथमें पड़ गया और वह उसे मारने जा रहा था। दूसरे एक सैनिकको उसपर दया आयी। उसने काफी द्रव्य देकर उसे खरीदना चाहा। लेकिन अत्तारने उतना मूल्य स्वीकार करनेके लिये उसे मना किया और कहा कि उसे और भी अधिक मिल सकता है। इसके कुछ समय बाद एक-दूसरे सैनिकने उसे खरीदना चाहा। उसने देखा कि वह अत्तार बूढ़ा है अतएव उसका मूल्य एक थैली घाससे अधिक नहीं होगा। अत्तारने उस सैनिकसे (जिसने उसे पकड़ रखा था) कहा कि वह उसे बेच दे चूँकि वही उसकी पूरी क़ीमत है। सैनिक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसे वहीं मार डाला।

अत्तारने 'मन्तिक़ुत्तैर'में साधकके मार्गकी कठिनाइयों और चरम लक्ष्यतक पहुँचनेका वर्णन बड़े रोचक ढङ्गसे किया है। इसके लिए उसने रूपकका सहारा लिया है। संसारभरके पक्षियोंकी कान्फ्रेन्स बुलाने तथा उसमें हुदहुदके नेता चुने जानेके वर्णनसे यह पुस्तक प्रारम्भ होती

है। हुदहुदको आध्यात्मिक जगत्के रहस्योंका पता है। हुदहुदने पक्षियों-को बतलाया है कि उनका एक राजा है जिसका नाम 'सीमुर्ग' है लेकिन अकेले उसके यहाँ पहुँचनेमें हुदहुदको आशंका है किन्तु सबके साथ जानेको वह तैयार है। उसके बाद हुदहुदने बहुत-सी कहानियाँ कही हैं। उन कहानियोंको सुनकर चिड़ियोंके हृदयमें प्रियतम (सीमुर्ग)से मिलनेकी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न होती है और वे हुदहुदके नेतृत्वमें अपनी यात्रापर अग्रसर होती हैं। रास्ता अत्यन्त बीहड़ है और कुछ दूर जानेपर चिड़ियोंके मनमें नाना प्रकारके संशय और दुश्चिन्ताएँ उठती हैं और बिना उनके समाधानके वे अग्रसर होनेको प्रस्तुत नहीं हैं। इसके बाद एक जगह वे ठहरती हैं और हुदहुदकी बातोंसे उनका संशय दूर हो जाता है और वे फिर आगे बढ़ती हैं। हुदहुदने एक पक्षीके पूछनेपर बतलाया है कि सीमुर्गतक पहुँचनेके लिए घने जंगलोंसे भरी हुई सात घाटियाँ हैं। इन घाटियोंको पार करनेपर ही सीमुर्गका सिंहासन दीख पड़ेगा। हुदहुदने यह भी बतलाया कि यह बतलाना कठिन है कि और कितनी दूर जाना है चूँकि इस मार्गका कोई भी यात्री लौटकर आया नहीं। सात घाटियोंके नाम हुदहुदने बतलाये हैं। पहली घाटी खोजकी है, दूसरी प्रेमकी, तीसरी ज्ञानकी, चौथी निःसंगताकी, पाँचवीं एकत्वकी, छठी भावाविष्टावस्थाकी और सातवीं फ़नाकी।

इन कठिनाइयोंका वर्णन सुनकर बहुतसे पक्षियोंने तो घबराहटके मारे पहली ही मंज़िलमें प्राण त्याग दिये। रास्तेकी बाधाओं और विप-त्तियोंसे अन्तिम मंज़िलतक पहुँचते-पहुँचते अनेक चिड़ियोंका अंत हो गया। अन्तमें करोड़ोंमें केवल तीस ही बच गयीं जो सीमुर्गके प्रासादतक पहुँच पाईं। उन्होंने उसके ऐश्वर्यको देखा जो ज़ात और सिफ़तसे परे था और जो मानवीय बुद्धिके बाहर था। इसके बाद निरपेक्षता, परम स्वातन्त्र्यकी बिजली कौंध गई और एक ही क्षणमें सैकड़ों जगत् भस्म हो गए और वे स्वयं हतप्रभ-सी हो गयीं। उस अवस्थामें उन्होंने देखा कि सहस्रों सूर्य और करोड़ों चन्द्रमा और तारे धूलिके छोटे-छोटे कणोंसे

प्रतीत हो रहे हैं। बड़ी आरज़ू और मिन्नतके बाद उन्हें सम्राट्के सामने उपस्थित होनेका हुक्म मिला लेकिन इसके पहले उनके सामने उनके कारनामोंका लेखा रख दिया गया। अपनी नाना ग़लतियोंको देखकर वे फ़नाको प्राप्त हो गयीं और उनकी देह विनष्ट होकर धूलमें मिल गयी। इस प्रकारसे सांसारिक सभी बन्धनोंसे वे मुक्त हो गयीं और पवित्र हो गयीं तब उस परम ऐश्वर्यकी ज्योतिसे उनमें नव-जीवनका संचार हुआ और उन्हें पहलेकी ग़लतियोंका बिल्कुल ज्ञान नहीं रहा। इस प्रकार जीवनके नष्ट होनेके बाद उन्होंने जीवन पाया तथा विनष्ट होनेके बाद अमरत्व पाया। यही बक़ाकी स्थिति है। इसके बाद परम-ज्योतिके आलोकमें तीसों चिड़ियोंने देखा कि उन तीसोंकी प्रतिच्छवि सीमुर्गका चेहरा है और सीमुर्गके चेहरे-की ही प्रतिच्छवि वे तीसों हैं। उन दोनोंमें अभेद है। इसके बाद ही तीसोंकी प्रतिच्छवि उस परम-ज्योतिमें विलीन हो जाती है और न कोई यात्री रह जाता है, न पथ-प्रदर्शक और न मार्ग ही और इस प्रकार 'मैं' और 'तू' का भेद मिट जाता है।

अत्तारने बहुत देशोंका भ्रमण किया था और वहाँके विचारोंसे उनका परिचय था। दमिश्क, मिस्र, तुर्किस्तान, भारतवर्ष आदिका भ्रमण उन्होंने किया था। अरेबियाके धार्मिक स्थानोंमें भी जाकर तीर्थाटन किया था और कुछ समय बिताया था। विभिन्न देशोंकी विचारधाराके साथ उन्होंने परिचय प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। कविताके साथ ही साथ उन्होंने दर्शन और सूफी-सिद्धान्तोंके बारेमें भी लिखा है।

हकीम सनाई विख्यात फारसी कवि थे। वे सूफी साधक थे और उन्होंने दार्शनिक तत्त्वोंपर भी प्रकाश डाला है। फ़ारसीमें मसनवी लिखने-वाले तीन महान कवियोंका नाम लिया जाता है उनमें सनाई प्रथम हैं और अन्य दो अत्तार तथा रूमी हैं। बड़े-बड़े फ़ारसी कवियों और सूफी साधकोंमें उनका अत्यधिक सम्मान था। जलालुद्दीन रूमीने उनके बारेमें लिखा है कि मसनवी लिखनेवालोंमें अत्तार अगर रूह थे तो सनाई दोनों आँखों जैसे थे और इन दोनोंके बाद ही उनका (रूमी) स्थान है, वैसे यहाँ

यह स्मरण रखना चाहिये कि रूमी ही सबसे बड़े मसनवीके लिखनेवालोंमें थे। अनवरी, खाक़ानी आदि सनाईको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं।

पहले वे गजनवी वंशके बादशाहोंके दरबारी कवि थे और उन्होंने उनकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा भी है। उनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हदीक़-तुल हदीक़त ग़ज़नवी वंशके बादशाह इब्राहीमके शासनकालका लिखा हुआ है। सनाईने इस मसनवीको उसे ही समर्पित किया है। इस मस-नवीको लेकर सनाईको बहुतसे कष्ट भोगने पड़े। यहाँतक कि उनका जीवन ही खतरेमें पड़ गया था। यह ग्रन्थ हिजरी सन् ५२५ में समाप्त हुआ था। इस ग्रन्थमें सनाईने परमात्मा सम्बन्धी रहस्योंका उद्घाटन किया है। उनके विरोधियोंने उनके इस ग्रन्थको सनातन-पन्थी इस्लामके विरुद्ध कहा और उनके खिलाफ़ बादशाहके यहाँ फ़रियाद की। अन्तमें बग़दादके मुल्लाओंके पास निर्णयके लिए वह ग्रन्थ भेजा गया और उन्होंने सनाईको ठीक माना। सनाईने अपने इस ग्रन्थ हदीक़ाके बारेमें कहा है[1] कि क़ुरान और हदीसके बाद उसीका स्थान है जिससे आध्या-त्मिक रहस्योंका उद्धाटन होता है।

सनाईके सूफी होनेकी कहानी इस प्रकार कही जाती है—एक दिन सनाईने एक साधकको यह कहते हुए सुना कि बादशाह इब्राहीम दयाका पात्र है चूँकि उसे सिर्फ राज्योंके जीतनेकी भूख है। उसी प्रकारसे सनाई जो केवल उसके गुणानुवादके लिए ही कविताएँ लिखा करता है, दयाका पात्र है। साधकका कहना था कि सनाई यह भूल जाता है कि क़यामतके दिन जब वह अल्लाहके सामने पेश किया जायगा तब उसकी कौन-सी गति होगी। सनाईको जैसे चेत हुआ और उसने समस्त सांसारिक बन्धनोंका त्याग कर दिया।

सनाईके काव्यकी यह विशेषता रही है कि उसने बड़े सुन्दर और ओजपूर्ण ढंगसे अपने काव्यमें आध्यात्मिक रहस्योंका वर्णन किया है। उसकी कविताएँ हृदयस्पर्शी और अद्भुत ढङ्गसे चित्ताकर्षक हैं। उसके

1. ब्रि. प. हि. पृ० २५७–२५८।

वर्णनकी शैली अनूठी है। जीवनके नाना प्रसंगोंका समावेश उसके काव्यमें हुआ है। उसकी कविताके सामने सादीकी उपदेशात्मक कविताएँ फीकी पड़ जाती हैं। उसमें विचारोंकी मौलिकता है। अपनी कविताके बारेमें सनाई बड़े गर्वके साथ कहता है—

'संसारमें किसीने भी ऐसे काव्यकी रचना नहीं की और अगर किसीने की है तो उसे सामने आकर पढ़कर सुनानेके लिए कहो। क़ुरान और हदीसोंसे अगर आगे बढ़ोगे तो तुम किसीमें भी इस प्रकारकी वाणी नहीं पाओगे।'[1]

वह भारतवर्षमें भी अपना बहुत समय बिता चुका था अतएव भारतीय विचारधारा और वातावरणसे वह पूरा प्रभावित था। उसने हिन्दी शब्दोंका प्रयोग भी अपनी फ़ारसी कविताओंमें किया है। वह ग़ज़नीका रहनेवाला था और भारतवर्षमें लाहौर उसका वासस्थान था। उसके लिखे हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं। जिसमें मसनवी रुमूज़ुल अनबिया अल-मारूफ़ बा कन्ज़ उल औलिया तथा हक़ीक़ा हैं। उसका एक दीवान भी है।

मौलाना जलालुद्दीन रूमीका नाम फ़ारसी कवियों एवं सूफ़ी साधकोंमें बड़े आदरके साथ लिया जाता है। मौलाना रूमी कवि तो थे ही लेकिन कविसे भी अधिक साधक थे। उन्हें अपना एक सन्देश देना था और उसीसे प्रेरित होकर उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मसनवी' लिखा। 'मसनवी'को फ़ारसी भाषाका क़ुरान कहते हैं। रूमीकी 'मसनवी'को मसनवियोंका मसनवी कहते हैं। इसका असली नाम 'मसनवी-ए-मसनवी' है। कहते हैं कि रूमीकी 'मसनवी'को पढ़नेसे लगता है जैसे भारतीय साधनाके ध्यानादिसे वह प्रभावान्वित है। 'मसनवी' बड़ी सहज और सरल शैलीमें लिखी गयी है। इसमें तत्कालीन अन्य कवियोंकी नाईं इस बातकी चेष्टा नहीं की गयी है कि काव्यगत सौन्दर्यको दृष्टिमें रखकर शब्दोंका प्रयोग किया जाय। चमत्कार-प्रदर्शनके लिये अन्य

1. इर०, पृ० ४८।

कवियोंकी नाईं इसमें शब्दों और उनके प्रयोगोंकी मार-पेंच नहीं है। कविको जो कुछ भी कहना है उसने उसे सहज भावसे कहा है। उसके लिये (कविके लिए) उसका वक्तव्य ही प्रधान था, उसकी अभिव्यक्तिका प्रकार नहीं। उसके लिए आलंकारिता और शब्दोंके अनूठे प्रयोग विशेष महत्त्वके नहीं थे। गद्यमें अपनी बात कहकर अधिक प्रभावोत्पादक अगर वह बना सकता तो उसे काव्य करनेकी आवश्यकता नहीं थी। रूमी पहले साधक था, कवि बादमें।

रूमीकी 'मसनवी' ने फ़ारसी साहित्य तथा मुसल्मानोंकी विचार-धाराको अत्यधिक प्रभावित किया है। जहाँ-जहाँ भी फ़ारसी साहित्य और संस्कृतिका बोलबाला रहा है वहाँके जीवन और साहित्यपर रूमीकी रचनाओंका गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है। मसनवीमें इस्लामकी रहस्यवादी विचारधाराके भिन्न-भिन्न पहलुओंपर विचार किया गया है। इसमें क्रम-बद्धतापर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। सूफी साधकोंमें 'मसनवी' का अत्यधिक समादर है।

रूमीके काव्यकी विशिष्टतापर प्रकाश डालते हुए निकोल्सनने रूमीकी 'मसनवी' और 'दीवान' की चर्चा की है। निकोल्सनका कहना है कि मसनवी उस शान्त, गम्भीर, विशाल नदीके समान है जो नाना प्रकारके समृद्ध एवं चित्र-विचित्र दृश्योंसे होकर प्रवाहित होती हुई असीम सागरतक पहुँचती है। काव्यकी विशेषताओंकी दृष्टिसे रूमीकी कविता सब समय सुन्दर नहीं बन पड़ी है। जामीकी कविताओंमें जो कलात्मकता है वह रूमीमें नहीं है। रूमीकी कविताकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि सर्वत्र उसकी आध्यात्मिकता उसकी कलात्मकतापर हावी रही है। उसका अध्यात्म-संगीत बरबस पाठकोंको आकर्षित करता है। वह अन्तरको आलोड़ित करनेवाला है। उसका संगीत मानो अपनी मधुर धारामें खींचते हुए पाठकको परम-सौन्दर्य, परम-प्रियतमके सम्मुखीन कर देता है। परम-प्रियतमके सौन्दर्यका वर्णन तथा आत्माका उसके साथ मिलन मर्मस्पर्शी है। वहाँ 'तू' और 'मैं' का निकटतम सम्बन्ध स्थापित

हो जाता है।

रूमीके लिए संसारका सब कुछ असत्य है, एकमात्र सत्य वह परमात्मा है। उसीकी खोजमें कवि है, उसे ही केवल वह जानता है। उसके लिए लोक-परलोक, धर्म सब कुछ नहीं है। रूमीने अपनी एक कवितामें कहा है।

"ऐ मुसल्मानो, मैं क्या करूँ! मैं तो अपने आपको ही नहीं पहचान पा रहा हूँ। मैं न ईसाई हूँ, न यहूदी, न गबर हूँ और न मुसल्मान। मैं न पूरबका हूँ, न पश्चिमका, न जमीनका और न सागरका। मैं प्रकृतिके टकसालका भी नहीं हूँ और न परिवेष्टन करनेवाले आसमानोंका। न मैं पृथ्वीका हूँ, न जलका, न पवनका, न पावकका। मैं न तेजोलोकका हूँ और न मिट्टीका, न अस्तित्वका न सत्ताका। मैं न भारतवर्षका हूँ और न चीनका, न बल्गेरियाका और न सक़सीनका। न मैं इराक़ैन साम्राज्यका हूँ और न ख़ुरासान देशका। मैं न इस जगत्का हूँ न उस जगत्का। न मैं स्वर्गका हूँ, न नरकका······न यहाँ शरीर ही है और न आत्मा ही चूँकि मैं प्रियतमकी आत्माका हूँ। मैंने गुणोंको दूर हटा दिया है चूँकि मैं जानता हूँ कि दोनों जगत् एक ही हैं। मैं उसी एकको खोजता हूँ, उसी एकको जानता हूँ, उसीको देखता हूँ, उसीको पुकारता हूँ। वह आदि है, वह अन्त है। वह बाह्य है, वह अन्तर है···।"

एक दूसरी कवितामें कवि अपना परिचय देते हुए बतलाता है कि "ऐ मुसल्मानो, इस दुनियामें अगर कोई प्रेमी है तो वह मैं हूँ। अगर कोई ईमान लानेवाला है, अथवा क़ाफ़िर है अथवा ईसाई सन्त है तो वह मैं हूँ। शराबकी तलछट, साक़ी, गायक, वीणा, संगीत, माशूक, शमा, शराब, शराबकी मस्ती सबकुछ मैं ही हूँ। संसारके बहत्तर धर्म और सम्प्रदाय वास्तवमें नहीं हैं, मैं परमात्माकी कसम खाकर कहता हूँ कि प्रत्येक धर्म और प्रत्येक सम्प्रदाय मैं हूँ। पृथ्वी, हवा, जल और अग्नि तुम जानते हो ये क्या हैं? पृथ्वी, हवा, जल और अग्नि ही नहीं बल्कि शरीर और आत्मा भी मैं ही हूँ। सत्य-असत्य, भला-बुरा, आराम और

तक़लीफ़ शुरूसे आख़ीर तक मैं ही हूँ। मैं ही ज्ञान, विद्या फ़क़ीरी, पुण्य और ईमान हूँ। तुम निश्चय जान लो कि लपटों सहित नरकाग्नि और हाँ, स्वर्ग, नन्दनकानन तथा हूरें मैं ही हूँ। इस पृथ्वी और आसमानमें जितना कुछ भी है—देवदूत, परी, जिन्न, और मनुष्य—मैं ही हूँ।"

मौलाना जलालुद्दीन मुहम्मद अल-बल्ख़ी अर्-रूमीका जन्म ३० सितम्बर, सन् १२०७ ई० को बल्ख़में हुआ। उन्हें 'ख़ुदावन्दगार' भी कहते हैं। एक परम्पराके अनुसार ये अबू बक्रके वंशधरोंमें समझे जाते हैं और दूसरीके अनुसार हज़रत अलीके। उनके पिताका नाम मुहम्मद बहाउद्दीन था। बल्ख़के शासक ख़्वारिज़्म शाहसे उनके पिताका गहरा सम्बन्ध था। ख़्वारिज़्म शाहके साथ उस कालके सुप्रसिद्ध दार्शनिक फ़ख़रुद्दीन राज़ीकी बड़ी मित्रता था। मुहम्मद बहाउद्दीनका लोग बहुत आदर करते थे। वे दर्शन शास्त्रको महत्त्व नहीं देते थे। इस प्रकारसे अपनी जनप्रियताके कारण एक ओर तो वे ख़्वारिज़्म शाहकी आँखोंके काँटा बन गये तो दर्शनका विरोध करनेके कारण दूसरी ओर फ़ख़रुद्दीन राज़ीकी आँखोंमें खटकने लगे। अतएव मुहम्मद बहाउद्दीनको बल्ख़ छोड़ देनेमें ही कुशल दीख पड़ी। वे रूमीको, जो उस समय पाँच वर्षके थे, लेकर निशापुर चले आए।

जलालुद्दीन रूमी 'हज़रते-मौलवी'के नामसे भी प्रसिद्ध हैं। वे सूफ़ियोंके 'मौलवी' सम्प्रदायके संस्थापक थे। इस प्रकारके साधकोंके नामके साथ जैसी कहानियाँ जुड़ जाती हैं वैसा इनके नामके साथ भी हुआ है। जामीके 'नफ़हात-उल-उन्स' के अनुसार रूमीको छ वर्षकी उम्रमें ही आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हो गयी थी। बहाउद्दीन वलदका कहना है कि जब ये छ वर्षके थे तब अपनी ही उम्रके कुछ साथियोंके साथ एक घरकी छतपर खेल रहे थे। उनके साथियोंमेंसे एकने उनसे कहा कि क्या एक छतसे कूदकर दूसरी छतपर नहीं जाया जा सकता। जलालुद्दीन ने जवाब दिया कि यह तो कुत्तों और बिल्लियों तथा उनके जैसे अन्य पशुओंका काम है अतएव "अगर ऐसा करना ही है तो आसमानकी

ओर जानेकी चेष्टा करो।" ऐसा कहकर उन्होंने स्वयं ऊपर जानेकी चेष्टा की और थोड़ी ही देरमें अदृश्य हो गये। लड़के चिल्ला उठे। उसके तुरत ही बाद वे लौट आये। उनकी आकृतिमें परिवर्तन हो गया था। वे बोले कि जब उन सबके साथ वे बातें कर रहे थे तब हरे रंगकी पोशाक पहने हुए कुछ लोग आये और उन्हें घेरकर ऊपर आकाशकी ओर ले गये। उन्होंने रूमीको कुछ अद्‌भुत नैसर्गिक पदार्थ दिखलाये और जब चिल्लाहट सुनाई पड़ी तो उन लोगोंने उन्हें पृथ्वीपर उतार दिया। इसी तरहकी और भी बातें उनके सम्बन्धमें कही जाती हैं कि वे तीन-चार दिनोंमें एक बार खाते थे तथा मक्कामें रहते हुए उन्होंने फ़रीदुद्दीन अत्तारसे बातें कीं जब कि अत्तार उस समय निशापुरमें थे।

पाँच वर्षकी अवस्थामें जब ये अपने पिताके साथ बल्खसे निशापुर आये तो कहते हैं कि अत्तारने आकर उन्हें आशीर्वाद दिया और उनके पितासे कहा कि एक दिन यह बालक संसारमें प्रसिद्ध होगा। अत्तारने उन्हें 'असरारनामा' (रहस्योंका ग्रन्थ) दिया जिसे रूमी बराबर अपने साथ रखते थे। उनका परिवार एक जगहसे दूसरी जगह भटकता रहा। सीरिया और एशिया माइनरके एक शहरसे दूसरे शहरमें होते हुए वे कोनिया पहुँचे। उस समय जलालुद्दीनकी उम्र अठारह या उन्नीस वर्ष की थी। कोनिया, रोमका पुराना प्रान्त था। यहाँ आकर बसनेके कारण ही इनका नाम 'रूमी' पड़ा। रूमीकी शादी सन् १२३० ई० में हुई। इनकी पत्नीका नाम गौहर था। उससे इन्हें दो पुत्र हुए। कम उम्रमें ही उसकी मृत्यु हो गयी। इन्होंने दूसरी शादी की। इनकी मृत्युके बाद भी दूसरी पत्नी जीवित रही। कोनियामें सेल्जुकी शासक अलाउद्दीन इन लोगोंका आश्रयदाता था। उसके साथ इनकी किसी प्रकारकी रिश्तेदारी थी। इनके पिता अध्यापनकार्य करते थे। इनके पिताकी मृत्यु सन् १२३० ई० में हुई। इसके बाद ये कहाँ रहे इसे लेकर कई मत हैं। किसीका कहना है कि पिताकी मृत्युके बाद इन्होंने कोनिया नहीं छोड़ा तथा कभी-कभी थोड़े समयके लिए ही वहाँसे बाहर गये उनके एक प्रिय

शिष्यका कहना है कि तीस वर्षकी अवस्थामें कोनियामें शम्सुद्दीन तबरीजीसे इनकी भेंट हुई। शम्सुद्दीन अहमद अफ्लाकीके अनुसार चालीस वर्षकी उम्रतक वे दमिश्कमें रहे। वैसे साधारणतः लोगोंका कहना है कि लगभग १२४० ई० तक ये अलेपो और दमिश्कमें विद्याध्ययन करते रहे। बचपनमें इनकी शिक्षा इनके पिताकी देख-रेखमें हुई और बादमें बुरहानुद्दीनने इन्हें आध्यात्मिक रहस्योंसे परिचित कराया। लेकिन इनके जीवनमें सबसे बड़ी घटना शम्सुद्दीन तबरीजीके साथ इनका परिचय है। तबरीजीने इनके जीवनमें बहुत बड़ा परिवर्तन ला दिया।

शम्सुद्दीन तबरीजीका जीवन इतना रहस्यपूर्ण था कि लोगोंको विश्वास नहीं होता कि उस नामका कोई आदमी था या नहीं। बहुतोंका ख़याल है कि वह सम्भवतः भारतीय था[1]। कहा जाता है कि एकान्त स्थानमें जाकर ये दोनों आध्यात्मिक रहस्यकी चर्चा किया करते। इन दोनोंके सम्बन्धको लेकर लोगोंमें नाना प्रकारकी चर्चा थी। तबरीजीके सम्बन्धमें लोगोंका कहना था कि वह जादूगर था और उसने जलालुद्दीनको पूर्ण रूपसे अपने वशमें कर रखा था। जलालुद्दीनके शिष्य इन दोनोंके सम्बन्धको बड़ी बुरी दृष्टिसे देखते थे। लेकिन यह समझना ग़लत नहीं होगा कि शम्सुद्दीन तबरीजीका व्यक्तित्व अत्यधिक प्रभावशाली रहा होगा नहीं तो जलालुद्दीन जैसे मनीषीको वह अपने क़ाबूमें नहीं रख सकता। तबरीजीने रूमीको अत्यधिक प्रभावित किया है। इन दोनोंके सम्बन्धको लेकर एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उसने इतना उग्र रूप धारण किया कि आपसमें लोगोंमें लड़ाई और खूनखराबी हो गयी जिसमें जलालुद्दीनका एक लड़का मारा गया और शम्सुद्दीन तबरीजी वहाँसे ग़ायब हो गया। इसके बाद शम्सुद्दीनका क्या हुआ इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता और यह भी पता नहीं चलता कि उसकी मृत्यु कैसे हुई। लेकिन कहा जाता है कि सन् १२४७ ई० में वह क्रूरताके साथ मार डाला गया।

---

१. दुर०, पृ० २६१।

शम्सुद्दीनकी स्मृति-रक्षाके लिये ही रूमीने 'मौलवी-सम्प्रदाय' चलाया। अपने काव्यमें भी रूमीने शम्सुद्दीन तबरीजीको एक बड़ा स्थान दिया है। अपना 'दीवान' उन्होंने उसे ही समर्पित किया है। 'मौलवी-सम्प्रदाय' वाले बड़े वेगसे नाचते हैं इसलिए यूरोपीय विद्वानोंने उनका नाम 'नाचने-वाले दरवेश' दिया है। 'मौलवी-सम्प्रदाय'में संगीत और धार्मिक नृत्यका स्थान है। इस धार्मिक नृत्यको 'रिवाकुली' कहते हैं। दौलतशाहका कहना है कि रूमीके घरमें एक खम्भा था और जब उन्हें प्रेमोन्माद चढ़ता था तब वे उस खम्भेको पकड़कर उसके चारों ओर बड़े जोरसे घूमने लगते थे। कहते हैं कि बहुत बार इसी तरहसे घूमते हुए उन्होंने बहुत सी कविताएँ लिखवायी हैं। लोगोंने एक बार पूछा कि मृत्युके समय उन्होंने नाचने और गानेका आदेश क्यों दे रखा है। उन्होंने बतलाया कि मनुष्यकी आत्मा जो वर्षों शरीरमें क़ैद थी वह अगर छुटकारा पाकर अपने उद्‌गम-स्थलसे मिल जाय तो क्या यह खुशी और आनन्दका अवसर नहीं है।

एफ्लाकीके अनुसार जलालुद्दीन रूमी भारतीय विचारधारासे प्रभावित था[१]। 'मौलवी-सम्प्रदाय'की स्थापना शम्सुद्दीन तबरीजीकी यादमें रूमीने की और जिस प्रकारकी पोशाक अपने अनुयायियोंको पहननेके लिए कहा वह शोक-सूचक है और भारतीय परम्पराके अनुसार है[२]। रेड हाउसका कहना है कि जलालुद्दीन रूमीका भारतीय और सम्भवतः बौद्ध विचार-धारासे परिचय था।

फ़ारसी कवियोंमें शेख़ सादीका स्थान बहुत ऊँचा है। जहाँ भी फ़ारसी भाषाका प्रचार है वहाँ सादी अत्यन्त लोकप्रिय है। सूफी कविता-का स्वर्णयुग सन् ईसवीकी तेरहवीं शताब्दीमें प्रारम्भ होता है। शेख़ सादी उस कालके अन्यतम कवियोंमें था। वैसे वह रहस्यवादी कम था। नीति और आचार-सम्बन्धी कविताएँ ही उसकी अधिक मिलती हैं जिनसे उसके

१. दर०, पृ० २६० ।

२. रेडहाउस, दर० पृ० २६० पर उद्‌धृत ।

सांसारिक अनुभवोंका पूरा पता मिलता है। उसके दो ग्रन्थ गुलिस्ताँ और बोस्ताँ ऐसे लोकप्रिय हैं कि फ़ारसी क्लासिकके पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको पहले ये ही पढ़ाये जाते हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें प्रायः एक ही प्रकारके विषयोंका वर्णन है। बोस्ताँ पद्य-ग्रन्थ है और गुलिस्ताँ गद्य-ग्रन्थ। गुलिस्ताँ-में बीच-बीचमें पद्योंकी भरमार है। उसकी ग़ज़लें भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। कहते हैं कि देश-विदेशमें भ्रमण करते हुए जब वह हिन्दुस्तान आया तो उसका परिचय यहाँकी भाषासे हुआ और उसने हिन्दुस्तानी भाषामें कविताएँ भी लिखीं। इस प्रकारसे उसे लोग उर्दूका प्रथम कवि भी मानते हैं। अरबीके उसके क़सीदे भी उच्चकोटिके माने जाते हैं लेकिन अरब साहित्यकार उन्हें वैसा महत्त्व नहीं देते। फ़ारसीके क़सीदे तथा ग़ज़ल बहुत ही सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। सत्रहवीं शताब्दीमें ही उसकी रच-नाओंका अनुवाद कई यूरोपीय भाषाओंमें हो गया। फ्रेञ्च, लैटिन, अंग्रेज़ी और डच आदि भाषाओंमें उनका अनुवाद हुआ है।

सादी अत्यन्त उदार विचारोंका था। अपनी उदारताके कारण ही वह इतना लोकप्रिय हुआ। कहते हैं कि उसका नाम मुशर्रिफ़ुद्दीन बिन मुस्लिहुद्दीन अब्दुल्ला था। कहते हैं कि सन् ११८४ ई० में शीराज़में उसका जन्म हुआ था तथा सन् १२९१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। बोस्ताँसे पता चलता है कि बचपनमें ही उसके पिताकी मृत्यु हो गयी। 'सादी' नाम उसका कैसे पड़ा इसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि जब उसके पिताकी मृत्यु हुई तब साद बिन जंगीने उसे आश्रय दिया। साद बिनजंगी फ़ारसका अताबक था और सन् ११९५ ई० में वह गद्दीपर बैठा। उसीसे उसने अपना नाम 'सादी' रख लिया। बग़दादके निज़ा-मिया कालेजमें उसने शिक्षा पायी।

तीस वर्षकी उम्रमें वह देश-विदेशके भ्रमणके लिए निकला। बग़दादमें रहते ही वह शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरवर्दीके सम्पर्कमें आ चुका था। कहते हैं कि अब्दुल क़ादिर जिलानीसे उसने सूफ़ी-साधना की शिक्षा पायी थी। सन् १२२६ ई० में वह फारस छोड़कर निकला

और तीस वर्षतक भारत, सीरिया तथा अन्य मुस्लिम देशोंमें घूमता रहा। तीस वर्षोंके बाद जब वह फिर शीराज लौट कर आया उसके एक ही दो वर्षोंके भीतर उसने पहले बोस्तां और उसके बाद गुलिस्तांको प्रकाशित किया। वह फक्कड़मस्त और आजाद तबीयतका था।

सन् ईसवीकी तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें एक सूफी साधक और कवि महमूद शबिस्तरी हो गया है। उसके जीवन-वृत्तान्तके सम्बन्धमें बहुत कम पता चलता है। सूफी साधना तथा कवितामें प्रयुक्त होनेवाले शब्दोंके रहस्यपर प्रकाश डालनेवाली उसकी पुस्तक 'गुल्शने राज' अत्यन्त महत्त्वकी है। यह एक छोटी-सी मसनवी है। उस प्रकारके कुछ शब्दोंके सम्बन्धमें हम पहले ही देख चुके हैं कि वे शब्द सांसारिक प्रेमको व्यक्त करनेमें प्रयुक्त होते हैं लेकिन सूफी उनका अर्थ अपने ढङ्गसे करते हैं। 'गुल्शनेराज'से उसपर बहुत प्रकाश पड़ता है। 'गुल्शने-राज'में पन्द्रह प्रकरण हैं। यह प्रश्नोत्तरीके रूपमें लिखा गया है। पहले प्रश्न किया गया है और फिर उदाहरणोंके ज़रिये उसका उत्तर दिया गया है। दार्शनिक ढङ्गसे उन प्रश्नोंपर कविने विचार किया है। यद्यपि उसकी शैली सहज ढङ्गकी है फिर भी दार्शनिकताके बोझसे कविता बोझिल हो गयी है।

फ़ारसी कवियोंमें हाफ़िज ईरान, भारतवर्ष आदि देशोंमें अत्यन्त लोकप्रिय है। उसकी रचनाओंमें सांसारिक प्रेमके प्रतीकों और शब्दावलियोंका इस प्रकारसे व्यवहार किया गया है कि बहुत लोग उसे सूफी-कवि माननेमें संकोच करते हैं। बहुतोंने उसे बहुत बुराभला कहा है। दीवाने-हाफ़िजकी कविताएँ ऊपर-ऊपरसे देखनेसे कामुकता और सांसारिक प्रेमकी वासनाओंसे रंगी हुई मालूम होती हैं वैसे उसकी बहुत सी कविताएँ हैं जिन्हें किसी भी तरहसे आध्यात्मिक नहीं माना जा सकता। वैसे बहुत लोगोंका कहना है कि उसकी कविताओंका जैसा अर्थ लगाया जाय, वैसा लग सकता है। सूफियोंके दृष्टिकोणसे देखनेपर उसमें आध्यात्मिक प्रेमकी बारीकियोंका वर्णन मिलेगा और सांसारिक प्रेमकी दृष्टिसे अध्ययन करनेवालोंको उसमें सांसारिक प्रेमकी बातें ही मिलेंगी। बहुत

लोगोंका तो ऐसा भी कहना है कि रूमीके बाद सांसारिक प्रेमके प्रतीकोंके जरिये आध्यात्मिक प्रेमका वर्णन हाफ़िज जैसा किसी कविने नहीं किया है। कभी-कभी लगता है जैसे भावोंके आवेगके समक्ष भाषा पीछे पड़ जाती है और इसीलिए कहीं-कहीं उसकी रचनाएँ अस्पष्ट और दुरूह हो गयी हैं।

शिबली अपने 'शेरुल-आजम' में किसी प्रकारसे हाफ़िजकी रचनाओं-को रहस्यवादी माननेको तैयार नहीं, लेकिन दूसरी ओर कई सुप्रसिद्ध फ़ारसी कवि और लेखक उसे सूफी और रहस्यवादी कवि मानते हैं। खाँ आरजूने अपने 'तजकिरा' में लिखा है कि "शीराजका हाफ़िज रहस्य-वादियोंके मन्दिरका ध्रुवतारा है और पुण्यात्माओंके केन्द्रकी परिधि।" मौलाना जामी, तकी अवहदी, गुलाम अली आज़ाद आदि उसे श्रेष्ठ कवि और रहस्यवादी मानते हैं।

हाफ़िजने अपनी रचनाओंका कोई भी संग्रह नहीं किया है और न उन्हें प्रकाशित ही कराया है। कहते हैं कि कासिमुल अनवरके पास हाफिजका संग्रह था। कासिमुल अनवर हाफिजका मित्र था और उसकी कविताओंका बहुत बड़ा प्रेमी था। बहुत लोग कासिमको ही दीवाने-हाफिज का सम्पादक मानते हैं। हाफिजकी रचनाओंको बहुत लोगोंने 'तरजुमानुल-असरार' अर्थात् भगवत् रहस्यकी व्याख्या करनेवाला कहा है। उन्हें 'लिसानुल-ग़ैब' भी कहा गया है 'लिसानुल-ग़ैब' का मतलब 'अदृश्यकी वाणी' है। इस नामके सम्बन्धमें एक आश्चर्यजनक घटनाका हवाला दिया जाता है। उस घटनासे इस बातपर भी प्रकाश पड़ता है कि आखिरतक लोग उसे सूफी माननेको तैयार नहीं थे। कहते हैं कि हाफिजकी मृत्युके बाद कुछ सनातन-पन्थी मुसलमानोंने एतराज किया कि हाफिजके लिए फातिहा पढ़ी जाय। अन्तमें यह बात तय हुई कि हाफिजकी रचनाओंसे ही यह स्थिर किया जाय। उसके दीवानको इसकी जाँचके लिए खोला गया। उसमें यह पाया गया कि 'हाफिजकी अर्थीसे पैर न हटाओ। यद्यपि उसका जीवन पापोंसे भरा हुआ है फिर भी वह स्वर्ग

जायगा।' इसके बादसे बादसे आजतक मुसलमानोंमें यह विश्वास चलता आ रहा है और किसी बातको स्थिर करनेके तथा पथ-प्रदर्शनके लिए अथवा अपना भाग्य जाननेके लिये उसके ग्रन्थको वैसे ही खोल दिया जाता है और उसे खुले हुए पृष्ठकी रचनाको पढ़कर लोग अपने मतलबका अर्थ समझ लेते हैं। हाफिजके दीवानसे इस प्रकार भविष्यकी बात जानने और पथप्रदर्शनके लिये बहुतसे ऐतिहासिक पुरुषोंने लाभ उठाया है। मिर्जा महदीने अपने तारीखमें लिखा है कि तबरीज और अजर बैजनपर आक्रमण करनेके पहले नादिरशाहने दीवाने-हाफिजकी इसी प्रकारसे शरण ली थी। जो पृष्ठ खुला उसमें लिखा हुआ था कि 'ऐ हाफिज तूने इराक और फारसको अपने गीतोंसे मुग्ध कर लिया है। आओ, अब बगदाद और तबरीजकी बारी है।' इसी प्रकार शाहजहाँ तथा वाजिदअली शाहके बारेमें भी कहा जाता है कि हाफिजके दीवानसे उन्हें अपना भविष्य मालूम हो गया था। कहा जाता है कि किसी राज-कुमारी का एक बेशकीमती मोतियोंका हार खो गया था। जब बहुत खोजनेपर भी नहीं मिला तब 'दीवाने हाफिज'को खोलकर देखा गया। जो गुलाम उसे पढ़नेके लिये मोमबत्ती दिखला रहा था वही चोर निकला। वह गिरफ्तार किया गया और उसके पाससे हार निकला।

हाफिज शिया और सुन्नी दोनोंमें समान श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है और दोनों ही उसे अपने सम्प्रदायके अन्तर्गत मानते हैं। इस बातका ठीक पता नहीं चलता कि हाफिजने कहाँ शिक्षा पायी थी और न इसी बातका पता चलता है कि वह किस सूफी सम्प्रदायका था। कुछ लोग उसे नक़्शबन्दिया सम्प्रदायका मानते हैं। जामीका कहना है कि यद्यपि वह सूफी था फिर भी वह कभी किसीका मुरीद हुआ या नहीं यह मालूम नहीं। इन्सायक्लोपिडिया ब्रिटानिकाके अनुसार शाह महम्मद अत्तारसे उसने सूफी सिद्धान्तों और साधनाका परिचय प्राप्त किया था, वैसे रजा कुलीका कहना है कि हाफिजका पीर मौलाना शम्सुद्दीनशीराजी था। कुछ विद्वानोंका मत है कि शेख गियासुद्दीनसे उसने सूफीमतके रहस्योंकी

शिक्षा पायी थी।

ख़्वाजा शम्सुद्दीन हाफ़िज़का जन्म कब हुआ था अथवा उसके माता-पिता कौन थे इसका पूरा पता नहीं चलता। उसकी मृत्यु सन् १३८९ ई० में हुई। कहा जाता है कि शम्सुद्दीन महम्मदको सम्पूर्ण क़ुरान याद था इसीलिए वह 'हाफ़िज़' कहलाया जो उसके नामके साथ जुड़ा हुआ है। कहते हैं कि उसके जीवनका बहुत बड़ा भाग शीराज़में बीता। कहते हैं कि उसके पूर्वज इस्फ़हानके थे लेकिन उसके पिता शीराज़में आ बसे। उनका व्यापार नहीं चला अतएव उनकी मृत्युके बाद हाफ़िज़ और उसकी माँकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। हाफ़िज़के समयमें युद्ध, राजनीतिक चालबाज़ियाँ चारों ओर चल रही थीं। सर्वत्र अशान्ति थी। हाफ़िज़ कविताकी ओर ही झुका और उस कालकी राज-नीतिसे अलग रहा।

कविताकी प्रेरणा उसे कैसे मिली इसकी एक मनोरंजक कहानी कही जाती है। कहते हैं कि शीराज़के पास एक जगह है जिसका नाम 'पीरे-सब्ज़' है। लोगोंमें यह बात प्रचलित थी कि अगर कोई नौजवान चालीस रात अगर 'पीरे-सब्ज़'में जगा हुआ रहे तो वह बहुत बड़ा कवि हो सकता है। हाफ़िज़ने वैसा करनेका संकल्प किया। चालीस दिनोंतक वह पीरे-सब्ज़में जागकर रात बिताता रहा और सबेरे अपनी प्रेयसी शाखे-नबतके घरसे होकर गुज़रता। दोपहरमें वह कुछ खाता और विश्राम करता। चालीसवें दिन उसकी ख़ुशीका ठिकाना नहीं रहा जब उसकी शर्मीली प्रेयसीने उसे बुलाया और उससे कहा कि उसके सामने वह राज-पुत्रको भी कुछ नहीं समझती। उसके पास ही रहकर उसने रात बितायी लेकिन अपने संकल्पके अनुसार वह 'पीरे-सब्ज़' गया। कहते हैं कि सबेरे हरी पोशाक धारण किये हुए एक बूढ़ा आया और उसके हाथमें अमृतसे भरा एक प्याला था। लोगोंका कहना है कि यह स्वयं ख़िज़्र था। उसीके प्यालेका अमृत पानकर वह बड़ा कवि हुआ।

हाफ़िज़की कविताएँ मुग्ध करनेवाली हैं। उनमें एक ताज़गी है, एक

मस्ती है। उसकी कविताओंमें जैसे उसका अपना विश्वास स्पष्ट रूप धारण किये हुए है। अपने समयके अशान्त वातावरणसे अछूता रहकर वह रस-सृष्टिमें समर्थ हो सका, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। उसने अपनी कविताओंमें धर्मके दिखावेपनकी खूब भर्त्सना की है।

पन्द्रहवीं शताब्दीके श्रेष्ठ सूफी कवियोंमें जामीका भी नाम लिया जाता है। जामी एक बहुत बड़ा कवि, एक बहुत बड़ा विचारक और एक बहुत बड़ा साधक था। उसका पूरा नाम मुल्ला नूरुद्दीन अब्दुर्रहमान जामी था। वह खुरासानके जाम नगरका रहनेवाला था। इसीलिए जामी कहलाया। उसका जन्म सन् १४१४ ई० में हुआ। उसने बहुत कुछ लिखा है। उसके कई ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। उसकी सात मसनवियोंमें हफ्त-औरंग, यूसुफ ओजुलेखा आदि हैं। उसका नफहातुल उन्स सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें सूफी साधकों और सिद्धान्तोंका विवरण दिया हुआ है। उसके अन्य ग्रन्थ सलमा ओ-अबसल, लवाइह, बहारिस्तान आदि हैं। उसके गीतोंके तीन दीवान हैं। धर्मशास्त्र, रहस्यवाद, अरबी व्याकरण और छन्द आदिके सम्बन्धमें उसने कई ग्रन्थ लिखे हैं।

वह सूफियोंके नक्शबन्दिया सम्प्रदायका था। उसने परमात्माको परमसौन्दर्य कहा है। उसे परमसौन्दर्य मानकर उसने अपने रहस्यवादी सिद्धान्तोंका विवेचन किया है। उसका कहना था कि सुन्दर वस्तुएँ मानो उस परमसौन्दर्यके साथ हमारा सम्बन्ध स्थापित करती हैं चूँकि परमात्माने अपने सौन्दर्यको अभिव्यक्त करनेके लिए ही सृष्टि की है। इसीलिए वह प्रेमको साधनामें प्रधान स्थान देता है। प्रेम करनेवाला ही उसे पा सकता है चूँकि प्रेम उसे सभी सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त कर देता है। अपने आपपर प्रेमके द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है। सभी प्रकारके स्वार्थ, सभी प्रकारकी तुच्छताओंसे अपनेको बचानेके लिए प्रेमका ही सहारा लेना चाहिये। प्रेमके सहारे उस बन्धनको जो इस संसारसे जकड़ देता है परमात्मासे मिलनका साधन बनाया जा सकता है। यह दृश्यमान जगत् ही मानो साधक और परमात्माके बीचकी कड़ी हो जाता

है। अतएव जामीने प्रेमकी साधनाको परमात्माकी प्राप्तिके लिए सोपान माना है।

पिछले कई अध्यायोंमें हमने इस बातकी चेष्टा की है कि सूफीमतके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश पड़े और उसे समझनेमें सहायता मिले। इस अध्ययनकी समाप्तिपर यह लक्ष्य किया जा सकता है कि जिस युगमें सूफीमतका आविर्भाव हुआ अथवा जो सूफी काव्यका स्वर्णयुग था वह युग अब नहीं रहा। सूफी साधना, अन्य मध्ययुगीन साधनाओंकी तरह आजके परिवर्तित युगमें जैसे अवास्तव और स्वप्नवत् मालूम होती है। यह सही है कि वर्तमान युगमें न वैसे साधकोंके लिए ही स्थान रह गया है और न उस युगके विश्वास ही रह गये हैं। अतएव इस देशमें या उस देशमें कहीं कोई सूफी साधक हो या उस प्रकारकी बातोंमें आस्था रखने-वाले लोग हों लेकिन साधारणतः यह कहा जा सकता है कि इस युगमें उन चीजोंको पाना मुश्किल है। इतना होते हुए भी इसके प्रभावकी व्यापकताको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस विचारधाराने एक बड़े जनसमुदायको प्रभावित किया है। अरबी, फारसी और उर्दू साहित्यमें तो इस प्रभावको पद-पदपर देखा जा सकता है। अन्य भाषाओंके साहित्य-को भी इसने कम प्रभावित नहीं किया है और विशेष रूपसे उन क्षेत्रोंमें जहाँ सूफी साधना क्रियाशील रही है। मनुष्यको मनुष्य बनानेवाली अन्य विचारधाराओंके समान सूफी विचारधारा भी आज अन्तःसलिला होकर ही बह रही है।

शब्दानुक्रमणी

त्र

द

फ

ब

य

ष

स

सहायक ग्रन्थोंकी सूची और संकेत-विवरण

Abdul Ghani, M. A., M. Litt.	Pre-Mughal Persian in Hindustan (1941) प्रि. प. हि.
Abdul-Fayd Khwaja Kamaluddin	Rawdatu'l Qayyumiya रौ. क.
Abu Nasar al-Sarraj	Kitabal-Luma (Ed. R. A. Nicholson, London, A. D. 1914) कि. लु.
A. J. Wensinck	The Muslim Creed (1932). मु. क्री.
Al-Hujwiri	The Kashf Al-Mahjub, Trans Raynold A. Nicholson, (1911). कश्फ०
Al-Suhrawardi	Awarifu'l-Ma'arif Trans. Clarke. अ. मा.
A. M. A. Shushtery	Outlines of Islamic Culture. Vol. XX, (1938). आ. इ. क.
Athelstane Baines	Ethnography (Castes & Tribes 1912). एथनोग्राफी
A. V. Williams Jackson	Zoroastrian studies (1928). ज़ो. स्ट.
Bertrand Russell	A history of Western Philosophy (1947). हि. वे. फि.
Burhan Ahmed Faruqi, M. A. Ph. D.	The Mujaddid's Conception of Tawhid (Second Ed. July, 1943). मु. क. तौ.
C. C. J. Webb	God and Personality (1918) गा. प.
D. B. Macdonald	The Religious Life and Attitude in Islam (1909), रे. ला. ए. इ.
D. C. Sen	History of Bengali Language and Literature. हि. बं. लै. लि.

E. Caird	The Evolution of Theology in the Greek Philosophers. इ. आ. थ्यो. इ. ग्री. फि.
Eward Sacho	Al-Beruni's India. अ. ब. इ.
E. G Browne	Literary History of Persia (1909). लि. हि. प.
,,	Year Amongst the Persians. इ.ए.प.
E. H. Palmer	Oriental Mysticism (1867) ओ. मि.
E. J. W. Gibb	A History of Ottoman Poetry (1900). हि. ओ. प.
Elphinstone	The History of India (1874). हि.इ.
E. Sell	The Religious Orders of Islam (1908) रे. आ. इ.
F. Hadland Davis	The Persian Mystics (1907). प. मि.
Gurdial Mallik	Divine Dwellers in the Desert.
Jacques de Marquette	Introduction to Comparative Mysticism (1949). इ. क. मि.
James Hastings-Editor	Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol. XII, (1921). इ. रे. ए.
James Hope Moulton	Early Zoroastrianism (1913). अ. ज़ो.
Jami	Nafahat ul-Uns, (Ed. W. Nassau Lees, Calcutta 1859). न. उ.
Jethmal Parasram Gulraj	Sind and its Sufis (1924).
J. N. Sarkar	History of Aurangzeb (1916). हि. औ.
John A. Subhan	Sufism its Saints & Shrines (1938). सू. सेण्ट. श्रा.
Khaja Khan	Studies in Tasawwuf (1923). स्ट. त.

Lajwanti Ramakrishna	Punjabi Sufi Poets (1938). पं. सू. पो.
Margaret Smith	Rabia the Mystic (1928). रा. मि.
"	Studies in Early Mysticism in the Near and Middle East (1931). स्ट. अ. मि. नि. मि. इ.
Marmaduke Pickthall	The Glorious Quran (1938). कुरान
Moulvi Abdul Latiff Khan	A Short History of the Glorious Moslem Civilisation (1935). शॉ. हि. ग्लो. मु. सि.
M. Winternitz	Some Problems of the Indian Literature. प्रा. इ. लि.
Percy Sykes	History of Persia (1930). हि. प.
Philip K. Hitti	History of the Arabs (1949). हि. अ.
Pringal Kenedy	Arabian Society at the Time of Muhammad, (1926).
Radhakamal Mukherjee	Theory and Art of Mysticism (1937). थ्यो. आ. मि.
R. A. Nicholson	The Idea of Personality in Sufism (1923). आ. प. सू.
"	Literary History of the Arabs (1930). लि. हि अ.
"	The Mystics of Islam (1914). मि. इ.
"	Selected Poems from the Diwan-i-Shamsi Tabriz, (1898). से पो.
"	Studies in Islamic Mysticism (1921). स्ट. इ. मि.
Robert Alfred	Hours with the Mystics (1860).

Vaughan	आ. वि मि.
Rose	The Dervishes. दर.
R. P. Masani	The Conference of the Birds (1924). का. ब.
Sarvapalli Radhakrishnan	Indian Philosophy. इ. फि.
Shabistri	Gulshan-i-Raz. गु. रा.
Stanley Lanepoole	Mohammedan Dynasties (1894).
Syed Amir Ali	Islam (1906). इस्लाम
"	Short History of the Saracens (1934). शा. हि. सा.
"	The Spirit of Islam (March, 1923) स्पि. इ.
Syed Muhammed Latif	History of the Punjab (1891). हि. पं.
Th. Stcherbatsky Ph. D.	The Conception of Buddhist Nirvan, (1927). क. बु. नि.
Titus	Indian Islam. इण्डि इ.
T. W. Arnold	The Caliphate (1924). कालि०
"	The Preaching of Islam (1935). प्रि इ.
V. A. Smith	Akbar, the Great Mogul (1917). अक.
V. Gordon Childe	What Happened in History. ह्वा है हि.
Wahed Hussain	Conception of Divinity in Islam and Upanishads. क. डि इ उ.
William Crooke	Herklot's Islam in India (1921). इ. इण्डि अथवा ह. इ. इ.
Zuhirruddin Ahmed	An Examination of the Mystic Tendencies in Islam (1932).

मि. टे इ.

Census of Indian Report, Punjab, Part 1, (1911). से. इ. रि. पं.

Dabistan (1877).

A Dictionary of Islam (1885). डि. इ.

Encyclopedia of Islam, Vol. VIII, (1934). इ. इ.

Gazetteer of the N. W. F. P. गै. ना. वे. प्रा.

Glossary of Punjab Tribes & Castes (1919). ग्लौ. पं. ट्रा. का.

Hibbert Journal (October, 1915). हि. ज.

Journal Royal Asiatic Society. ज. रा. ए. सो.

Khoja-Vrittanta.

(संस्कृत-हिन्दी)

गोपीनाथ कविराज—सम्पादक गोरक्षसिद्धान्त संग्रह (१९२५) गो. सं.

मौलाना सैय्यद सुलेमान नदवी अरब और भारतके सम्बन्ध (१९३०) अ. भा. सं.

शान्ति भिक्षु महायान

हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ-सम्प्रदाय ना. सं.

(अरबी-फारसी)

अबूतमाम अशआर अल-हमासह (१८२८)

अबूदाऊद सुनन (कैरो, सन् १२८०)

अल कुशैरी रिसाल

इनायत अल्लाह खाँ तजकिरा

इब्न खल्दून मुकद्दिमा

इब्न नदीम	किताबुल फेहरिस्त	
नजमुल गनी	तजकिरातुस्सुलूक	
मीर उम्मन	बागो बहार	
	असारुल बिलाद	
	इंसानुल कामिल	
	किताबुल हिन्द	
	तजकिरातुल औलिया	त. औ.
	मिश्कात अल-मसाबीह	
	मुरुज-उज-जहब	

(फ्रेंच-जर्मन)

आगस्ट मूलर	डर इस्लाम इम मौर्गेन अण्ड अबेण्ड लैण्ड	
गोल्डजिहर	मुहम्मदनिस्चे स्टूडियेन	
लुई मासिञो	कात्र तेक्स्त्	

(बौद्ध-ग्रन्थ)

धम्मपद

विसुद्धिमग्ग

शिक्षा-समुच्चय

(बंगला)

तापसमाला खण्ड १-२ (१९०७)		ता. मा.
,, ,, ३ (१९००)		
,, ,, ४ (१९०२)		
,, ,, ५ (१९०४)		
,, ,, ६ (१९०५)		

CIRCULATED



Cat

Central Archaeological Library,
NEW DELHI.

Call No. 181.5/Tiw

Author—29054

Title—सुशीमत साधन और साहित्य

Borrower No.	Date of Issue	Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book clean and moving.

S. B., 148. N. DELHI.